Barcode - 99999990292316
Title - Bade shiksha patra
Subject - Devotional
Author - Hari ray
Language - sanskrit

Pages - 458

Publication Year - 1961 Creator - Fast DLI Downloader

https://github.com/cancerian0684/dli-downloader

Barcode EAN.UCC-13



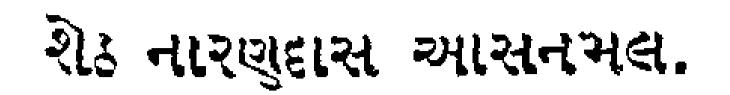
BHAVAN'S LIBRARY

This book is valuable and NOT to be ISSUED out of the Library without Special Permission

पत्र जो कोई वांचेगो ताके सकल दुःख श्रीआचार्यजीकी ऋपातें निवृत्तं होयंगे हृदयमें भगवद्भाव होयगो, यह विचारिकें सगरे शास्त्र, पुराण, श्रीभागवत सर्वके सिद्धांत संयुक्त पत्र लिखिके नित्य एकपत्र श्रीहरिरायजी अपने मनुष्यसाथ श्रीगोपेश्वरजीकों पठावते. सो श्री-'गोपेश्वरजी अपनी वेठकमें एक गवाखामें धरि राखते, वांचते नांही-जानते जो भाईको स्नेह हम उपर वहुत हे तासों शिक्षा लिखत हे सो हम तो भगवत्सेवा करत हे ओर कच्छ जानत नांही, यह विचारिकें एक गवाखामें धरि राखते. एसें करत शिक्षापत्र ४१ पठार्ये सो सव श्रीगोपेश्वरजी धरिराखे वांचे नांही तव श्रीहरिरायजीने अपनेमनुष्य-सो पूछी जो भाई पत्र वांचतहें ? तव मनुष्यनें विनति करी जो महा-राज हमारे आगें तो एक गवाखामें धरिदेतहें वांचत नांही. कुशलपत्र लिखिकें हमकों विदा करतहें पाछें आपु वांचत होय तो ताकी ठीक [खबर] नांही हमारे आगे तो नांही वांचत, तब श्रीहरिरायजी विचारे जो नांही वांचतहे तो पत्र ४१ प्रठाये सोहु वहुत हे एकहू पत्रवांचेंगे तो सकल दुःख निवृत्त होयंगे. पाछें श्रीहरिरायजी पत्र नांही लिखे. पाछें कछुक 'दिनमें श्रीगोपेश्वरजीके वहुजी लीला विस्तारे सो श्रीगोपेश्वर-जीको बहुतही विरह भयो, तीनदिनलों 'भोजन नाही कियो, सगरे मिलिकें समुझाय हारे. काहूकी आंनी नांही. कहें अव अकेले मोसों सेवा न होयगी, घर छोडिकें कहू वनमें जाउंगो. पाछें श्रीहरिरायजीको कृपापात्र सेवक एक हरिजीवनदासहे ताकी उपर श्रीगोपेश्वरजीहू वहुत कृपा करते. सो उह वैष्णव श्रीगोपेश्वरंजीके पास आयके वहुत समुझायकें विनति करी. सो श्रीगोपेश्वरजीनें एकहू न मानी तब हरि-जीवनदासनें कही जो यासमय श्रीहरिरायजी घर होते तो समुझावते

१ या विषयमें संदेह होय सो शिक्षापत्र ६ और २० की टीपसों निष्टत्त करनों.

ओरकी वात नांही. पाछें हरिजीवनदासनें श्रीगोपेश्वरजीसों पूछी जो श्रीहरिरायजीके कोई पत्र आयेहें? तब श्रीगोपेश्वरजीनें कही जो आगेंतो वहुत आवते सो गवाखामें धरेहें अवदशपांचिदनतें तो आवत नांही. तव हरिजीवनदासनें गवाखामेंतें पत्र ४१ निकारिकें श्रीगोपेश्वर-जीके आगें धरे ओर विनति कीनी जो महाराज एकपत्र बांचियें तो सही, तब श्रीगोपेश्वरजीने एकपत्र अपने श्रीहस्तकमलमें लियो सो भगवदिच्छातें प्रथमपत्र हस्तमें आयो. तव श्रीगोपेश्वरजीकों उहपत्र वांचतेही सगरो दुःख दूरि होयगयो. भगवद्भाव हृदयमें चढ्यो. तब श्रीगोपेश्वरजी उठिके हरिजीवनदास वैष्णवकों अपने हृदयसों लगा-यकें कहे जो तूं आयो तो हम यह श्रीहरिरायजीके पत्र वांचे ताकरि मेरो सगरो दुःख गयो. पाछें श्रीगोपेश्वरजी शिक्षापत्र ४१ हुते सो सब वांचे पाछे श्रीगोपेश्वरजीने हरिजीवनदाससों कही जो यह शिक्षा-पत्रकी टीका में करूं जो तू मेरेपास नित्य वेठे, तब हरिजीवनदासनें विनित करी जो महाराज या उपरांत ओर कहाहे? में वेठूंगो, परंतु आप सानकार भोजन करियें सगरे सेवक वैष्णव दुःखीहें तब श्री-गोपेश्वरजी प्रसन्न होयके स्नान किये पाछें आपु भोजन किये तन सगरो परिवार प्रसन्न भयो. सेवक वैष्णव सुख पार्ये. पार्छे हरिजीवन-दासको पास वेठाये श्रीगोपेश्वरजी, भावमें मम होय श्रीआचार्यजी, श्रीगुसाईजी, श्रीहरिरायजीका स्मरण करि नमस्कार करि शिक्षापत्रकी टीका करन लागे सो शिक्षापत्रके प्रारंभसों लिख्यो है.





જન્મ –ન વન્ ૧૯૦૦ શ્રાવણ સુદી છ

અવમાન –સવત્ ૧૮૮૪ શ્રાવણ વદ U, ઇ સ ૧૮૨૮ તા કઠી અપ્રેમ્બર

परम भगवदीय नारायणदास आसनमळनो परिचय.

चालता समयने लई जुनी पराडी अनुसार परम भगवदीय नारायणदासनी तेमज तेमना कुढुंबनो परिचय कराववी तेमां कंई खोढुं नथी.

जो के आ ग्रंथ एवी छे के जेमां आत्मप्रशंसा नज होबी जोइए, परन्तु आ तो भगवदीयनो परिचय अने ते द्वारा प्रगट थयेला ग्रंथनुं मनन थाय तो नव युवान मंडलने तेमांए जे स्वधमेंने मुख्य बळगी रही बीजो धर्म दुःखदायी जाणे तेमने आवा भगवदीयना परिचयथी वधु लाभ थाय ने श्रीगुरुक्तपाथी भगवान पण दया लाबी सौने आवो ग्रंथ मनन करतां तेवां कार्यो करवा उत्तेजित करे ए आशा छे.

भाई नारायणदासनुं कुढुंब सिंधमां करांची पासे ठहा (नगरठहाना नामें जे ओळखाय छे ते) मां रहेतुं हतुं. ज्ञाते लोहाणा वैष्णव हता. हाल पण तेओ गढामलना कुढुंबना नामथी ओळखाय छे. गढामल नारायणदासना दादा थाय छे. वंशावळी नीचे प्रमाणे छे.

आनंदराम आसुमल गढामल आसुनमल भंगाबाई त्रीकमदास नारायणदास बहुमदास जेठानंद

सज्गत शेट नारायणदास आसनमलनं जीवनचरित्र लखता अगाज तेमना विकासी कंईक जीवन कथानी अहीं उछेख करवानी आवश्यकता जणाय छे. तेमना पिता श्री सादुं जीवन गुजारता हता. तेमना छुदंबमां तेमना दादा शेठ गढामल ते खेठ ना. आ. ना दादा, मीरोने त्यां प्राइम—मीनस्टर हता. सिंधमां तेमणे मीरोने त्यां उच पंक्तिनी हकुमत तथा सायभी भोगवी हती. तेओ स्वाभिमानी अने अडग टेकीला पुरुष हता. सिंधमां मुसलमानोनं जोर वधारे हतुं तेम छतां पोते सचानो दरजो मीरोने त्यां सारी रीते चलावता अने हिंदुओनं स्वमान जळवाई रहे ते वावत अत्यंत काळवी राखता हता; तथी फंइक अनुचित प्रसंगने लीधे तेमणे पोताना होहानं राजी नामुं आप्युं हतुं.

तेमना कुरुंबमां तेमना काका आसुमल उदार हृदयना हता. जे दान आपता ते गुप्त आपता. तेओ नगरशेठ हता. शेठ आसुमले द्रव्य संपादन करवा माटे अरवस्तान तरफ प्रयाण कर्युं अने पोतानी कार्यकुशकताथी अरवस्तानन मांथी तेओ सारुं द्रव्य पेदा करी लाव्या, अने कहेवत छे के, '' सर्वे गुणाः कांचन-- माथ्रयंते '' तेप्रमाणे लोकोमां तेमनी अ अगाऊनी प्रतिभा हती तेमां विशेषता थई.

पीते लोहाणा ज्ञातिना अने परम वैष्णवजन हता तथी तेमनुं कुढुंब पण तेज नीति रीतिने अनुसरीने चालतुं हतुं. तेओ ठहामां करांची नजीक रहेता हता.. शेठ आसुमलनी वावतमां एक प्रसंग एवो बन्यो के जे तेमनी यादगीरी सदाने माटे कायम राखे छे. ठहामां मुसलमानोनी वस्ती वधारे होवाथी घणां खरां पाणीनां साधनो तेमना कवजामां हतां तथी हिंदुओ पासेथी तेओ पाणीना एक घडा माटे रू. ०-०-३ त्रण पाई लेवा लाग्या जे हिंदुओने माटे एक त्रासदायक कर समान थई पड्युं, ते उपरथी शेठ आसुमले ठहाना विधानी कुढुंबना भाई फरसराम पासेथी जमीन लई तेमां एक रातमां तळाव खोदाच्युं जे हाल नाना बागना नामे ओळखाय छे.

तेमने एक वहेन मंगीबाई नामे छे जेओ बाळविधवा थयेल छे अने त्यार वाद तेओ मात्र प्रमुखेती अने प्रमुखेति जाता पोतानी समय व्यतीत करती हाल मधुरां जिल्लामां श्री गोक्रळमां रहे छे. तेमना भाई त्रीकमदास आसनमृल झवेरातना धंधामां बाहोश हता परन्तु तेओ ४२ वर्षनी युवान वये श्री प्रमुचरणमां सिधाव्या. त्यार बाद तेमना एक नाना भाई वल्लभदास पण पोतानी २४ वर्षनी भर युवाव-स्थामां पोताना वतन तरफ समुद्रप्रयाण करतां आकस्मिक वहाण खराबे-चढवाथी समुद्रमां द्वी गया अने प्रमुचरणमां पहींच्या.

शेठ त्रीकमदास पोतानी पाछळ तेमनी एक विधवाने मूकी गया छे ते पण प्रभुस्मरणमांज दिवसो निर्गमन करे छे.

शेठ नारायणदास आसनमछ के जेमणे पोतानी बाहोशीथी पुष्कक द्रव्य संपादन करी उदार सखावतो करी छे तेमना जीवनचरित्रनो उछेख करवानी। पण खास आवश्यकता छे.

शेठ नारायणदास प्रथम ज्यारे सुंबाईमां आज्या त्यारे रु. ८) ना भाडानी ओर्डीमां गोस्वामी श्री चीमनलालजी महाराजना मंदिरमां रहेता हता. परन्तु '' वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्यश्चतान्यि " ए कथन अनुसार तेमणे झवे-रातना पंधामां सारी प्रतिष्ठा संपादन करी. झवेरातनी दलालीमां तथा तेज पंधामां विलायतमांथी तेमणे घणुंज द्रव्य एकडुं कर्युं. पोते साटाईथी रहेता अने करकसर करी द्रव्यने सन्मार्गेज वापरता हता. तेओ श्री प्रष्टिमार्ग धर्मना चुस्त अनुयायी हता.

ने पोतानी लोहाणा ज्ञाति तरफ तेमने अत्यंत ममता हती. तेथी अणीना चखते तेमणे घणीज सारी मदद करी. संबत् १९६४ ने ७० नी सालनी नाणासंबंधी हाडमारीना समयमां तेमणे मुलतानी भाईओनी सारी सेवा बजावी हती.

ठद्वानी लोहाणा मुलतानी ज्ञातिमां तेओ ज्ञातिना एक आगेवान पुरुप हता अने ज्ञातिमां तेमज नगरवासी वीजा मुलतानीओमां पण. तेमनुं मान सारुं हतुं.

मुंबाईमां झवेरातनो घंघो तथा ते धंघामां दलाली करता तेथी मोटा मोटा अमलदारो तथा आगेवान पेढीओ तेमज परदेशी अने-युरोपियन वेपारीओमां पण तेओ सारी रीते जाणीता हता. मुंबाईना झवेरी माणेकचंद पानाचंदनी पेढी साथे तेमने घणोज नीकटनो वेपारसंबंध हतो अने तेमनी साथे तेओ पोताना कुढुंबीओनी माफकज वर्तता हता.

क्षणभंगुर देहनो विश्वास न राखतां पोतानी हयातीमांज तेमणे स्वहस्ते उदार न्सखावतो जाहेर करी हती जे हाल पण तेमना ट्रस्ट मुजव चाले छे, ते पैकीनी (१) 'सखावत संवत् १९७० मां ठहा पांजरापोळने सारी रकमना शेरो आपीने करी हती. (२) अने बीजी गोशाळा उद्धव कुंडमां (मथुरां जिल्लामां) खोली हती जे हजु चालु छे. (३) ठरामां शेठ त्रीकमदास आसनमल धर्मादा आयुर्वेदिक औपधालय. (४) पुष्टिमार्ग धर्मना प्रचारार्थे रुपीआ एक लाखनी सखावत करी छे के जेना व्याजमांथी पुष्टिमार्ग धर्मनो वहोळो फेलावो थाय. आ संस्थाने अंगे करांचीमां एक पुस्तकालय स्थापित करवामां आञ्युं छे अने पुष्टिमार्ग धर्मनां पुस्तको तथा अप्रकट साहित्य प्रकट करी तेने प्रसिद्धिमां लाववानो प्रयास ट्रस्टी-ओ तरफथी चालु छे. तेने अंगे प्रथम पुस्तक श्री हरिरायजीकृत वहे शिक्षापत्रनी नकलो खलास थई जवाथी फरीथी ते छापवातुं काम हाथ धरवामां आव्युं छे. (५) ब्रज भृमिमां कुंढो खोदाववा तथा जीर्ण थयेला कुंडोनो जीर्णोद्धार करवा माटे रुपीआ एक लाखनी सखावत करी छे. अने (६) रुपीआ एक लाख नगर-उद्दा स्कुलने माटे काढेला छे. तेमज (७) तेमना गृहदेवना श्री ठाकोरजी माटे मंदिर चांधी तेमां श्री ठाकोरजीने विराजमान करवा माटे रुपीआ एक लाखनी सस्वावत करी छे. आ वधी तेमनी सम्बावतोनुं तेओ द्रस्य करी गया छे जे हायकोर्ट्यी मंजुर करावी इस्टीओ ते संस्थाओ-सारी-रिते न्वलावे छे. ठाकोरजी माटे मंदिर बांधवानी योजना चार्ट हो. तेमज हायस्कूल नगरठहामां चालु करवा माटेना प्रयासी पण चाछ छे, दरम्यान ते खातेथी विद्यार्थीओने स्कोलरशीपो अपाय छे.

शेठ नारायणदासनां पत्नी तेमनी ह्यातीमांत्र गुजरी गयां हतां. तेमने फंई पण संतति न हती तो पण तेमणे फरीयी लग्न करवानो विचार मांदी वाळ्यो हतो. पोताना कानिष्ठ बंधु भाई जेठानंद तरफ तेओ वात्सस्य प्रेम राखता अने तेमने घणुंज चाहता हता.

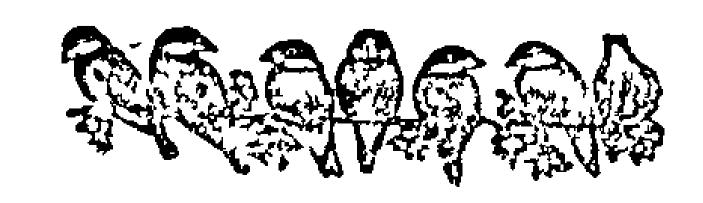
शेठ नारायणदास सामान्य स्थिति अने साधारण केलवणीमां उछरेला हता तेम छतां तेमनामां धर्मभावना अने नीति रीति अने वेपारी कुनेह उच्च प्रकारनां हतां तेथी पुष्कळ द्रव्य संपादन करी पोतानुं नाम अमर करी तेओश्री पोतानी ६० वर्षनी वये संवत् १९८४ ना श्रावण वद ७ ने गुरुवार ई. स. १९२८ ना सपटेम्बरनी ६ ही तारीखने रोज श्रीप्रशुश्ररणमां पहोंच्या.

तेमनी पछी तेमना नाना भाई शेठ जेठानंड आसनमले वहीवट पोताना हाथमां लीघो. वधाये छेवट सुधी अविभक्त कुढ़ंबमांज रहेता हता. भाई जेठानंदना प्रथम लग्ननां पत्नी गुजरी जवाथी तेमणे वीज्ञं लग्न कर्युं हतुं, परन्तु प्रभुनी माया अकलित छे! तेमने पण कंई संतित थई नहीं अने पोताना वडील वंधु नारायण-दासना अवसान पछी घणाज ढंक समयमां तेओए संवत् १९८५ ना पोष वद १२ सने १९२९ ता. ६ ठी फेब्रुवारीने रोज तेमना स्थूळ श्ररीरनो त्याग कर्यो अने तेमनी पाछळ तेमनी एक विधवाने तेओ मूकी गया छे. तेओ पोतानी हयातीमांज पोतानी मीलकतत्तुं कायदेशीर वील करी गया छे अने पोतानी मीलकतमांथी अमुक यार्चनी रकमो अपाई गया पछी अवशेप रहेली तेमनी वधी मीलकत धर्मादा कर- वार्जुं वीलमां जाहेर करी गया छे.

उपर जणावेल ठहाना लोहाणा गंढाणी कुटुंबना अवशेषो तरीके हालमां भाई त्रीकमदासनां विधवा मथुरांवाई तथा भाई जेठानंद आसनमलनां विधवा गोमतीबाई छे जेओ पोतानो समय श्री प्रभुसेवामां अने यात्राओमां निर्गमन करे छे, अने त्रीजां शेठ नारायणदासनां बहेन मंगीताई के जेओ बालविधवा छे तेओ पण अष्टी प्रहर श्रीठाकोरजीनी सेवामांज पोतानो समय व्यतीत करे छे.

आ शिक्षापत्र शेठ नारायणदास तथा शेठ जेठानंद आसनमलना द्रस्ट फंड-मांथी द्रस्टीओए छपान्युं छे तेथी उपरोक्त शेठीआओनो परिचय अही आप-वामां आन्यो छे.

भाविक वैष्णवजनो शिक्षापत्रनो वधु प्रमाणमां पाठ करे ते सारु शिक्षापतर्तुं मृत्य घणुंज और्ट्ट राखनामां आन्युं छे.



શેઠ જેઠાનંદ આસનમલ.



જન્મ –સવત્ ૧૮૦૮ના કા^ગુન વહી ૧૧ અવસાન મવત્ ૧૮૮૫ પાેષ વદી ૧૦, ઇ ૫ ૧૮૦૯ તા દઠી રેખ્રુઆરી

श्रीहरिरायविरचित।

बडे शिक्षापत्र.

॥ श्रीकृष्णाय नमः । श्रीगोपीजनवस्त्रभाय नमः ॥ अथ श्रीहरिरायजीकृतानि शिक्षापत्राणि श्रीगोपेश्वरजीरचितया व्रजभापाटीक्या समेतानि श्रीनृसिंहलालजी महाराजाज्ञानु-सारेण संशोधितानि व्रजभापाया मूलश्लोकटीकास्थ-श्लोकानां राष्ट्रार्थयुतानि प्रकारयंते ॥

मूलं-सदोद्विग्नमनाः कृष्णदर्शने क्षिष्टमानसः। लोकिकं वैदिकं चापि कार्यं कुर्वन्ननास्थया॥१॥ निरुद्धवचनो वाक्यमाव्यकमुदाहरन्। मनसा भावयेन्नित्यं लीलाः सर्वाः क्रमागताः॥२॥

शब्दार्थः — निरंतर (अहंताममतात्मक असदाग्रहतें) उद्देगयुक्त नाम निवेंदयुक्त हे मन जाको ओर श्रीकृष्णके दर्शननिमित्त क्षिष्ट (आर्तियुक्त) हे मन जाको, ओर लोकिक तथा वैदिक कार्यहूं फलाशा छोडिकें करिवेवारो, वचनकुं नियममें राखिवेवारो, आवश्यक (जरूर बोलवे विना कार्य चले निह तितनों) वाक्यको उचार करिवेवारो वैष्णव मनसों क्रमप्राप्त सर्व लीलाकी भावना करे ॥ २॥

टीका-जो लौकिक वैदिक कार्यके आवेश करी मनकों उछेग 'करिकें तथा लौकिक वैदिक कार्यके क्षेशयुक्त श्रीकृष्णके दर्शनकों जइए सो प्रभुतो आनंदरूप हे सो जीवको मुख क्षेशरूप देखिकें उदासीन होय जाय तातें लोकिक (संसारके) कार्य सिद्ध न होय अथवा विगरि जाय जासुं मनमें क्षेश नांहि करियें। लौकिक बैदि-क्कों मनमें तुच्छ करिकें जानियें, ओर प्रमुकी सेवा संबंधि कार्य सिद्ध होय तब मनकों प्रसन्न राखियें।जो कदापि सेवा न बने तो मनमें क्केश राखिये यह पुष्टिमार्गकी रीति है। जेर्से सेवा व्रजभक्त करते, श्रीठाकुरजी गोचारनकों बनमें पधारते, तब वियोगमें वेणुगीत युगल-गीत गावते पाछे जब श्रीठाक्ररजी ब्रजभक्तनकों सुखदानार्थ ब्रजमें पधारते तब व्रजभक्त आनंदसो दर्शन करते, तेसेंही पृष्टिमार्गमें सेवा-समय सेवा—दर्शन करियें ओर अनोसरमें श्रीठाकुरजीसंबंधी क्वेश (वियोगार्ति) करियें. श्रीकृष्णके मुखारविंदको ध्यान करियें । जब सेवाको समय होय तब आतुरतासों श्रीकृष्ण फलात्मक पुरुपोत्तमके दर्शन करियें। पाछें लौकिक कार्य वैदिक कार्य गृहस्थाश्रमको धर्महे तातें लौकिक अपकीर्तिक निवृत्यर्थ तथा वैदिक मर्यादाके लिये अवश्य करियें। परंतु लौकिकवैदिकमें मन आसक्त न राखियें। मन एक श्रीऋष्णहींमें राखियें। तातें मनमें क्वेश राखिक दर्शन न करियें प्रसन्नतासों दर्शन करियें। सूतकमें मंदिरिक सेवा न होय सके तो भाव करि मानसी सेवा होय यह मर्यादा हे क्यों जो मंदिरमें छइ जाय ॥ १ ॥ अपर्ने वचनकों निरोध करनों, बोहोत बोलनों नांही आवश्यक कार्यार्थ होय सोइ वोलनों। मुख्य सिद्धांत तो यह हे जो भगवत्संबंध विना सर्वथाही न बोलनों परंतु लौकिक वैदिक कार्यार्थ गृहस्थाश्रममें बोले विना काम न चले तासों आवश्यक होय सोइ बोलनों सो काहेर्ते जो वाणीको निग्रह होय तो मुखरता दोप न होय ओर वोहोत बोले तो भगवद्भावहृदयमें स्थिर न रहे वाणीद्धारा वाहिर निकसि जाय एसी भंगवद्धमंकी सुक्ष्मगति हे तातें सब वाणीके निरोधसों सिद्ध होय । मनको यह धर्म हे जो अनेक ठिकानें भटक-

तह सो मनमें विचारिकें श्रीठाकुरजीकी अपार लीला अनेक प्रकार-की हे तामें क्रमसहित मन लगाय दीजियें, काहेतें जो मनको गमन पवनहूर्ते आधिक हे तार्ते मनको कोटिउपायसों रोकियें परंतु रोके मन रहत नांही तार्ते श्रीठाकुरजीकी लीलामें लगाइयें। जन्माप्टमी, अन्नकूट, होरी, हिंडोरा आदि वर्षदिनके उत्सव तिनकी अनेक लीला भावकरिकें पुष्टिमार्गकी रीतिसों मन लगायकें भावना करे। तथा नित्य-लीला पातः कालतें श्रीठाकुरजी श्रीनंदरायजीके घरमें जागतहे कुंजमें श्रीस्वामिनीजीके यहांहू जागतहे तथा खंडिता, मंगलाभोग, मंगला-आर्ति, सिंगार (शृंगार), ग्वाल, पालनां (पर्यंक), राजभोग, उत्था-पन, भोग, संध्या, शयन पर्यंत ऋतु अनुसार तथा शयन पछिहू शुद्ध मनकरिके रासलीला, मानलीला, जलस्थलिवहार इत्यादिक मनसों भावना करियें तथा श्रीआचार्यजीके कुछ श्रीगुसांइजीके स्वरू-पको विचार श्रीठाकुरजीको प्राकट्य कोंन अर्थ ? लीला सामग्री वागावस्त्रको भाव कहा हे? यह मनमें विचारि विचारि भावना करिये। ऋमसहित लीलाको विचार करिये ताकरि भगवदावेश होय । अष्ट प्रहर लीलाको स्मरण मनमें राखनों । भावनाके दोय प्रकार हे एक उत्तम ओर एक मध्यम। उत्तम प्रकार यह जो प्रथम स्नान करि शुद्ध होय भाव सहित गुरुके पास जाय अथम गुरुकी सेवाकरिकें पाछें गुरुके संग मंदिरमें जाय तहां गुरु जो आज्ञा देय सो तथा विनाति करि सेवा करियें आपु चलिकें जाय सेवा करेतो प्रभुकों श्रम न होय, ओर आनंदात्मक प्रभु वेगिही प्रसन्न होय यह उत्तम प्रकार जाननों। ओर मध्यम यह जो अपने हृदयमें मभुकों पधरावे सो प्रभु तो दयाल हे परंतु प्रभुकों श्रम होय सो पुष्टिकी रीति नांही। या कमसों सेवा करे॥ २॥

मूलं-सेवाऽपि काथिकी कार्या निरुद्धेनैव चेतसा। देहिकं कर्म निखिलं प्रभुसेवोपयोगिनाम् ॥३॥ यथोपकरणादीनां रक्षा तद्वद्विधीयताम्। भार्यादिष्वनुरागोऽपि सेवाहेनुक एव हि ॥४॥

शब्दार्थः-कायिकी सेवाहू निरोधयुक्त चित्तसोहि करनी। और प्रभुसेवामें उपयोगी जो पदार्थ हे ताकी जेसे रक्षा होय तेसे समग्र दै-हिक कर्म करने। ओर भार्या पुत्रादिकियो जो स्नेह सोह सेवानिमित्त राखनों जो सेवामें अनुकूल आवे ॥ ४ ॥ टीका-सेवा श्रीठाकुरजी-की अपने देहसों करनी ओर काहुसों न करावनी। जो कदाचित् अपने शरीरसों सब सेवा न होय आवे, अपने श्रीठाकुरजीकों श्रम होत होय, तो सहायके लीये ओरसंहूं करावनी । पुष्टिमागींय वैष्णव होय तथा अपने कुदुंबर्में समर्पनी मर्यादी होय तातें करावनी। अवै-ष्णवसों सेवा सर्वथा न करावनी । ओर जहांलों जितनी सेवा अपने देहसों वर्ने तहांलों ओरसं न करावनी। आलस्यकरिके लौकिकावेश न करनों। अपनी कायासों श्रीठाकुरजीकी सेवा करेतो शरीर इंद्रिय मन सब श्रीठाकुरजीके सन्मुख होय, भगवत्संबंधतें वहिर्मुखन होय। तातें अवश्य अपने शरीरसों नियमसहित भगवत्सेवा करनी । यह नियम राखनों जो इतनी सेवाकरिकें लौकिक वैदिक कार्य खानपान करनों। जा भांति जेसी प्रीतिसों खानपानको नियम हे तेसी प्रीतिसों सेवा जो वैष्णवको मुख्य धर्म हे सो नियम करिकें करनी यह दासको धर्म हे, जो में सेवा विना केसें रहुं या प्रकार मनमें विचारिकें ज्ञानकरि मनकुं समझावनो, ओर लोकिक वैदिक अनेक ठोर मन भटकत हे तहांते मनकों निरोध करिकें सेवा करे। प्रथम तो मनको निरोध राखे. जो मन लौकिक वैदिकमें जाय तो भगवत्सेवामें उद्धेग होय तब सेवामें श्रद्धा घटि जाय तार्ते मनको निरोध करनों । सेवा-संवंधि कार्य विना वोलनों नांही । लोकिक वानी कहे तो मुखरता दोप होय, सेवामें भगवदुभावरूपी रसको तिरोधान होय तार्ते मिथ्या वाणीकों निरोध करे। तेसेंही मिथ्या क्रियाकों निरोध करनों। भगवत्सेवाके समय लौकिक वैदिक कार्य कछ आय परे सो सर्वथा न करनों। जो सेवासंवंधि कार्य छोडिकें वैष्णव ओर कार्य करे तो वह कार्यद्र सिद्ध न होय लौकिकावेश होय। या प्रकार मन वाणी किया ये तीन्योंनकों लौकिक वैदिकर्ते निरोध करि भगवत्सेवा करे। ओर दैहिक लोकिक वैदिक कर्म वहोत हे सो यह संसारमें रहिके न करे तो संसारमें अपकीर्ति होय सेवामें प्रतिवंध होय तातें लौकिक वैदिक कार्यहूं लोकनके दिखायवेके लीये करे श्रीठाकुरजीकी सेवासों पहों-चिकें अनोसरमें आसक्ति विना करे। या प्रकार प्रभुके अंगीकार योग्य वस्त्र सामग्री करे ॥ ३॥ पाकादिक सामग्रीकी रक्षार्थ ओर श्रीठाञ्चरजीकी सेवार्थ सब कार्य करे। या प्रकार वैष्णव सेवा करे तो प्रभु अनुभव करावे । जो भार्या (स्त्री) भगवत्सेवामें सहाय होय तो सेवा भली भांतिसों होय। या भांति भगवत्सेवार्थ भार्या जो स्त्री ताहुमें अनुराग (स्नेह) राखनों । अपने विषयादिकके अर्थ अनुराग सर्वथा न करे। तामें दृष्टांत कहतहे। महादेवजीकी स्त्री सती हती सो वार्ने महादेवजीको कह्यो न मान्यो ओर श्रीरामचंद्रजीकी परीक्षा लेयवेकुं श्रीजानकीजीको स्वरूप धन्यो सो वार्त्ता महादेवजीने जानि सो महादेवजी तो भगवद्भक्त हे तात वाही समय सतीको त्याग कीयो पाछ सती दक्ष प्रजापति (अपने पिता) के यज्ञमें अपनो देह भस्म करि हिमाचलके गृहमें प्रकटभई। तहां अनेक तपस्या कीनी तोह् महादेवजीको मन सतीपर प्रसन्न न भयो तव श्रीटा इरजीनें

१ यह क्या स्केंद्रपुराण तथा रामायणमें प्रमिद्ध है.

मूलं-सेवाऽपि कायिकी कार्या निरुद्धेनैव चेतसा। दैहिकं कर्म निखिलं प्रभुसेवोपयोगिनाम् ॥३॥ यथोपकरणादीनां रक्षा तद्वद्विधीयताम्। भार्यादिष्वनुरागोऽपि सेवाहेनुक एव हि ॥४॥

शब्दार्थः-कायिकी सेवाहू निरोधयुक्त चित्तसोहि करनी। ओर प्रभुसेवामें उपयोगी जो पदार्थ हे ताकी जैसे रक्षा होय तेसे समय दैं-हिक कर्म करने। और भार्या पुत्रादिक विपे जो स्नेह सोहू सेवानिमित्त राखनों जो सेवामें अनुकूल आवे ॥ ४ ॥ टीका-सेवा श्रीठाकुरजीं की अपने देहसों करनी ओर काहुसों न करावनी। जो कदाचित् अपने रारीरसों सब सेवा न होय आवे, अपने श्रीठाकुरजीकों श्रम होत होय, तो सहायके लीये ओरसंहूं करावनी । पुष्टिमार्गीय वैष्णव होय तथा अपने कुटुंचमें समर्पनी मर्यादी होय तातें करावनी। अवै ष्णवर्सो सेवा सर्वथा न करावनी । ओर जहांलों जितनी सेवा अपने देहसों वनें तहांळों ओरसूं न करावनी। आलस्यकरिके लौकिकावेश न करनों। अपनी कायासों श्रीठाकुरजीकी सेवा करेतो शरीर इंद्रिय मन सब श्रीठाकुरजीके सन्मुख होय, भगवत्संबंधतें बहिर्मुखन होय। तार्ते अवश्य अपने शरीरसों नियमसहित भगवत्सेवा करनी । यह नियम राखनों जो इतनी सेवाकरिकें लौकिक बैदिक कार्य खानपान करनों। जा भांति जेसी प्रीतिसों खानपानको नियम हे तेसी प्रीतिसों सेवा जो वैष्णवको मुख्य धर्म हे सो नियम करिकें करनी यह दासकी धर्म हे, जो में सेवा विना केसें रहुं या प्रकार मनमें विचारिकें ज्ञानकरि मनकुं समझावनो, ओर लौकिक वैदिक अनेक ठोर मन भटकत है तहांते मनकों निरोध करिकें सेवा करे। प्रथम तो मनको निरोध राखे. जो मन लौकिक वैदिकमें जाय तो भगवत्सेवामें उद्धेग होय तब सेवामें श्रद्धा घटि जाय तार्ते मनको निरोध करनों । सेवा-संवंधि कार्य विना बोलनों नांही । लौकिक वानी कहे तो मुखरता दोप होय, सेवामें भगवदुभावरूपी रसको तिरोधान होय तार्ते मिथ्या वाणीकों निरोध करे। तेसेंही मिथ्या कियाकों निरोध करनों। भगवत्सेवाके समय लौकिक वैदिक कार्य कछ आय परे सो सर्वथा न करनों। जो सेवासंवंधि कार्य छोडिकें वैष्णव ओर कार्य करे तो वह कार्यह सिद्ध न होय लौकिकावेश होय। या प्रकार मन वाणी किया ये तीन्योंनकों लौकिक बैदिकर्ते निरोध करि भगवत्सेवा करे। ओर दैहिक लौकिक वैदिक कर्म वहोत हे सो यह संसारमें रहिके न करे तो संसारमें अपकीर्ति होय सेवामें प्रतिवंध होय तातें लौकिक वैदिक कार्यह्रं लोकनके दिखायवेके लीये करे श्रीठाकुरजीकी सेवासों पहीं-चिकें अनोसरमें आसक्ति विना करे। या प्रकार प्रभुके अंगीकार योग्य वस्त्र सामग्री करे ॥ ३॥ पाकादिक सामग्रीकी रक्षार्थ ओर श्रीठाक्करजीकी सेवार्थ सब कार्य करे। या प्रकार वैष्णव सेवा करे तो प्रभु अनुभव करावे। जो भार्या (स्त्री) भगवत्सेवामें सहाय होय तो सेवा भली भांतिसों होय। या भांति भगवत्सेवार्थ भार्या जो स्त्री ताहुमें अनुराग (स्नेह) राखनों । अपने विपयादिकके अर्थ अनुराग सर्वथा न करे। तामें दृष्टांत कहतहे। महादेवजीकी स्त्री सती हती सो वानें महादेवजीको कह्यो न मान्यो ओर श्रीरामचंद्रजीकी परीक्षा लेयवेकूं श्रीजानकीजीको स्वरूप धऱ्यो सो वार्ता महादेवजीनें जानि सो महादेवजी तो भगवद्भक्त हे तातें वाही समय सतीको त्याग कीयो पाछें सती दक्ष प्रजापति (अपने पिता) के यज्ञमें अपनो देह भस्म करि हिमाचलके गृहमें प्रकटभई। तहां अनेक तपस्या कीनी तोह् महादेवजीको मन सतीपर प्रसन्न न भयो तव श्रीठाकुरजीने

१ यह कथा स्कंदपुराण तथा रामायणमें प्रमिद्ध है.

महादेवजीसों कह्यो जो तुम अब मेरो इतनो कह्यो करो पार्वतीकों अंगीकार करो तब महादेवजी पार्वतीकों न्याहिकें अपने घर लेआये तब पार्वतीनें भगवछीला महादेवजीसों पूर्छी तब प्रसन्न भये। तार्तें वैष्णव होयकें लौकिक विषयके अर्थ स्त्रीपर प्रसन्न होय नहीं. भग-वत्सेवार्थ अनुराग करे। जा प्रकार भगवत्सेवा भली भांतिसो होय सोई करनों या भांति सेवा होय तो लौकिकहू करियें।। ४।।

मूलं-प्रातिकृल्ये यथा त्यागः प्रभ्वसंबंधिवस्तुनः। धनेषु निस्पृहः सेवोपयोगित्वेन रक्षणम्॥ ५॥

शब्दार्थ:-जेसँ श्रीठाकुरजीके विनियोगमें नहीं आवेएसी वस्तु-को त्याग करनो तेसे भार्यादिक जो सेवामें प्रतिकूल होय तो वाकोहू त्याग करनो। धनमें इच्छा नहि राखनी परंतु (धन होय तो सेवा भली भांतिसों होय तासुं) सेवोपयोगिपनेतें धनको रक्षण करनो ॥ ५॥ टीका-जो स्त्री प्रतिकुल होय भगवत्सेवामे प्रतिचंध करे तो वह स्रीको त्याग करियें वामे अनुराग न करियें काहेतें जो प्रभुसं-वंधी न होय ताको त्यागही उचितहे । जो प्रभुसंबंधी स्त्री न होय तो भगवदभावमें वाको मन लगाइयें। पुष्टिमार्गमें श्रीआचा-र्यकुलद्वारा नामनिवेदन होय मर्यादी होय तो श्रीठाकुरजीको स्पर्श कराइयें। सेवक होय मर्यादी न होय तो उपरकी सेवा कराइयें। प्रतिवंध करे तो शीघही बाको त्याग करियें। ओर धनमें आसक्ति न राखे निःस्पृह होयकें रहे धनकी रक्षा करे नांही यह उत्तमोत्तम कहै। ओर यह किकाल हे या कालमें जीवकों धीरज तत्काल छटिजात हे जो धनकी रक्षा न करे तो धन सब उठि जाय पाछे जीवको धीरज न रहे तब धनके छीये बोहोत दुःख पावे सो न करे। धनकी रक्षा अपने सुखके अर्थ न करे यह जाने जो यह

धन प्रभुको हे सो प्रभुकी सेवाके अर्थ रक्षा करे जो हृदयमें पूर्ण वैराग्य होय तो धनकी रक्षा न करे जो वैराग्य हृढ न होय तो भगवत्से वार्थ जानि रक्षा करे ओर भगवदुत्सवादिकमें यह धनको लगावे। जो भगवद्ध धन न लगावे ओर लौकिकमें लगावे तथा धनमें मनकों आसक्त करिकें भगवदुत्सवमें गुरुके वहां वल्लभक्रलमें वैष्णवनमें न लगावे तो आसुरावेश होय तातें मन करिकें आसिक रहित होयके धनकी रक्षा करि भगवत्सेवा गुरुसेवामें विनियोग करे। या भांति विवेकसों वैष्णव रहे तो भगवद्भाव हृदयमें वढे॥ ५॥

मूलं-विवाहादिषु कार्येषु वध्वाः सेवार्थमानसः । भगवत्संगिसंगोऽपि स्वप्राणप्रेष्ठवात्तया॥ ६॥

राव्दार्थः - स्नीके विवाहादिक कार्यमें प्रमुक्ती सेवाके अर्थ चित्त रहे ओर अपने प्राणिपय जो ठाकुरजी विनकी वार्ता [भगवत्कथा] के निमित्त भगवद्भक्तको संग करनों ॥ ६ ॥ टीका - उपर कहे जो धनकों ठोकिकमें न खरचे सो विवाहादिक कार्यमें धन खरचे विना केसें चछे ? तहां कहतहे जो अपनो विवाह तथा पुत्रादिकको विवाह होय तो सेवाको विचार करिये जो भगवत्सेवामें मनुष्य होय तो सेवा भछी भांतिसों होय यह विचारिकें जितनों द्रव्य विवाहादिक कार्यमें अवश्य लगावनों होय सो श्रीठाकुरजीकी आज्ञा लेयके वह द्रव्य खरचे या भांति प्रमुक्ती आज्ञा मांगिके दासभावसों लोकिक कार्य करे। ओर भगवदीयकों संग करियें सेवल अपने प्राणपेष्ठ जो श्रीठाकुरजी तिनकी वार्ताकरणार्थ भगवदीयको संग अवश्य करनों निरपेक्षभावसों करनों अपनी वहाइके अर्थ भगवद्धमें कछ न करनों दिन्ययुक्त होय अपनी धर्म जानि करनों ॥ ६॥

मूलं-वियोगानुभवं कुर्वन् सेवाऽनवसरे पुनः। मूतों भगवतो दृष्टिभाव्या तत्तस्य द्शनम्॥७॥

श्ब्दार्थ:-सेवाके अनवसरमें (अनोंसरमें) वियोगानुभवं करि-कें निर्वाह करे (व्रजभक्त वेणुगीत युगलगीतसों विप्रयोगको अनुभ-व करते तेसें करें) ओर श्रीठाकुरजीके स्वरूपमें यह साक्षात् श्रीकृष्ण-चंद्र हे एसी भावना करे तब वाकुं साक्षात् श्रीपूर्णपुरुपोत्तमके दर्शन होय (जब ताँइ सानुभाव न होय तब ताँइ जेसी साक्षात् श्रीकृष्णकी सिन्धिमें भाव ओर मर्यादा राखे तेसी भगवत्स्वरूपकी सिन्धिमेंहुं रा-खे)॥७॥ टीका-भगवत्सन्मुखसेवामें संयोगात्मक लीलारसको अनुभव करियें। सो सामग्री तथा वस्त्रादिक धरियें ताको भाव विचारियें जब सेवासों पोहोचि अनोंसर करियें तब वियोगानुभव करियें। जेसें व्रजभक्त वेणुगीत युगलगीतमें कीयेहे। वाहीभांति विचारियें जो अव 'प्रभु कोनसी कुंजमें पधारे होयँगे कहा लीला भक्तनके संग करत होयँगे ताको स्मरण करत विकल होय जो में बड़ा दुएहीं जो प्रभुको दर्शन नाहीं होतहे। तब यह श्लोक श्रीगुसाँइजीको हे ताको भाव विचारनो। श्लोकः-चित्तेन दुष्टो वचसाऽपि दुष्टः कायेन दुष्टः क्रियया च दुष्टः। ज्ञानेन दुष्टो भजनेन दुष्टो ममापराधः कतिधा विचार्यः ॥ शब्दार्थः ॥ मे चित्तर्ते दुष्ट वचनतें दुष्ट कायतें दुष्ट कियार्ते दुष्ट ज्ञानते दुष्ट भजनते दुष्ट एसे सबरीतसों दुष्टहों एकहूं शुद्ध नहीहे तासुं मेरो अपराध कितने प्रकारको विचारनो । या भांति मनमें दीनता करि वियोगानुभव करिये। जब सेवाको समय होय तब वेगिही स्नान करि वेगि अपरसमे पुष्टिमार्गकी रीतिसो मंदिरमे जायकें ठाकुरजीके रसात्मक श्रीमुख श्रीअंगके आनंदमय दर्शन करि सकल विरहकों दृरि करियें भावसहित दर्शन करियें। जेसें

व्रजभक्त श्रीनंदरायजीके घर आयर्के श्रीठाकुरजीको दर्शनकरतहे ता भावको स्मरण करियें तो व्रजभक्तनकी कृपातें याहुकोभावदान होय७

मूलं-स्पर्शस्तत्रेव भावेन सर्वास्तत्रेव तात्क्रयाः। भावात्मनो ह्यनुभवः सर्वो भावेन नान्यथा॥८॥

शब्दार्थ:-भगवत्स्वरूपमें भावही तें स्पर्शकरे तेसेही सब देह-संवांधि किया वाहीमें करे क्यों जो भावात्माको सर्व अनुभव भावतें होय अन्यथा न होय ॥ ८॥ टीका-उपर दर्शनको प्रकार कहे तामे नेत्रइंद्रियको सुख भयो । पार्छे स्नान करी सेवामें सर्वेद्रियको विनियोग होतहे । प्रथम मंगलाते पोहोचि पाछे श्रीठाकुरजीको स्नान करावे। अंगवस्रकरि ऋतु अनुसार वागा वस्र धरावे। या भांति सेवामें भगवत्स्वरूपको स्पर्श भावसों करे। जो हृदय शुद्ध होय तो व्रजभक्तनकी भावना करे यह भाव विचारे जो अपने घरतें व्रजभक्त वस्त्र आभूपण खिलोनां लेयकें श्रीनंदरायजीके घर प्रातः-काल आय सेवा करत हे स्नान करावत हे शृंगारादिक करत हे जो शुद्ध हृदय न भयो होय तहां ताँइ राजा जेसो भय मनमें राखे जो मभु ईश्वरके ईश्वर हे अपराध पडेगो तो दंड देवँगे या भांति भयसं-युक्त अंगस्पर्श करियें। जो शीतकाल होय तो अपनो हाथ सेकिकें श्रीअंग महा कोमल हे एसें विचारिकें स्पर्श करे तो भाव हृदयमें **भकट होय। या भांति मंगलातें श्यनपर्यंत शरीरकी सगरी किया भाव-**सहित करे। जितनी वस्तु सेवामें होय सो सवनको भावसहित स्वरू-पात्मक जानिकें सेवा करियें भाव विना अन्यथा न करियें। सर्वात्मभा-वसों श्रीठाकुरजीकी सेवा करे तो स्वरूपानंदको अनुभव होय ॥८॥ मूल-हृद्यस्यात्यगुद्धत्वान्न तत्रावेशसंभवः। स्वमूत्तीवतिशुद्धायामाविश्यानुभवं हरिशाशा

यावत्साधनसंपत्तिः कार्यत्यखिलान्निजान्। शुद्धं विधाय हृदयं पश्चात्तत्राविश्ततस्वयम्॥१०॥

शब्दार्थः—हदयको अति अशुद्धपनोहे तासुं वामें प्रभुके आवे-शको संभव नहीं हे जितनी साधनसंपत्ति होय तितनो श्रीप्रभु अपनी मृत्ति अतिशुद्धहे वामें सगरे अपने भक्तनकुं अनुभव करावेहें. पाछं (भक्तको) हृदय शुद्ध करि वामें आप प्रवेश करेहें। यह दोय श्लोक्में "यावत्साधनसंपत्तिः कारयत्यखिलां निजान् " इतनो पाठभेद पुस्तकांतरमें है। अब पाठान्तरानुसार शब्दार्थ:- हृदयकां अति अशुद्धपनो हे तासुं वामें प्रभुके आवेशको संभव नहीं है। जब ताँइ निजजनकों सगरी साधनसंपत्ति प्रभु सिद्ध करावें हैं तब ताँइ अति शुद्ध अपनी मूर्तिमें प्रवेश करि अनुभव करावें हैं ओर साधनसंपत्तिसों (भक्तनको) हृदय शुद्ध करि पीछे वामें आप (प्रभु) प्रवेश करतहे ॥ १० ॥ टीका-भगवत्सेवामें अपने हृदयकों इंद्रियकों अति शुद्ध राखे लोकिकावेश विषयकी भावना न करे। लौकिक देहसंबंधिके सुखदु:ख मनमें न राखे। लौकिक वैदिक सुख दुःख हे सो यह देहसंबंधी हे ओर भगवत्सेवासंबंधी सुख दुःख हे सो आत्मसंबंधी जन्मजन्मको है। ं ओर श्रीटाकुरजीको स्वरूप अति शुद्ध हे तातें लौकिकमायाके गुण प्रभुके विषे कछ न विचारे । प्रभुको श्रीअंग करपादमु-खोदरादि सर्व आनंदरूप हे, ओर शुद्ध मन करि अनुभव करिवे योग्य है, काम कोध मद लोभ मत्सर ताकरिके रहितहे, ओर सर्व दुःखके हत्ती हे, परमानंदके दाता हे, एसें श्रीठाकुरजीकों अलीकिक गुणसंयुक्त मनमें भावना करि, सर्वठोरतें अपने मनकों खेचिकें, एक श्रीठाकुरजीके चरणारविंद्में मन लगाय भगवत्सेवा भावसहित करे तो प्रभु अपनो अनुभव करावे ॥ ९ ॥ यह संसारमें आसुरी पदार्थ हे

ओर देवी पदार्थ हे तामें देवीमें दोय प्रकार हे एक मर्यादा ओर एक पुष्टि, तिनमें आसुरी ओर दैवीके दोय भेद मिलि तीन्योको भेद न्यारे न्यारे कहतहे सो भेद हृदयमें राखे तो अज्ञान करि दुःख सुख न पावे। भगवत्सेवामें साधनसंपत्तिरूप पुष्टिपदार्थ निरूपण करेहे। प्रथम अपनो देह जो भगवत्सेवामें लग्यो रहे तो दैवी जानियें। जो भगवत्सेवामें आलस्य होय कदाचित् कोई वैष्णवके संगतें सेवा करे ओर रोगादिक वाध करे तव जानियें जो आसुरी देह है। ओर दैवी मन होय तो सेवा करतमें प्रभुके स्वरूपको अनुभव होय। ओर आ-सुरी मन होय तो सेवा करतमें अनेक छौकिकमें भटके ताकों म्वरू-पानंदको अनुभव न होय । ओर देहसंवंधी स्त्रीपुत्रादिक कुदंव भगवत्सेवामें सहाय होय तो दैवी जानियें। जो भगवत्सेवामें विरोध करे तो आसुरी जानियें। जो कर्ममार्गमें रुचि होय तो मर्यादा जा-नियं। याही प्रकार द्रव्य जो भगवत्सेवामें विनियोग होय तो दैवी जानियं। जो कर्ममार्ग दान होम श्राद्धादिकमें उठे सो मर्यादा जानियें। जो लौकिकमें जाय चोरी होय दंड होय सो आसुरी जा-नियं। तातें जो पदार्थ भगवत्सेवामें विनियोग होय तिन सवनकों शुद्ध जानियें जो भगवत्सेवामें विनियोग न होय ताकों अशुद्ध जानियें। या भांति जो प्रभुकी सेवा संबंधी शुद्ध पदार्थ हे तिनकों हृदयमें धारण करे जो मेरे कामके येहीहै। तब स्वयं भगवान् शुद्धहृद-यमें प्रवेश करि स्वरूपानंदको अनुभव करावे तातें सेवासंबंधी न होय एसे पदार्थको त्याग करियें । भगवत्संबंधी पदार्थ सामग्री वस्त्रादिकको भाव हृदयमें राखिकें भगवत्सेवा करियें ॥ १०॥

मूलं-दत्त्वा दैन्येन संतुष्टो नित्यं देहमलौकिकम्। स्वयं प्रविरय भावात्माऽतुभवं कारयेत्स्वकम् १

शब्दार्थ:-दैन्यतें प्रसन्न भये प्रभु नित्य अलौकिक (सेवोपयो-गी) देह देयकें भावात्मक आप वामें प्रवेश करिकें आपको अनुभव करावे ॥ ११ ॥ टीका-उपर कहे ता प्रकार सेवा करे ओर दैन्य म-नमें न होय तो श्रीठाकुरजी संतुष्ट न होय तार्ते दीनता करि सेवा करी श्रीठाकुरजीकों प्रमन्नकरियें तब श्रीठाकुरजी प्रमन्नहोय। काहेतें जो भगवान् पङ्गुणपूर्ण ईश्वरके ईश्वर हे। काहू वस्तुकी अपेक्षा नांहि राखतहे। एक प्रीति दीनता ही प्रसन्न करिवेको उपाय है। सो भगवदीय गार्येहे " प्रीतम प्रीतहीतें पाइये । यद्यपि रूप गुण शील सुधरता इन वातन न रिझेयें।१। सत्कुल जन्म कर्म शुभ लक्षण वेद पुराण पढेरों। गोविंदप्रभु विनस्नेहसुं वालो रसना कहा नचैरों "।२। तातें भक्त दीनता करि जो कछ प्रीतिसों समपें सो प्रभु अंगीकार करे। जेर्से पद्मनाभदासनें छोला समर्पे सो प्रभु अंगीकार कीये। जब अ-त्यंत हैन्य करि प्रभु संतुष्ट होय तब जीव पर कृपा करे, तंब अलोकिन क देह जो नित्य सेवायोग्यहे, ताकी सिद्धि करि आप हृदयमें पधारे। भावात्मक प्रभु तब अपने स्वरूपको अनुभव करावे। तब सगरो ज-गत् लीलामय दिसे काह् प्राणिमात्रमें इर्ष्या न होय तव पुष्टिमार्गीय फल सिद्ध होय ॥ ११ ॥

मूलं-एवंविधं फलं नित्यं चितयन् चेतसा सदा। कुर्यादत्यादरं कृष्णसेवायामेव सर्वथा॥ १२॥

शब्दार्थः - पूर्व कह्यो ता प्रमाण भगवत्सेवामें नित्य (अविनाशि) फलकों चित्तसों निरंतर विचार करत प्रभुसेवामें ही आग्रहपूर्वक अति आदर करे ॥ १२ ॥ टीका - एसे पुरुपोत्तम फलात्मक तिनको चिंत- चित्तमें सदा (सर्वकाल) कीयो करे तो कवह अन्यसंबंध न होय। जो नित्यस्मरण न करे तो अन्यसंबंध होय ताकरि आयुरी बुद्धि

होयजाय। तार्ते उपर कहे ताही प्रकार दैन्यसों क्षेश—आतुरता संयुक्त चिंतन करें। ओर अति आदरपूर्वक भगवत्सेवा करें। लौकिकमें दिखायवेके लीये प्रतिष्ठार्थ सेवा न करें। पुष्टिमार्गीय वैष्णवको मुख्य धर्म येहीहे। दास्यभावसों फल सर्वोपर जानि सेवा करें। अति आदरपूर्वक सदा सेवा करें. (यह न विचारे जो आजु नांही सेवा करीं तो काल्ह करूंगों) परन्तु नित्य नियमपूर्वक अपने देहकों अनित्य जानि देह इंद्रियको सुख सब छोडिकें भगवत्सेवा करें यह सर्वोपर सिद्धांत हे।। १२॥

मूलं-साक्षात्परोक्षरूपत्वात्सेवा पूर्वविलक्षणा। यथा गायंत्य इत्यत्र भावः शबलितो मतः॥१३॥

राव्दार्थः-साक्षात परोक्षरूप हे तातें सेवा पूर्वतें विलक्षण हे अथवा संयोग-वित्रयोगात्मक जो सेवा हे सो अपूर्व विलक्षण हे, जेसें ब्रजभक्त-नकों प्रथम स्वरूपानंदको अनुभव भयों, पाछें श्रीठाकुरजी अंतर्हित भये तव "गायंत्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्धनाद्धनम्" यह पंचाध्यायीके तीसमें अध्यायके श्लोक ४ में निरूपण कीये जो सव मिलकें श्रीठाकुरजीकोही गुणगान करतभये ओर वावरेकी नांइ एक वनतें दूसरे वनमें ढूंढिवे लगे, फिर तदात्मक होय विनकी लीला करन लागे, वामें संयोग-वित्रयोगात्मक भाव निरूपण कीयोहे तेसोहि भाव राखे ॥१३॥ टीका-साक्षात् ओर परोक्ष दोउ समयके स्वरूपसंबलित होय सेवा करे । प्रथम सेवा समय साक्षात्स्वरूपकी सेवा करि संयोग रसको अनुभव करे । अनोंरसमें कुंजकी लीला विचारि विचारि वियोगरसस्वरूपको अनुभव करे । जेसें ब्रजभक्त रासपंचाध्यायीमें अपने घरतें श्रीठाकुरजीके पास आय स्वरूपानंदको अनुभव करिये । पाछें श्रीठाकुरजी अंतर्धान होय विप्रयोगरसको अनुभव कराये । काहेतें जो प्रथम श्रीठाकुरजी स्वरूपानंदको अनुभव न करावते तो अंतर्धानमें विप्रयोग दुःख भक्तनकों बोहोत नहोतो। जेसें ठोकिकमें कोइ धन पावे ओर फेरी धन नष्ट होय तो दुःख बोहोत मनमें आवे। पिर जाके पास जन्मतेंहि मूलमें धन न होय सो दुःख काहेकों पावे। ता भांति गोपीजन थोरो सो अनुभव संयोगरसको कीयो। पाछें अंतर्धानमें विप्रयोगरसको अनुभव कियो। ता पाछें श्रीठाकुरजी प्रकट भये तब जलस्थलकीडा सिद्ध भई। तेसें ही पुष्टिमार्गमें सेवा हे। वेष्णव भगवत्सेवामें साक्षात स्वरूपानंदको अनुभव करे ता समय सेवासंवंधी संयोगके कीर्त्तन करे। ओर जब अनोंसर होय तब परोक्ष दशा जानि विप्रयोगके कीर्त्तन (वेणुगीत, युगलगीत, गोपिकागीत) अति आतुरतासों (गान) करे। परोक्षकी सेवा होय सो सब सिद्ध करे। या भांति संयोग-विप्रयोग विचारि सेवा करे तो आगें भाव वहे। सो प्रकार आगें श्लोकमें कहतहे।। १३।।

मूलं-तदुत्तरं यथा भावः केवलो विरहात्मकः। फलं तथैव चात्रापि फलता केवलस्य हि॥१४॥

शब्दार्थः - पूर्वश्लोकमं जो भाव निरूपण कीयो सो भाव प्राप्तभये पिछें जेसो केवल विरहात्मक भाव होय तेसोही यह पुष्टिमार्गमेंहु फल होय काहेतें जो केवल विरहात्मक भाव फलरूप हे ॥ १४ ॥ टीका- उपर कहे ता प्रकार भगवत्सेवा गुणगान करे सो संयोग-विप्रयोग दोड भाव वेष्टित होय करे, तो ताकिर उत्तरदल जो केवल विरहात्मक भाव, ताको दान प्रभु करे, सो फल शुद्ध पुष्टिमार्गमें सर्वोपर है, या उपरांत ओर कोइ फल नांही । जहां उत्तरदल विरहात्मक भावको दान श्रीआचार्यजी दीये, तन सर्व फलकी सिद्धि होय सुकी।

विषयोगमें सगरो पदार्थ प्रभुरूपही दीसे, तव भगवत्सेवामय संयोगहमें विषयोग होय । प्रभुके दर्शनमें पछक आहि परे तो विषयोग होय विकल होय, प्रेमलहरीमें यह जाने जो प्रभु मोछं छोडि कहुं गये। यह साक्षात विरह वनांतरकी लीला स्मरण करि विकल होय, जो अब प्रभु धूपमें नागे पायन गाय चरायवे केसें जायँगे, कोमल चरन हे। कहू द्वारिकां न चले जाय! में प्रभु विना केसें काल वितालंगी। या प्रकार कोटान कोटि विषयोगकी लहरी संयोगसमय मनमें रहे। लौकिक देहसंवंधी भोग सव छुटि जाय तब जानियें जो प्रेमलक्षणा भक्तिकी प्राप्ति भई। यह मुख्य रस हे।। १४।।

मूलं-फलाशायां फलं कृष्णवदनं हृदि चित्यताम् ॥ फलं कृष्णः सदानंदो भक्तभावात्मकत्वतः॥१५॥

शब्दार्थः—कदाचित् फलकी आशा होय तो श्रीठाकुरजीको मुखार-विंद फलक्ष हे एसो विचार हृदयमें करनों। काहेतें जो सदा आनं-दरूप श्री कृष्ण भक्तनके भावात्मक हे तासु फलक्ष हे।। १५॥ टीका—उपर कहे जो सेवा गुणगान शुद्धभावसों करे सो करत करत केवल विप्रयोग सिद्ध होय सो विप्रयोग सर्वोपर हे। तहां कोई पूर्वपक्ष करे जो सदा विप्रयोग दुखही रहे तो यामें फल कहा सिद्ध भयो ? कछु फलिक आशा करे के न करे ? तहां सिद्धान्त कहत हे जो वह विप्रयोगही परम फल हे, कोटान कोटि सुख वा विप्रयोग समान नांहीहे। सो भाव अलभक्तहीं जानतहे, बह्मादिक शिवादि-कनकों अगम्य हे। ओर सेवा गुणगान करे तामें कछु लोकिक वेदि-क फलकी आशा तथा अपने उद्धारकी आशा राखे ताकों पुष्टिमार्गीं-य मुख्य फल न होय। तातें फल यही मनमें चाहे जो श्रीकृष्णचं- द्रके वदनकमलके दर्शन कव होय! काहेते जो श्रीठाकरजीके मुखारविंदरूप श्री आचार्यजीहे तातें श्री आचार्यजीके दर्शनकी अभिलापा मनमें राखे। सो भगवत्सेवामें साक्षात मुखारविंदको दर्शन वारंवार करे येही सर्वोंपर फल हृदयमें जाने। तातें श्रीकृष्णके वदनचंद्रको चिंतन वियोगमें हू करे। अनोसरमें वियोगश्रम वहुत करे। तब केवल विषयोग भावात्मक फल सिद्ध होय। तब श्रीकृष्णको वदनचंद्र सबठोर दिखे। ताहें विरह हेसो फलक्ष हे ओर श्रीकृष्ण हे सो फलात्मक व्रजमक्तनके भावात्मक परमतत्वहे। एसें जानि सेवा स्मरण करे।। १५॥

मूछं-न तत्र ज्ञानसंबंधो यतोऽत्रापि न वै चितिः। सचिदानंदरूपस्तु प्रसिद्धः पुरुषोत्तमः॥१६॥

शब्दार्थः – तहां ज्ञानसंबंध नही । क्यों जो वहां चिति जो चैतन्य नाम ज्ञानिह नांही हे । ओर पूर्णपुरुपोत्तमही सिचदानंद-स्वरूप श्रुतिस्मृत्यादिकमें प्रसिद्ध हे ॥ १६ ॥ टीका – ऐसे रसात्मक श्रीकृष्ण एक अनन्यभक्तनके अनुभव योग्य हे। तहां कोई कहे जो पुराणशास्त्रमें ज्ञानमार्गेहु वडो कह्योहे, ताकिर प्रभुकि प्राप्ति कहीहे ओर तुम मिक्किर प्राप्ति कहोहे, ताको कहा कारन हे? तहां सिद्धान्त कहत हे जो शुद्धाहैतीय ज्ञानमार्गमें ज्ञानी तेजोमय स्वरूपकी भावना करतहे, तिन ज्ञानीकों स्वरूपानंदसों संबंध कोई कालमें नांही, स्वरूपानंदके चिंतन योग्य ज्ञानी नांहीहे। ज्ञानीको संबंध तो अक्षरमेंहे। सबठोर अमिकी नाँइ व्यापक बह्य हे तिनहीमें लयं होतहे। उनकों मिक्ररसकी प्राप्ति कवहं नांहीहे। तातें शुद्धाहैतीय ज्ञानीके आगेंहु या स्वरूपको भाव न कहेनो। श्रीकृष्ण हे सो सिचदानंद स्वरूप रसात्मक हे, जीवमें सत् ओर चित्त दोय धर्म हे, आनंदको

तिरोधानहे ओर श्रीठाकुरजी परमानंदरूपहे। श्रीभागवत गीतामें कहेहें जो श्रीकृष्ण पूर्णपुरुपोत्तमहे। सो वेदशास्त्रमें सवठोर प्रसिद्धहे तातें एक श्रीकृष्णहीकों सवतें पर पूर्णपुरुपोत्तम जाननों। ब्रह्मादिक शिवादिकनकों मर्यादा भगवद्भक्त जानने। स्वतंत्र एक श्रीकृष्ण-हिकों जाननो।। १६॥

मूलं-पूर्वाऽवस्थाफलं कृष्णः केवलश्चोत्तरो मतः। तस्येवाऽऽस्यं कृपापूर्णःप्रभुःश्रीवल्लभाभिधः॥१७॥

शब्दार्थः-पूर्वावस्था (संयोगात्मक पूर्वदल) के फलरूप श्रीकृ-ष्णहे ओर (विप्रयोगात्मक) उत्तरदल केवल फलरूपहे।[साधन ओर फल दोउ एक श्रीऋष्णहीहे]। विनकेही मुखारविंद ऋपापूर्ण श्रीवलभप्रभु हे।। १७ ॥ टीका-अव कोई कहे जो तुम श्रीठाकुर-जीकी सेवा करिकें कछ फलहूकी वासना मनमें नांही राखतहो सो काहेर्ते ? वेदमें जितनी किया कहि ताको फलह कहेहे जो कछ फल न होय तो किया व्यर्थ कहियें यह यह वेदशास्त्रकी मर्यादाहे, यह संदेह होय तहां कहतहे जो जा जीवकों श्रीआचार्यजीद्वारा बह्मसं-वंध भयो ओर वह जीव (वैष्णव) पुष्टिमार्गकी रीतिसों भगवत्सेवा करन लाग्यो तब वह सेवा करतमें साधनहूं श्रीऋष्ण ओर सेवा सिद्ध भये पाछं फलहू श्रीऋष्णही है। तार्ते या पुष्टिमार्गमें साधनहीमें फलकी प्राप्ति भई ओर वेदमर्यादामें किया साधनरूप न्यारीहे ओर फल न्या-रोहे फल भयो तब मर्यादाकी किया नाश भई। ओर प्रष्टिमार्गमें साध-नहुमें श्रीऋष्णसेवा ओर फलहुमें श्रीऋष्णसेवा है। सो श्रीऋष्ण कव प्राप्त होय ? जब श्रीठाकुरजीके मुखारविंदरूप श्रीआचार्यजी महा-प्रभुनकी पूर्ण कृपा होय तब यह जीव, श्रण आवे पुष्टिमार्गर्मे भगवत्सेवामें रुचि होय, श्रीआचार्यजीकी कृपा विना पुष्टिमार्गमें जीव कबहू शरण न आवे ओर पुष्टिमार्गमें प्रवेश कबहू न होय यह

सिद्धांत निश्चय जाननों । सो श्रीआचार्यजीकी कृपा कोंन प्रकारसों होय सो आगे श्लोकमें कहतहे ॥ १७ ॥

मूलं-तदाश्रयः सदा कार्यो मनोवाकायवृत्तिभिः। स्वकीयता तदीयेषु तिद्धन्ने भिन्नता मता॥१८॥

शब्दार्थ:-मन वाणी ओर कायाकी वृत्तिकरिके विनको आश्रय सदा कर्त्तव्यहे ओर जो तदीय [भगवदीय] हे वामे अपनेपणांकी ममत्व तथा जो विनकी शरण नहीं आयेहे वामे भेदबुद्धि राखे ॥१८॥ टीका-अब श्रीआचार्यजी कृपा करे सो उपाय कहतहे जो मन वचन कर्म करिकें एक श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय करे तव श्रीआचार्यजी अनन्यसेवकको भाव देखिक प्रसन्न होय और श्रीआचार्यजीको आश्रय हृदयमें हृढ न होय तो कोटानकोटि साधन कीयो करे परि रंचकहू फलिसिद्धिं न होय, अन्यसंबंधतें नाश होय जाय । सो श्रीगुसांइजी विज्ञिप्तमें एक श्लोक कहेहें "अन्य संबंधगंधोऽपि कंधरामेव वाधते" (अन्यसंबंधको गंधहू कंधरा [गरदन] कें ही वाध करेहें) अन्यसंबंध होय तो माथोही कटे । जेर्से संभरवारे दामोदरदासकी वार्तामें प्रसिद्धहे जो स्त्रीनें अन्याश्रय कीयो तो पुत्र म्लेच्छ भयो । अन्यसंबंध भक्तिमार्गमें महाबाधकहे । ओर जो श्रीआचार्यजीको हढ आश्रय होय ओर साधन थोरो विन आवे तोह सकल कार्य सिद्ध होय । आश्रय रह यह वैष्णवको परम धर्महे । श्रीआचार्यजीको हढ आश्रय भयो कव जानियें जबश्री-आचार्यजीके तदीय अनन्यभक्त चोरासीवैष्णव अप्टस्खा आदि जो जिनके हृदयमें श्रीआचार्यजीको आश्रय रह सिद्ध भयोहे जिनक् श्रीआचार्यजी प्रसन्न होय अपनो अनुभव करा-वत हे मन कर्म वचन करि एक श्रीआचार्यजीकोंही जानतहे एसे

भगवदीयको सत्संग करे। ओर एसे भगवदीयमें यह भाव राखे जो इनको श्रीआचार्यजी कृपा करिकें दान दीयेहें सो अहिनेश इनके हृदयमें श्रीआचार्यजी विराजतहे। तातें श्रीआचार्यजीमें ओर भगवदीयमें कछ भिन्नता नांहीहे। जेसें अप्रिके पुंजमेतें चिनगारी उडतहे सोहू अप्रिरूपहे तेसें भगवदीय हू भगवदूप हे। तातें एसें भगवदीयमें ओर श्रीआचार्यजीमें भिन्नबुद्धि राखे तो उह जीवकों पुष्टिमार्गको फल कबहू न होय श्रीआचार्यजी प्रसन्न न होय। जेसें रामानंदने अपनी स्त्रीसों कही जो 'वेग़ी गोवर सकेलि नातर वैष्णव उठाय ले जायमें 'यह सुनत ही श्रीआचार्यजी कोधकिर त्याग कीयो कितनेक जन्मको अंतराय भयो। तातें भगवदीयमें ओर श्रीआचार्यजीमें भेदबुद्धि न राखे॥ १८॥

मूलं-तदीयेषु च तद्बुद्ध्या भरः स्थाप्यो विशेषतः। यथा दूतीषु भवति विषयिणां मतिस्तथा॥ १९॥

शन्दार्थः — जेसो भाव श्रीआचार्यजीमें तासं विशेष भाव भगवदीयमें राखे, जेसें कामीपुरुषहे तिनकी बुद्धि दूर्तीके विषे रहतहे तेसें भगवदीयमें बुद्धि राखे अर्थात् कामीपुरुष परस्रीतेंहू जा दूर्ती द्वारा वह प्राप्त होय ताको सन्मान बोहोत करे तेसें भगवदीयको सन्मान विशेष आदरपूर्वक करे ॥ १९ ॥ टीका—— तदीयमें ठौकिक-बुद्धि न राखे यहजाने जो तदीय प्रसन्न होयमें तव श्रीआचार्यजी प्रसन्न होय दान करेगें। सो लोकिक हष्टांतसों कहतहे— जेसें कामी पुरुष होय सो दृतिद्वारा परस्त्रीकों बुलावे सो कामतो परस्त्रीसों वाको सिद्ध होय परंतु बीचमें दृती प्रसन्न होयके करे तो काम सिद्ध होय नातर नांही सिद्ध होय तार्वे जेसें दृति प्रसन्न रहे सोहि कामी पुरुष करतहे। तार्वे जो दृति कार्यकों सिद्ध करतहे तापरहू अधिक स्नेह होतहे तेसेही जीव जब भगवानसों मिले तबही यह जीवको कार्य सिद्ध होय परंतु भगवानहू भगवदीयके संगविना न मिले भगवदीय-द्वारा भगवान प्रसन्न होतहें तातें भगवदीयमें ओर भगवानमें समानबुद्धि स्थापन करे 11 १९ 11

मूलं-धनं गृहं यथा कृष्णे तथा भक्तिस्थितेऽपि च। विनियोक्तव्यमेवं हि प्रभोभावो भविष्यति॥२०॥

शब्दार्थः -धनगृहादिक जेसें श्रीठाकुरजीमें विनियोग करे तेसें ही भक्तमेंहू विनियोग करे काहेतें जो एसें प्रमुकी प्रसन्नता होय ॥२०॥ दीका-भगवदीयमें भाव भयो कब जानियें ? जेसें धनगृहादिक श्रीकृष्णकों समंपीतहे भावसहित भगवत्सेवा करतहे तेसेंही भावसहित भगवदीयकी सेवा करियें धनगृहादिक मन वचन कर्मसों स्नेहसंयुक्त भगवदीयमें विनियोग करियें तो भगवान प्रसन्न होय ॥ २०॥

मूलं-तदीयाश्चेत्स्वतस्तुष्टास्तुष्टः कृष्णो न संशयः। तदीयास्तु निजाचार्यचरणेकपरायणाः॥ २१॥ अनन्यभजनास्तुष्टाः कामलोभविवर्जिताः। निरपेक्षा विरक्ताश्च सर्वभूतिहते रताः॥ २२॥ निर्मत्सराः कृष्णसेवाकथादिविहितादराः। एवंविधास्तदीयाश्चेत्संगादिष विशेषतः॥ २३॥

शब्दार्थः—भगवदीय आपतं प्रसन्न होय तब प्रभु प्रसन्न भये वामें संशय नांही। अब भगवादीयके लक्षण कहतहे—श्रीआचार्यजीके चरणारविंदको आश्रय जिनक हुछ होय ॥ २१॥ अनन्यभिक्त करिवेवारे [अन्याश्रयरहित], संतोपवारे, काम लोभतें वर्जित, निर-पेक्ष [जाकुं काहुको अभिलापा नांही], विरक्त [भगवश्ररणारविंद विना ओर सवर्ते आसक्तिरहित], सर्वप्राणिमात्रके हितमें प्रीति वारे ॥ २२ ॥ ईप्यारिहत, प्रमुकी सेवाकथादिकमें आदर करिवेवारे एसें भगवदीय मिले तो विनके संगतेहूं विशेष फल है।। २३ ॥ टीका-अव उपर कहे भावपूर्वक धन गृह श्रीकृष्णकों समर्पे तेसिंही भावसहित भगवदीयकुं समर्पे। तहां कोइ कहे जो भगवानकी सेवा तो आवश्यकहे सो करि चाहियें ओर भगवदी-यकी सेवा कीयेतें कहा होतहे ? तहां सिद्धांत कहतहे जो भगवदी-यकों सेवाकरि प्रसन्न करियें तव भगवदीय संतुष्ट होय जव भगवदीय संतुष्ट न होय तव भगवानहू संतुष्ट न होय । एसे जानि भगवदीयको सर्वप्रकार संतुष्ट करने ताकरिके निश्रय भगवान् संतुष्ट होयगें। तहां कोई कहे जो वैष्णव जानिक आपतें वने सो सेवा करियें ओर वैष्णव कठिन आज्ञाकरे सो आपने न वने तव वैष्णव संतुष्ट न होय तो कहाकरे? या भांति कोई कहे तहां सिद्धांत कहते हे-जेसें राजाके वालककी सेवा करियें सो वह वालकक़ं ज्ञान न होय वह अनेक वार्ता कहे सो आपतें न वने तातें वह वालक प्रसन्न न होय परि राजा तो अपने मनमें जाने हे जो याने मेरे वालककी सेवा बोहोत करीहे याहीसों बनी तितनी करीहे यह जानिकें राजा तो प्रसन्नही होय । एसें जानिकें अपन शुद्धभावतें वने तितनी वैष्णवकी सेवा करियें तोहू वैष्णव प्रसन्न न होय तो क्छ चिंता नांही भगवान् प्रसन्नही होयमें। अब वैष्णव कितने प्रकारकेहे सो कहतहे जो एसे बैप्णव होय तिनकी सेवा करे। (१) एक श्रीआचार्यजीके चरणारविंदकी भक्तिमें परायण होय, अहर्निश यह लोक परलोकमें श्री आचार्यजीके शरणकी कामना होय, एसे भगवदीयकी सेवा करे सत्संग करे तो जीवहूकी अनन्यता श्रीआचार्य जीमें होय ॥ २१॥ (२) श्रीठाकुरजीकी सेवाही करि संतुष्ट रहे ओर

देवतांतरको भजन स्वप्रहूमें नांही जानतहे, तब श्रीठाकुरजी ऋपा करे प्रसन्न होय। [३] काह् वस्तुकी कामना नांहीहे तीन्योलोकपर्यंत ब्रह्मानंदमोक्ष पर्यंत तुच्छ जाने। [४] छोकिक काम कोध मद मत्सरता विपयवासनाकी गंध जामें न होय ओर लोभ न होय जो सगरो धर्म द्रव्यके लिये वेंचे काहेतें जो यह कलियुगमें द्रव्य करि सकल लौकिक-कार्य सिद्ध होतह सो द्रव्यमें जाकों रंचकहू लोभ न होय सो भगव-दीय जानियें। [4] निरपेक्षभावसों भगवत्सेवा करे कछ लौकिक वैदिककामना मनमें न राखे काहू राजा द्रव्यवारेकी अपेक्षा मनर्में न राखे [६] मनकरि विरक्त रहे स्त्रीपुत्र कुटुंब गृह देहसंबंधि सगरे जगत्में हढ वैराग्य जानें। काहूमों अपने स्वार्थके लिये कछ याचना करे नांही, यह जाने जो श्रीकृष्णही सर्व कार्य सिद्ध करेंगे मेरो धर्म तो भगवत्सेवाही करिवेकोहे । [७] सर्वभूतप्राणिमात्रमें हित राखें काहूको बूरो सर्वथा न विचारे मन वचन कर्म करि सवको हित्ही करे।[एसे भगवदीयको संग अवश्यही कर्तव्यहे तिनकी सेवा स्नेहपूर्वक करे] ॥ २२ ॥ (८) मत्सर (जो ओरको उत्कर्प देखिन शकेसो)न करे अपनेतें ओर वैष्णव थोरो भगवद्धर्म करत होय तोहू वाकी वडाई करे, धन्यवाद दे योग्यता न जाने जो में बोहोत धर्म करतहों यह जाने जो मेरेमें तो भगवद्धर्म रंचहू नांहीहे या भांति दीनता राखे। (९) श्रीऋष्णकी सेवाह आदरपूर्वक करे श्रीऋष्णकी कथाह आदरपूर्वक सुने काहेर्ते जो भगवत्सेवा कीयेर्ते सर्व इंद्रिय भगवत्परायण होय और श्रीकृष्णकी कथा सुनेतें भगवत्सेवामें रुचि उपजे (तातें भगवत्कथाहू अति आदरपूर्वक सुननी भगवत्सेवाह करनी) या भांति उपर कहि आये एसे नवगुणसूं परिपूर्ण भगवदीय होय तिनको संग अवश्य नियमपूर्वक करे या भांति शुद्ध मनसों उत्तम भगवदीयको संग करे, उनकी सेवा करे, भगवदीय कहे तार्षे मनमें विश्वास राखिकें स्नेहपूर्वक सव करे या प्रकार वैष्णव रहे तो श्रीआचार्यजी प्रसन्न होय आनंद दान करे ॥ २३॥

मूलं-सर्वथा गुद्धभावानां स्वीकृतानां कृपालुना । सर्व श्रीवछभाचार्थप्रसादेन भविष्यति ॥ २४ ॥

शब्दार्थ:-दयालु श्रीठाकुरजी, श्रीमदाचार्यजी ओर भगवदीयने अपने कीयेहे एसे शुद्ध भाववारेनको श्रीमदाचार्यजीके प्रसादतें सर्व कार्यह सिद्ध होयमें ॥ २४ ॥ टीका-उपर जितनो प्रकार कहे सो सव शुद्ध भावसों करे, श्रीकृष्णकी कथाको श्रवणहू शुद्ध भावसों करे, भगवत्सेवाहू शुद्ध भावसों करे, गुरुसेवाहू शुद्ध भावसों करे, वैष्णवकी सेवाहू शुद्ध भावसों करे, सगरी भगवछीलामें शुद्ध भाव राखे, सर्व भगवत्सामग्रीमें शुद्ध भाव राखे, तव भगवदीय प्रसन्न होय ऋपा करे तो प्रभु हू ऋपा करे। तहां कोई कहे जो इतने धर्म महाकठिनहे यह कलियुगमें जीवसों केसें विन आवे जीवमें तो एक हू धर्म महाकठिनतासों सिद्ध होत है। या भांति संदेह करे तहां सिद्धांत कहतहे जो श्रीवल्लभाचार्यजी यह कलियुगके जीवनपें कृपा करिवेके लिये प्रकटे हे ओर यह पुष्टिमार्ग सर्वोपर प्रकट कीयोहे, सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी कृपाते धर्म एक क्षणमें आवेंगे। जीवकों तो सवही कठिनहे क्योंजो जीव स्वभाव-करि दुप्टहे ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभु कृपा करे तिनकों सब सुगमहे। तार्ते मनमें एक श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय हट राखे. सर्व कार्य आश्रयहीतें निश्रय सिद्ध होयगो, निश्रय पुष्टिमार्गेमें फलहे सो श्रीमहाप्रभुजी दान करेंगे॥ २४॥

या प्रकार प्रथम शिक्षापत्रमें अंगीकृत जीवनकी कर्तव्यता निरूपण करी ऐसे प्रथम शिक्षापत्रको भाव यथाबुद्धि कहे.

इति श्रीहरिरायजीकृतं प्रथमिशिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजी-कृतव्रजभाषाटीकासमेतं संपूर्णम् ॥ १ ॥

बहे शिक्षापत्र २.

अव द्वितीयशिक्षापत्रमें श्रीहरिरायजी निरोधकी सिद्धिको प्रकार निरूपण करतहे—उपर कहे ता रीतिसों प्रथमशिक्षापत्रको भाव दृदयमें धारण करे तो वा जीवके उपर श्रीआचार्यजी महाप्रभु निश्चय कृपा करे । पुष्टिमार्गमें रसरूप फलात्मक श्रीकृष्णहे वाकों दान करे सो यह दूसरे शिक्षापत्रमें कहतहें तब श्रीकृष्णको स्वरूप हदयारूढ होय जैसे स्वरूपको अनुभव होय—

मूलं-यशोदोत्संगललितः कचग्रियतवेणिकः। मुक्ताफललसद्भालचलत्कुटिलकुंतलः॥१॥

शब्दार्थः -अठारे श्लोक पर्यंत स्वरूपकोही वर्णनहे। श्रीयशो-दाजीके उत्संग (गोद) में शोभितहे, केश वेणीरूप गूंथेहे, मुक्ताफल सों सुशोभित भालहे, चलायमान क्रिटल (वक्) केश हे॥ १॥ टीका-श्रीयशोदोत्संगलालित यह केवल भावात्मक स्वरूपहे वसुदेव-

जीके वहां जो मथुरामें प्रकटेहे सो केवल रसात्मक नांहीहे सो अनेक कार्यार्थ भूमिभारहरणार्थ मोक्षदानार्थ प्रकटेह । ओर श्रीयशोदाजीके वहां जो स्वरूप प्रकटेहे सो केवल व्रजभक्तनकों आनंददानार्थहे सो श्रीयशोदोत्संगलालित जो रसात्मक सोहि यह श्रीआचार्यजीके पुष्टि-मार्गर्भे सेवनीयहे । ताहुमें दोय प्रकारहे कल्पकल्पमें द्वापरयुग आव-तहे तब श्रीनंदयशोदा प्रकटतहे तब श्रीठाकुरजीहू प्रकट होतहे सो यशोदोत्संगळाळित पुष्टिमार्गमें सेन्य नांहीहे। कल्पकल्पमें कबहू अंशावतार होतहे ओर सारस्वत कल्पमें जो स्वयं प्रभु (आप) पधारेहें सो वेदकी ऋचाकों वरदान दीयेहें सो सारस्वत कल्पके यशोदोत्संग-, लालित यह पुष्टिमार्गमें सेव्यहे सो श्रीगुसांइके वचनहे "जानीत परमं तत्त्वं यशोदोत्संगलालितम्। तदन्यदिति ये प्राहुरासुरांस्तानहो बुधाः" (श्रीयशोदोत्संगलालित (श्रीऋष्ण) कूं परमतत्व जाननें.)श्री यशो-दोत्संगलालित विना ओरकूं जाने ताकों आसुर जानियें। सर्वलीला सर्ववस्तुके कारणरूप यशोदोत्संगलालितहे तिनकों श्रीयशोदाजी अति स्नेहर्सो उत्संगमें लीयेहे लालन पालन करतहे परम आनंदर्मे मग्नहे, श्रीग्रसांईजी "मंगलिमह श्रीनंदयशोदानामसुकीर्त्तनमेत्रह चिरोत्संगसुलालितपालितरूपम् " एसं मंगलमंगलप्रंथमं कहेहें ता रीतिसों यशोदाजी सो मंगळरूपकों पायकें गोदमें ले आपहू मंगळ-रूप भई एसेस्वरूपकों ध्यान करतहे । श्रीयशोदाजी उत्संगर्मे पुत्रकों लेयकें सुंदर घुघरवारे वारहे तिनकों सवारिकें वेणी गृहतहे। अथवा श्रीयशोदाजी अपनी गोदमें प्रभुकों लेयकें अनेक मेवा मि-ठाई आरोगावतहे, अनेक विलॉनानसॉ विलावतहे, कुमारिका जो घरमें भक्तहे सो वेणी गृहतहे अथवा श्वतिरूपा श्रीचंद्रावलीजी पधारि वालभावसों गृहतहे, अथवा मुख्यस्वामिनीजी श्रीवृपभानुजा पधा-

रिकें वालभावसों गृहतहे, अथवा श्रीठाकुरजीके वालभावको हठहें तासं श्रीयशोदाजी वृपमानुकुमारिकाकों अपने पास वेठाय दोउ स्वरूपकी वेणी गृहतहें। या भांति अनेक भावहे (सो श्रीमहाप्रभुं जीकी कृपातें अनुभव होय)। या भांति वेणी सवारिकें सुंदर भालपर मोतीकी लर शोभा देतहे सो मानो नीलकमलके उपर वरावरी जलकी बूंद आय रहीहे, तथा श्यामचंद्रमाके उपर तारागणकी पंक्ति आय रहीहे, शीतल मंद सुगंध वायुतें कुंतल जो अलक चलायमानहें सो परम अद्भुत शोभा देतहें, मानो मुखकमलके मकरंदवश होय अलि जो भ्रमरके छोटे पुत्रकी पंक्तिकी पंक्ति आय पान करतहे, तथा मुखचंद्रमापर अलक सो सपके वचा आयहे, या भांति शिखातें नखपर्यंत सिंगारको भावसहित हृदयमें विचारे॥ १॥

मूलं-मुक्ताफलावलीभालप्रांतकर्णविभूषितः। कस्तूरिकातिलकयुग्भालभूषातिसुंदरः॥२॥

शब्दार्थः—मोतिनकी मालासों भाल मध्यतं कर्णताँ सुशोभितहे कस्त्रीके तिलक्युक्त भालके भूपणकी शोभा सो अति सुंदरहे ॥२॥ टीका—मुक्ताफलकी लर भालमें दोड कर्णतां इबंदी धरेहें सो मानों स्याम मेघमें दोड वककी पंक्ति परम शोभा देतहें, सुंदर कस्त्रीको तिलक भालपर विराजितहे, शृंगाररसात्मक श्रीठाक्करजीके भालपर स्वतःसिद्ध सर्वकालमें कस्त्रीको तिलकहे तातें श्रीचंद्रावलीजी आप अपने भावसंवंधी श्रीठाक्करजीकों कियोहे कस्त्रीको तिलक ओर मुख्य श्रीस्वामिनीजी अपने भावरूप सुवर्णको भूपण भालपर धरायेहे । या भांति सगरे आभूपण भावात्मकहे ॥ २ ॥

मूलं-काइमीररागविलसत्कपोलद्वयचित्रितः। स्फरच्छुतियुगप्राप्तकुंडलद्युतिमंदितः॥ ३॥

शब्दार्थः-केंसरके रंगसाँ दोउ कपोल चित्रितहे ओर चलकितजो (दोउ कर्णमें) कुंडलहे ताकी कांतिसों मंडितहे ॥३॥ टीका-काश्मीर जो केसर कुमकुमादि-अंगरागसों कपोल चित्रितहे सो दोड कपोलमें कमलपत्र परम शोभायमान हे यह कमलपत्र श्रीस्वामिजीके मना-रथकोहे काहेर्ते जो कमलपत्र जब ज्याह होतेहें तबही धरतहें। सो श्रीस्वामिनीजी अपनो मनोरथ करतहे अपने श्रीअंगके वर्णरूप केस-रसों कमलपत्र दोउ कपोलमें सवारि यह जताये जो हमहींते व्याह हो-यगो। अथवा श्रीयशोदाजी श्रीठाकुरजीको श्रीस्वामिनीजीकी गोदमें पधराय आपु गृहकार्य करतहे तव श्रीस्वामिनीजी एकांतठोरमें पधरा-यके श्रीठाकुरजीसों प्रार्थना करतहे जो हमारो चिरकालको विरह तुम दूरी करो तब श्रीठाकुरजी किशोर वयको अंगीकार करि श्रीस्वामिनी-जीके सगरे मनोरथ पूर्ण करतहे तव श्रीस्वामिनीजी दोउ कपोलपर कमलपत्र अंपने हस्तसों सवारिकें ज्याहको मनोरथ पूर्ण करतहे जो नित्य याही भांति हमकों सुख दीयो करो 'दिनदृल्हे मेरो कुंवर कन्है-या' या पदके अनुसार अनेक लीला गोप्य करि पाछे श्रीठाकुरजीकों गोदमें लेय श्रीस्वामिनीजी श्रीयशोदाजी पास आयर्के कहतहे जो यह तुम्हारो पुत्र आतिचंचल केसेंहू रहत नांही सो क्योहूं क्योहूं राक्षेहें एक ठोरतो याहीको मन लागत नाहीं तातें खिलाय खायेहें। तव श्रीयशोदाजी श्रीस्वामिनीजी उपर प्रसन्न होय श्रीठाकुरजीको अपने उत्संगमें लेत हे, विधनांसों अंजल पसारी यह प्रार्थना करत हे जो चृपभानुकुमारीतें मेरेपुत्रको व्याह होउ येही में मांगतीहों। पार्छे मेवामिठाईसों श्रीस्वामिनीजीकी गोद भरी देतहे । याभांति श्रीठाकुरजीके कपोछ चित्रितहे और दोउ श्रुति जो कणं तामें कुंडल शोभायमानहें सो कुंडल अति चंचलहे सो कवह मकराकृति कुंडल धरतहे, कबहू मयूराकृति कुंडल धरतहे,तामें मकरा-

कोंन मांतिकोहे सो भक्तनकी आर्ति प्रभु सही नांही सकत तार्त वालभावसों कोई जाने नांही याभांति चरणारविंदके भक्तनको अध्-रामृत रसको पान करावतहे, अथवा प्रभु यह विचार करतहे जो मेरे चरणारविंदमें एसो कहा रसहे जो सगरे भक्त चरणारविंदको पूज्तहे ध्यानधरतहँ सो रस मेंहूंतो देखों सो बालभावसों आवह चरणारविंद-के रसको आस्वादन करतह। ओर व्रजभक्तन चारोंओर वेष्टित होय रहेहें तिनकों प्रभु नेत्रनके कटाक्षसों आगतस्वागत करतहे ओर रस-संकेत जतावतहे। अथवा कबहू श्रीहस्तको अंगुष्ठ मुखमें भेलतहे ताकरि अंतर्गृहगता देह छोडि श्रीठाकरजीके पास आईहे तिनकी आप श्रीहस्तसों पकरि अपने श्रीमुखारविंदमें धारण करतहे सो कवहू एकांतमें उनभक्तनकों बाहिर निकासि रमण करि पाछे फेरि मुखार-विंदमें धरि लेतहे। लोगनके दिखायवेमें वालक अंगुष्ठ चूसतहे।श्री-स्वामिनीजी आदिकों अनेक रमण वंधादिक कियाको बोधन करतही या भांति श्रीठाकुरजी जाको जेसो अधिकारहे ताकूं तेसोही रसपान करावतहे ॥ ६ ॥

मूलं-ग्रीवालग्रलसन्मुक्ताफलमालविभूषणः तदुत्तरलसत्स्वर्णमणिमालातिमोहनः ॥ ७॥

शब्दार्थः — कंटमें लग शोभित मोतिनकी माला करिकें भूषितहें ओर ताकी उपर सुवर्णके मणिकाकी मालाहे तातें अति मोह उपजा-वत हे ॥ ७ ॥ टीका—श्रीवासों लगी मोतिनकी माला (कंटशी) परम शोभा देतहे । ताहीके पास सुवर्णके मणिका ओर मणिमाला श्रंथनकरि श्रीकंटमें धारण कीयेहे ताकरि अपने भक्तनकों यह जताये जो में तुमकों अहिनश कंटमें राखतहों । मुक्ताकी माला सुवर्ण तथा मणिमय अनेक भक्तनके भावात्मकहे तातें प्रभु प्रेमतें धारण कीयेहे ॥ ७ ॥

मूलं—उरःस्थललसत्स्वच्छवक्रवेयाव्रभूपणः। मुक्ताफलस्वर्णमालायुततुंदिलितोदरः॥८॥

श्रव्दार्थ:-हदयपे शोभायमान स्वच्छ ओर वांके नाहारके नखके भूपणवारे ओर मुक्ताफलमाला ओर सुवर्णमालासहित दॉद्युक्त उदरवारे हे ॥ ८ ॥ टीका-उरःस्थलके उपर केहरिको नख (वधनखा) परम शोभा देतहे सो श्रीयशोदाजी तो अपने पुत्रकी रक्षार्थ धरायेहे ओर व्रजभक्तनकों अनेक लीला सूचन करावतहे। नखदान रासादि लीला विहारमें होतहे सो वधनखा टेडोहे ताको अभिप्राय यह जो कितनेक भक्तनको हृदय टेडोहे तिनकों अपनें वस करनोंहे. सो वघनखा टेडो अपने हृदयमें धारे यह जताये जो मेंहू त्रिमंगी टेडोहूं । या भांति भक्तनके मन सुधेकरि अपने हृदयमें भक्तनकों राखेंहें। तथा अनेक भक्तनके घर श्रीठाकुरजी पधा-रतहे तव वहां द्वार उपर रखवारी चाहियें तव नखते लीलासंबंधी आ-धिदैविकन्टिसंहजी प्रकट करि द्वार उपर रखवारी राखि भक्तनके संग निर्भयतासों लीलाविहार करतहें । तातें पोरीपर सिंह हे सो पुष्टिलीला संबंधीहे ताहीतें श्रीठाकुरजी नखभूपण हृदयमें धारण कीयेहें। या भांति सगरे आभूपण ब्रजभक्तनके लीलासंबंधी अनुकूलहे तार्ते श्रीठा-कुरजी प्रेमर्सो पास राखतहै। जो व्रजभक्तनकी लीलार्सो प्रतिकूल होय ताको तत्काल श्रीठाकुरजी त्याग करतहे। तार्ते पुष्टिमार्गेमें अंगीकार व्रजभक्तनकी कृपातें होय ओर उपाय कोउ नांही। या भावसों वाघनख प्रभु धरेहे ता नखभूपणके पास मुक्ताफल ओर सुवर्णके मणिकायुक्त गुंथीएसी सुंदरमाळा उपर विराजमानहे सो सुवर्णमणिका श्रीस्वामिनी-जीको भाव तथा मुक्ताफल श्रीचंद्रावलीजीके भावसों श्रीठाकुरजी अपने हृदयमें धारण कीयेहें ॥ ८॥

मूलं-बाहुमध्यलसद्रलजिटतांगदसुंदरः॥ पटगुच्छलसत्स्वलपकरकंकणभूपणः॥९॥

शब्दार्थः-दोउ भुजाके मध्य रत्नजिहत वाज्यंधसं सुंदरहें पटगुच्छ (रेशमीफोंदना) सहित शोभायमान छोटे श्रीहस्तके विषे कंकणको आभरणहे ॥ ९ ॥ टीका-सुंदर वाहुमें वाज्यंध रत्नजिहतहे सो नवरत्नयुक्त जडाव दोउ भुजामें शोभादेतहें सो वामभुजामें श्रीस्वामिनीजीको भावात्मक तथा दक्षिणभुजामें श्रीचंद्रावळीजीको भावात्मकहे । ओर पाटके गुच्छामें परोये एसे छोटे हछके दोउ करमें कंकण परम शोभा देतहे ॥ ९ ॥

मूलं-द्शांग्रलिलसद्रत्नजाटितोत्त्तममुद्रिकः।

किंकिणीपटगुच्छातिविराजितकटिस्थलः॥१०॥

शब्दार्थः -दशअंगुलियनमें विराजित रत्नजिटत उत्तम मुद्रिका घरीहे ओर किंकिणी (क्षुद्रघंटिका) युक्त पाटगुच्छतें किटस्थल अति शोभायमानहे।।१०॥ टीका - दोन श्रीहस्तकी दश अंगुरीमें रत्नजिटत जहाव परमन्तम मुद्रिका शोभितहे। सो दशमुद्रिकाको अभिप्राय यहहे जो दशप्रकारके भक्तनके भावात्मकहे। जा रसके जो भक्तहें तिनको ताही अंगुलीसों नखदान किर परम सुख देतहे। अरि किटस्थल विषे पाटके गुच्छामें परोई ऐसी जो किंकिणी (रासादि अनेक लीलामें सुंदर मधुर शब्द करिवेवारी) किटमें वांधीहे सो भक्तनकों किंकिणीके नादतें अनेक लीलाको स्मरण होतहे ॥१०॥ मूलं-सन्पुरपदन्यासध्विनमोहितगोपिकः।

दिगंबरो नखिधुज्योत्स्नाजितानिशापितिः॥११॥ शब्दार्थः-नूपुरयुक्त चरणारविंद धरे ताके शब्दसों ब्रजभक्तकों मोह करतहें ओर आप वस्त्ररहित (वालभावसों) हें दशनखरूप चंद्रमाकी किरणतें चंद्रमाको जय करिवेवारेहे ॥११॥ टीका—चरणक-मलमें नृपुर परम सुंदर धारण कीये हे सो नूपुरकी ध्विन सुनिके अनेक गोपीजन मोहकों पावतहें और वाललीलाको स्वरूप दिगंवर निरावरण सर्वांगको दर्शन करावत हे सो श्रीनवनीतिप्रयेजी—श्रीवालकृष्णजीके स्वरूपमें प्रगट दर्शन होतहे दश नखचंद्र चरणारिवंदमें धारण कीयेहे ता नखचंद्रके आगें चंद्रमा लिजत होतहे चंद्रमाकों जिते एसे नखचंद्र भक्तनके हृदयको अज्ञानरूप अधकार दृरिकरतहे यह श्रीठाकुरजीके नखचंद्र एक एक नख कोटानकोटी अधकारको नाश कर्ताहे सो दशनखचंद्र जिनभक्तनके हृदयमें रहतहे तिनके हृदयमें प्रकाश होय तामें कहा कहेनो ? नखचंद्रने अपने ज्योतिके प्रकाश-किर चंद्रमा, सूर्य, दर्पण, मणि—आदि सबके प्रकाशकों जितेहे ओर दशनखचंद्रहे तामें वामचरणारिवंदके नख पुष्टिभक्तनके हृदयको तिमिर दृरि करतहे और दिश्चणचरणके नख मर्यादाभक्तनके तिमिरकों दृरि करतहे।या भांति शिखातें नखपर्यंत स्वरूप वर्णन कीयेहे॥११॥

मूलं-स्वरूपप्रतिविवैकटिष्टिहास्यमुखांबुजः। पंकांगरागरुचिरः सदा मुग्धिशरोमणिः॥ १२॥

अपनो प्रतिविव देखि वारंवार किलिक हैं हसतहे जजकी रज सर्वांगमें, लागि रही हो सो परम शोभा देतहे मुग्ध—लौकिक वालक की नाई अनेक लीला करत हे परंतु मुग्धिशरोमणिहे मानो कछ ही नांही, जानत हे भांति जजभकतनकों सुखदेतहे।। १२॥

मूलं-लीलान्यज्ञानरहितः सर्वलीलाविचक्षणः। कंदर्पकोटिलावण्यो मानिनीमानदर्पहा ॥१३॥

शब्दार्थ:---लीलाकरिकें अन्यज्ञानरहित दीसतहे ओर आपतो सर्वे लीलामें विचक्षणहे, कोटि कंदर्प (कामदेव) तें अधिक लावण्य (श्री-अंगकी शोभा) हे ओर मानवतीके मानको गर्व हरिवेवारे हे ॥ १३॥ टीका-सर्व लोगनकों यह दीसत जो केवल वालकहे कछ ओर ली-. लाकों नांही जानत, परम मुग्धहे, मातृचरण (श्रीयशोदाजी) श्रीनं-दरायजी रोहिणीजी आदि बृद्धगोपगोपी सबकोउ केवंल बालकही जानतहे ओर अंतरंग व्रजभक्त यह जानत हे जो सर्वलीलार्मे परम चतुरहे मातृचरणके आगें मुग्धता जतावतहे तो कहा भयो ? यहभाव व्रजभक्त जानतहे । ओर कोटिकोटि कंदर्प जिनकी शोभा देखि लजा पावतहे एसो लावण्ययुक्त जिनको श्रीअंग परम शोभायमा नहे। मानिनी जो श्रीस्वामिनीजी ताके मानकों हरतहे यह विलक्षण रीतिहे जो एककालाऽविच्छिन्न सगरीलीलाको अनुभव करावतहे। सौ श्रीगुसाईजी पलनामें कहेहे जो 'मानिनीमानहरणम् 'श्रीयशोदा-जिके आगें पलनामें झलतहे ताही समय मानिनी (श्रीस्वामिनीजी) को मान हरतहे एसे विरुद्धधर्माश्रय अलीकिक वालकहे ॥ १३॥

मूलं-स्वगोपिकागृहचोरः कृतसंकेतगोपनः । परमानंदसंदोहः सदा दुःखिवविजितः ॥ १४ ॥

शुब्दार्थः-अपनी गोपिकानके भावकों गृह राखिववारेहे तथा चोरिवेवारेहे ओर कीये संकेतकूं गुप्त राखेहे, उत्तम आनंदके समृहरूप हे, सदा दु:सरहितहे ॥१४॥ टीका-अपनी गोपिका (श्रीस्वामिनीजी) को गृहभाव हे तिनके घर चोरि करी संकेत करतहे पाछें ओर गोपीजनके आगें स्वामिनीजीको संकेत दुरावत हे जो यह न जानेतो आछो। अथवा समस्त गोपीजनके घर श्रीठाकुरजी गृहभावसाँ छिपि कें पधारतहे दूध दही माखन सगरी सामग्री अरोगतहे पार्छे वह गोपी आवतहे तब उनसों एकांतमें संकेत करत है पार्छे कोउ गोप आवतहे अथवा मातृचरण श्रीयशोदाजी आवतहे तिनके आगें वह संकेतको गोपन करतहे तथा समस्त भक्तनके संग संकेत करतहे सो एकएक भक्तनके आगें संकेत गोप्य राखत है वह जानतहे जो हमही-कों श्रीठाकुरजी मिलेहे ओरकों नांही, या मांति रमण करत है। अथवा समस्त भक्तनके मध्यमें श्रीस्वामिनीजी वेठेहे तव श्रीठाकुरजी सेनमें श्रीस्वामिनीजीकों गृहभावसों ओर कोउ न जाने या भांति जतावतहे जो फलाने ठोर आवी तहां संकेतहे तव श्रीस्वामिनीजी क्छ मिसतें श्रीठाकुरजिके पास पधार्तहे पाछें अनेक भांति लीला करी सब सखीनके आगें रसलीला गोप्य करतहे। परम आनंद रूपहे तातें समस्त भक्तनकों परमानंदको दान करतहे ओर सर्वकाल विषे दुःख करिकें रहितहे ॥ १४॥

मूलं-असमक्षो दुःखितानां प्रपंचसुखिनामपि। दयानिधिमुग्धभावः स्वीयवाक्येककारकः॥१५॥

शब्दार्थः-दुःखयुक्तकों ओर प्रपंचतें सुखीनकोंह समक्ष नहीं हे ओर दयानिधिहे मुग्धभाव दिखावेहें तथा अपने भक्तनके वाक्यकों मुख्य करिवेवारेहे ॥ १५॥ टीका-लोकिक प्रपंचके अनेक प्रकारके काम क्रोध मोह मद मात्सर्यादि मायासंबंधी दुःखहे तिन सवनके खननहारे है। जो अविद्यारूप पूतना हती ताकों श्रीठाकुरजी मारिकें समस्त भक्तनकी अविद्या दृरि कीनी काहेतें जो भक्तनको सामर्थ्य अविद्या दूरि करनको नांही हतो सो श्रीठाकुरजी अपने भक्तनके अर्थ व्रजमें अवतार धरेहे तातें सबनकी अविद्या दूरि करि अनेक लीलारसको अनुभव कराये परमसुख दीये दुःखको नाश कीये काहेतें जो दयानिधि है भक्त दुःख पावे, सो नांही सही सकत है लागनमें देखत मुग्धभावको अंगीकार कीयेहें मानों कछ जानतही नांहीं काहेतें जो भक्तनकों ईश्वरभाव प्रकट होय तो वात्सल्यभाव छुटि जाय ईश्वरतासों करे तो यह जाने जो सगरे जगत्के पोपणकर्ता हे इनकों में भोग कहां धरूं ? आभूपण वस्त्र खिलोनां कहां देज ? सगरो श्रीठाकुरजीकोहीहे या भांति सेह छुटे तो तो पुष्टिभक्तिकी शांस न होयं तातें श्रीठाकुरजी मुग्ध लौकिक वालककीनाई लीला करतहे, भूखे होत हैं तब रुदन करिकें हट करिके मातासों भोजन मांगत है तातं भक्तनपर कृपा करिवेके लिये मुग्धभावकों श्रीठाकुरजीने धारण कियोहे मुग्धभावमें थोरीसी वस्तुसों संतुष्ट होतहे जो ईश्वरता सहित प्रभूमागे तो भक्तनसों दीयो न जाय जेसे राजा विलसों तीन पेड धरती मांगी सो राजा बिलतें दीनी न गई। तातें मुग्धभाव होय व्रजभक्तनको सुख देतहे ओर अपने व्रजभक्त जो अंगीकृतहे तिनके वाक्यके पूर्णकत्तीहे सो श्रीभागवतमें कहेहें जो कोउ व्रजभक्त कहत हे जो पीढा उठाय ल्यावो, कोउ कहतहे उन्मान (पालीप्रभृति) ल्याबो, कोउ कहतहे पादुका ल्याबो, तुमको माखन देऊंगी, कोउ कहतहे नांचो, तब श्रीठाकुरजी सबको कह्यो करत हे जो प्रकार ब्रज-भक्त सुख पावतहे सोही श्रीठाकुरजी करतहे ॥ १५ ॥

मूलं-प्रपंचनाशनस्वीयानिरोधकृतितत्परः । बालभावग्रहपरः क्षणक्षणविलक्षणः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ:-अपने भक्तनकों प्रपंचनाशपूर्वक निरोध करिवेमें तत्प-रहे ओर वालभावकों ग्रहण करतहे तथा क्षणक्षणमें विलक्षणहे ॥ १६॥ टीका-श्रीठाकुरजी अपने निजभक्तनके लौकिकगृहाद्यासक्त मनहे तहांतें छोडाय आपमें लगावतहे तातें व्रजभक्तनके घर श्रीठाकुरजी चोरी करनकूं पधारतहे, व्रजभक्तनके दूध दही मांखनकी चोरी करि उनके मनमें श्रीठाकुरजी अपनो ध्यान करायो जो अब चोरी करनकों प्रभु आवत होयगें ओर वेणुनाद करि सर्व भक्तनको मन हरि लीनो ताकरि पति पुत्र गृहादि देहसंबंधी सवनकों भृलिजातहे ओर अविद्यारूप पूतनाकों मारिके समस्त भक्तनकी अविद्या दूरि कीनी हे, अपने भक्त-नके निरोध करिवेमें तत्परहे, इंद्रयज्ञ व्रजवासी करत हते सो इंद्रको यज्ञ छुडायो गिरिराजकी पूजा कराय आपु सगरी सामग्री अंगीकार कीनी संयोगात्मक सगरी छीला करि वाहिरकी सगरी इंद्रियनको निरोध कीयो ओर वनां-तरदेशांतरलीला करि मन इंद्रियनको निरोध कीयो । जेसे रास-पंचाध्यायीमें प्रथममुरली वजाय घरतें व्रजभक्तनकों बुलाय रमण करि सर्वांगविहार करि वाहिरकी सगरी इंद्रिय शुद्ध करि पाछें अंत-धीन होयर्के अंतःकरणमें रमण करि वाक़ं शुद्ध करि प्रभु हृदयमें विराजे। या प्रकार संयोग विष्रयोग भक्तनकों देय निरोध सिद्ध कीयो ओर वालभावको मिसकरि ब्रजभक्तनके घर पधारतहे ताको कारण यहहे जो ज्ञजभक्तनके गोपादिक मर्यादाप्रवाही हे तिनकों रहस्य लीलाको ज्ञान न होय, बालक देखिके काह्की विपम बुद्धि

नहोय, या भांति व्रजभक्तनके पास श्रीठाकुरजी आयकें अनेकलीला क्षणक्षणमें करतहे जा भक्तनको जेसो मनोरथहे ताकों ताही भांति अनेक चेष्टाकरि लीला करि सकल मनोरथ पूर्ण करि फेरि वालभा वको अंगीकार करि घर पधारतहे ॥ १६॥

मूलं-क्षणं क्रुद्धः क्षणं त्दृष्टः स्वरूपवस्तुषु तोषितः॥ स्वकीयहृदयाभिज्ञस्तदन्यज्ञानविज्ञतः॥ १७॥

श्वाच्दार्थ:-क्षणमें कोधयुक्त और क्षणमें हर्पयुक्त होयजात हे अपने भक्त थोरी वस्तुदेय तामें संतुष्ट होत हे अपने भक्तके हृदयके मनोरथकूं जानिवेवारेहे ता सिवाय ओर कछ नांही जानतहे ॥ १७॥ टीका-बाललीला करि एकक्षणमें क्रोधित होतहे तनक श्रीयशोदाजी गृहके कार्यमें लागी तो दहींको माट फोरिडारे, मांखन वंदरनकूं लुटायदे भूमिपर लोटे, कोटिकोटि उपायसी श्रीयशोदाजी मनावे सो माने नांही, कबहू चंद्रमा देखी अड करे, कवह तनक भोजन-मांखनकी ढील होय तो सही न सके, क्रीधवंत होयजाय, कबहू हिसिदेय, खल्पवस्तु करि संतुष्ट होयजातहे, श्रीनंदः रायजी खिलोनां तथा फूल तथा फलादि ल्यावतहे सो देखि बोहोतही प्रसन्न होय जातहे, व्रजभक्तन नूतन सामग्री, नवनीत, थोरीसीहू कछु नईचम्तु, त्याय श्रीठाकुरजीकों देतहे ताकरि श्रीठाकुरजी अत्यंत संतुष्ट होतहे, अपने स्वकीय व्रजभक्तनके हृदयमें जेसी मनोरथ होय ताही कार्यमें श्रीठाकुरजी तत्परहे ओर वात जानत नांही, अपने निज-भक्तनके हृदयके अभिपाय विना कछ ज्ञानह मनमें राखत नांही। काहेरों जो व्रजमें श्रीयशोदाजीके घर प्रभु पधारेहें सो केवल व्रज् भक्तनके सुखदानार्थ पथारेहें तातें पुष्टिमार्गमें प्रभु भक्ताधीनहे अन्यज्ञान करि रहितहे ॥ १७ ॥

.मूलं-गृहलीलापरो भक्तगृहभावरसात्मकः। सेवनीयः सावधानैर्विपरीतगतिक्रियः॥ १८॥

शब्दार्थ:-गृहलीला करिवेवारे ओर भक्तनके गृह भावके रसात्मक तथा विपरीत गति ओर किया वारे श्रीठाकुरजी सावधानतासों सेवा करिवेयोग्यहे। (यह अठारेश्लोककरिकें जो स्वरूपग्रणवर्णन कीये एसे श्रीठाकुरजी वोहोत सावधान होयकें सेवनयोग्यहे) ॥ १८ ॥ टीका-भक्तनके संग गृहलीलामें परायणहे, गृह लीला सो रासलीला तामें अनेक प्रकारके रास दो दो गोपी विच विच माधो तथा सोरह गोपिनके मध्यमें अष्ट कृष्ण होतहे तथा भक्तभक्त प्रति भगवान् या भांति अनेक रासलीला मानलीला अनेक भांतिके विहार अनेक भांतिकी जलकीडा अनेक भांतिके श्रीवृंदा-वनमें निकुंज कीयेहे ओर ब्रजभक्तनके घर वालस्वरूपर्ते किशोर होय अनेक लीला करतहे तथा खिरकमें गाय दहावनमें अनेक लीला कर-तहे सो लीलासमुद्रको पार नांही तातें गूढलीला परायणहे गृढली लाहे जिनके भावकी काहूकों खबरि नांही रसात्मक श्रीठाकुरजी रसात्मक व्रजभक्त सो रसमयी अनेक भांतिकी लीला करतहै। एसे रसात्मक श्रीयशोदोत्संगलालितहे सो श्रीहरिरायजी श्रीगोपेश्वरजीकों पत्रमें लिखेहे जो एसे प्रभुकी सेवा अत्यंत सावधानतासों कर्त्तव्यहे काहेतें जो प्रभुकी विपरीत गतिहे विपरीत कियाहे एकक्षणमें प्रसन्न होय एकक्षणमें कोध करे तातें लोकिकमें मन न राखियं प्रभुमें मन राखियें जो मति कहू अप्रसन्न होय या भांति भयसंयुक्त सेवा करियें १८

मूलं-श्रीमदाचार्यक्रपया तिष्ठति स्वग्रहे हरिः । एवंविधः सदा हस्ते योगिनः पारदो यथा॥१९॥

शब्दार्थः-श्रीमदाचार्यजीकी कृपातें एसे (पूर्वोक्तगुणविशिष्ट) हरि अपने गृहमें विराजतहे सो जेसें योगिजनके हस्तमें पारद सावधानतासों रहे तो कलतरु समान फलदेय ओर सावधान न हाय तो हस्तमों निकसिजाय ओर फलहू नांही देय तेसे अपने हस्तमें सदाही श्रीकृष्ण विराजतहे तिनकी सावधानतासों सेवा करनी ॥१९॥ टीका-एसें व्रजभक्तके भावात्मक स्वरूप अपने घरमें विराजतहे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी ऋपातें विराजतहे अपने प्रेम (स्नेह-भक्ति) को ओर कछ साधनको वल मित जानियो। एसे रसात्मक भावात्मक प्रमुकी सेवा अपन कहा करिवे योग्यहे ? परंतु श्रीआचार्यजीकी कानितें प्रभु घरमें विराजेहे याप्रकारको भाव अपने मनमें सदा जान-नों । प्रभुकेसेहे जो योगिजनके ध्यानमे नांही आवत अनेक जन्ममं अनेक साधन करतहें तिनकों सपनेहुमें दर्शन दुर्लभहें सो प्रभु श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीकी कृपातें साक्षात् अपने घरमें विराजत्हे यह अपने मनमें सदा विचार करि सावधानतासो सेवा करियें मांते कहूं अपराधपरे, अपराध परे तो प्रभु अप्रसन्न होय जाय ॥ १९ ॥

मूलं-चिंतनीयोऽनवसरे सेवायाः सर्वथा धिया । यतो निरोधसंसिद्धिः सेवाया हार्दया भवेत् ॥२०॥

शब्दार्थः—सेवाके अनोंसरमें बुद्धितें सर्वथा चिंतन करिवेयोग्यहें जातें निरोधिसिद्धि मानसी सेवातें होय ॥ २० ॥ टीका—एसे यशोदोत्संगलालित भावात्मककी सेवा मनलगाय करनी उचि-तहे पाछें अनोंसर होय तब उपर कहिआये ता भांति हृदयमें चिंतन करनो सदा अति स्नेहसों सर्वथा धर्म जानि सेवा करनी ताही भांति अनोंसरमें सर्वथा चिंतन करनो तब निरोध सिद्ध होयगो। जेसें ब्रजभक्तनकों निरोध सिद्ध भयो संयोग विप्रयोगर

सको अनुभव भयो तेसेंही सेवासमय संयोगकी भावना अनोसरमें विप्रयोगकी भावना करे यह हार्दसिहत सेवा करे तव निरोध होय। यह वीसश्लोकको शिक्षापत्रहे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु बीशश्लोकको निरोधलक्षण ग्रंथकीयोहे ताभावके अनुसार श्रीहरिरायजी यह शिक्षा-पत्रमें निरोध पुष्टिमार्गीयजीवनकों जाभांति सिद्ध होय सो प्रकार कहेहे जेसें निरोधलीला श्रीभागवतदशमस्कंध सर्वोपरहे तेसेही यह सर्वोपर निरोधप्रकार कहे है।। २०॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं द्वितीयं शिक्षापत्रं श्रीगोपे-श्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं संपूर्णम् ॥ २ ॥

शिक्षापत्र ३.

अत्र तृतीय शिक्षापत्रमें भगवद्भावके साधकवाधकको निरूपण करेहे उपर कहिआये तारीतिसों सेवाहू करे तथा अनोसरमे चिंतनहू करे परंतु दुःसंग मिले तब एक क्षणमें सगरे धर्मको नाज्ञ होय जाय जन्मजन्मको भाव दुःसंगर्ते जात रहे तार्ते याकालमें दुःसंगर्ते वचनो सो निरूपण करतहे ॥

मूलं-निधिः प्राप्तः सुसंरक्ष्यो दुःसंगादिकतः सदा । त्यक्ताऽपि लोकसंकोचं यथा विक्किललादिभिः॥१॥

शब्दार्थः-जो भगवद्भावरूपिनिधि प्राप्त भई हे सो लोकके संकोच-कोह त्याग करके निरंतर दुःसंगतें आछीभांतिसों जलसों विन्हिकीनांड रक्षा करिवेयोग्यहे ॥ १ ॥ टीका-जो निधि प्राप्त भयोहे ताकी रक्षा कर्तव्यहे जेसें काहू कृपणकों धन मिल्यो सो वह द्रव्यकी रक्षा जतनसा न करे तो द्रव्य चोर लेजाय तेसेंही यह भगवद्भावरूप निधिकी प्राप्ति श्रीआचार्यजीकी ऋपातें भईहे तानिधिकी दुःसंगतें रक्षा अवश्य कर्त्तव्य हे। तामें दुःसंग अनेकप्रकारकोहे लोकिक विपयादि तथा अन्यमार्गीयको संग तथा देहसंबंधी कुटुंब लौकिक बैदिक कार्य इन सवनर्ते मन निकासि प्रभुमें राखनो। तहां कोउ कहे जो गृहस्थाश्रम्में रहेनो तव लौकिक वैदिक कार्य कीयेविना केर्से चने ? तहां कहतहे जो भगवत्सेवा पुष्टिमार्गीयधर्मतो अपने मनतें स्नेहपूर्वक करे आर लौकिक वैदिक लोगनके दिखायवेके लीये (इच्छारहित होयके) करे सेवासमय सेवा छोडि न करे सेवामें लौकिक संकोच न करे जेसे दामोदरदाम संभरवारे श्रीद्वारिकानाथजीकी सेवा करते सो जल अपने हाथसों भरिलावते तहां दामोदरदासके मसुरने कहि जो तुम जल भरतहो सो हमकों बोहोत लजा आवत है. तार्ते जल लॉडी पास भरावो तब दामोदरदासने कही अब एसंही करेंगे पार्छे अपनी स्नीसों कहे चलो जल भिर ल्यावे तव स्नीतो भगवदीय हती तासों तत्काल कलसा ले दोउ जने चले सो जल भरिकें ससुरके हाट आगें होयकें निकसे तब ससुर आय दामोदरदासके पायन पड्यो ओर कह्यों जो में चूक्यों जो तुमकों कह्यों अब तुमही जल भरो स्त्रीजनसौं जल मित भरावो तव दामोदरदासनें कह्या कालितें न भरावेंगे। या भांति भगवत्सेवामें छोकसंकोच सर्वथा नांही कर्तव्यहे छोटि वडी सव सेवा भावपूर्वक प्रेमसों करनी। या भांति दुःसंगको जाननों। भगवद्भावहें सो तो अभिरूप हे ओर दुःसंग हे सो जलवत् भावको नाशकर्ता है ॥ १ ॥

मूलं-विक्षिवत्भगवद्भावः सत्संगठयवधानतः । नाश्येत् संसृतिं यद्वत्पात्रठयवहितं जलम् ॥२॥

शब्दार्थ:-अभिरूप भगवद्भाव सत्संगके व्यवधानतें संसृति जो अहंताममतात्मक संसाररूप दुःसंग ताकों पात्रकें व्यवधानयुक्त जलकी नांई नाश् करत है। मतलव यहहे जो पात्रमें जल होय ताको नाश जेसें अमि करेहे तेसें सत्संगके व्यवधानमें रह्यो जो संसार ताको नाश भगवद्भाव करे हे] ॥ २ ॥ टीका:-भगवद्भाव अ-मिरूपहे ओर सत्संग काष्टरूपहे जेसें अभिमें काष्ट परे तो ओरह अभि वढे तेजःपुंज होय तेसेंही भगवद्भाव सत्संगपायकें वढे दढ होय! ओर भगवद्भावरूप अभिहे सो दुःसंगरूपी जलतें नष्ट होय जेसें थोडोसो अमि होय तामें जल डारेतें वा अमिको नाश होय तेसेंही भगवद्भावको नाश दुःसंगतें होय। तहां कोई कहे जो लौकिकमें रहे विनातो चले नांही तव कहा करनों ? तहां कहतहे जो दुःसंगरूपी जलकों सत्संगरूपी पात्रमें राखे तव वह दुःसंग भगवद्भावको नाश करि शके नांही। जेसें अभिकों जलको साक्षात्संबंध होय तो अभिको नाश होय ओर एक पात्रमें जल करिकें अभि उपर धरे तो जलकी नाश होय अभिको नाश न होय एसें भगवद्भावरूपी अभिको सत्संग-रूपी काप्टतें वढाये जाय ताकरि दुःसंगरूपी जलकों पात्रमें धरि (अपने हृदयमें अष्टप्रहर विचार करि) जराय देय तवहीं वचे । आगें वडेवडे भगवदीय दुःसंगर्ते गिरेहें तातें दुःसंगर्ते सदाही डरपत रहेनो ॥२॥

मूलं-जलबङ्घोकिकं प्रोक्तं साक्षात्तन्मेलनेन छ। मूलतो नाश्येद्धावं यथा वेश्वानरं जलम्॥ ३॥

शब्दार्थः - लौकिक जलवत् कह्योहे ताको साक्षात् भावसी संवंध भयेस् जेसें जल [साक्षात् संवंधतें] अभिको नाशकरे तेसें मृलतें भगवद्भावको नाश करे ॥ ३॥ टीका-यह संसारमें लौकिक दुःसंग हे सो जलवत् हे सो जलकुं पात्र विना साक्षाद्भगवद्भावरूप अभिमें नांही डारनो जेसें साक्षात् जल डारे तो वैश्वानर जो अमि ताको मूलतें नाश होय। जेसें जडभरत सगरो लोकिक छोडिकें भगवद्भजनक्रिवेक़ं वनमें गये तहां हरनी जलपीवनकों आई सो सिंहनादतें कूदपि ताके गर्भमेंतें वचा जलमें गियों सो भरतकों दया आई यहही दुः संग भयो भगवद्भाव भगवद्भजन छुटि गयो तबही हरनीके संगतें तीनजन्मको अंतराय भयो एसो दुःसंग वाधकहे। तथा श्रीनंदरा यजी अपने पुत्रकी सेवा करतहते सो अविकापूजनकों गये सो श्रीठाकुरजी सही न सके तहां सुदर्शनसप आयकें श्रीनंदरायजीकों असीलीये तब श्रीठाकुरजीने छुडाये। तातें अन्य संबंध तथा दुःसंग सिद्ध भक्तनकों विशेप वाधकहे सो साधन दशावारे भक्तनकों लगे तामें कहा कहेनो। तातें दुःसंगकों यह जाने जो हमारे सर्व भावको नाशही करेगो या प्रकार दुःसंगतें भावकी रक्षा करे।। ३।।

मूलं-अतः सदेव भेत्तव्यं लौकिकासिततो जनैः। सत्संगमग्रतः कृत्वा नाज्ञनीथा न चान्यथा॥४॥

शब्दार्थः—(उपर कहे तारीतिसों भगवद्भावकी रक्षा करनी क्यों जो दुःसंग वाधकहे) तासों छौिकिक आसक्तितें सदाही भगवदीय जनकों उरपत रहनों। पेहेछें सत्संग करिके छौिककासिक नाशकरिवे योग्य हे सत्संग न करे तो पाछें छौिकिकसिक्तिको नाश होयसकत नांही।।।।। टीका—छौिककासिक दुःसंगतें सदा उरपत रहेनों यह न जाने जो जब दुःसंग छौिककासिक होयगी तब में सत्संग करि छेउंगो जाही समय दुःसंग मिल्यो ताही समय तत्काल छौिककासिक होय भगवद्भावको नाश होयगो तातें दुःसंग मिले तापेहेलेंहितंं सत्संग कियो भरे तब दुःसंग वाधा न करे ताको हष्टांत कहतहे जो जीवको पिछें काल फिरतहे जो पेहेलेतें स्मरण भजन करिराखेतो पीछे अंतका-

लसमय काल वाधा न करे। जोजाने अवतो लोकिक करिलेंड पीछें भगवत्स्मरण करूंगो ताकूं काल आवे तो एक क्षणमें खायजाय तब वा समय कलुहू भगवद्धर्म न वने तातें पहेलेतें सत्संगहू करे ओर भगवत्सेवा स्मरणहू करे सो जब लोकिक दुःसंग आवे तब सत्संगके प्रतापतें वचीजाय सत्संगविना दुःसंगतें विचवेको ओर उपाय नांहीहे यह निश्चय जाननो ॥ ४॥

मूलं--सता परोक्षे सत्संगजातभावो विभाव्यताम्। तद्विरुद्धवचो नेव माननीयं सतां कचित्॥५॥

शब्दार्थः—सत्संगर्मे जो भाव उत्पन्न भयो वाकी भावना सत्पुरुपके परोक्षमें करनी ओर सत्पुरुपके वचनतें जो विरुद्ध वचन होय सो काहू समय नांही माननो ॥ ५ ॥ टीका-अव उपर कहे जो सत्संग करिकें. दुःसंग वाधा न करेगो तहां कोई कहे जो सत्संगतो दोयघडी चार घडी वनेगो पार्छे सेवास्मरण लौकिक वैदिक कार्यह सब कयों चहियें तव दुःसंगर्ते कोन प्रकार वचेगो ? या भांति कोई कहे तहां कहतहे , जो नित्य नियम करि जेसें भगवत्सेवा स्मरण करे तेसेंही सत्संग एक घडी दोय घडी वने तितनोंही करे पार्छे सत्संगके परोक्षमें जो जो वार्ता सत्संगमें भयी होय ताको स्मरण करि अपने धर्मकों देखें जो श्रीआचार्यजी श्रीग्रसांईजी तो या भांति कहे हे ओर में ऋहा करतहूं जो विरुद्ध होय ताके त्यागमें मन करे जा प्रकार कहे हे सो करनको मन करे। या भांति मनकों जो कोई भगवद्धर्ममें लगाय-राखेगो सो दुःसंगर्ते वचेगो जो वार्ता भगवदीयके मुखसों सुनीहे तामें हढ विश्वास करि उह वार्त्ताकी भावना मनमें करियें तव मन ठिकाने आवे । जेसे गाय वनमेंतें चिर आवत हे पाछें घर आयकें भेरि वेठिकें चर्वण करि स्वाद छेत हे तेसें वैष्णवको संग होय ता समय

भगवद्धर्मको श्रवण करे पाछें सत्संगके परोक्षमें अपने हृदयमें मनन किरकें भावनासों रसको आस्वादन करे। सत्संगतें विरुद्ध वचन जितने हे तिनकों विचारि धर्म अधर्मको विचार मनमें राखे। और सत्संगतें विरुद्ध वचन न कहे, जामें सत्संग छुटिजाय एसो कबहू न करे॥ ५॥

मूलं-भरतस्थापि दुःसंगे जाता हरिणजातिता। केवलं कलिदोषाभिभृता अपि जनाः स्वतः ॥६॥ तत्संगनिरतैर्नेव भवितव्यं विशेषतः। अथवा सर्वतो मौनं तदभावे विधीयताम् ॥७॥

राव्दार्थः - जडभरतकों हू दुःसंगमें हिरणजातिपनों भयो और सगरेजन आपतें हू केवल किल्दोपके जीतेभयेहे।। ६।। तासों विनके संगमें विशेष करिकें प्रीतियुक्त नहीं रहेनो अथवा तेसें न बने तो मौन राखनो।। ७॥ टीका-दुःसंगको मनमें भय राखे अपनो काल जाने काहेतें जो दुःसंगदोप होय तो हिर जो भगवान सो दूरि जात रहतहे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु संन्यासिनर्णय ग्रंथमें कहे हे 'विषयाकांतदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः " (जहां दुःसंगदोप किर देह विषयाकांत भयो ता देहमें भगवदावेश निश्चय न होय) तार्त दुःसंगदोप महा वाधक हे ओर यह जगतमें भूतप्राणिमात्र हे सो सहजहींमें दोप किर भरे हे काहेतें जो यह कलिकाल महाकठिनहे अपने मनहूको विश्वास न करे जो में वोहोत समुझतहं मेरे हल ज्ञान वैराग्य हे मेरो मन तो मेरे वश्य हे यह न जाने जासमय दुःसंग मिल्यो ता समय ज्ञान, वैराग्य, विवेक, धेर्य सब एक क्षणमें जात रहेगो । तार्ते अपने मनकों, इंद्रियकों, देहकों, कलिके दोप-

रूपही जाने ओर यह जाने जो सत्संगके प्रतापर्ते में वचतहूं जासमय दुःसंग मिलेगो ताहीसमय में गिरूगो एसो ज्ञान मनमें राखे जो यह किलयुगने सगरे प्राणीमात्रकी बुद्धि हरिलीनीहे कलिको दोप सवनकों लग्योहे, एसो जो दुसंगदोप सर्व धर्मको नाशक हे तिनर्ते न्यारो यह जीव रहे तबही भगवद्भाव विशेष होय, ओर उपाय कोई नांहीहे । तहां कोई कहे जो दुःसंग प्रवल होय अपने वश न होय अपने घरके पडोसमें होय तथा कहूं जीविका होय तहां दुःसंग होय अथवा अपने कुदुंवमें होय अपनेतें यह दुःसंग निवारण न होय ओर जीवकों घरमें रहे विनातो वने नांही तहां दुःसंग प्रवल होय तो कहा करे ? तहां श्रीहरिरायजी कहतहे जो मुख्य तो यहही हे जो अपने समुझायेतें अपने उपायतें दुःसंग 'छुटत होय तो छोडाईयें अथवा आप छोडिकें ओर टोर निर्वाह करिये अपने काह्मांति दुःसंग न छुटे तो तहां मौनहोय रहियें वोलियें नांही, जहां अपनो कह्यो न होय तहां अपने मनको भाव भग-वद्धर्भ वार्त्ता कबहून कहियें उनतें मन न्यारो राखियें काहेतें जो जाकों भगवद्धर्म स्विनवेकी श्रद्धा न होय तिनके आगे भगवद्धर्म सर्वथा न कहियें काहेतें जो भगवानमें तथा भगवद्धर्ममें भेद नांहीहे एकही पदार्घहे तार्ते भगवानको अतिक्रम होतहे यह विचारि जहां दुःसंग प्रवल होय तहां वाद न करियें मोन रहियें मनमें हरिश्रणकी भावना करियें श्रीआचार्यजी महाप्रभु विवेकधेर्याश्रयप्रंथमें कहेहे " दुःख-हानों तथा पापे भये कामाद्यपूरणे । भक्तद्रोहे भनयभावे भक्ते-श्रातिकमे कृते ॥ अश्वये वा सुशक्ये वा सर्वथा श्राणं हरिः " (दुःखकी हानिमें तथा पापमें भयमें कामादिककी अप्राप्तिमें भक्तके द्रोहमें भक्तिके अभावमें भक्तनके अतिक्रम कीयो होय तामें अश्-

क्यमें तथा सुशक्यमें निश्चय हरिशरणहे) या भांति हरिशरणकी भावना मनमें करिकें चुप्प होयरिहर्ये ॥ ६-७॥

मूलं-यो वदत्यन्यथावाक्यमाचार्यवचनाज्ञनः। संसृतिप्रको वाऽपितत्संगो दृष्टसंगमः॥ ८॥

शब्दार्थ:-जो जन श्रीआचार्यजीके वचनमें अन्यथा वाक्य कहे अथवा अहंताममतात्मक संसारमें आसक्ति करिवेकी प्रेरणा करे तिन-को संग मो दुष्टसंग जाननो ॥ ८ ॥ टीका-अब कोइ कृहे जो दुःसंग अथवा भगवद्धर्ममें विरोध किनकों कहिये तहां कहतहे जो श्रीवलभाचार्यजीके वचनतें सिद्धांततें अन्यथा वचन कहे ताके वच्न अन्यथा (झुंठो) जाने श्रीआचार्यजीतें विरुद्धधर्ममें वोध करिकें चलाव अन्यमार्गकी रीति कहे तिनकों दुष्ट करिकें मनमें जाने जो याके वचन मानेतें मेरे सर्वधर्मको नाश होयजायगो तातें अन्य मार्गीयके पास न वेठियें अन्य संबंध होयजाय, अन्यमार्गके धर्म सुनिये नांही अन्यमार्गीयिकिया कछु न करियें, सो गोविंददुबेकी वात्तीर्में प्रसिद्धहे जो एकसमे गोविंददुवे मीरांबाईके घर गये तहां मीरांवाईने आदरसन्मानकरि गोविंददुवेकों राखे सो मीरांवाई भगवद्भक्त हती परंतु श्रीआचार्यजीमहाप्रभुके पुष्टिमार्गमें नांहीहती मर्यादामार्गमें हती सो यह गोविंददुवेकी वात श्रीगुसांईजीनें जानि जो गोविंददुवें मीरांवाईके घर हे तब श्रीगुसांईजी एक श्लोक लिखे "भगवत्पदपद्म-परागजुपो नहि युक्ततरं मरणेऽपितराम् । इतराश्रयणं गजराजधृतो निह रासममप्युररोक्करते "(प्रभुके चरणारविंदकी रजको सेवन करिवेवारेक मरणते अधिक कष्ट प्राप्त होय तथापि ओरको आश्रय करनों योग्य नहीं है) अयिगोविंददुवे (जेसें हस्तिने धारणकीयो एसो पुरुप गर्दभको स्वीकार नांही करतहे) यह लिखिक एक जनवासीको दीये जो गोविंददुवेकों दीजो । सो अजवासीने गोविंददुवेकों जाय

दीयो तव गोविंददुवे वांचतही उठि आये तातें यह पुष्टिमार्ग हे सो एसोहे। श्रीगुसाईजी गोविंददुवेसो किह जो हाथीकी असवारी करी अब गधाकी असवारीको मन भयो हे? तासूं पुष्टिमार्गमें अनन्य भाव राखियें। पुष्टिमार्गतें अन्यधर्ममें चलावे ताको दुष्टसंग जाननों तत्काल ताको त्याग करनो ॥ ८॥

मूलं-यश्च ऋष्णे रातें नित्यं बोधयत्यप्रयोजनाम्। निरक्षेपः सात्विकश्च तत्संगः साधुसंगमः॥९॥

शब्दार्थः — जो सदा श्रीकृष्णमें कारणरहित प्रीतिको बोध करे ओर निरक्षेप तथा सात्विक होय तिनको संग सो साधुपुरुपको संग जान्नों ॥ ९॥ टीका — उपर कहे जो अन्यमार्गीयको संग न करे तहां कोई कहे जो किनको संग करे ? तहां कहतहे जो एक श्रीकृष्णफलात्मक भावात्मक व्रजपतिहे तिनमें नित्य नूतन प्रीति होय ओर अवतारादिकमें न होय एसो अनन्य भाव जाको होय ओर एक श्रीकृष्णके चरणारविंदकी भक्ति विद्वेकोही बोध करे ओर हृदयमें यहही वासना रहे जो श्रीकृष्णके चरणकमलमें प्रीति होय ओर दुसरो प्रयोजन मनमें न होय निरपेक्ष होय काहूकी अपेक्षा न राखे यह मनमें जाने जो एक श्रीकृष्णही कर्ताहे ओर कोड नांही काहूको भगवद्धमें दिखाय अपनी प्रतिष्ठार्थ अथवा लाभार्थ भगवद्धमें करत न होय ओर सात्विक होय, छल, कपट, काम, कोध, मद, मत्सर, हृदयमें न होय एसो धर्म जहां देखे ता भगवदीयको संग करे ॥ ९॥

मूलं-एवं निश्चित्य सर्वेषु स्वीयेष्वन्येषु वा प्रनः। महत्कुलप्रसूतेषु कर्त्तव्यः संगनिणयः॥१०॥

शब्दार्थः-एसं अपने (भगवदीय जन) ओर अन्य [ली-किक] इन सवनमें संगको निश्चय करिकें फिर उत्तम कुलमें जिनको

जन्महे तिनके विषयमें संग निर्णय करनो ॥ १०॥ टीका—सर्वओरतें निश्चित होय ठौकिक वैदिक ओर देहसंबंधी अनेक उपाधि गृहकार्यतें मन किर निश्चित होय। भगवत्परायण एतन्मार्गीय पुष्टिमार्गीय वैष्णवर्को अपनो जाने जो श्रीआचार्यजी महाप्रभुके शरण ये हू आयेहे हमहू श्रीआचार्यजीके शरणहे यह वैष्णव हमारे संबंधीहे एसो स्नेह वैष्णवपर होय तिनको सत्संग कर्त्तव्य हे। अन्यमार्गीय जो जीवहे तिनसों जाकों प्रयोजन न होय। महत्कुलमें जन्म होय सो साक्षात श्रीवहभक्कलमें यह सगरो धर्महे एक श्रीकृष्णहीकी सेवा एक श्रीकृष्णहीको आश्रय इनहीमें हे तासों विनको सत्संग मन वचन किया किरकें कर्त्तव्यहे। अथवा श्रीआचार्यजीके अंगीकृत पुष्टिमार्गीय, नाम, निवेदन, मर्यादा, सेवा, श्रीकृष्णमें रित, जाके होय एसे भगवदीयको निश्चयही सत्संग कर्त्तव्य हे। या भांति सत्संगको निर्णय कर्त्तव्य हे॥ १०॥

मूलं-श्रीमदाचार्यचरणे मतिः स्थाप्या सदा स्वतः । तत एव स्वकीयानां सिद्धिः कार्यस्य सर्वथा॥११॥

शब्दार्थः — सदा श्रीआचार्यजीके चरणारिवंदमें आएतं मित स्थिर करनी तामों हो भगवदीयनके कार्यकी निश्चय सिद्धि होय।।११॥ टीका — श्रीआचार्यजीके चरणकमलमें जाकी मित हुढ एकरस स्वस्थ होय मन वचन करिके एक श्रीआचार्यजीके चरणकमलमें जिनकी बुद्धि होय तिनको संग करनो। श्रीसवों तमजीकी टीका श्रीगोकुल-नाथजी विरचित हे तामें लिखे हे जो पद्मनाभदास सिरेखे भगवदीय विरलहे एसे भगवदीयके हृदयमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु नित्य विराज-मान हे तिनके संगतें सकल कार्य सिद्ध होय, भींज्यो कपराहे ताकों सखे कपराको संबंध होय तो वह भींजे, तेसेंही भगवदीयके संगतें भगवदीय होय एसं स्वकीय भगवदीय मिलनें वहुत दुर्लभहे। ओर जहांताई एसे स्वकीय भगवदीयको संग नहोय तहांताई कार्यहू सिद्ध नहोय तातें भगवत्सेवास्मरण करियें, एसे भगवदीयके मिलवेको मनमें ताप राखियें तो श्रीआचार्यजी महाप्रभु कृपा करिकें मिलावे तव श्रद्धापूर्वक दीन होय उनको संग मन लगायकें करियें। जब वे भगवदीय प्रसन्न होय कृपा करि पुष्टिमार्गको प्रकार लीलाभाव वतावे तव कार्य निश्चय सिद्ध होय। ताहीतें श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप नवरत्नग्रंथमें निरूपणकीयेहे "निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा ताहशोजनैः" (निश्चय ताहशीयजनके संग मिलिकें निवेदनको स्मरण करनो) निवेदनको स्मरण ताहशीयवैष्णवसों मिलिकें करे तो हृदयमें मार्ग-स्फुर्ति होय तार्ते सत्संग अवश्य कर्त्तव्यहे ॥ ११ ॥

मूलं-अवेष्णवत्वं मंतव्यं तद्विरुखजनेष्वि॥ जीवेषु दोषवत्स्वेवं तथा तत्साम्यवस्तुषु ॥ १२ ॥

राव्दार्थः-पुष्टिमार्गतें विरुद्ध जो जनहे तिनमें तथा भगवदीयमें दो-पञ्चिद्धवारे जो जीवहे तिनमेंहू एसें अवैष्णवत्व माननों ॥१२॥ टीका-वैष्णव ओर अवेष्णव केसें जानियें सो रुक्षण कहतहे । जो श्रीआचा-र्यजीनें पुष्टिमार्ग प्रकट कीयोहे ओर श्रीग्रसाईजीनें प्रकाश कीयोहे सो नामावर्लीमें नाम कहेहे "पुष्टिप्रवर्तकाय नमः"यह श्रीआचार्यजीको नाम, "पुष्टिमार्गप्रकाशकाय नमः"यह श्रीग्रसाईजीको नाम हे।तासूं जो कोई पुष्टिमार्गकी रीतिसों विरुद्ध आचरण करे ताकों अवैष्णव जानि-यें जो कोई पुष्टिमार्गकी रीति प्रमाण चरुतहे तिनकों वैष्णव जानियें, काहेतें जो शुद्धजीव होयगो तासों शुद्ध किया वनेगी। सो जीव जग-तमें तीन प्रकारकेंहें सो पुष्टिप्रवाहमर्यादाश्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रमु कहेहें—"इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सुष्टवान हरिः। वचसा वेदमार्ग हि पुष्टिं कायेन निश्रयः" (प्रभुं इच्छामात्रतें मनतें प्रवाहकं तथा वचनतें निश्रय वेदमार्गकों ओर कायातें निश्रय पुष्टिकों उत्पन्न करता भये) श्रीठाकुरजी इच्छा करिकें मनतें सृष्टि प्रकट करीहे सो प्रवाही सृष्टिहे वाको मन कवह भगवद्धभेमें नांही लगे सदा दुष्टाचरणही करे ओर वचनकरिकें श्रीठाकुरजीने सृष्टि प्रकट करीहे सो मर्यादासृष्टि वैदिककर्ममें लागी रहेहे ओर श्रीठाकुरजीने अपनी कायातें सृष्टि प्रकट करीहे सो पुष्टिजीवहे उनसों भगवत्सेवाही वने या रीतिसों तीन प्रकारके जीवहे तातें जीव दोपकरिकें भयोंहे सो प्रवाहीहे तासोंही दुष्टा चरण करतहे ताकों अवैष्णव निश्रय जाननों ॥ १२ ॥

मुलं-श्रीकृष्णः श्रीमदाचार्यस्तथा श्रीविङ्ठलेश्वरः । तथा लीलास्थसामग्रीनैतत्साम्यं कदाचन ॥१३॥

शब्दार्थः -श्रीकृष्ण, श्रीमदाचार्यजी, श्रीग्रसांईजी, ओर सव लीला सामग्री इनसवनके वरावर लोकिकमें काहूदिन ओर कछ नहीहे॥१३॥ दिका - अव श्रीहरिरायजी पुष्टिमार्गीयजीवनको शिक्षा करतहे जो यह भाव मनमें अहर्निश अवश्य राखियो अलोकिक पदार्थमें लोकिक छुद्धि आवेतो वाको सर्वस्व नाश होय सो कहतहे — एक श्रीकृष्ण, श्रीआचार्यजी ओर श्रीविडलनाथजी तथा लीला सामग्रीमें वज्ञभक आदि श्रीआचार्यजीके पुष्टिमार्गमें सेवा सामग्री सव अलेकिक जाननी श्रीकृष्ण साक्षात फलात्मक रसात्मक श्रीयशोदोत्संगलालित सर्वागसुंदर त्रजभक्तनके सर्वस्व जीवनधन सोहि श्रीकृष्ण अपने देवीजीवनके उद्धारार्थ श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीह्न ओर अलोकिक अग्रिह्म प्रकट कीये सोहि श्रीआचार्यजी अग्रहा अग्रह्म सार्यजी अग्रनो दसरोहि ह्रप श्रीग्रसांईजीको धारण करि यह प्रिष्टिमार्गको प्रकाश कीये। जेसे श्रीकृष्णावतारमें सगरी लीला-

सामग्री (श्रीकृष्ण), श्रीनंदरायजी, श्रीयशोदाजी, आदि सव अलौकिक वाललीलारसमें ममहे, सखा ग्वाल येह अलौकिक सख्यभावमें ममहे, गोपीजनमें अनेक भावहे श्रुतिरूपा, कुमारिका, मुख्य श्रीस्वामिनी-जी वृपगानुजा, ओर श्रीयमुनाजी इनके अनेक यूय अनेक सखी यह सव अलौकिक श्रीगिरिराज, वृश्वादिक, पशु, पश्वी, व्रजभूमि, गुल्म, लता, औपि, निकुंज, आदि सव लीलासामग्री आभूपण वख्वादिसामग्री सव अलौकिकहे तेसेंही यह श्रीआचार्यजी श्रीगुसाईजीके पृष्टिमार्गमें सेवाप्रकार, वर्पदिनके उत्सव, नित्यसेवाको प्रकार, सामग्री, आभूपण, वस्न, सिंहासन, खंडपाट, पिछवाई, निजमंदिर, मणिकोठा, तिवारी, होलतिवारी, रसोईघर, पानघर, फूलघर, शाकघर, भंडार, चोक, सेवक, कीर्त्तनीया, परिचारक, आदि सव सेवासंबंधी पदार्थ अलौकिक जानियें इनकों भावात्मक जानियें इनमें लौकिक हुद्धि करे तो महा अपराध होय। या भावसों पुष्टिमार्गीय वैष्णव सेवा करे। यह भाव मनमें ग्रुस राखे सो आगोंके श्लोकमें कहतहे॥ १३॥

मूलं-यदस्माभिः पुरा प्रोक्तं तिचित्ते स्थाप्यतां सदा। न कुत्राऽपि च वक्तव्यं सांप्रतं विमुखा जनाः॥१४॥

शब्दार्थः—जो हमने आगें कहोहे सो सदा चित्तमें स्थापन करियों जो मार्गके वक्ताहे तिनतें कहनो ओर काहके आगें मित कहियों काहेतें जो आजकाल सगरे जन वहिमुंख होय गयेहें ॥ १४॥ टीका—अव कोई पूर्वपक्ष करे जो सेवासामग्री तुम सव अलोकिक वताये सो तुम अपनी युक्तिसों कहतहों के कहू ग्रंथमें हे?के काहूसों सुनीहे ? या भांति कोई कहे तहां श्रीहरिरायजी अपने छोटे भाई तथा अंगीकृत सेवकनसों कहतहे जो यह हम वडेनसों सुनीहे श्रीगोकुलनायजी श्रीकल्याणरायजी आदि सर्व भावरसके अनुभवकर्ता- के श्रीमुखसों सुनीहे । अथवा श्रीसुवोधिनीजीमें श्रीमहाप्रभुजी सव-भाव कहेहे तथा ग्रंथमें श्रीगुसांईजी सगिर लीलासामग्री अलोकिक वर्णन कीयेहे सो हम तुमसों अति खेहकरिकें कहतहे जो यह वार्ती अपने चित्तमें सदा स्थापन करियो, कवहू कोईकाल मुलिकें लोकिक मित जानियो ओर यह भाव काहूके आगें मित कहियो, तुम्हारों अंगीकृत जाको हदय गुद्ध होय हदयमें दृढ श्रीआचार्यजी श्रीगुसां-ईजीके चरणकमलको विश्वास होय तिनसों मिलिकें अलोकिकपदा-र्थको विचार कर्त्तन्यहे ओर विमुखजन जाकी लोकिक चुद्धिहे तिनप्रति कवहू अलोकिकपदार्थको भाव न किह्यें। तहां कोई कहे जो समुझे नांही ताके आगें किह्यें तो यहहू जाने ओर तुम कहतहो न किह्यें ताको कारण कहा ? तहां कहतहे ॥ १४॥

मूलं-सांमुख्यबोधनं नैव जायते बाह्यधर्मतः। एकोपि दोपः सुदृदः सर्व नाश्यति ध्रुवम् ॥ १५॥

राज्दार्थः —वाह्यधर्मतें सन्मुख्में बोधन होय नांही काहेतें जो एक हू अत्यंत हढ दोप निश्चय सर्वको नारा करे। १५॥ टीका—ओरके आगें अलोकिक प्रकारहे सो न कहेनो या पुष्टिमार्गमें भगवदीय विना अन्यहे तिनसों कहियें तो अपनो धर्म जाय ओरके आगें कछ कहनेको प्रकार आय वने तो ज्ञान वैराग्यको प्रकार कि दीजियें, अलोकिकभावको प्रकार न कि हयें। काहेतें जो अपने हदयको धर्म वाहिर प्रकाश करेतो धर्मरस बाहिर जातरहे हृदयतें प्रमु जातरहे। तातें मुख्यधर्मको बाहिर प्रकाश सर्वथान करनो, काहे तें जो एकदोप यह जीवमें एसो हृदहे जो अलोकिकमें लोकिकबुद्धि सो यह सर्वधर्मको निश्चयही नाश करतहे, सो अलोकिकपदार्थमें लोकिकबुद्धि सवकीहे को धनकोटिमें कोई एककी अलोकिकबुद्धि

होयगी सो सगरी वस्तु लीलामय देखेगो तिनसों लेकिकिकिया कबहू न बनेगी। तातें यह एक महादोप जगतमें मिलिरह्योहे जो लोकिक बुद्धि अलोकिकमेंहे, तिनके सर्वधर्मको नाशहे कल्लु अनुभव नांहीहे। या प्रकार पुष्टिमार्गमें रहे तिनको श्रीआचार्यजीकी कृपार्ते भाव उत्पन्न होय स्वरूपानंदको अनुभव होय॥ १५॥

मूलं-अस्माभिरेवं लिखितं निरपेक्षैः स्वभावतः । स्नेहेन सर्वथा चित्ते धीयतां यदि रोचते॥१६॥

शब्दार्थः —हमने निरपेक्ष होय स्वभावतें ऐसे लिख्योहे सो रुचेतो निश्रय स्नेह करिकें चित्तमें धारण करोगे ॥ १६ ॥ टीका—अव श्री-हरिरायजी अपने भाई श्रीगोपेश्वरजीप्रति तृतीय शिक्षापत्र संपूर्ण करत हे तामें कहतहे जो यह शिक्षापत्र हम तुमकों लिखेहे सो तुम यह मति जानियों जो भाईके संबंधकरिके लिखे हे अथवा कछ लोकिक स्वार्थको भाव यह मनमें हे तुमकों प्रसन्न करिवेके अर्थह्र नांही हे निरपेक्षभावसों लिखेहे श्रीमहाप्रभुजीकी निधि घरमें विराजतहे तिनकी सेवासामग्रीमें अलोकिक भाव होय तो आनंदको अनुभव होय यातें लिखेहें तातें जो तुद्धारे चित्तमें रुचेतो यह उपर जितनो प्रकार कहाो हे सो चित्तमें निश्रय धारण करिवेयोग्य पदार्थ हे काहूके आगें प्रकाश करिवेयोग्य नांही हे। यह मार्ग श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीको हे सो भावात्मक गोप्य हे तातें स्नेह करि अपने चित्तमें सर्वभावको धारण करोगे ॥ १६ ॥

इति श्री हरिरायजीकृतं तृतीयं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्व-रजीकृतव्रजभापाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ ३॥

शिक्षापत्र ४.

अव चतुर्थशिक्षापत्रमं भावना निरूपण करतहे उपर कहे जो सत्संग किर दुःसंगको त्याग करे ताके हृदयमें भगवान् पधारे सो भगवान् श्रीकृष्णविरुद्ध धर्माश्रयहे तिनके स्वरूपको ज्ञान होय सो स्वरूप अव आगें सिद्धांतपूर्वक निरूपण करतहे—

मूलं-प्रभोर्धर्माः श्रुतौ प्रोक्तास्तथा भागवतेऽपि च। अप्राकृताः स्वरूपेकनिष्ठा भिन्ना न रूपतः॥१॥

राव्दार्थः -प्रभुके धर्म अप्राक्टत (मायासंवंधरहित) ओर एक स्वरूपमें ही स्थित स्वरूपतें भिन्न नांही एसे श्वितमें तथा श्रीभागवतमें हू निरूपण कीये हैं।। १ ।। टीका-प्रभु श्रीकृष्ण हे तिनकें धर्म श्वितमें विस्तारकिर कहे हे ओर श्रीभागवतमें हू प्रभुके सब धर्म कहे हे सो श्वितके तथा श्रीभागवत दोड़के वचन प्रमाण जाननें, जिनके हृद्यमें श्वितके वचन ओर श्रीभागवतके वचन प्रमाण नांही हे सो जीवकों आसुरी जाननें, जिनके हृद्यमें श्वितके वचन ओर श्रीभागवतके वचन प्रमाण हे तिनकों गुद्ध देवीजीव जाननें । सो श्वितह भगवानके स्वरूपकों अप्राक्तत कहतहे ओर श्रीभागवतह श्रीठाकोरजीके स्वरूपकों अप्राक्तत कहतहे ओर श्रीभागवतह श्रीठाकोरजीके स्वरूपकों अप्राक्तत कहतहे सो प्राक्तत ओर अप्राक्ततमें यह तारतम्य हे जो अप्राक्तत हे सो सदा एकरस केवल आनंदमयहे तहां लोकिक मायाके गुणको प्रवेश नांही हे ओर प्राक्तत हे सो मायाजन्य हे मायाकृत गुण काम, कोध, मद, मत्सर, मुख, दुःख सव लगे हे सो कालपाय के प्रकृत स्वरूप तथा कालपायके नष्ट होयजाय यह प्राकृत जाननों। तातें प्रमुको स्वरूप अप्राकृत जाने। अप्राकृत प्रभुको स्वरूप जान्यो कवः

जानियं जव प्रभुक्ते स्वरूपमें ओर नाममें दृढ निष्ठा होय। श्रीठाकुर-जिके स्वरूपकी सेवा कीये विना रह्यों न जाय ओर श्रीठाकुर-जिके नाम श्रीठाकुर-जीकी लीलासंबंधी कीर्त्तन विना न रह्यों जाय तव जानियं जो श्रीठाकुर-जीके नामरूपमें निष्ठा भई. श्रीठाकुर-जीसंबंधी धर्ममें सगरी इंद्रिय मन देह लग्यों रहे तब जानियं जो या वैष्णवपर प्रभु कृपा कीये।। १।।

मुलं-कर्तृत्वसर्वरूपत्वसर्वाधारत्वमुख्यकाः । व्यापकत्वविरुद्धात्मधर्माद्याःश्वतिरूपिताः ॥ २ ॥

शब्दार्थः - कर्तापनो, सर्वरूपपनो तथा सर्वाधारपनो यह मुख्यधर्म ओर व्यापकत्व तथा विरुद्धधर्माश्रयत्व आदि सर्वधर्म श्रुतिमें निरूपण कीयहे। १२॥ टीका - श्रुति ओर शीभागवत प्रभुकों अपाकृत कियारूप कहतहे जो रूप श्रीटाकुरजी चाहे सोहि रूपकों अपने भक्तके सुखदानार्थ धरि छेई सो श्रीभागवतमें प्रसिद्ध वर्णन हे जब हिरण्यकिशपुने प्रहादजीकों बहुत दुःख दीये तब प्रभु श्रीनृसिंहरूप धरिकें हिरण्यकिशपुकों मारे प्रहादकी रक्षा किर छीनी तथा श्रीयशोदाजीकों मुख्य बालभाव हे तिनके बालक होय पलनामें झलत हे ओर बजमक्तकों पितभाव हे तार्ते उनकों रितदान मानमोचनह करत हे एककालाविष्ठक सर्व छीला करत हे काहेतें जो सर्वके आधाररूप मुख्य श्रीकृष्ण हे कर्तु अकर्तु अन्ययाकर्तु सर्वसामर्थ्ययुक्त हे सगरे व्यापक हे सबटोर श्रीकृष्णकीही सत्ता हे ओर सवतें न्यारेहे यही विरुद्धधर्माश्रय जो सबमेंहे ओर सवतें न्यारेहे । याभांति वेद, पुराण, श्रीभागवत भगवानको अलोकिक रूप निरूपण करतहे ॥ २॥

मूलं-ऐश्वर्याद्या अंतरंगधर्मा भागवते तथा। तेऽपि स्वरूपमेदेन मर्यादाश्रिप्टिमेदतः॥३॥

सर्वेऽपि च विभिद्यंत इति श्रीमत्प्रभोर्वचः। अतोऽत्र पृष्टिमार्गीथमंतरंगं विशेषतः॥ ४॥

शब्दार्थः -तेसं ऐश्वर्यादिक अंतरंगधर्म श्रीभागवतमेंहू निरूपण कीयेहे सोहू मर्यादा ओर पुष्टि दोयभेदसों स्वरूपके भेद करके सर्व धर्महू भेद पावेहें एसे आपके वचनहे तासों यहां विशेपसों अंतरंग पुष्टिमार्गीय धर्महे ॥ ३ ॥ ४ ॥ टीका-श्वति ओर श्रीभागवत दीय भावको स्वरूप कहतहे एकभावतो ऐश्वर्यकोहे प्रभुकों च्यापक सर्वके आधाररूप कहतहे सो मर्यादाभक्त ऐश्वर्य जानि भजन करतहे श्रुति नेतिनेति कहतहे ब्रह्मा, शिव, शेपादिक ऐश्वर्यभावसों भजन करतहे सो मर्यादाभक्तहे ओर प्रमुक अंतरंग भक्तहे सो स्नेहभावसों भजन करतहे नंद, यशोदा, व्रजभक्तादिक पुष्टभक्तहे सो श्रीठाकुरजी ए-कहीहे परि भक्तनके भावकरि न्यारेन्यारेहू दीसतहे सो श्रीभागवतर्म कहेहे जो जब अक्रूरजी श्रीठाकुरजीको मधुपुरीमें पधरायके लेगये तहां जाको जेसो भाव हतो तेसोही दर्शन भयो, कंसको वैरभाव हतो तार्ते कालरूप देखे, जोगीजन परमतस्व देखे, मथुरास्थस्रीजन भक्त परमकोमल सुकुमार देखे, जहां जेसो भक्तनको भाव तहां श्रीठा-रजी ताही भावसों विराजतहे मर्यादाभक्त ऐश्वर्यभावकरि आराधना क-रत हे. यह जानतहे जो प्रभुकों भूख प्यास नांही, कोटि ब्रह्मांडके कत्तीहे, पालनकरे, संहारकरे, तिनकों हम कहा देयगें ? प्रभु हमारी रक्षा क-रतहे यह भाव हे तिनसों कछ प्रभु मांगत नांही. ओर पुष्टिभक्त नंद, यशोदा, व्रजभक्तादिककों स्नेहभाव हे जो एक क्षणमें भृखे होयर्गे शीत: उष्ण, लागत हे एसो भाव हे तहां श्रीठाकुरजी मांगिकें अंगीकार करत हे सो श्रीभागवतमें प्रसिद्धही निरूपण हे । ऐश्वर्यभावमें मर्यादारीति हे ओर स्नेहभावमें पुष्टिरीति हे ।

याभांति स्वरूपभेदतें न्यारे न्यारे रसको अनुभवहे सो दोउमार्ग प्रसिद्ध हे ॥ ३ ॥ सर्वमें व्यापी भगवान हे सो शास्त्र, पुराण, श्रीभागवत, कहतहे ओर श्रीसुवोधिनीजी आदि प्रंथमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु सर्वव्यापक प्रभुकों कहेहे परंतु अंतरंग पुष्टिमार्गीय भक्तनको भाव सर्वोपरहे सो काहेतें जो ज्ञानीहे तथा मर्यादामार्गीय भक्तहे सो भग- वानको सर्वव्यापक जानिके भजन करतहे तिनकों स्वरूपावंदको अनुभव नांही केवल मोक्षके अधिकारी हे ओर पुष्टिमार्गीय भक्त हे सो सर्वोपरहे श्रीठाकुरजीके अंतरंग सदा सेवा, श्रृंगार, भोग आदि-करिकें स्वरूपानंदको अनुभव करतहे तिनतें एकक्षण श्रीठाकुरजी न्यारे नांही रहतहे तातें यह पुष्टिभक्ति विशेपकरि सर्वोपरहे ॥ ४॥

मूलं-विरुद्धधर्माश्रयत्वं स्वमुखाय विचारयेत् । प्रभु:कुमार एवास्ति वजे मातृपदांकगः ॥ ५ ॥ श्रीभागवतवाक्येन कोमारं जहतुर्वजे । व्याख्यातं च तथेवाऽस्मदाचार्येर्विवृताविष ॥ ६॥

रावदार्थः – अपने सुखके अर्थ प्रमुकों विरुद्धधर्माश्रयत्व विचारे, दोयभैया व्रजमें कुमार अवस्थाकूं राखतभये एसं वाक्यतें व्रजमें मातृ-पदांकगः (श्रीयशोदोत्संगलालित) प्रमु कुमारहीहे, श्रीमदाचार्यजीनं श्रीसुवोधिनीजीमें हू एसोही व्याख्यान कीयोहे ॥ ५ ॥ ६ ॥ टीका – प्रमुको स्वरूप विरुद्धधर्माश्रयी हे यह विचार भक्तजनकों अवश्य हृदयमें करनो । वैष्णवको मुख्यधर्म यहीहे जो प्रमुकों विरुद्धधर्माश्रयी जाने काहेतें जो जहांताई भक्तनकों विरुद्धधर्माश्रयको ज्ञान न होय तहांताई प्रमुकी लीलामें असंभावना विपरीतभावना होय सो भक्ति-वीजको नाश करे ताको प्रकार कहत हे जो प्रमुकी लीलामें संदेह आवे जो दामोदरलीलामें प्रमुकी कटि छोटिसी ओर दोयअंगुरीको

चीच अंतर तामें श्रीयशोदाजी दाम जोरत जाय तोहू दोय अंगुरी, घटे सो केर्से ? यह दोपबुद्धि सो असंभावना ओर माखनके लीये प्रभुक्यों रुदन कीये तथा मानादिक लीलामें प्रभु एसो दैन्य क्यों करत हे या मांति दोपञ्चद्धि आवे सो विपरीत भावना यह दोप कव जाय जब श्रीठाकुरजीकों विरुद्धधर्माश्रयी जाने यह मुख्य विचार वैष्णवकों कर्त्तव्य हे । प्रभु कुमार पांच वरसके परमसुंदर श्रीयशोदाजी-के अंकमें विराजित हे ओर भक्तनकों सर्वलीलाको अनुभव करावतह, प्रभुकी सगरी लीला नित्य हे, आनंदरूप हे, जेसे प्रभु आनंदरूप निस हे तेसें ही प्रभुकी छीछा हे सो आगें वर्णन करत है।। ५॥ श्रीमद्भागवतमें नित्यलीला कहें हें जो कुमारलीला वजमें राखिके पौगंड किशोर वयकी लीला कीये 'कौमारं जहतुव्रेजे '(व्रजमें कुमार अवस्थाक़ं राखत भये) तासं मनुष्यको वालपनो गये पीछे फेरी बालपना या जन्ममें एकदिनहू न आवे ओर श्रीठाकुरजीकी सगरी छीछा नित्य हे बाल अवस्थामें किशोरलीला करतहे किशोर अवस्थामें वाललीला करत हे, यह विरुद्ध धर्माश्रयी प्रभुकों जानने । ताहीतें श्रीभागवतमें श्रीशुकदेवजी कहेहे कुमारलीला राखि दुसरी छीला कीर्ये या श्लोकके ज्याख्यान श्रीआचार्यजी महाप्रभु निवंध श्रीसुवोधिनीजी संप्तार्थ विवेचन करी कीये हे जो नित्यलीला ठोर टोर संपादन कीये ताही भांति श्रीआचार्यजी महाप्रभु पुष्टिमार्गमें सेवा प्रकट कीये जामें वर्षके वर्ष जन्माष्टमी, दान, रास, होरी, फूल-मंडली, हिंडोरा, सब नित्यलीलाको अनुभव साक्षात् होत है। याभा-

१ श्रीभागवतके अर्थकी सातरीतसाँ एकता करीहे। ताम श्रीमुक्कीधिनिजीम वाक्यार्थ, पदार्थ, अक्तरार्थ ये तीन अर्थ तथा निवंधमें "शास्तार्थ, स्कंधार्थ, प्रकरणार्थ, और अध्यायार्थ मिल चार अर्थ एसे सातरीतसाँ एकता करी है। पटेऽशरे। एकार्थ सप्तया जानमविरोधेन मुख्यते."

वतं वैष्णव नित्यलीलाको भेद(अभिप्राय)जानि स्मरण भजनकरे ॥६॥ मूलं-ब्रज एव कुमारश्च कुमारीभावविद्धरिः। एकादश समास्तत्र गृद्धाचिः सवलोऽवसत्॥७॥

एतद्वाक्यं मिश्ररूपं कुमारः केवलो हरिः।

सामग्र्याप तथेवास्ति यतोगोप्यः कुमारिकाः॥८॥

शब्दार्थ:-कुमारिकाके भाव जानिवेवारे हरि व्रजमेंहि कुमारहे ओर (श्रीभागवतके तृतीयस्कंधके द्वितीयाध्यायके छवीसमें श्लोकमें लिखे हे जो) ग्यारे वर्प गूढप्रतापवारे श्रीवलदेवजीसहित तहां (व्रजमें) वसे 11 ७ 11 यह बाक्य मिश्ररूप हे स्मृतिमें व्यापकरूप तथा ऐश्वर्य-ञ्चानादिधर्मसहित रूपको निरूपणहे दशमस्कंधर्मे कौमारं जहतु-र्वजे ' यह वाक्यमें कुमार अवस्था व्रजमें राखी एसें निरूपणहे ओर तृतीय. स्कंधर्मे 'एकादशसमास्तत्र गृढाार्चैः सवलोऽवसत् ' यह वाक्यमें ग्यारे वर्ष व्रजमें वसे एसें मिश्र व्यापक कौमार तथा पौगंड किशोर अवस्थारूप प्रतिपादक वाक्य हे परंतु वस्तुतः केवल कुमार हरिहीहे काहेतें जो व्रजभक्त (ऋपिरूपा) कुमारि-काहे ओर सामग्रीहूं तेसीहीहे ॥ ८ ॥ टीका-व्रजमें प्रभु कुमार यातेहे जो कुमारी जो सोरहहजार अभिकुमारिका पांच पांच वर्षकीहे उनके भावनीय भावनामें पांचवर्षके प्रभुहे काहेतें जो रसशास्त्रमें यह कहेहे जो जेसो भाव स्त्रीको होय तेसोही पति होय तच रसविशेष होय तार्ते कुमारिकाकों प्रभु कुमाररूपसों भावकी वृद्धि करतहे। ओर ग्यारहवर्षकी लीला व्रजमें सदाहे तामें वाललीलातें पौगंड किशोर सबही करतहे। कुमारिकाने गृढ भावसों कात्यायनी देवीको अर्चन कीयो (गृहभावर्ते छिपार्ये यार्ते जो हमारे भावकों श्री-

^{? &}quot; कुमारी चाऽभवद्धारिः" एसो पाठ कोड पुस्तकमें हे सो सर्व भगवदूपहे या भावसों हे ताको अर्थ कुमारीकृप तथा कुमारकृप हरिमयेहें एसो है.

नंदरायजी श्रीयशोदाजी आदि व्रजमें कोउ न जाने काहेतें जो गूड-भाव प्रकट भयेर्ते रस जातरहतहे तार्ते सवसों छिपाय कात्यायनीको अर्चन कुमारिकार्ने कीयो) ताकरिकें श्रीठाकुरजीकों अपने वश्य कीये कुमारिकाको गृढभाव प्रभु जानिके चीरहरणकरि सर्वागदर्शन करि अलौकिकदेह संपादनकीये पाछें वस्त्रहू अलौकिक करिकें दीये वरदानदीये जो शरद्ऋतुमें रास करि तुझारो मनोरथ पूर्ण करेगें सो रासमें कुमारतें ग्यारहवर्षके किशोरवय धरिकें कुमारीनको जेसो जेसो मनोरथ हतो सो सब संपूर्ण कीयो याभांति गृढभा-वसों कात्यायनीको अर्चन करि कुमारिकानें प्रभु वश्य कीये ॥ ७ ॥ याभांति दोयवाक्यहे दोयप्रकारको भावहे श्रुतिवाक्यते ऐश्वर्य भाव तथा श्रीभागवतके वाक्यतें कुमारभाव सो मिश्रित, दोयरूप प्रभुकेहे सो केवल कुमाररूप हरि कुमारिकाके भावकरिकें है। यद्यपि प्रभुकी स्थिति सगरेहे प्रभुके व्यापक धर्म ऐश्वर्य ज्ञानादिक विचारिकें मर्यादामार्गोक्तप्रभु सगरेहे परंतु गोपकुमारिकाके पासही रसरूप प्रभुहे कुमारिकाके भावविना रसरूप प्रभु तहां नांहीहे काहेतें जो भावात्मक रसरूप प्रभु पात्रविना ओरठोर रहे नांही तातें भावरूप पात्र कुमारिकाहे तार्ते कुमारिकाके पास भावात्मक प्रभुहे ॥ ८॥

मूलं-एवं सतीहरो रूपे रासलीलादिरूपणम्। विस्दधमाश्रयत्ववोधायेव हि युज्यते॥ ९॥

शब्दार्थः — जब एसं मिश्ररूपहे (ब्यापक, कुमार, पाँगंड, किशोर एराँ निरूपण कीयेहें) तब एसेरूपमें रासलीलादिक निरूपणहे सो विरुद्धधर्माश्रयत्व बोधकेलीये हि घटेहे ॥ ९ ॥ ट्रीका—जो रसात्मक पशु कुमारिकाकेही पासहे सो रासलीलामें वर्णन हे जो वेणु वजाय सगरे ब्रजभक्तनकों बुलायके पाछे श्रीठाकुरजी सगरे ब्रजभक्तनसों रम- णकीयो तव सवनकों सोभाग्यमद भयो एक गुणातीत अभिकुमारि-कार्को मद नभयो तब श्रीठाकुरजी यह कुमारिकार्को लेयर्के पधारे पार्छे उनहुकूं सौभाग्यमद भयो तव तहांते अंतर्धान होय यह गुणातीतभक्तके हदयमें पधारे। जो प्रभु हदयमें न होय तो एक श्रणमें दशमी अवस्था (मरण) भक्तनकी होयजाय सो जव गुणातीतकुमारिकार्ने वाहिर प्रकट प्रभुकों न देखे ताहीसमय मूच्छी खायके गिरी सो प्रभुनें दोयभुजासों उठायीहे तव वहभक्त वोली "हा नाथ रमण प्रेष्ठ कार्रास कार्रास महासुज!। दास्यास्ते ऋपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम्।(हा नाथ!हा रमण!हा प्रिय!कहांहो कहांहो हा बड़े भुजवारे! आपकी दासी ओर दीन मोको हे सखे! सन्निधान वताओं) तुम पास हो सो काहेर्ते जो महाभुजार्ते उठायके रक्षाकीनीहें तो दर्शन देउ पाछें सगरे भक्त फेरि पुलिनमें आयर्के गुणगान कीये पाछे निःसाधंन होय रुदन कीयो तव उनहीं के भीतरमें तें वाहिर प्रकटे तार्ते कुमारिकाके पासही प्रभु हे ओर ऐश्वर्यधर्मकरिकें सबठोर व्यापक हे। या भांति विरुद्धधर्माश्रयको वोध कीयो सो वैष्णवकों अवश्य जान्यो चाहियें॥ ९॥

मूलं-इदं हि पुष्टिमार्गीयं तदेव ज्ञायते बुधैः। गीतगोविदाद्यपद्येऽप्येतदेव निरूप्यते ॥ १०॥

शब्दार्थः -यह पुष्टिमार्गीय तत्त्वहे सो एसं ही बुध (पंडित) जानेहे काहेतें जो गीतगोविंदकाव्यके प्रथमश्लोकमेंहू श्रीनंदराय-जीके बचन कुमारअवस्थास्चक लिखेहे तथा श्रीस्वामिनीजीके संग क्रीडाहू लिखिहे सो एसंही निरूपण कीयेहे ॥ १०॥ टीका-तहां कोई कहे जो कुमारिकाकेही पास प्रभु क्यों वसतहे ? तहां कहतहे जो कुमारिका पुष्टिमार्गीयहे यहबुद्धिकरिकें जाननों कुमारिकाके धर्म

जेसो धम जब आवे तब जानियं जो पुष्टिमार्गीयधर्म आयो एसो धर्म दुर्लभहे तातें अहर्निश कुमारिकाके भावकी भावना मनमें करनी दासत्व कीयेतें कुमारिकाकी कृपातें भाव जब हृदयारू होय तब प्रभुको अनुभव होय यह बुद्धिमें निश्चय करि कुमारिकाके भावकी भावना करियें सों श्रीआचार्यजीके पुष्टिमार्गमें उनहीं भावकी सेवाहे यहजानि मार्गकी रीतिसों सेवा करियें। श्रीआचार्यजी श्रीगुसांईजीके चरणकमलको आश्रय लेकें उनके भावरूपही पितापुत्रको जानियें। गीतगोविंदमें मानादिकविहार जयदेवनें निरूपण कीये सो कुमारिकाके भावकी सब लीला जाननी। याप्रकार प्रभु कुमारिकानके परवशहे रसके अनेकग्रंथहे सो गीतगोविंद आदिमें सब आये सो कुमारिकाकी लीला याप्रकार मनमें जानि भावना करनी।। १०॥

मूलं-अन्यथा नंदंवचनं ताहशे युज्यते कथम्। अतस्तु पृष्टिमागीयविरुद्धगुणसंश्रयः॥ ११॥

शब्दार्थः -एसं न होय तो श्रीनंदरायको वचन प्रभुके विरुद्धधर्माश्रयत्व स्वीकार्ये विना घटे केसे तासों पुष्टि-मार्गीय प्रभु विरुद्धधर्माश्रयीहे ॥ ११॥ टीका-श्रीनंदरायजीके वचन सत्य जानने । काहेतें जो गोडदेशतें सोरहहजार कुमारिका

१ मेघेर्मेद्रमंबरं वनभ्रवः श्यामास्तमालद्वमैनेक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राघे! गृहं प्राप्य । इत्यं नन्दानिदेशतश्रलितयोः प्रत्यध्वकुंजदुमं राधामाधवयोर्जयान्ति यमुना-कृते रहःकेलयः ॥

⁽राधे! आकाश मेघनतं व्याप्त हे, तमालष्ट्रक्षनतें वनकी पृथ्वी स्याम हे, रात्रिमें यह डरपे हे ताम् तुम या (श्रीकृष्ण) क् घर पहाँचाव. एते श्रीनंदरायजीके वचनतें चले श्रीराधिकाजी तथा श्रीकृष्णकी श्रीयग्रना किनारेके मार्गके निवुंजके विषे गुप्त विहारें जय पावत हे.)

श्रीनंदरायजी कंसको देवेकेलिये लाये सो वहकुमारिका पुष्टि-मार्गीय हती तातें प्रभुकी सेवामें लागी तव श्रीनंदरायजी कंसको नांही दीये कुमारिकाकी वोहात सराहना करि पुत्रके सेवार्थ घरमें राखि सो श्रीनंदरायजीके वचन वडेवडे ताह्यीय सराहना करतहे तातें कुमारिकाको स्नेहभाव श्रीनंदरायजीयों अधिकहे। तातें श्रीठा-कुरजी कुमारिकाके वशहे। एसो पुष्टिमार्ग सवोंपरिहे जामें श्रीकृष्ण भावात्मक रीतिसों सदा विराजतहे। सो पुष्टिमार्गमें प्रभु विरुद्धधर्मा-श्रयस्वरूपसों विराजत हे। अव आगें श्लोकमें विरुद्धधर्माश्रयको भाव प्रकाश करि वर्णन करतहे। ११।

मूलं-रसमार्गीयधर्मास्त ते बोद्धव्या विचक्षणैः॥ बालो रसिकमूर्द्धन्यः स्ववशोऽन्यवशः सदा॥१२॥

इान्दार्थः निवचक्षण जो चतुर पुरुषहे तिनके रसमार्गके धर्म समजिवेयोग्यहे। श्रीठाकुरजी वालकहे तोहू रसिकके शिरोमणिहे अपने वशहे तोहू सदा भक्तनके वशहे ॥ १२ ॥ टीका—रसमार्गकी रितिमं तथा मर्यादामें विरोधहे और पुष्टिमें विरोध नांही, पुष्टिमें विलक्षण रितिहे सो कहतहे श्रीरामचंद्रजीके अवतारमें धर्मस्थापनकी रीति हे तातें एकपत्नीव्रतहे ओर श्रीकृष्णावतारमें समस्तव्रजभक्तगोपभार्यासों रमणहू धर्मका स्थापनहे, ओरठोर लोकवेदमें जहां रसमार्ग तथा रसशास्त्रवर्णनहे तहां धर्ममार्गतें विरोधहे, काहेतें जो रसशास्त्रमें परकीयारमणमें अधिकरस वर्णन कीयोहे स्वकीयामें कछ न्यूनभावहे सो जहां परकीयारमण भयो तहां धर्मस्थापन नांही ओर जहां धर्मस्थापनवर्णन शास्त्रमेंहे तहां परस्त्रीको मनकरिकें रमण विचारे तोह दोपहे यह मर्यादामार्गकी रीतिहे ओर पुष्टिमार्गमें श्रीठाकुरजी विगान

[&]quot; लोकवत्तु लीला कैवल्यम् " यह व्याससूत्रमं लोकवत् जो लीलाहे सो मोक्षहे ऐसं स्पष्ट निरूपणहे।

जतहे सो सगरेधर्मको स्थापन करतहे ओर समस्तव्रजभक्तनसों रस-शास्त्रोक्त रमणहू करतहे यह विलक्षणताहे । पुष्टिमार्गमें श्रीठाकुरजी वालकहे पलनां झलतहे ओर परमरिसकनके मुक्कटमणि ग्यारहवर्षके पोडशवर्षके एककालाविच्छन्नहे. अपने वश्यहे कोटानकोटि मांतिके कोई साधन करे ओर ब्रह्मादिक शिवादिक कोटानकोटिवरसतें साधन करतहे तिनकों कबहू दर्शन होतहे. वेद नेति नेति कहतहे काहुके वश प्रभु नांही ओर सदा भक्तनके वशहे । श्रीयशोदाजी भक्तिकरिकें वांधेहे सदा ब्रजभक्तनके आधीनहे भक्त कहतहे सोही करतहे अन्यथा जानत नांही यह विरुद्धधर्माश्रय जाननों ।। १२ ।।

मूलं--अभीतः सर्वथा भीतः साक्षेपो निर्पेक्षकः। चतुरोऽपि महामुग्धः सर्वज्ञोऽप्यज्ञ एव च॥१३॥

शब्दार्थः निश्चय भयरहितहे तोहू भययुक्तहे, इच्छायुक्त तोहू निरपेक्ष (इच्छारहित) हे, चतुरहे तोहू महामुग्धहे, सर्वज्ञहे तोहू कर्छ नांही जानत हे ॥ १३ ॥ टीका-प्रभु केसेहे भय करिक रहितहे काहेतें जो कालके कालहे रंचक अकुटिविलासतें कोटानकोटि ब्रह्मांड रचे ओर नाशहू करे सगरे देवता डरपत रहतहे तिनकों भयको लेश नांही ओर भययुक्तहे सो श्रीटाक्तरजी जब माटी खाई तब श्रीयशोदाजी लकुटी लेकें डरपावतहे जो माटी क्यों खाई? तब श्रीठा-करजी डर किर नेत्रमें जलभिरकें कहतहे जो मैया मेनें माटी नांही खाई याभांति भक्तनसों डरपत हे जो अपसन्न होय कबहू मान मित करे एसे प्रभुहे। ओर प्रभुकों काहू वस्तूकी अपेक्षा नांही हे अक्षरब्रह्मसारि-खो घरहे लक्ष्मीजीसारिखी रानीहे कोस्तुभमणि आभूपणहे इत्यादि अलीकिक पदार्थ हे एकक्षणमें सर्व सिद्धकरे एसी मायासारिखी दासी हे तिनकों कहा अपेक्षाहे तासों निरपेक्षहे ओर भक्तनकी रंचकहू वस्तु होय ताकी लेवेकी अपेक्षाहे व्रजमें श्रीयशोदाजी तथा व्रजमक्तनसों नवनीत खिलोनां आदिके लीये आर करतहे। ओर प्रभु चतुरशिरोमणिहे कोटि व्रह्मांडमें जो कोड मर्यादा विना चले तिनकों दंड देतहे क्षणक्षणकी किया ओर सवनके मनको भाव जानतहे ओर भक्तनके आगें महामुग्धहे वालकहे भक्त देतहे सोई आरोगतहे आपु कछु जानत नांही ओर सर्वज्ञहे सकठोर व्यापकहे सगरी सत्ता प्रभुकी हे तिनतें तीनलोकमेंहू कछु दूरे नांहीहे ओर भक्तनके आगें अज्ञ कछु जानत नांही खेलतमें हारजात हे चंद्रमाकों लेकें खेलनके लीये रदन करतहे। एसे विरुद्धधर्माश्रयी प्रभुहे॥ १३॥

मूलं-आत्मारामोऽपि गोपीनां सर्वदा रतिवर्द्धनः। पूर्णकामोऽपिकामात्तीं ह्यदीनो दीनभाषणः॥१४॥

रान्दार्थः —आत्मामं रमण करिवेवारे हे तोहू गोथीजनको सर्वदा रितके वर्द्धन करिवेवारेहे पूर्णकाम हे तथापिकामकरिकें आर्त हे दीन नही हे तोहू दीन जेसे भाषणवारे हे ॥ १४ ॥ टीका—प्रभु सदा आत्माराम हे अपने आत्मामें रमण हे वाहिर नांही ओर गोपीजनके संग नित्य रमण करि नित्य नृतनकामकी वृद्धि करत हे ओर प्रभु पूर्णकाम हे साक्षान्मन्मथके मन्मथ हे तिनकों काम कहा वस्तु हे सर्व कामतें पूर्णहे तोहू कामकरि आतिआर्त्तहे तनक भूख प्यासमें मांगतहे गोपीजनके मानादिकभयतें कामविरहकरि व्याकुळ होय सखीको वेप घरिकें आपु मनावत हे दीनताकरि रहित हे ईश्वरके ईश्वर हे त्रिळोकी जिनकों नमन करत हे सो दीनता क्यों करे ? तोहू भक्तनसों देन्य करत हे जो में तुम्हारोहूं तुमविना में ओरकों नांही जानंत या भांति अनेक प्रकारके देन्यके वचन कहत हे। यह विरुद्धधर्माश्रयत्व जाननों ॥ १४॥

मूलं-स्वप्रकाशोऽप्यप्रकाशो बहिष्ठोन्तः स्थितः सदा। अस्वतंत्रः स्वतंत्रोऽपि समर्थो न तथाऽपि च ॥१५॥

शब्दार्थ:-अपनेही तेजतें प्रकाशयुक्तहे तोहू (भक्तनके आर्गे) प्रकाशरहित हे वाहिर बिराजे हे तोहू सदा (भक्तनके) अंतःकरणर्मे विराजेहे, स्वतंत्रहे तोहू (भक्तनकी पास) परतंत्रहे सर्वसामर्थ्ययुक्तहे तोहू (भक्तनके आगें) असमर्थहे ॥१५॥ टीका-प्रमु अपनो प्रकाश सगरी त्रिलोकीमें करहे ओर जिनको तेज अभिमान भयो ताको तत्काल नाश करि अपनोही प्रकाश राखे हे ओर भक्तनके आगें अपनो प्रकाश जानतहीं नांही जो भक्त करे सोहि होय, भक्त कहे सोहि आप करें, बाहिर स्थित है सदा सर्वदा व्रजभक्तनके संग अनेकलीला करतहे और सर्वे प्राणीमात्रके अंतःकरणमें सदा स्थित है, प्रभु सदा स्वतंत्र लीला करतहे अपनी इच्छातें एकक्षणमें ब्रह्मांड उत्पन्न करतहे तथा नाश करतहे ओर भक्तनके वश हे व्रजभक्त कहत हे इहां बेठो तहांही बेठत हे भक्तनके आगें स्वातंत्र्यकी वात नांही करत हे भक्तनके मनोरथ अनुसार प्रभु कार्य करत हे, प्रभु सर्वसामर्थ्ययुक्त हे कर्तु अकर्तु अन्यथाकर्तु सर्वसामर्थ्यवान् हे ओर भक्तनके आगें अपने सामर्थ्य-करि रहित हे व्रजभक्त गोदमें लेय मन आवे तहां जात हे अपनी मनोरथ पूर्णं करतहे तहां प्रभु सामर्थ्यरहित होयरहतहे याभांति प्रभुको स्वरूप विरुद्धधर्माश्रयी है ॥ १५॥

मूलं-एवं हि पुष्टिमार्गीयं विरुद्धस्वग्रणालयम्। कृष्णं कृपालुं सततं शरणं भावयेदृदि॥ १६॥

शब्दार्थः ∸एसे विरुद्ध अपने गुणके घर कृपाछ पुष्टिमार्गीय--श्री-कृष्णके शरण भी निरंतर हृदयमें भावना करे ॥ १६ ॥ टीका—याप्रकार विरुद्ध गुणके घर जो काहृतें जान्ये न जाय एसे रसात्मक भावा- रमक प्रमु पुष्टिमार्गर्मे विराजतहे सो उपर कहेहे एसे भक्तनपर परम-ऋपाल श्रीऋष्ण पलात्मकहे तिनकी निरंतर शरणजैयें मन कर्म वचन करि सर्वभावसों शरण रहियें, अपने हृदयमें शरणकी भावना निरंतर राखिर्ये तव श्रीऋष्ण तो परम ऋपालहे सो ऋपाकरेंगे।सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु नवरत्न ग्रंथमें कहेहे "तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम (तासों सर्वात्मतें श्रीऋष्ण मेरो श्ररणहे) तथा विवेकधैर्याश्रयमें कहेहे "अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः" (अशक्यमें तथा सुशक्यमें निश्चय हरिहि श्रण)इत्यादि ठोरठोर श्रीआचार्यजी कहेहे त्तातें शरणकी भावना हृदयमें कर्त्तव्यहे अष्टाक्षरको महामंत्र सर्वसिद्धि-कत्ती जानि अप्टपहर स्मरण करियें सो विज्ञप्तिमें श्रीगुसाईजी कहेहे "यदुक्तं तातचरणैः श्रीकृणः श्ररणं मम। तत एवा अस्त नौश्रंत्यमैहिके पारलौकिके" (जो तातचरण-श्रीमदाचार्यजीने "श्रीऋष्णः शरणं मम "कह्योहे तार्तेही यहलोक तथा परलोकमें निश्चितताहे) त्तार्ते श्रीकृष्ण जो परमकृपालहे तिनकी भावना अपने हृदयमें करि मन कम वचन करि शरण जैयें यह निश्चय सिद्धांत है।। १६॥

मूलं-असाधनः साधनवानसाधः साधरेव वा । श्रणादेव निखिलं फलं प्राप्नोत्यसंश्यम् ॥१७॥

शब्दार्थः—साधनरिहत अथवा साधनकरिवेवारो असाधु अथवा साधु हू शरणगयेतें संशयरिहत समग्रफलकों प्राप्त होय ॥ १७॥ टीका—कोईजीवमें एकहू साधन नांहीहे ओर कोई जीव अनेक प्रकारके साधन करतहे कोई जीव साधुहे परमसुशीलहे काम, कोध, लोम, मद, मत्सरतारिहतहे, कोई असाधुहे, कामकोबादिक दोपसों भयोंहे, ओर कोइ जाति देवता, मनुष्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वेश्य, शुद्र, चांडालपर्यंत, पशु, पक्षि, आदि अधिलमेंतें कोई जीव श्रीठाक्करजीके शरण जात हे तिनकों निश्चय फलकी प्राप्ति होयगी यामें संदेह नांही। प्रमुकी शरण यह सर्वोपिर साधनहे, जाकों प्रमुक्ते शरण भयो सो जीव सर्वधम करिचूक्यो ओर अनेकसाधन करतहे पिर प्रमुक्ते शरण नांही आयो तहांतांई फलकी प्राप्ति नांहीहे। तातें प्रमुक्ते शरणगयेतें सगरो फल सिद्ध होतहे यह निश्चय सिद्धांत भयो।। १७।। मूलं—भक्तिमार्गे साधनं च फलं शरणमेव हि।

सर्वधर्मपरित्यागः स्वतंत्रं चेत्फलं हि तत् ॥१८॥

शब्दार्थः—भक्तिमार्गमें साधन ओर फल शरणहीहे तातें सर्वधर्मपरित्याग (अनन्य भिक्त) होय तो यह स्वतंत्र फलरूप शरण
होय हे।। १८।। टीका—भिक्तमार्गमें साधनहू श्रीकृष्णशरणहे ओर
फलहू श्रीकृष्णशरण हे साधन फल न्यारो नांही साधनहू फलरूपहे
तातें शरणिह मुख्यफलहे, सो भगवान गीताजीमें कहेहे. "सर्वधर्मान
परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज" (सर्व धर्मको त्याग करिकें एक शरणरूप मोकं प्राप्त हो)या श्लोक उपर श्रीगुसाईजी न्यारी स्वतंत्रटीका कीयहे
तामें शरणकी भावना मुख्यकरि निरूपण कीयहे एक श्रीकृष्णको आश्रय जाजीवमें भयो तहां सगरे धर्म सिद्धभये, तामें सर्वतें मुख्य फलरूप
श्रीकृष्णको आश्रयहे यह भाव जानि अवस्य शरण कर्त्तव्यहे।। १८॥

मुलं-परोक्षे शरणं ताह्ङाहापुरुपयोगतः।

कृपा चेत्तादशानां हि तदा तद्द्वारकं भवेत्॥१९॥

शब्दार्थः -अनवतार दशामं तेसे महापुरुपके योगतं शरण होयहे ओर जब तादशीयकी कृपा होय तब तादशीयद्वारा होय।।१९।।धिका-श्रीकृष्णकी अवतारदशामें प्रसिद्ध शरण होय ओर श्रीकृष्णके परोक्षमें श्रीआचार्यजीद्वारा शरण सिद्ध होय श्रीआचार्यजी के परोक्षमें श्रीआचा-र्यजीके ग्रंथवचनामृत द्वारा शरण सिद्ध होय श्रीकृष्णकी प्राकट्यदशामें तो प्रसिद्ध शरण होय परोक्षदशामें महापुरुष भगवदीयसों मिलिकें शरणको विचार करे सो यह पुष्टिमार्गकी रीतिहै। सेवासमय साक्षात् शरण ओर अनोसरमें भगवदीयसों मिलिकें शरणकी भावना करे काहेतें जो ताहशीय भगवदीयकी कृपातें ताही भगवदीय द्वारा शरण सिद्ध होय। तामें संयोग विषयोग दोय प्रकारको शरण सिद्ध होत है। सेवामें तो संयोगशरण सिद्ध हे चरणस्पर्श करतहीहे तुलसी नित्य समर्पतही हे यह साक्षात् शरण भयो ओर अंतःकरणमें शरण भगवदीय द्वारा होय।। १९॥

मूलं-तेषामपि तु पारोक्ष्ये तदुक्तेर्वचनैः स्वतः । तत्प्रकाशितमार्गेकस्थितो भवति सर्वथा ॥२०॥

शब्दार्थः — अपरके श्लोकमें कहे एसे महापुरुपके हू परोक्षमें विनर्ने कहो वचनामृत किरकें स्वतः (आपर्ते) विननें प्रकट कीये मार्ग-में मुख्यस्थिति होय, तब सर्वथा शरण सिद्ध होय ॥ २० ॥ टीका—उपर कहे जो संयोगमें साक्षात् शरण ओर परोक्षमें भगवदीयसों मिलिकें शरण सिद्ध होय सो इहां भगवदीय महापुरुपरूष श्रीआचार्यजी हे इनद्वारा शरण सिद्ध होय. श्रीआचार्यजीके परोक्षमें भगवदीयसों मिलिकें श्रीआचार्यजीके वचनामृतग्रंथद्वारा शरण सिद्ध होय। जो श्रीआचार्यजी पृष्टिमार्ग प्रकट कीये हे तिनमें स्थित होय तब सर्वथा शरण सिद्ध होय। काहेतें जो श्रीकृष्णके परोक्षमें श्रीआचार्यजी श्रीग्रसांईजी श्रीवल्लभकुल तथा तिनके परोक्षमें श्रीआचार्यजी श्रीग्रसांईजी श्रीवल्लभकुल तथा तिनके परोक्षमें श्रीसानमें) उनके वचनकी भावना करे सगरे ग्रंथनको भाव कहे सुने उनके पृष्टिमार्गमें स्थित होयकें शरणकी भावना करे तो निश्चय श्रीण सिद्ध होय।। २०।।

मूलं-संसारिणा सदा दृष्टसंगिनामन्नदोषतः। बहिर्मुखानां मत्तानां कुतो मार्गस्थितिर्भवेत्॥२१॥

राज्यार्थः—सदा दुःसंग करिवेवारे, अन्नदोपतें वहिर्मुख, तथा उन्मत्त संसारीनकी पुष्टिमार्गमें स्थिति कहां खं होय?।।२१।। टीका—जपर कहे जो साक्षात् रारण ओर परोक्षद्भामें श्रीआचार्यजीद्धारा शरण विनके परोक्षमें उनके शंथवचनामृतद्धारा भगवदीयसों मिलिकें पुष्टिमार्गमें स्थितहोयकें शरण विचारे परंतु दुःसंग होय तो सगरो कीयो एक शणमें जातरहे काहेतें जो संसारी जीवहे सो सदा दुष्टहे तातें दुष्टके संगतें निश्चय दुष्टता होय तातें संसारासक्त जीवहे तिनको संग कबहू नांही कर्त्तव्यहे सो संसारी बहिर्मुख केसें जानियें तहां कहतहे—लीकिकविपयादिकमें तन मन धन करि उन्मत्त रहे अष्टप्रहर लीकिकावेश रहे, भगवद्धमें मन नांही लागे, अभिमान अहंकार मनमें बोहोत रहे एसे संसारी जीवके हदयमें यह पुष्टिमार्ग कबहू स्थित न होय एसो बहिर्मुख होय ताको संग करे तो पुष्टिमार्गतें नष्ट होयजाय।तातें संसारी वहिर्मुख को संगछोडिकें भगवदीयको संग करि शरणभावकी भावना करे।।२१॥

मूलं-तदर्थं श्रीमदाचार्यचरणां बुरुहाश्रयः। सदा विधेयस्तेनेव सकलं सिद्धिमेण्याते॥ २२॥

शव्दार्थः—ताके लीये श्रीमदाचार्यजीके चरणारविंदको आश्रय सदा कर्त्तव्यहे तासोंही सर्व सिद्धिकों प्राप्त होयंगे॥२२॥ टीका—जो कदाचित वहामकुल तथा ताह्ययिवेष्णवको संग न होय और कछ ग्रंथवात्तीमें अभिनिवेश न होय तो कहा करे तहां कहतहे जो दुःसंग (विहर्मुखको संग) छोडिकें अपनेतें जितनी सेवा विनेआवे सो करे और अपने हृद्यमें श्रीआचार्यजी महाप्रमुको हृद्ध आश्रय राखे श्रीमहाप्रभुजीके चरणकमलकी भावना अष्टप्रहर मन लगायकें करे तो सक्छ मनोरथ निश्चय सिद्ध होय। कहितें जो श्रीआचार्य-जीमहाप्रभु अलौकिक अमिरूपहे सो जो वैष्णव श्रीआचार्यजी-महाप्रभुजीके शरण आयकें विनके चरणकमलको सदा मन लगायकें आश्रय करतहे तिनके सकल कार्य सिद्ध होय यह निश्चय सिद्धांतहे॥ २२॥

मूलं-तदाश्रयोऽिप मनसः संगाभावेन चेत्सताम् । तोषाभावेन शिथिलो यदि दैवाद्मविष्यति ॥२३॥ तदास्माकं गतिः का वेत्येवं चिताऽस्ति मे हृदि। लीकिकक्षेश्रसंबंधो हर्यगीकृतलक्षणम् ॥ २४॥

ज्ञाब्दार्थ:-सत्पुरुपके संगक्ते अभावतं मन प्रसन्न नहिरहेवेतं जो कबहू विनको आश्रय शिथिल होयगो तब हमारी कहा गति होयगी यह चिंता मेरे हृदयमेंहे, लौकिक क्षेत्रको संबंधही हरिकी अंगीकृतिको लक्षणहे (लौकिकर्मे क्वेश होय तव वैराग्य होय जेसें अंग, चित्रकेत, पिंगला, कदर्य, इनकों क्षेशतेंही लोकिकासिक छुटीहे) यह मनमें जाननों ॥२३॥२४॥ टीका-सदा मनकरि श्रीआचा-र्यजीको आश्रय करे सत्संगको अभाव होय भगवद्यिको संग न होय तोहू मनतें आश्रय न छोडे अपने मनकों सवठोरतें छोडिकें श्रीआचार्य-जीके चरणकमलमें लगाव निरंतर तोपाभावकरिकें आश्रय शिथिल न करे। काहेतें जो भगवदीयके संगतें आश्रय वेगि सिद्ध होतहे भगव-दीयके संग विना आश्रय वेगि सिद्ध नांहीहोतहे, भगवदीयको संग होयगो तबही में आश्रय करूंगो एसें विचारिकें आश्रयकों शिथिल नकरे, भगवदीय कहा जानियें कब मिले तहांतांइ आश्रय कीयेविना दुर्बुद्धि होयजाय तार्ते मनते आश्रय न छोडे । जो होनहारहे सो होयगी जैसो देव रच्योहे तेसो होयगो में कहा करूं ? या भांति

शिथिलभाव मनमें नकरे। जेसेंतेसे अपने मनकों खेचिके श्रीआचार्य-जीके चरणकमलमें लगावे सो श्रीआचार्यजी विवेकधैर्याश्रयश्रंथमें वर्णन कीयेहें " अशूरेणापि कर्त्तव्यं स्वस्यासामध्यभावनात् " (अशूर् जो शूरवीर नहींहे तिनकूंहू अपने असामर्थ्यकी भावनातें धैर्य कर्तच्यहे) इंद्रिय देह तो लौकिकसुख चाहतहे भगवत्संबंधमें आदि-कालतें शिथिलहीहे तातें इंद्रिय देह तो भगवद्धर्मतें मनकों शिथिल कीयो चाहतहे तासों इंद्रिय देह तो असुरहे परि मनमें असुरत्वकी भावना न करे, यह जाने जो नेत्रको मुख्यधर्म यहहे जो प्रभुको दशैन करनो, हाथको यह धर्महे जो सेवा करनी अरु श्रवनसौ भगवत्कथा सुननी, मुखसों भगवन्नाम लेनो, देहमें आलस्य न राखनो, तत्काल उठनो, भगवद्धर्ममें यह जाननो जो आज वने सो करिलेंड कालि कहा जानियें कहा होयगो। याभांति श्रीमहाप्रभुजीको आश्रय करे ॥२३॥ अव बैष्णवके लक्षण कहतहे जो एक अपने श्रीकृष्णही गति जानि ओर अन्याश्रय न करे यह बैष्णवको मुख्य धर्महे, सो कव जानियें जब लौकिकक्केशको संबंध होय तब मनमें चिंता करि पीन्डित न होय, काहेर्ते जो हरि अपनेजनकों लोकिक क्वेश अनेकप्रकारको देतहैं। तोहू यह जीव अपनो धर्म न छोडे हरिक्रूंहि शरण कर मनमें चिंता न राखे यह अंगीकृत वैष्णवके लक्षणहे। जेसे श्रीगुसाईजीके सेवक विष्टलदास, नारायणदासकीपास चाकरीकों गये तव नारायणदासने विष्टलदासकों एक परगनेपर पठाये तहां कछ पईसा दुटे तब नाराय-णदासने विश्लदासकों वंदीखानो दीयो नित्य मारते सो विश्लदान सकी पीठकी खाल उतिर गई एसो दुःख पायो परंतु यह नांही कहीं जो मे वैष्णवहाँ पाछें श्रीगुसाईजी आप पधारे तब विष्टलदास दर्शनकी आये तब श्रीगुसाईजी पुछे जो तेरी यह दशा क्यों हे तब विष्टलदासने कही जो देहको दंडहे सो भुगते छुटे तव श्रीग्रसाईजी नारायणदा- ससों कही जो या भांति मारे सों तोकों जीवपर दयाहू नांही आई?'
तातें वैष्णवकों, परीक्षाकेलिये हिर क्षेत्रा देतहे सो श्रीआचार्यजी
महाप्रभु विवेकधेर्याश्रयग्रंथमें आश्रयके लक्षण कहेहे जो इतने दुःखमें
हरिशरण राखे "ऐहिके पारलोके च सर्वधा शरणं हरिः । दुःखहानो तथा पापे भये कामाद्यपूरणे । भक्तद्रोहे भक्तयभावे भक्तश्रातिक्रमे कृते । अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वाधें शरणं हरिः"।(यहलोकमें,
परलोकमें, निश्रय हरि शरणहे, दुःखकी हारिमें तथा पापमें, भयमें,
कामादिककी अपूर्ति (अप्राप्ति) में, भक्तके द्रोहमें, भक्तिके अभावमें,
भक्त अपनो अतिक्रम करे तब, अशक्यमें, सुशक्यमें, सर्व अर्थमें
हरि शरणहे) इत्यादि वचनको विचार कर्त्तव्यहे जितनो लोकिक
वैदिक देहसंबंधि दुःख होय तामें चिंतातुर न होय एक अपनें
प्रमुहीके शरण रहे यह अंगोकृत वैष्णवके लक्षणहे ॥ २४ ॥

मूलं-लोके स्वास्थ्यमिति श्रीमदाचार्यवचनामृतात्। तदीयैःस्वामिहादे झैस्तोपः कार्यस्त तेन हि॥२५॥

शब्दार्थः -श्रीआचार्यजीके वचनामृत नवरत्नग्रंथमें हे तामें आप आज्ञा करेहे (जो छोकमें तथा वेदमें हिर स्वस्थता नहिकरेंगे) तामों स्वामिके हृदयको अभिप्राय जानिवेबारे तदीयकों यह कारणतें संतोप करनों ॥ २५॥ टीका-श्रीआचार्यजीमहाप्रभु नवरत्नग्रंथमें वचनामृत कहेहे " छोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हिरस्तु न करिष्यति" (हिर छोकमें तथा वेदमें स्थिरता नकरेंगे) यह वचनतें अपने जननकी छोकिक वेदिकमें स्थिति भगवान् नांही करावतहे प्रभु छोकिक छुडायकें अपनोही आश्रय सिद्ध करावतहे तब भगवदीय स्वामिके हृदयको अभिप्राय चिंतन करतहे जो छोक वेद कार्य प्रभुनें नांही सिद्ध कीयो सो प्रभु भछी करी जो छोकिक वेदिकतें छुडाये। जो छौकिक सिद्ध होतो तो छौकिककार्यके आवेशमें प्रमुकों मूछिजातो जो वैदिक सिद्ध होतो तो में वैदिककार्यके आवेश शमें प्रमुकों मूछिजातो तातें प्रभु करि सो वहुत भछी करी या भांति स्वामिके हृदयके अभिप्रायकी मनमें भावना करि संतोष करि मनकों प्रसन्न राखे ताकों तदीय कहियें॥ २५॥

मूलं-अतो हि लौकिकः क्षेशो नांतरः क्रियतां कचित्। बाह्यतस्तु प्रकर्तव्यो ह्योदासीन्यप्रसाधनात्।२६।

राव्दार्थः—तासों अंतरमें लोकिक होरा काहू समय नांही करनो और औदासीन्यकी सिद्धिके लिये वाहिरतें तो कर्तव्यहे।।२६॥टीका—अव उपर कहे जो श्रीठाकुर जो लोकिक वैदिक कार्य न सिद्ध करे तब भगवदीय मनमें संतोप किरकें केरा न करे प्रसन्न रहे पाछें लोकिक वैदिक कार्य न करे तो गृहस्थाश्रम केसें चले? या मांति कोई संदेह करे तहां कहतहे जो लोकिक वैदिक सिद्ध न होय तब भगवदीय यह जाने जो मुख्यधर्म तो भगवत्सेवा स्मरण भगवदाश्रयहीं हे और मेनें लोकिक वैदिक कार्यमें मन लगायो तातें प्रमु कार्य सिद्ध न कीयो सो भली भई अव लोकिकवैदिकमें मन नांही राख़्ंगो वने सोई करूंगो एसें विचारे । ओर बाहिर लोगनकों दिखायवेकेलीये कर्छ करे हदयतें उदासीन रहे, भगवत्सेवासंबंधी कार्यमें मनराखे, लोकिकवैदिक कार्यतें अपने मनकों खेंची लेय या भांति लोकिकमें रहे अपनो धर्म काहूकों न जतावे लोकिकवैदिक किया लोगनकों जतावे। यापकार भगवदाश्रय करे तो प्रभु प्रसन्न रहे ॥ २६॥

मूलं-दुःखं दुःसंगजं चान्यहोिकिकाभिनिवेश् जम् । सत्संगाभावजं चापि तथा मार्गिस्थतर्पि ॥२०॥

तत्तु मत्त्रभुपादाञ्जकृपया सर्वथा मम। तदीयानां च संगेन क्षणाद्रुगभिविष्यति॥ २८॥

शब्दार्थ:-एक दुःसंगजन्य दुःखहे दूसरो लौकिकावेशजन्य दुःखहे सत्संगके अभावजन्यहू दुःखहे तथा मार्गकी स्थितिकोहू दुःखहे (जो पुष्टिमार्गमें स्थिति केसे रहे यह दुःखहे)॥ २७॥ यह मेरो दुःख तो मेरे प्रभु (श्रीआचार्यजी) के चरणारविंदकी कुपातें ओर तदीयके संगतें क्षणमें निश्चय दूर होयगो ॥ २८ ॥ टीका--लौकिकावेश करावे एसो जो दुःसंग तिनको संग दुःखरूप जानियें वाको कह्या कबहू नकरियें यह भक्तकी टेकहे । जेसें प्रह्णा-दजी भगवद्भक्तहे उनकों अपने प्रभुको स्मरण करिवेमें पिताही प्रतिवंधक भयो सो प्रहादजीकों वोहोत समुझाये तव प्रहादजी न मार्ने तव उन प्रहादजीकों वोहोत दुःख दीयो जो तू भगवानको स्मरण मित करे तव प्रहादजीने अपनो मरणसमान दुःख सह्यो परंतु भग-वदाश्रय न छोड्यो तव प्रभु प्रसन्न होय प्रहादजीकी रक्षा करि ओर हिरण्यकिशपुकों मारे। तेसेंही बैप्णवको दुःसंग होय सो तो लौकि-ककार्यमें लगावें तातें इनको संग दुः वरूप जानि त्यागही करे ओर जो भगवद्धर्ममें लगावे ताहीको सत्संगकरे जो कदाचित् सत्संग निमलें तो अपने पुष्टिमार्गकी रीतिप्रमाण सेवा स्मरण न छोडे, दुःसंगको दुःखरूप जानि सवतें न्यारो वेटि श्रीआचार्यजी श्रीग्रसाई-जीको आश्रय मनमें दृढ राखि नित्य नियमसों सेवा स्मरण करे यह पुष्टिमार्गको सिद्धांत हे ॥२७॥ पुष्टिमार्गीय जिननेजीव शरण आयेहे तिन सवनके प्रभु श्रीआचार्यजी महाप्रभुहे, एसे श्रीमहाप्रभुजीके पदकमलकी कृपात सर्वथा तदीयको संग होय, भगवत्सेवा स्मरण सव . चिन आवे, पुष्टिमार्गको सिद्धांत हृद्यारूढ होय। तातें श्रीमहाप्रभुजीके

चरणकमलकी छपातें तादशीय भगवदीयको संग होय तिनके संगतें श्रीमहाप्रमुजी एकंक्षणहु दूरि न रहे। सो चोराशी वैष्णवकी वार्तामें प्रसिद्धहे। जब श्रीआचार्यजी काशीमें आमुरव्यामोहलीला दिखाइ तब एक वैष्णव काशीतें भगवानदास पास आयकें सब समाचार कहे तब भगवानदासने कही जो तोकों श्रम भयो होयगो श्रीमहाप्रमुजी एसी कबहू न करे तब यह वैष्णवनें कही जो में अपनी आंखनसों देखिये आवतहू तब भगवानदासनें मंदिरके किंवारि खोलि यह वैष्णवकों श्रीआचार्यजीके दर्शन कराये आप बेठे पोथी वांचतहे तब वह वैष्णवके मनको संदेह गयो। तातें ताहशीयवैष्णवतें श्रीआचार्यजीमहाप्रमुजी क्षणएक न्यारे नांही रहतहे एसे वैष्णवको संग अवश्य करे तब श्रीआचार्यजीमहाप्रमु हृदयमें पधारे। भगवदी यको संग एसोहें।। २८।।

मूलं-ते हुर्लभा इति मनः खिन्नं भवति नित्यदा । यदा प्रभुः ऋपापूर्णः ऋपयिष्यति दैन्यतः॥२९॥ तदाचार्यपदासक्ताँस्तानुपस्थापयिष्यति । अस्माकं तु गतिनीन्या श्रीऋष्णः श्ररणं ममा३०।

शब्दार्थः - एसे भगवदीय हुर्छभहे ताकरिकें निरंतर मन खेदयुक्त होयहे सो जब देन्यकरिकें कृपापूर्ण प्रभु कृपा करेंगे।। २९ ।। तब श्रीआचार्यजीके चरणारविंदमें आसक्तिबारे वह भगवदीयनको मिला-वेंगे परंतु हमारे तो ओर कछु गति नांहीहे एक "श्रीकृष्णः शर्णं मम" यह साधनहे॥ (द्वितीयश्लोकके पूर्वार्द्धमें) "तदा-चार्यपदासक्तिस्तानुपस्थापयिष्यति" एसं काह पुस्तकमें पाठहे ताके

१ यह अर्थ मूलके अनुसार नांहीहै परंतु बोहोत पुस्तकमें हे तासो लिग्ब्यो है.

चरणकमलकी कृपातं ताहशीय भगवदीयको संग होय तिनके संगतें श्रीमहाप्रभुजी एकंक्षणह दूरि न रहे। सो चोराशी वैष्णवकी वार्तामें प्रसिद्धहे। जब श्रीआचार्यजी काशीमें आसुरव्यामोहलीला दिखाई तब एक वैष्णव काशीतें भगवानदास पास आयकें सब समाचार कहे तब भगवानदासने कही जो तोकों भ्रम भयो होयगो श्रीमहा प्रभुजी एसी कबहू न करे तब यह वैष्णवनें कही जो में अपनी आंखनसों देखिये आवतहू तब भगवानदासनें मंदिरके किंवारि खोलि यह वैष्णवकों श्रीआचार्यजीके दर्शन कराये आप वेठे पोथी वांचतहें तब वह वैष्णवके मनको संदेह गयो। तातें ताहशीयवैष्णवतें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी क्षणएक न्यारे नांही रहतहे एसे वैष्णवको संग अवश्य करे तब श्रीआचार्यजीमहाप्रभु हृदयमें प्रधारे। भगवदी- यको संग एसोहे। १ ८८।।

मूलं-ते दुर्लभा इति मनः खिन्नं भवति नित्यदा । यदा प्रभुः ऋपापूर्णः ऋपयिष्यति दैन्यतः॥२९॥ तदाचार्यपदासक्ताँस्तानुपस्थापयिष्यति । अस्माकं तुगतिनीन्या श्रीकृष्णः शुरूषं मम्(३०।

शब्दार्थः एसे भगवदीय दुर्छभहे ताकरिकें निरंतर मन खेदयुक्त होयहे सो जब दैन्यकरिकें कृपापूर्ण प्रभु कृपा करेंगे ॥ २९ ॥ तब श्रीआचार्यजीके चरणारविंदमें आसिकवारे वह भगवदीयनको मिला-वेंगे परंतु हमारे तो ओर कछु गति नांहीहे एक "श्रीकृष्णः शरणं मम" यह साधनहे ॥ (द्वितीयश्लोकके पूर्वार्द्धमें) "तदा-चार्यपदासिकस्तानुपस्थापिष्यित " एसें काह पुस्तकमें पाटहे ताके

१ यह अर्थ मुलके अनुसार नांहीहे परंतु वोहोत पुस्तकमें हे तासी लिएमी हे.

मूलं-सदा विरहभावेन भावात्मा भाव्यतां हरिः। कृष्णे हृदयदेशस्थः स्वामिनीनां कृपानिधिः॥१॥

शब्दार्थः-सदा विरहभावकरिकें भावात्मा हरि, श्रीस्वामिनीजीके हृदयमें विराजिवेवारे, कृपानिधि, श्रीकृष्ण भावनीयहे ॥ १॥ टीका-सदा विरहकी भावना भावात्मक हरिकी करे तहां यह संदेह होय जो व्रजमें श्रीकृष्ण प्रकटेहे तिनकों सबकोई जानतहे ओर तुम कहे भावात्मक श्रीकृष्णकी भावना करे सो भावात्मक श्रीकृष्ण न्या-रेहें सो कहां रहतहे ? कोन प्रकारसों उनकी भावना करे ? या भांति संदेह करे तहां कहतहे जो-श्रीकृष्णके कियात्मक ओर भावात्मक दोय स्वरूपहे। मथुरांतें वसुदेवजी लेय आये सो कियात्मक स्वरूप ओर श्रीयशोदाजीके घर प्रकटे सो भावात्मक स्वरूप, श्रीकृष्णकी दोय लीला हे वाललीला ओर किशोरलीला, वाललीला श्रीगोक्कर्में ओर किशोरलीला श्रीवृंदावनमें हे तार्ते वाललीलाके भावर्ते सेवा करे तथा किशोरलीलाके भावतें स्मरण करे सो श्रीग्रसाईजी कहेहे "सदा सर्वोत्मना सेन्यो भगवान् गोकुलेश्वरः। स्मर्त्तन्यो गोपिकावृदैः क्रीड-च् बृंदावने स्थितः"(सदा सर्वात्मभावसों श्रीगोकुलके ईश्वर भगवान् सेव्य हे ओर वृंदावनमें स्थित व्रजभक्तनके जुथसाथ कीडा करिवेवारे भगवान् स्मरण करिवे योग्य हे) इत्यादि वचनके अनुसार वाळलीला श्रीनवनीतप्रियजीके स्वरूपमें तथा रासादिलीला श्रीगोवर्धननाथजीके स्वरूपमें हे सो विप्रयोगात्मक स्वरूप श्रीस्वामिनीजीके हृदयमें रहत हे, सो जब श्रीस्वामिनीजीके भावकी भावना करे जो श्रीस्वा-मिनीजी प्रभुकों कोंनभांति लडावत है कोंनभांति गुणगान करत है प्रभुके संग कॉनभांति लीला करतहे यह भाव विचारे तो श्रीस्वामि-नीजी कृपानिधि प्रसन्न होय भावको दान करे तब भावातमक

नमः " " स्मृतिमात्रात्तिनाशनाय नमः " श्रीआचार्यजी कृपाके निधिहे ओर उनको नाम स्मरणमात्रमेंही सर्व आर्त्तिकों हरे हैं। तार्ते श्री-आचार्यजीकी कृपातें दैन्यआदि सगरे धर्म हर्यमें आवे, ओर मेरेमें तो एकहू साधन नांही हे एक 'श्रीकृष्णः शरणं मम 'यहही गतिहे सो श्रीगुसाईजी विज्ञिप्तमें कहेहे "यदुक्तं तातचरणैः श्रीकृष्णः शर्ण मम । तत एवाऽस्ति नैश्चित्यमैहिके पारलैकिके" (हमारे पितृचरण श्रीमहाप्रभुजी "श्रीकृष्णः शरणं मम "यह वतायहं ताकरिके हमको यहलोकमें ओर परलोकमें निश्चितता हे सो श्रीहरिरायजी कहत है जो श्रीआचार्यजी श्रीगुसांईजीके अनुसार मेरेहू एक अष्टाक्षरमंत्र "श्रीऋषणः शरणं मम " येही गतिहे अष्टप्रहर याभांति शरणकी भा-वना करतहों। तातें जो जीव पुष्टिमार्गीयहे तिनहूके श्रीआचार्यजीको आश्रय करि अष्टाक्षरमंत्र कह्या करना यह सिद्धांत हे ॥ ३०॥ इति श्रीहरिरायजीविरचितं चतुर्थशिक्षापत्रं श्रीगोपे-श्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥४॥

शिक्षापत्र ५.

अव पंचमिशक्षावत्रमें विरहभावकरिकें भगवान भावनीयहे ताको साधन देन्यहे देन्यको साधन तापभावहे यह निरूपणहे ॥ उपर कहें जो तन मन धन करि श्रीआचार्यजिके पदकमलको आश्रय करि अष्टाक्षरमंत्र एक गतिरूप करे ताकों श्रीआचार्यजी कृपा करिकें देन्यादि सर्वधमें हदयमें सिद्धकरे सो पंचम शिक्षापत्रमें वर्णन करतहे। -ओर निःसाधन दीनताहू नांही हे तातें भावामि अतिदुर्लभ हे। यह श्रीआचार्यजीको पुष्टिमार्गहे तामें तो यहरीतिहे जो शीतलभाव कवहू न करनो जेसें कुंभनदासनें एकदर्शनके विरहमें गायो हे "केतेदिन बीत गये बिनुदेखे" यांभांति आतुरता होय तब पुष्टिमार्गके भावको अनुभव होय ॥ २॥

मूलं-तापभावः परं दैन्यं प्रकाशयति सर्वथा । दैन्येन दयया दीनवंधः प्रादुर्भवत्यसो॥ ३॥

शब्दार्थः—तापभावहं सो उत्तमदैन्यको प्रकाश निश्रय करेहे ओर दैन्यसों दीनवंधु भगवान् दया करिकें प्रकट होयहे ॥ ३॥ टीका-अव जाप्रकार दैन्यहोय सो उपाय कहतहें. पेहेलें तो हृदयमें ताप होय जो सगरो जन्म बीत्यो, पुष्टिमार्गर्मे साक्षात् पुरुपोत्तम विराजतहे तिनको अनुभव कछु.न भयो, मेरेमें कछु धर्म नांही हे, यामांति प्रभुविषयक ताप हृदयमें होय सो ताप सगरें दोपकों दूरीकरतह। अनेक जन्मके कायिक, वाचिनिक, मानसिक, पाप हृदयमें भरेहे ओर काम, क्रोध, मह. मत्सर, करि जीवको हृदय मलीनहे सो जन तापाभि प्रगट होय तन सगरे दोपनको नाश होय ता पाछे दैन्य आवे तव देहकी ओर दशा होयजाय खान पान देहसंबंधी सुखदुःख सब छुटि जाय याभांति जब होय तव हृदयमें प्रभुकों प्रकाश होय, काहेतें जो दीनवंध श्रीठाकुरजी को नामहे सो जीवकों दैन्य होय तव प्रभुकों दया आवे सो श्रीभा-गवतमें निरूपणहे, जब द्रीपदीकों दैन्य भयो तब प्रभु लाज राखि, गर्जेंद्रकों दैन्य भयो तब प्रभु पधारे, रासपंचाध्यायीमें ब्रजभक्तनकों जव दीनता भई "इति गोप्यः प्रगायंत्यः प्रलपंत्यश्च चित्रधा । रुख्दः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः"(यहरीतिसों गोपीजन गानकरतहते ओर विचित्र विलाप करतहते सो कृष्णके दर्शनकी इच्छासूं हे राजन्! सुस्वर रुदन करन लागे) यह भावकी सिद्धि भई ता पीर्छे "तासामाविर-

प्रभुको अनुभव होय, प्रभुके अनुभवको ओर उपाय नांही काहेर्ते जो श्रीकृष्णके हृदयमें श्रीस्वामिनीजीही स्थित हे ओर कछ (श्रीस्वामिन नीजी विना) श्रीकृष्ण जानतही नांही तार्ते श्रीस्वामिनीजीको आश्रय करि भावात्मक हरि (श्रीस्वामिनीजी जिनको विरह करतहे तिन)की भावना करे तव श्रीस्वामिनीजी कृषा करि प्रसन्न होय तव प्रभु अपनो अनुभव जतावे ॥ १ ॥

मूलं-अस्माकमतिभाग्येन तदास्यं विक्रिहृतः। अतः शीतलभावोऽस्मिन् मार्गे नैवोपयुज्यते ॥२॥

मुखारविंदरूप अमि (श्रीआचार्यजी) प्रकट भयेहे तासों यह मार्गमें श्रीतलभाव उपयोगमें नांही आवे हे [विरहात्मकतापसों प्रभु अनुमहं करे] ॥ २ ॥ टीका—यह विप्रयोग भावामि मेरे भाग्यमें तो नांही हे काहेतें जो यह भावात्मक अमि तो दास्य' धर्म होय तिनके हृद्यमें होय सो दास्य धर्मह् अति कठिन महा दुर्छभ हे ओर दैन्य अति दुर्छभ हे सो कहतहे जो स्वामिको सुख चाहे अपनो न चाहे सो दास, जेसें पद्मनाभदासजीकी वार्तामें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी भोजनकों पधारें ताहीसभय जा व्योपारीको द्रव्य मार्गमें लुटायो हतो सो रोवत आयो तव पद्मनाभदासनें करजकाढीके वा व्योपारीको द्रव्य दीयो पिर वोलन नांही दीयो श्रीआचार्यजीको श्रम नांही करिवे दीयो एसो दास्य धर्म कठिन हे, ओर दैन्यको प्रकार रासपंचाच्यायीमें प्रसिद्ध कहोहे जो अंतर्धानसमय व्रजभक्तननें श्रीकृष्णलीलाहू कीये गुणगानह कीयो ता-पार्छे निःसाधन दीनताकी योग्यता भई। सो मेरेमें दासधर्मह् नांहीहे

१ दास्य धर्मको अर्थ विस्तारसों हिख्यो हे सो मूल श्लोकके अनुसार नांही हे परंतु बोहोत पुस्तकमें हे तासों हिख्यो हे.

राव्दार्थः—तापात्मक श्रीआचार्यजीके चरणारविंदके आश्रयकी सिद्धि तो, विनके वाक्य श्रीसुवोधिनीजीआदि ग्रंथनमें श्रद्धासूं होय ओर उनके वचनामृतमें निष्ठा तो, निरंतर ताहशीय जनकी सेवार्ते होय ॥५॥ टीका—श्रीआचार्यचरणहे सो श्रीस्वामिनीजीके मावरूपजानने याभावसों श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय करनो ताकरि भावरूप विप्रयोगको दान होयगो सो श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय कव होय? जव श्रीआचार्यजीके वचनामृत श्रीसुवोधिनीजी आदि छोटे वडे ग्रंथके भावमें निष्ठा होय तव श्रीआचार्यजीके स्वरूपको. ज्ञान होय तापाछें श्रीआचार्यजीके चरणकमलमें भाव होय तव चरणकमलको आश्रय होय सो श्रीआचार्यजीके वचनामृतग्रंथनमें निष्ठा क चहोय? जव पुष्टिमार्गीय भगवदीयकी सेवा करियें तव भगवदीय कृपाकिरिकें जतावे तवहीं जान्यो जाय तार्ते भगवदीयकी सेवा मन, कर्म, वचनकरिकें अवश्य कर्तव्यहे तिनकी कृपार्ते सर्व सिद्ध होय ॥ ५॥

मूलं-तदीया दुर्लभाश्वेत्स्युः श्रीभागवतसेवनम् । अथवा दैन्यभावेन स्मर्तव्यः सततं हरिः॥ ६॥

शब्दार्थः—तदीय कदाचित दुर्लभ होय तो श्रीभागवतको सेवन करे अथवा (श्रीभागवतको पाठ करिवेको ज्ञान न होयतो) दैन्यभा-वसों निरंतर हरिको स्मरण करे ॥ ६ ॥ टीका—श्रीआचार्यजीके वच-नामृतमें निष्ठा भगवदीयकी सेवातें सिद्ध होयवेको उपर कह्यो सो पुष्टिमार्गीय भगवदीय अति दुर्लभहे सो जहांतांइ निमले तहांतांइ नित्य श्रीभागवत—श्रीसुवोधिनीजीके सेवन नियमपूर्वक करे जव भगवदीय मिले तब सगरो भाव बतावे तहांताई आपही श्रीभागवत वांचे, जोश्रीभागवत—श्रीसुवोधिनीजीमें अभ्यास न होय, ज्ञान न होय स्तो दैन्यकरिकें निरंतर हरि (सर्व दुःखके हरनहार) भगवानको स्मरण भूच्छोरिः स्मयमानमुखाम्बुजः । पीतांवरधरः स्नर्ग्वी साक्षान्मन्मथन्मन्मथः" (विनके मध्यमें हास्ययुक्त मुखारविंदवारे, पीतांबरधरिवेवारे, मालायुक्त साक्षांत कामकेह्काम भगवान प्रकट भये) याभांति प्रभु पधारे। तातें अहंकारतें प्रभु दूर रहे ओर दैन्यकरि प्रकटेहे तासों देन्य वारेनके हृदयमें प्रभु प्रकट होय अपने आनंदको अनुभव सर्वथा करावे, प्रथम ताप होय ता पीछें दैन्य होय यह दैन्य कोंनभांति होय सो उपाय आगेंके श्लोकमें कहतहे ॥ ३ ॥

मूलं-तद्देन्यं स्यात् स्वामिनीनां तापभावविभावनात्। तद्भावनं भवेदेव तापात्मचरणाश्रयात् ॥ ४ ॥

राव्दार्थः -श्रीस्वामिनीजीके तापरूपी भावको अनुसंघानकीयेतें दैन्य होय ओर तापभावको भावन, विरहात्मक श्रीआचार्यजीके चरणारविंदके आश्रयतें होय ॥४॥ टीका-दैन्यसिद्धि तो श्रीस्वामिनीजीके हाथहे काहेतें जो विप्रयोगभावके देयवेवारी श्रीस्वामिनीजी हे तातें श्रीस्वामिनीजी जब कृपाकरे तव तापभावकी भावना होय सो भावनाह जजभक्तनकी रीतिसों करनी सेवासमय न करनी सेवासों पोंहोचिकें अनोंसरमें करनी सो अपने मनकी कहपनासों विप्रयोगकी भावना न करनी श्रीस्वामिनीजीके चरणकमळको आश्रयकरि जापकार श्रीस्वामिनीजी विप्रयोगकी भावना करतहे, वेणुगीत, युगळगीत, आदिमें वर्णनहे ता भावकी भावना करे, श्रीआचार्यजीको स्वरूप तापात्मक जाने याभांति श्रीआचार्यजीके भावकी भावना करे श्री-आचार्यजीके चरणको आश्रयकरे तव भाव सिद्ध होय। आश्रय केर्से सिद्ध होय सो आगेंके श्लोकमें निरूपण करतहे ॥ १॥

मूलं-तदाश्रयस्य सिद्धिस्त तद्वाक्यपरिनिष्ठया। तन्निष्ठा सततं ताहक्तदीयजनसेवया॥ ५॥

विषयेर्भुपितेक्षणम् । प्रस्तं काळाहिनाऽऽत्मानं कोन्यस्नातुमिहेश्वरः " (संसाररूपी कुवामें गिरचो, विषयकरिकें मुद गयेहे नेत्र जिनके, कालरूपी सर्पने यसनकीयो एसो जो आत्मा तिनको यह संसारमें रक्षा करिवेको अन्य कोन समर्थहे?) याभांति अपनो दोप स्फ्रुरचो तब न्यूनभाव होय प्रभुकी प्रार्थना करि तव प्रभु कृपाही कीये। तेसेंही पुरूरवाकी कथा श्रीभागवतर्मे कहीहे " पुंश्रत्यापहतं चित्तं कोऽन्यो मोचियतुं क्षमः। आत्मारामेश्वरमृते भगवंतमधोक्षजम् " (व्यभिचा-रिणी स्त्रीनें हरिलीये एसे चित्तकों सर्व जीवनके आत्मामें रमण करिवेवारे ईश्वर-अधोक्षज (इंद्रियजन्यज्ञान जिनकुं निह पहोंच सके एसे) भगवान् विना अन्य कोन छुडायवेमें समर्थ हे?) एसे जब अपनो दोप पुरूरवाकों स्फुरचो तव प्रभु कृपा करि, सो यह मार्ग तो दैन्यहीकोहे या मार्गमें जहांतांई दैन्य न आवे तहांतांई फलिसाद्ध नांहीहे और अपनकों उत्तम जाने तहांतांई दैन्य न आवे तातें अपनकों न्यून (तुच्छ) जानिकें प्रभुके मिलवेको यत्न करे तो प्रभु दुःखको नाशही करे हरि सर्वदुःखके हत्ती श्रीऋष्ण सगरे मनोरथ पूर्णकरेंगे ॥ ८॥

मूलं-भविद्धिनैव कर्त्तव्यः क्षोभो मनिस सर्वथा। अस्मिन् मार्गे यथैवार्त्तिस्तथैव फलसन्निधिः॥९॥

शब्दार्थः - तुम्हारे मनमें सर्वथा क्षोभ कर्तव्य नांहीहे काहेतें जो यामार्गमें जेसें आर्ति होय तेसेंही फल नजीक होय ॥ ९ ॥ टीका-अपनकों न्यून (तुन्छ) माने और क्षोभसहित मनमें सर्वथा भावना करे सो श्रीग्रसांईजी विज्ञिप्तमें कहेहे "त्वहर्शनविहीनस्य त्वदीयस्य तु जीवितम्। ज्यथमेव यथा नाथ! दुर्भगाया नवं वयः" (हे नाथ! आपके दर्शनकरिकें हीन जो त्वदीय (आपके शरण आये जीव) को

करे, निरंतर दैन्य भावसों जीव हरिको स्मरण करे जब श्रीठाकुरजी दुःख नांहीसहिसकें ओर कृपाकरि पुष्टिमार्गीय भगवदीयको संग मिलावे तब तिनके संगतें सर्व कार्य सिद्ध होय ॥ ६ ॥

मूलं-अष्टाक्षरमहामंत्रो वक्तव्य इति निश्चयः। सर्वदा सर्वभावेन तेन सर्व भविष्यति॥ ७॥१

शब्दार्थः —अष्टाक्षर महामंत्र सर्वदा सर्वभावतें कह्यो करनो ताक-रिकें सर्व सिद्ध होयगो।।७।। टीका — जीव तो स्वभावकरि दुष्टहें जो कर्छ न विन आवे तो अष्टाक्षरको महामंत्र जानि अष्टाक्षर "श्रीकृष्णः शरणं मम " यह कह्यो करे काहेतें जो श्रीआचार्यजीमहाप्रभु वेद, पुराण, शास्त्र, श्रीभागवतमें तें सार निश्चयकरि अष्टाक्षरमंत्र प्रकटकी यहें सो अपने देवीजीवनके अर्थहें तातें सर्वकालमें अष्टाक्षरमंत्रकों जपे कबहू भूले नांही सर्वभावकरि अष्टाक्षरको जप करे तिनके सर्वकार्य निश्चय सिद्ध होय ॥ ७॥

मूलं-अस्माकं न्यूनतेवासीन्मिलनं यदभून्नहि। एतावती हरिः ऋष्णः पूरायिष्यति तामपि॥८॥

शब्दार्थः —अपनकों इतनी न्यूनताहे जो प्रभु ओर भगवदीयकों मिलाप नांही भयो सो हिर श्रीकृष्ण वह न्यूनताकों हू पूर्ण करेगें।।८।। रीका—उपर कहे ताभावात्मक विषयोगात्मक प्रभु एसे दुर्लभहे। तातों जीव अपनकों न्यून (तुच्छ) माने याभांति प्रभुके मिलवेकों मन करे तब श्रीकृष्ण सर्वदुःखके हत्ती हिरहे सो सगरे मनो स्थ पूर्ण करेंगे सो जीव तो स्वभावकरि दुष्टहे परंतु अपनमें कोज अज्ञानकरिकें उत्तमता मानतहे ताहीतें प्रभु अपनो अनुभव नांही जतावतहे. श्रीभागवतमें पिंगला सारिखी जाकी महादुष्टकिया हती। वाने अपनकों तुच्छ मानिके वचन कह्यों ' संसारकृषे पतितं

इति श्रीहरिरायजीकृतं पंचमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वर-जीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ ५॥

शिक्षापत्र ६.

अव छड़े शिक्षापत्रमें भक्तनके अनिष्टकी निवृत्ति और इष्टकी प्राप्ति भगवानही करतहे यह निरूपणहे. अव उपर कहे ताभाव मनमें राखे विप्रयोगही मुख्य हे, आर्ति जेसी होय तेसोही फलको अनुभव होय तामें लौकिक क्षेत्रा वाधक हे, लौकिक दुःखमें या भांति ज्ञान राखे तो दुःख न होय भगवद्धमें रहे सो अब कहत हे.

मूलं-*गृहभंगसमाचाराः श्रुताः श्रुतिविषायिताः । तदर्थं लिख्यते किंचित्समाधानाय चेतसः ॥१॥

* प्रथम उपोद्घातमें लिखिहे जो श्रीगोपेश्वरजीके बहुजी पधारिजायवेके दोय मास पेहेर्ले वा होनहारवातकूं जानिक श्रीहरिरायजीने पत्र ४१ पठाये फेरि कितनेक दिन वीते तापाछें श्रीगोपेश्वरजीके वहुजीनें लीला करी. ओर छट्टे पत्रमें यह समाचार केसहे १ एसी शंका होय ताको समाधान यह हे जो श्रीहरिरायजीने वहुजी लीला-भ्यथारे पेहेलें वा बातकं जानिकं पत्र पठावने शरु कीये. पांच पत्र पठाये ता पार्छे अविहुजीमहाराजर्ने लीला करि सो समाचार सुनिकें श्रीहरिरायजीनें यह पत्र लिख्यो तब तो श्रीगोपेश्वरजी पत्र वांचते नांही गवाखामें धिर राखते. सो छन्ने पत्र गृहभंग भये तापार्छे आयो सोहू गवाखामें धरि राख्यो एसें तीन दिनताई शोकमें मन्न रहे तापार्छे हरिजीवनदासकी विनितिसाँ पत्र वांचे पाछे भोजन करि दुसरे दिनलें टीका करिवेको प्रारंभ कीयो (अर्थात् दश शिक्षापत्र आये तत्र प्रारंभ कीयो) सो नित्य एकपत्रकी टीका करते एसें करत करत नव पत्रकी टीका करि तव नवमपत्रमें प्रेम, आसक्ति, ओर ज्यसनके स्वरूपको निरूपण वांचिके गृहमंगको क्षेत्र निवृत्त भयो तव श्रीहरिरायजीको २० मो पत्र आयवेवारो हतो तामें जो हकीकत लिखिहे (ताको टीपण हे सो देखनों) सो यथार्थ हे एसे श्रीकन्हैयालालजीमहाराज कोटावारे तथा श्रीविद्वलरायजीमहाराज अमरेलीवारे प्रभृतिवालकनकों विनति करी खुलासा लीयेतें अनुमान होय है।

जीवित दुर्भाग्यस्रीके यौवन बरावर व्यर्थहे) श्रीगुसाईजी कहतहे जो हे नाथ! पुष्टिमार्गीय वैष्णव तुझारे कहावे सो तुझारे दर्शन विना जो कोय तदीय होय जीवतहे सो व्यर्थ जीवतहे वे बडे अभागीहे या भांति अपनकों महाअभागी सर्व साधन करि हीन महादुष्टजानि मनमें आर्तिकरे जो हानाथ! अब मेरी कोन दशा होयगी? श्रीमहाप्रभुजीद्वारा तुझारे शरण में आयोहं, मोमें एकहू धर्म नांही, याभांति नित्य देन्य करे सर्वथा वारंवार विरहकरि उच्छ्वास लेय काहेतें जो यह श्रीआचार्य जीके पुष्टिमार्गमें जाके हृदयमें जितनी आर्ति तितनीही फलिसिडिहे, जाकों विरह नांही ताकों फलिसिडिकी ढीलहे जाकों थोरो विरह ताकों थोरी फलिसिडिहे जेसें रासलीलामें जेसो जाको भाव तेसो ताकों रसदान दीयो चुझादिक, पशु, पिक्ष, व्रजमक्तआदिनको अपने भावाज सार अनुभव भयो तेसेंही पुष्टिमार्गीय वैष्णवनकों जेसी आर्ति तेसोहि फल्रूप श्रीकृष्ण रसको संबंध करावे 11 ९ 11

मूलं-यथाकथंचित् कर्त्तव्यो व्यवहारो हि लोकिकः॥ अपकीर्तिभयात्तेन बुद्धिशैथिल्यसंभवात्॥१०॥

रान्दार्थः-अपकीर्तिक भयसो थोडोबोहोत लौकिकव्यवहार करनी काहेतें जो अपकीर्ति करके छुद्धिमें शिथिलता होयवेको संभवहे ॥१०॥ टीका-विप्रयोग आर्तिको स्मरण तव होय जब लौकिक वैदिक कार्य छुटे सो संसारमें रहिके सब कयों चाहिये काहेतें जो लौकिक वैदिक कार्य छोडे तो लोकमें अपकीर्ति होय लोक बुरो कहे तब अपने मनमें क्षोभकरि कोध होय तो अपने मार्गमेंतें बुद्धि शिथल होयजाय तातें लोगनकी अपकीर्तिक भयतें कछ योरोसो लोकिक वैदिक कार्य करे जामें अपनो धर्म ग्रुप्त राखे मन व्यवहारादिकनमें न लगावे दोयचारि घरी व्यवहार करे यह सिद्धांत भयो ॥ १०॥

कर्तव्यहे, ओर श्रीकृष्ण वहेहे जिनको आर्यवंश जो सवर्ते उंचो यदु-वंश तथा चंद्रवंशहू सवतें श्रेष्ठहे तथा वहामकुल सवतें श्रेष्ठहे. पृथ्वी-पर तीनकुल श्रेष्ठ प्रसिद्धहे, ओर अवतार अनेकहे तामें तीन श्रेष्ठहे, त्रेतामें दशरथजीके घर श्रीरामचंद्रजी तिनको रष्ठकुल, द्वापरमें श्री-कृष्णको यदुकुल ओर कलियुगमें श्रीआचार्यजीको वहामकुल ये सवमें श्रेष्ठ केवल भक्तोद्वारार्थहीहे तामें हमारे आचार्यजीके वंशमें श्रीकृष्ण वालभावसों सेवनीयहे तातें मनमें कछ लोकिकक्केश होय तो श्रीठाकु-रजी अप्रसन्न होयजाय तो अपनो धर्म जातरहे तातें श्रीकृष्ण प्रसन्न रहे सोई करे ॥ २ ॥

मुलं-सर्वेश्वरश्च सर्वज्ञः कृष्णः सकरणः सदा। असमर्थो ज्ञानग्रन्यो जीव इत्येव निश्चयः॥३॥

शब्दार्थः नश्रीकृष्ण सर्वके ईश्वर, सर्वज्ञ, ओर सदा दयासहित हे तथा जीव असमर्थ, ज्ञानश्रन्यहे एसोही निश्चयहे ॥ ३ ॥ टीका—अव भगवानको ओर जीवको खरूप कहत हे. श्रीकृष्ण सर्वोपर ईश्वरके ईश्वर हे. ईश्वर वातें कहे जो मनआवे सोई करे, ब्रह्मादिक, शिवादिक, इंद्रादिक कोउ श्रीकृष्णकी आज्ञा टारिवेकों समर्थ नांही हे, अजामिल सारिखेकों एक पुत्रके भावसों नारायणनामतें निर्भय करिदीयो एसे सर्वकरणसमर्थहे, तातें सर्वेश्वर श्रीकृष्णहे ओर त्रिलोकीमें सर्वके हदयकी जानत हे तथा कोटानकोटी ब्रह्मांडमें सवठोर एक श्रीकृष्णही सर्वकर्ताहे सो सर्व जानतहे इनतें कछ छिप्यो नांहीहे ओर करुणावानहे। एसे ईश्वर हे सो काहके दुःख सुख केसे नांही जानतहोयगें ? परम करुणाके निधिहे अपने भक्तनको रंचकहू दुःख नांही सहीसकत एसे धर्म श्रीकृष्णहीमेंहे। ओर जीव असमर्थहे यह जीवको कियो कछहू नांही होत हे यह अपनी कृति मानत हे सो सगरो अज्ञान जाननों.

राव्दार्थः -कर्णमं विषरूप गृहमंगके समाचार सुने तासं चित्तके समाधानके अर्थ कछ लिखत हैं ॥ १ ॥ टीका -- तुंहारे गृहमंगके समाधानके अर्थ कछ लिखत हैं ॥ १ ॥ टीका -- तुंहारे गृहमंगके समाचार हमने सुने सो सुनतहीं एसो दुःख भयो मानों हमारे श्रवन्में विष परचो सो दुःख हम कहालिखें ? परंतु तुहारे मनमें दुःख हे तदर्थ हम कछ शास्त्रोक्त समाधानपत्र लिखतहें जो या समय हम तुह्यारि. पास होते तो आछो परंतु भगवदिच्छातें दूर हों तासों लिखतहों जो एसे दुःखमें जब अपने पृष्टिमार्गीयधर्मको समरण होय तब जानियें जो श्रीआचार्यजीकी पूर्णकृपाहे तातें हम लिखतहें जो भगवदिच्छाको ग्रहण करनो, मूलधर्म यहहे जो हृदयमेंते प्रभुको समरण प्रभुको आवेश जापकार चाहिर न जाय सो कर्त्तव्यहे सो पत्र वांचिक चित्तको समाधान करियो । या पत्रमें लोकिक कार्य तथा भगवद्धर्म सब वर्णितहे । जा रीतसों पुष्टिमार्गीय रहे भगवदिच्छा विचारे सो सब वर्णन हे तार्ते अपनो चित्त लगाय पत्र वांचि समाधान करियो ।। १ ॥

मूलं-सदा यशोदातनुजो द्विभुजः सुद्विजद्वयः। सरोजास्यस्रवछालः स्मर्थतामार्थवंशजः॥२॥

शब्दार्थ: — सदा श्रीयशोदाजीके पुत्र, द्विभुज, सुंदर दोय दांत-वारे, कमलसारिखे मुखारविंदतें लार जिनके सवत हे एसे आर्यवंशमें प्रकट भये श्रीकृष्णको स्मरण करो।। २॥ टीका—संसारके दुः खकरि मन दुःख पावे तों श्रीयशोदाजीके पुत्र, द्विभुज, (दोय भुजावारे) दोय दंतवारे, ओर मुखारविंदतें लार स्वत हे एसे श्रीकृष्णको स्मरण

१ " श्रीहरिरायजीके छोटे भाई श्रीगोपेश्वरजीके वहुजीनें लीला करी सो वहुजी। सेवामें बहोतही श्रीगोपेश्वरजीकों अनुकुल हते. सो उपर वर्णन करेहें. ताही अर्थ श्रीगोपेश्वरजीकों शिक्षापत्र दिखें हैं. सो अब श्रीगोपेश्वरजीके मनको समाधान होय ता भांति लिखत है " या प्रकार प्रथमावृत्तिमें छप्यो है तो असंगत जानि नीचे लिख्योहे।

कर्तव्यहे, ओर श्रीकृष्ण वहेहे जिनको आर्यवंश जो सवतें उंचो यहु-वंश तथा चंद्रवंशहू सवतें श्रेष्ठहे तथा वल्लभकुल सवतें श्रेष्ठहे. पृथ्वी-पर तीनकुल श्रेष्ठ प्रसिद्धहे, ओर अवतार अनेकहे तामें तीन श्रेष्ठहे, त्रेतामें दशरथजीके घर श्रीरामचंद्रजी तिनको रघुकुल, द्वापरमें श्रीकृष्णको यहुकुल ओर किल्युगमें श्रीआचार्यजीको वल्लमकुल ये सवमें श्रेष्ठ केवल भक्तोद्धारार्थहीहे तामें हमारे आचार्यजीके वंशमें श्रीकृष्ण वालभावसों सेवनीयहे तातें मनमें कल्ल लोकिकक्केश होय तो श्रीठाकु-रजी अत्रसन्न होयजाय तो अपनो धर्म जातरहे तातें श्रीकृष्ण प्रसन्न रहे सोई करे ॥ २ ॥

मुलं-सर्वेश्वरश्च सर्वज्ञः कृष्णः सकरणः सदा। असमर्थो ज्ञानग्रन्यो जीव इत्येव निश्चयः॥३॥

शब्दार्थः नश्रक्तिण सर्वके ईश्वर, सर्वज्ञ, ओर सदा दयासहित हे
तथा जीव असमर्थ, ज्ञानशून्यहे एसोही निश्चयहे ॥ ३ ॥ टीका—अव
भगवानको ओर जीवको स्वरूप कहत हे. श्रीकृष्ण सर्वोपर ईश्वरके
ईश्वर हे. ईश्वर वार्ते कहे जो मनआवे सोई करे, ब्रह्मादिक, शिवादिक,
इंद्रादिक कोउ श्रीकृष्णकी आज्ञा टारिवेकों समर्थ नांही हे, अजामिलसारिखेकों एक पुत्रके भावसों नारायणनामतें निर्भय करिदीयो एसे
सर्वकरणसमर्थहे, तातें सर्वेश्वर श्रीकृष्णहे ओर त्रिलोकोंमें सर्वके हृदयकी जानत हे तथा कोटानकोटी ब्रह्मांडमें सबठोर एक श्रीकृष्णही सर्वकर्ताहे सो सर्व जानतहे इनतें कल्ल छिप्यो नांहीहे ओर करुणावान्हे।
एसे ईश्वर हे सो काहूके दुःख सुख केसे नांही जानतहोयगें ? परम
करुणाके निधिहे अपने भक्तनको रंचकह दुःख नांही सहीसकत एसे
धर्म श्रीकृष्णहींमेंहे। ओर जीव असमर्थहे यह जीवको कियो कल्लह
नांही होत है यह अपनी कृति मानत हे सो सगरो अज्ञान जाननों.

अपने प्रभुकों भूल्योहे मायाकरिकें मोहितहे, हृदयमें ज्ञानश्चन्यहे तार्तें अपनो सामर्थ्य जानतहे सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभु वालवोधमें कहेहे जो जीव स्वभाव करिकें दुष्ट हे यह निश्चय हे प्रभु गुणनिधि हे जीव दोपनिधिहे तार्ते प्रभुकी इच्छाकों जीव केसें जाने ? ॥ ३ ॥

मूलं-तंस्येच्छा त्रिविधा प्रोक्ता मूलवेदस्वभेदतः। मूलेच्छया गृहीतानां नान्यथा कुरुते फलम्॥४॥

इच्डाई तामें मूलेच्छाकरिकें जिनको ग्रहण कीयोहे तिनकों अन्यथा फल नांही करतहे ॥ ४ ॥ टीका—प्रवाहीसृष्टिकों लौकिकिकिया, पुष्टिमृष्टिकों भगवत्सेवा ओर मर्यादासृष्टिकों कर्ममार्गमें प्रवृत्ति. या भांति प्रभुकी इच्छा तीन प्रकारकीहे तातें यह श्रीआचार्यजी महाप्रभुसंबंधी मृष्टि पुष्टिसृष्टिहे तिनकों तो निश्चय भगवानकी मुलेच्छाहे सोई ग्रहण कर्त्तव्यहे जो सर्वकार्यः एक प्रभुहीको कीयो होयहे एसो ज्ञान मनमें हढ राखनो चाहियें। ओर कर्ममार्गीयहे सो याभांति कहतहे जो जेसो कमें करे तेसोही फल पावे एक कर्महीतें फल कहतहे प्रवाही मायाकिर जानत हे जो मायाही सगरो कार्य करत हे या भांति प्रभुकों कोउ जानत नांही तातें पुष्टिमार्गीयको मूल एक प्रभुकीही इच्छा जानि सर्वकर्ता प्रभु हे या भांति जान्यो चाहिये. अन्यथा ओर रितिसं फलको न जाननों। जो कर्मकरि फल होयगो अथवा कोई

१ 'तस्येच्छा त्रिविधा लोकमूलवेदस्वह्नपतः' एसो काहू पुस्तकमें पाठहे [प्रश्नुकी मूल, वेद और स्वह्नपतं तीन प्रकारकी लोकमें इच्छाहे] तामें मूलेच्छाकरिकें जो एहीत है तिनकों ओर फल नही करे. सो आगेंके स्तोकमें लिखे हैं, २ अन्यथा फल नाम जिनकों जितनों कमें करायवेकी और जितनों मुखदुः पादिक मोगवायवेकी प्रश्नुकी इच्छा होय तेसोही होय तासों अन्यथा नांही होय. ३ अन्यथाफलकी नात मूलके अनुसार नांहीहे.

साधनकरि फलकी सिद्धि होयगी एसे सर्वथा ओर भांति फलको चिंतन न करनो. अब तीनप्रकारकी सृष्टि तीनप्रकारकी भगवदिच्छा मानतहे सो आगें श्लोकमें कहतहें ॥ ४॥

मूलं-प्रवाह एव नियतस्तेषु कृष्णविचारितः। मर्यादया गृहीतांस्तु प्रवर्त्तयति कर्मणि ॥ ५॥

राज्दार्थः—जो मूलेच्छाके जीवहे तामें तो भवाहही श्रीकृष्णनें विचारितहे ओर मर्यादाकरिकें जिनको ग्रहण कीयोहे तिनकों तो कर्ममें प्रचृत्ति करावेहें ॥ ५ ॥ टीका—प्रवाहिसृष्टि लोकिकइच्छा मानत हे श्रीकृष्णनें उनकों लोकिकही विचारिराख्योहे काहेतें जो प्रवाहिसृष्टिकें जीव न्यारेहें ओर क्रियाहू न्यारीहे सो पुष्टिप्रवाहमर्यादाग्रंथमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभु कहेहें "जीवदेहकृतीनां च भिन्नत्वं नित्यताश्चतेः"॥ (जीव, देह, कृतिको भिन्नत्वहे ओर याकी श्रुतिमें नित्यताहे) यह वाक्यतें प्रवाही सदा अममेंहीहे. भक्तिमार्गमें कवहू आवे नांही ओर मर्यादाको श्रहण करतहे सो जीव कर्ममार्गमें प्रवृत्तहे काहेतें जो वचनकरि प्रकटे हे सो वचसा वेदमार्ग हि ' (वचन करिके वेदमार्गकों उत्पन्नकीये) यहवाक्यमें निरूपणहे सो वेदमें श्राद्ध, होम, यम, नियम, व्रत, तप, दान, इत्यादि साधनसोही फल वतायेहें, मर्यादा-

१ पुष्टि, प्रवाह ओर मर्यादाके जीव देह कर्मादिकनको भेद-

मार्गः	उनके देह.	उनके कर्म.
युष्टिः	दैव.	भगवत्सेवा-स्मरणादि.
प्रवाहः	आमुर.	लौकिक कार्यनिवाहमात्र.
सर्यादा	दैव.	वैदिककर्म-अग्रिहोतादि.

मार्गीय आछो कर्म करिकें स्वर्गछोकमें जातहे तहां सुख भोगकरिकें जब पुण्यहीन होतहे तब फरि यह संसारमें गिरतहे. उनकों प्रभुकी प्राप्ति नांहीहे सो वह जानत नांही, केवल यह कर्ममार्गीय स्वर्गहीकों फल जानतहे याभांति मर्यादासृष्टि वेद इच्छा मानतहे एसें प्रवाहि ओर मर्यादासृष्टिकों प्रकार कहा। अब पुष्टिसृष्टिकों कहा कर्तव्यहे सो आगें श्लोकमें कहतहे।। ५।।

मूलं-स्वरूपेण वृतानां तु स्वतः सर्वं करोति हि। तिचितयेव हि व्याप्तः कृपालुः सर्वतो विभुः॥६॥

शब्दार्थः-अपनें स्वरूपतें वृतजो जीवहे तिनकी चिंताकरिकें आप व्याप्तर्हें ओर ऋपाछ सर्व करिवेमें प्रभु समर्थ हे ॥६॥ टीका-पुष्टिसृष्टि केवल भगवत्स्वरूपको आश्रय करे काहेर्ते जो भगवत्सेवार्थ पुष्टिसृष्टि करीहे "भगवद्रपसेवार्थं तत्सृष्टिनीन्यथा भवेत्"। (भगवद्रपकी सेवाके अर्थ पुष्टिजीवकी सृष्टि करी है जो यह प्रयोजन नांही हतो तो पुष्टिमृष्टिकों ही नांही करते) यह वाक्यतें पुष्टिसृष्टि अपने मनमे विचारे जो प्रभु अपर्ने स्वरूपवलर्ते स्वतः आपही करेंगे यह जानि चिंता नांही कर्तव्यहे काहेतें जो प्रभुतो सगरे व्यापकहे सर्वठोर प्रभुही हे तहां चिंता काहेकों करनी श्रीकृष्णहीको कीयो सवठोर होतह ओर श्रीकृष्ण कृपाछहे अपने भक्तजनपर सदा कृपाद्दी करत आयेहे ओर ऋपा करेहींगें याभांति प्रभुको चिंतन करनो ओर श्रीकृष्ण विभ्रहे सर्व सामर्थ्ययुक्तहे काहको दीयो ऐथर्य नांहीहे, बह्यादि, शिवादि, इंद्रादि देवताहे तिनको भगवाननें ऐश्वर्य दीयोहे तातें देवता फल दीयो चाहे तो प्रभुकी आज्ञा छेके देत है स्वतः सामध्ये देवतार्में नांहीहे तेसें श्रीकृष्ण नांहीहे आपुही सर्व सामर्थ्ययुक्तहे सो श्रीगुसाईजी विज्ञित्तमें कहेहे "कर्जु पुनरकर्जु च हान्यथाकर्जुमीश्वरे।

सामर्थ्यं यन्मया दृष्टं त्वय्येवातो न संशयः" (किरिवेको, नकरिवेको ओर अन्यथाकरिवेको जो ईश्वरमें सामर्थ्य सो आप (श्रीठाकुरजी) मेंही मेंने देख्योहे तासों संशय नांहीहे) यह वाक्यतें कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ प्रभुहे तातें लोकिक वैदिकमें कछुहू अपनकों चिंता नांही कर्त्तव्यहे प्रभु आपुहीतें सर्व करेंगे प्रभु सर्वसामर्थ्ययुक्तहे ॥ ६ ॥

मूलं-निवर्त्तयत्यनिष्टेभ्यः स्वकीयान् क्रणानिधिः। यदि जीवाः स्वभावेन निवर्त्तरन्न ते स्वतः॥७॥

राव्दार्थः—जो जीव आपतें स्वभाव करिकें (अनिष्टको) निवृत्त न करे तो दयानिधि भगवान स्वकीयकों अनिष्टतें निवृत्तकरतहें । अथवा तो जीव अपनें स्वभावतें प्रभुतें निवृत्त नहोय तो यह स्वकीयजीवनकों करुणांक भंडाररूप भगवान अनिष्टके निवृत्त करतहे ॥ ७ ॥ टीका—श्रीकृष्ण अनिष्टके निवृत्तिकर्त्ता हे सो अपने स्वकीयको अनिष्ट निश्रय दूरिकरेंगे काहेतें जो करुणानिधिहे. तहां कोई पूर्वपक्ष करे जो भगवान तो समदर्शी हे सर्व प्राणमात्रपर एकसीदृष्टिहे विश्वंभर सवनके भरणपोपणकर्त्ताहे सो तुम कहतहो जो अपने स्वकीयभक्तनपर करुणा करेंगे ओरनपर न करेंगे सों केसें? एसो कोई संदेह करे तहां कहतहे जो सगरे जगतकों आनं-ददाता प्रभुहे तोहू भक्तनकों अधिक आनंद देतहे सो निरोध-रुक्षणमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभु कहेहें " सर्वानंदमयस्यापि कृपानंदः सुदुर्ठभः" (सर्व आनंददाताहे परंतु कृपानंद दुर्ठभहे सो

[े] १ सुदामाकों वैभव देयवेकी इच्छामई, दुर्वासाकों चक्रदुःखिनवृत्ति करिवेकी इच्छा न भई ओर अजामिलकों (कृतितें अन्यथा) उद्धारिवेकी इच्छा भई सो प्रभुनें कीयो एसो सामर्थ्य ईश्वरमेंहे ॥

श्रीभागवतनवमसंघमें दुर्वासा प्रति भगवान् कहेहें "अहं भक्तपराधीनो ह्रास्वतंत्र इव द्विज ! । साधुभिश्रस्तहृदयो भक्तिर्भक्तः जनिप्रयः" (में भक्तनके पराधीनहूं साधुभक्तजनने मेरो हृदय प्रस्तकीयोहे ओर भक्तजन मोंक प्रिय हे,) यह वाक्यतें भगवान् भक्तनके वश्यहे जगतके वश्य नांहीहे भक्तनके अर्थ अवतार प्रभु लेतहें तातें अपने स्वकीयनको अनिष्ट वे योंही दूरि करेंगे एसे करुणानिधिहे परंतु जीवको स्वभावहे जो रंचकदुःखमें धीरज नांही रहत चिंतातुर होत हे सो यह स्वभाव निवृत्त करिवेमें प्रभुही समर्थ हे ओर दूसरो कोउ नांहीहे ॥ ७॥

मूलं-अनिष्टमेव सर्वज्ञो वलादूरीकरोति हि। इष्टानिष्टविवेको हि जीवबुद्ध्या न जायते ॥८॥

शब्दार्थः -यह इष्टहे यह अनिष्टहे एसो विवेक जीवबुद्धितें नांही होयहे तासों (जीवकी इच्छा नांही होय तोहू) सर्वज्ञ प्रभु अपने प्रमेयवळतें अनिष्टकों दूरिकरतहें ॥ ८ ॥ टीका - भक्तनके अनिष्टकों प्रभु जानतहें. काहेतें जो सर्वज्ञहें अनिष्ट दूरिकरिवेमें वळवान हें सो आपही अनिष्ट दूरिकरेंगे. जेसें प्रह्णादजीकों हिरण्यकि शिपुनें वोहोत दुःख दियों सो श्रीनृसिंहजी नांही जानत हते १ सर्व जानत हते परंतु भक्तनकी परीक्षाळेंवकों प्रभु प्रथम नांही प्रकटें जव प्रह्णादजीकों वोहोत दुःख हिरण्यकिशपुनें दीयों ओर प्रह्णादजीकों भगवदाश्रय छुट्यों नांही, तव प्रभु प्रकट होय अनिष्ट दूरि कीयें हिरण्यकिशपुकों मारे, तातें दुःखहेशमें भक्तनकों भगवदाश्रय न छोडचोचाहियें ओर प्रभुतों छपाही करेंगे सगरों दुःख द्रिकरेंगे परंतु जीववृद्धितें इष्ट अनिष्टको विवेक जान्यों नांहीजातहे जो में भगवद्भक्त होयकें अन्याश्रय करतहों छोकिक वैदिक चिंता करतहों

भगवान तो जो करतहे सो भलीही करत हे, मेरो भोग तो वोहोत हे सो प्रभु थोरोहीमें निवृत्त करेंगे, मोपर प्रभु अनुग्रह कीयो जो यह दंड भयो याभांति धीरज जीवबुद्धितें नांही रहतहे तातें दुःख पावतहें॥८॥

मूलं-अविद्या गृहीतानामणूनां भ्रमसंभवात्। अत एवं हि संसारं मन्यते सुखरूपिणम् ॥ ९॥ बाला इव करप्राप्तं सर्पमक्रीडनो चितम्। पितेव सहजिस्मग्धस्तान्निवर्त्तयते बलात्॥ १०॥

शब्दार्थ:-अविद्याकरिकें गृहीत ओर (स्वरूपतें) अणु एसे जीवकों भ्रमको संभवहे तासोंही वालक कीडामें नांही योज्य एसे सर्प हाथमें प्राप्तभयो ताकों जेसें सुखरूप मानत हे तेसेंही जीव संसारकों सुखरूपे मानत हे तासों सहजस्नेहवारे पिताकीनांइ तिनकों वलात् निवृत्त करत है ॥ ९ ॥ १० ॥ टीका-जीव प्रभुके स्वरूप जानिवेमें नांही समर्थ हे, काहेतें जो अविद्याकरिकें ग्रसित हे तार्ते मनको भ्रम दूरि नांही होतहे. यद्यपि अम छोटोहे आविद्यारूप अम (में ओर मेरो इतनोही) हे ता अमकों जीव टारी नांहीसकतहे. यद्यपि सर्व जानतहे जो क्षणभंगुर शरीर हे काल काहूकों छोडे नांही यह ज्ञानहू मनमें आवतहे तथापि जीवकी अहंता ममता नांहीछूटतहे काम, कोध, लोभ, मद, मत्सर, लौकिक दुःखमय याहितें चिंताश्रसित हे तातें देहसंबंधी संसारकों सुख सोहि सुखरूप मानिरह्योहे, तोहू प्रभु संसारतें छुडावेहींगे सो कोन प्रकार सो आगेश्लोकमें कहतहे ॥९॥ यद्यपि जीव संसारकों सुखरूप मानिरह्यो हे तहां प्रभु अपने भक्तनकों याभांति छुडावत हे. जो द्रव्यमें मन होय तो द्रव्यको नाश करे, जो स्त्रीपुत्रादिकनमें मन होय तो तिनको नाश करे या भांति भक्तनको मन जहां लोकिकम लगे सो प्रभु दूरिकरत हे तब यह जीव स्वभावतें अनेकभांतिके दुःखं

पावतहे परंतु प्रभु वाक्ं लौकिकअंथे देत नांही सो लौकिक ह्र ह्यांतसं कहतहे, जेसें अज्ञानी वालक होय सो खेलिवेकेलिये मर्पकों पकरिवेकों दोरतहे यह नांहीजानत जो यह कालहे काटेगो सो वालकतो अज्ञानी हे परंतु मातापिताको पुत्रमें सहजही खेहहे तासों सर्पकों पकरन नांही देतहें वह कालरूप सर्पतें निवृत्तही करतहे तेसेंही यह जीव संसारकों सुखरूप मानिरह्यों हे परंतु प्रभुको खेह भक्तपर हे कृपाकरि संसारतें खुडावनोहे तातें संसारसुखमें लागन नांहीदेतहे ॥ १०॥

मूलं-यथा रुदंति ते बाला आंताः संसारिणस्तथा। अत एव हि सर्वज्ञः ऋषाः संसारमोचकः॥ ११॥

राव्दार्थः — जेसें वह बालक [सर्प नांही लेवे दीयेसो] रुदन करतह तेसें संसारि भ्रांतियुक्त होयकें (लोकिकवस्तु गयेतें) खेदयुक्त होय हे परंतु श्रीकृष्ण तो सर्वज्ञ हे तासोंही अहंताममतात्मक संसारतें खुडायवेबारे हे (सो ताकेलीये लोकिकवस्तुकी प्राप्ति नांही होनदेत है किंतु होय तासोंही छुडावत हे)॥ ११॥ टीका—पिता स्नेह करि सर्पतें निवृत्त करत हे तव वह बालक अज्ञान करि रुदन करत हे जो मेरो खिलोना लेन नांही देत हे, तेसें ही यह संसारी जीवपर प्रभु परमकृपा करि संसारमें मन हे ताही वस्तुकों हरिलेत हे तब यह जीव मनमें अहंता ममता करि दुःख पावत हे अज्ञानकरिकें प्रभुको गुण नांही मानत जो प्रभु कृपा करि संसारतें छुडायो. ओर प्रभु तो सर्वज्ञहें सो श्रीकृष्ण अपने भक्तनकों पुत्रवत जानि संसार मोचन करत हे, जेसें पुराणांतरमें कथा हे जो नारदजीको मन व्याह करिवेको भयो सो एक राजाकी वेटीको स्थयंवर हतो तहां सगरे देशदेशके राजा आये सो एक राजाकी वेटीको स्थयंवर हतो तहां सगरे देशदेशके राजा आये सो नारदजीके मनमें यह भयो जो में वर्छ तब नारदजीनें विचायों

जो राजाकी वेटी जापर प्रसन्न होय माला पहरावे तासौं व्याह होयगो सो यासमय तो सुंदर रूप चहिंयें जो राजाकी वेटी रीझे. तातें सवर्ते सुंदर भगवान् हे उनको रूप लेआवुं, तव नारदजी भगवान् पास आये प्रभुनें चोहोत समाधान कीयो, पूछे जो नारदजी कछ आज्ञा करो, तब नारदजीनें कह्या में तुम्हारो हूं मेरो भलो होय सो करियें, अपनो रूप मोकों देह तो राजाकी वेटी व्याहि लाउं. तव प्रभु मुस-कायकें कह्यों जो तुम्हारों भलों होयगों सोई में करूंगों तुम जाओं मेर्ने मेरो रूप दीयो, तव नारदजी तो मायाके अमतें प्रभुके व्यंग बचन समुझे नांही जहां स्वयंवर हतो तहां आये सो श्रीटाकुरजीनें तो बोहोत बुरो मर्कटको टेडो मुख दीयोहे ओर नारदजी तो कामवश्यतें अज्ञानसों जानतहे जो में भगवान्को रूप पायोहों सो वारंवार जहां वह कन्या जाय तहां सन्मुख जाय वेठे सगरे लोक हसे जो कहा टेडो मुखकिर आयोहे सो नारदजीकों कामवश्यतें ज्ञान नांही पाछें प्रभु राजाको रूप धरिके पधारे तब कन्याने माला पहराई सो प्रभु लेगये, तव नारदजी निरास भये पाछें एकर्ने कही जो नारदजी अपनो मुखतो देखो सो नारदजी दर्पणमें देखे तो बांदरकोसो टेडो मुखहे तब भगवानपर बोहोत कोध कीयों जो जगतमें मेरी हांसी करवाई पार्छे प्रभु समुझाये तव नारदजीकों ज्ञान भयो, सो नारदजी प्रथम तपस्या करत हते तब कामदेव तपस्यामें भंग करिवेकों सहाय (वसंत, मलया-निल, अप्सरोगण, विगेरे) समेत गयो सो नारदर्जाकों मोह न भयो तब कामदेव हार मानिकें फिरगयो तासों नारदजीकों अभिमान भयो जो में कामकों जीत्यो सो अभिमान प्रभु याभांति दूरिकीयो। या प्रकार प्रभु अपने भक्तनकों संसारतें छुडावतहे ॥ ११ ॥ मूलं-इत्येव रूप्यते नाम तथाविधमतः प्रभोः। संसारवेरी धरणीं प्रति शेषो नयरूपयत् ॥१२॥

श्रुव्दार्थ:-धरणीशेपके संवादमें पृथिवी प्रति शेपजीनें संसारवैरी एसो नाम कह्योहे तासों तेसोहि प्रभुको नाम निरूपित होयहे। ओर 'तथाविधमतिः प्रभोः'एसो काहू पुस्तकर्मे पाठहे तदनुसार अर्थमें तेसी प्रभुकी मतिहू भक्तनके संसारकं छुडायवेकीहे ॥१२॥ प्रभुको रूपहू संसारतें छुडावतहे ओर प्रभुको नामहू संसारतें छुडावतहे. व्रजभक्त श्रीकृष्णको ललितत्रिभंगी खरूप देखिक लोक, वेद, पति, पुत्र, घर सबमेंतें मन छोडिकें प्रभूकों भजे ओर नामकरिकें अजामिल आदि अनेक भक्तनके संसार छुटे, ओर विधि जो प्रभुकी सेवा करतहे तिनहूके सर्व संसार दूरिहोतहे तथा प्रभु अनेकविध छीला करतहे ताको स्मरण जो कोई करे तिनहुके सकल संसारदुःख दूरि होय जाय. ओर श्रीकृष्णकी मतिमें यह रहतहे जो भक्तनको संसार जाय मेरे पास आवे तब भलो होय येही प्रभ्र विचारतहे तार्ते धरणीशेपसंवादमें धरणी (पृथिवी) प्रति शेपजी कहेहें जो "संसार-वैरी "श्रीकृष्ण केसेहे जो संसारदुःखके वैरीहे जहां भक्तनकों संसार होय तहां आपु सव द्रिकरे श्रीकृष्णको रूप, नाम, छीला, आपु मनकरि भक्तनकों संसारतें दूरिकरि भलो होय सोई करतहे ॥१२॥

मूलं-मन्यामहे वयं भ्रांताः ऋष्णविस्मृतिकारणम्। संसारमुत्तमं ऋष्णस्तं कथं स्थापथेद्वरिः॥१३॥

शब्दार्थः — अपने आंत होयकें श्रीकृष्णकी विस्मृतिके कारणरूप संसारकों उत्तम मानतहे सो हरि वहसंसारकों केसें स्थापन करे ? 11 १ ३ 11 टीका — यह जीवके हदयमें अनेकजन्मको अमहे सो गद्यके श्लोकमें कहेहे जो अनादिकालको अम यह जीवके हदयमें छाय रह्योहे तातें अविद्याकरिकें श्रीकृष्णकों भूलिगयोहे तासोंहि यहसंसारकों उत्तम जानि यामें मनकों लगायोहे, संसारमें देहसंबंधी सुखदुः खनकों मुख्य मानत हे सो श्रीकृष्ण संसारकों केसें राखें काहेतें जो हरि दुःख हरिवेचारेहे जहां सूर्य होय तहां अधियारो कोन भांति रहे ? तेसें हरि अविद्यारूप संसारतमके सूर्यरूप प्रभु भक्तनको संसार केसें राखे? जीव तो संसारसंवंधी सुख विचारतहे जो अब यह कार्य करूं तामें मेरे देहसंबंधी कुदुंबहू सुख पावे ओर मेंहू सुख पाउं ओर प्रभु यह विचारतहे जो यामें याको मनहे सो हरिलेड सो यामेंतें मन छुटिकें मेरो आश्रय करे याभांति श्रीकृष्ण भक्तनको संसार हरतहे।। १३॥

मूलं-एवं तदीयैर्मनिस निधयः स्वप्रभोर्गणः। स्वस्मिन्नपि विनिश्चेया प्रभोरंगीकृतिर्ध्रवा॥१४॥

शब्दार्थ:-एसं तदीयजनकों अपने मनमें अपने स्वामी श्रीऋष्णको गुण राखनों काहेतें जो अपनमें हू प्रभुकी अंगीऋति निश्वलहे एसो निश्चय राखनो ॥ १४ ॥ टीका-या भांति पुष्टिमार्गीय भगवदीय अपने (सो उपरतें ओरनकों दिखायवेके लीये कहे जो प्रभु करतहे सो भली करतहे ओर भीतरतें मन करि दुःख पावे एसें न करे) मनमें निश्रय यह धारण करे जो अपने अंगिकृत भक्तनके प्रभु रक्षकही हे कहा भयो दुःख आयो तो अपने स्वकीयनकीं प्रभु दंड देतहे, जेसें स्त्री कछु मर्यादातें ओर भांति चले तो पति दंडदेय रीतिसों चलावे तेसेंही प्रभु अपने भक्तनके दोपनकों दूर करिवेकों दंड देतहे सो श्रीगुसाईजी विज्ञिप्तमें कहेहे "दंडः स्वकीयतां मत्वेत्येवं चेदिष्टमेव नः। अस्मासु स्वीयतां मत्वा यत्र कुत्र यदा तदा"॥ (दंड देनों सो अपने मानिकें देनो एसें होय तो अपनकों इष्ट हे काहेतें जो हमारेमें जहां तहां जब तब अपने हे एसों मानिके दंड द्योगे) यह वाक्यतें अपने स्वकीयकों प्रभु दंड दीये सोहू अनुग्रह जानि मनमें सुखी है. तातें जहां जहां हमतें अपराध परे तहां तहां सुद्येन

दंडदेनो उचित हे या वातमें हम मनमें सुखी हे या भांति भगवदीय अपने प्रभुको अनुग्रह जाने यह दुःखहू अनुग्रहरूप जानि प्रभुको गुण अपन हृदयमें धरे. काहेतें जो प्रभुपर दोप धरत हे सो विहर्भखहे उनको पुष्टिमार्गमें अंगीकार नांही हे तातें निश्चय मन, वचन, कार्य करि यह जाने जो श्रीटाक्करजी अंगीकृतनिजभक्तनके रक्षकहे ॥१४॥ मृत्ं-अतएवासमदाचार्यरुक्तं वरणलक्षणम्।

"लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति॥१५॥

शब्दार्थः-तासोंहा अपने श्रीमदाचार्यजीने लोकमें तथा वेदमें स्वास्थ्य हरि तो नांही करेंगे एसे वरणको छक्षण कह्यो है ॥ १५॥ टीका-उपर कहे जो भक्तनके रक्षक प्रभु दुःख बयों देत हे ? जाभांति यहलोक परलोकमें भक्तजन सुख पावे तेसा क्या नहीं करत ? एर्से कोई कहे तहां कहतहे जो यह जीव स्वभावकरि दृष्ट हे जो लौकिक कार्यमें सुख पावे तो तहां आसक्त होय जाय जो वैदिकंकार्यमें सुख पावे तो तहां आसक्त होय जाय तो हृदयमेंतें प्रभुको आश्रय जातरहे आश्रय गयेसं भक्तको नाश होय, ताते श्रीठाक्ररजी लोकिकवैदिक कार्य सिद्ध न करे तब दुःख पायके उहकार्यमें मनहू न करे केव्ल यभुक्तेही आश्रय करें सो श्रीआचार्यजी महायभुजी चारों वर्णके सक्षण श्रीमुबोधिनीजी निवंधमें कहेहे जो कोई जीव बाह्यण, क्षत्रिय, वैश्य, शृष्ट, स्त्री आदि प्रभुकी शरण आवे ताकों प्रभु लोकिक वैदिकर्ते छुडायकें अंगीकार करतहे ओर नवरत्नग्रंथमें कह्या है जो भक्तनकी लाकिक वेदिक स्थिति छुडायके अपनोही करतहे, यह विचारिक हरिको आश्रय करनो यह सिद्धांत सर्वापिर हे ॥ १५ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं पप्ठं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वर-जीकृतत्रजभापाटीकासमेतं समाप्तम्॥ ६॥

१ चारो वर्णको अर्थ मूलके अनुमार नांदी है.

शिक्षापत्र ७.

अव सप्तमिक्षापत्रमें लोकिकासिक नांही कर्तव्य हे ओर सेवामें आसिक कर्तव्य हे सो निरूपण हे। अव छड़े शिक्षापत्रमें कहे जो लोकिक वैदिक प्रभु सिद्ध न करे तो प्रभुको गुणही मनमें धरे जो प्रभु भली करत हे सो यह धीरज कव हाय जव भगवदीयको संग किर भगवत्सारणभजन करे, सो प्रकार आगें शिक्षापत्रमें कहतहे॥ मूलं-सदा श्रीगोकुलाधीहाः स्मर्च्यः सर्वथा जनेः। तदीयैमिलितैः सर्वदोषचिताविवर्जितैः॥ १॥

शब्दार्थः—सर्व दोप ओर चिंतार्ते रहित जो तदीयजन तिनके संग मिलिके सदा श्रीगोकुलके अधीश प्रभु निश्चय स्मरण करिवे योग्य हे ॥ १॥ टीका-पृष्टिमार्गीय भक्तजननको सर्वथा यहही समरण क्यों कहा। ? जो गायनके कुलके रक्षक कहि यह जताये जो निःसाधन गाय हैं तिनके प्रभु रक्षक हे, तेसेंही जीव जब निःसा-धन होय श्रीगोकुलाधीशको स्मरण भजन करे तब प्रभु दयाल हे सो अनुप्रह करेहींगे सो निःसाधन भावसों भजन स्मरण जब वने तव तदीय जन मिलेर्ते हृदयमें अनेक प्रकारके दोप काम, कोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, लौकिक वैदिक चिंता सो सर्व दूरि होय, विना भगवदीयके संग कितनोहू भगवद्धर्म करे परंतु मनर्मेते दोप चिंता दूरि न जाय. जेसें रासपंचाध्यायीमें सब भक्तनकों मद भयो एक मुख्य भक्तकों मद न भयो तब श्रीठाकुरजी एकभक्तकों अपने संग लेकें पधारे तब सगरे भक्तनकों अपने मदकी खबर नांही परी ओर प्रभुप्र दोपवुद्धि भई जो हमकों छोडि गये या भांति सगरे भक्त प्रभुकों खोजिनेको चले पाछे एक भक्तहकों मद भयो तब प्रभु तहांते अंतर्धान भये पाछें ढूंढत ढूंढत सब भक्त तहां आय पूछचो जो

तुमहुको श्रीठाकुरजी छोडिगये? तव उनकों अपने दोपको ज्ञान हतो सो कह्यों जो मेनें मद कीयों ताकरि प्रभु अंतर्धान भये यह सुनतहीं उनके संगतें सगरे भक्तनकों ज्ञान भयो अपनो दोप स्फुयों जो हमकों मद भयो तातें प्रभु छोडि गये या भांति श्रीआचार्यजी श्रीसुवोधिनी- जीमें निरूपण कीयेंहें तातें भगवदीयके संगविना दोप ओर चिंताकों नाज्ञ न होय तातें भगवदीयसों मिलिकें प्रभुको स्मरण करे सो श्रीआचार्यजी नवरत्नग्रंथमें कहेंहें "निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा ताहशीर्जनैः" (निवेदन तो निश्चय ताहशीय जनसों मिलिकें स्मर्त्तव्य हे)॥ १॥ मूलं-न लोकिके मितः कार्या भगवद्भाववाधिका। लोकिकं वैदिकं चापि स्वयं साधियता प्रभुः॥ २॥ लोकिकं वैदिकं चापि स्वयं साधियता प्रभुः॥ २॥

शब्दार्थ:-भगवद्भावकाँ मिटायवेवारे लोकिकमें मति नांही करनी, 'न लौकिकी मतिः कार्या 'ऐसे पाठमें भगवद्भावको वाध करे एसी लौकिकी मति न करनी काहेतें जो (एसी टेकवारेकों) लोकिक ओर वैदिकहू प्रभु आप साधे हे ॥ २॥ टीका-अलोकिक पदार्थमें लोकिक बुद्धि न करनी काहेतें जो भगवद्भावमें लोकिक बुद्धि वाधक हे तार्ते प्रभुकी लीला, श्रीवल्लभकुल, भगवदीय, सेवा-सामग्री, व्रज, श्रीयमुनाजी, श्रीगिरिराज आदि वृक्ष, लता, भगवद्वात्तीं, ग्रंथ, कित्तन, श्रीभागवत, इत्यादिकनमें लौकिकमति न करनी सगरी वस्तु प्रभु संबंधी जानि भावसंयुक्त सेवा स्मरण करे. लांकिकबुद्धि आवे तो अलोकिकभावमें वाधक होय तासूं लोकिकवेदिककार्यकी चिंता मनमें न राखे भगवत्कार्य मन लगायक करे लोकिक प्रभु आपही सर्व करि लेंगें, वहुभकुल लोकिक वैदिक कार्य करि अपने भगवदीय सेवककों जतावत हैं जो तुम लोकवेदकी चिंता मित करो हम तुझारे अर्थ करत है तुम सुबेन प्रभुकी सेवा स्मरण करो ताते प्रभु लोकिक वैदिक आपहीतें सिद्ध करेंगे ॥ २ ॥

मूलं-इदानीमीहराः कालः प्रतिकूलः समागतः। यथाकथाचित् स्वमनः स्थापनीयं पदाव्जयोः॥३॥

शन्दार्थः—अव एसो विपरीत काल आयोहे तासों जेसेंतसें अपनो मन (श्रीटाकुरजिके) चरणारविंदमें स्थापनों ॥ ३ ॥ टीका—अव किलकाल महा किन हे याकालमें जो मिलतहे सो प्रतिकृल मिलतहे भगवदीयको संग दुर्लमहे सो वेगि नांही मिलतहे ओर जो मिलतहे सो लोकिककी कामनावारे स्वार्थके लीये मिलतहे उपरतें भलो सत्संग भली किया दीसेह ओर भीतर अनेकप्रकारकी लौकिक वासना भरी होय, तिनके संगतें फलसिद्धि न होय एसो संग यह किलमें मिलतहे तातें जितनो वने तितनो अपने मनकों श्रीटाकुरजिके चरणारविंदमें लगावे प्रभुमें प्रीति विद्वेके लीये बहुत लोगनसों मिले परंतु तामें और भगवद्धमें घटे सो न करे जितनोहे तितनहीकी रक्षाकिर प्रभुके चरणारविंदमें मनकों स्थापे॥ ३॥

मूलं--सेवायां च मनः स्थाप्य तत्साधकतयेव हि। गार्हस्थ्यार्थं विवाहेऽपि प्रयत्नः क्रियतां द्रुतम्॥४॥

शब्दार्थः—सेवामें मन स्थापनों ओर भगवत्सेवाकी साधकतातें (भगवत्सेवा भिर्मातिसों करिवेमें सहायताके लीये) हि गृहस्थाश्रम करनो चाहिये ताकेलीये विवाहमें हू शीघ प्रयत्न करनो ॥४॥ टीका—श्रीठाकुरजीकी सेवा आदि भगद्धभेंमें मनको स्थापन करे ओर भगवत्सेवार्थ सगरी वस्तुको संग्रह करे. जो वस्तु भगवत्सेवामें साधक होय ताकों राखे जो सेवामें काम न आवे अथवा वाधक होय ताको त्याग करे, यह गृहस्थाश्रमहू भगवत्सेवार्थही जाने ओर विवाहा-दिकको मयत्न भगवत्सेवार्थही करे सो काहेतें जो गृहस्थाश्रम विना भगवत्सेवा भलीभांतिसों न होय तातें सेवार्थही करे सो श्रीभागवत्त-

नवमसंघमं भगवान् दुर्वासा प्रति कहेहे "मत्सेवया प्रतीतं च सालो-क्यादिचतुष्टयम् । नेच्छंति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालिबिप्लुतम्" (मेरी सेवातं साक्षात् प्राप्तभयी सालोक्यादि चतुष्टय (सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य, इन चारो) मुक्तिनकों नांही इच्छतहे काहेतें जो मेरी सेवातें पूर्णहे (सर्वीर्थिसिद्धि सेवाकोंही जानें हे) सो काल जिनको नाश करेहे एसे अन्य (राज्यादिक) कों तो केसें इच्छे?) यह वाक्यतें भक्त सेवामें प्रतीयमान चतुष्टयमुक्तिनकों नांही चाहतहे 'एसें सेवा करिकें पूर्णहे तिनकों काल वाधा करे ऐसी वस्तुकी चाहना कहांतें होय ?।। ४।।

मूलं-न भवेत् प्रायशा भोगे तदीयानां कचिन्मनः। तथापि चेद्भवेद्भोगो निवार्यः सर्वथैव हि॥ ५॥

शब्दार्थः—भगवदीयनकों प्रायशः भोगमें मन कवह नांही होय तथापि कदाचित भोगासक्त मन होय तो निश्चय ताकों निवारण करनो ॥ ५ ॥ टीका—तदीय जन अपने भोगकेलीये स्त्रीकों न जाने परंतु भगवत्सेवार्थ जाने तथा भगवद्भक्त पुत्र होयवेकी कामनासं विपयकरे सो निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभु कहेहें "पुत्रे कृष्णित्रये रितः" (भगवद्भक्त पुत्रमें प्रीति राखे) यह वाक्यतें कृष्णिमें प्रीति होय एसो पुत्र होय यह विचारि विपय करे भगवत्सेवामें जो काम वाधक होय तो वाकी निवृत्तिके लिये विपय करे ॥ ५ ॥

मूलं-भावोऽत्र साधनं मार्गे प्रमेयो भगवान् हि सः। प्रमाणं ऋष्णसेवादो स एव च फलं पुनः॥ ६॥ शब्दार्थः-यह पुष्टिमार्गमं भाव साधन हे ओर प्रमेय भगवान् हे, आदिमं श्रीऋष्णकी सेवा साधनरूप हे ओर फेरि सोही श्रीऋष्ण फलहे ॥ ६॥ टीका-यह पुष्टिमार्गमें सगरी सेवाकी रीति साधनरूपा दीसत हे परंतु सगरी भावरूपहे, साधनरूपा दीसतहे सो फलरूपहे याको कारण कहा ? एसें कोज कहे तहां कहतहे जो फल तो प्रभु अपने प्रमेयवलतें हाथ राखे जब चाहेंगे तब देयंगेही, यह निश्चय नांही जो इतने दिनमें फल होय ओर जीवस्वभावकरि फलकी मनमें चाहना रहतहे तातें सेवा साधनरूपा दीसतहे. जो सेवाहीकों फलरूप जानतहे तिनकों फलरूपहीहे तातें श्रीकृष्णकी सेवा प्रमाणरूप तथा फलरूप जानें प्रमाणरूप जानि जे कोई सेवा करतहे तिनकों साधनरूपहे ओर प्रमेयरूप जानिके भगवत्सेवा करतहे तिनकों सेवा फलरूपहे जा भक्तके हृदयमें जेसो भावहे तिनकों तेसी प्राप्तिहे ॥ ६ ॥

मूलं-तस्मात् स एव संरक्ष्यो निधिरूपस्तु सर्वथा। एतद्विरुद्धं तत्सर्वं ज्ञात्वा ज्ञात्वा निवर्त्तयेत्॥७॥

शब्दार्थः—तासों यह भगवद्भावही निधिरूपहे सो निश्रय रक्षा करिवेयोग्यहे ओर तामें विरुद्ध होय सो सर्व जानि जानि छुडाय देनो ।।७।। टीका—याभांति अपने भावकी ओर प्रभुके स्वरूपकी रक्षा सर्व ओरतों करे, उपर कहिआये जो काछ कठिनहे रंचक दुःसंग होयतो अपने प्रभुमेंतें वात्सल्य छुटि जाय तथा भगवत्सेवातें दूसरे साधनमें मन छागे तो सेवामें शिथिलता होयजाय तातें अपने भावकों निधिरूप जानि, अनेक दुःसंगतें भावकी रक्षा करि छेय, सो रक्षा करिवेको प्रकार कहतहे जो भगवत्सेवामें स्वी प्रतिवंध करे तो वाहको लाग करियें स्वीको भाव न गिनियें. तेसेंही माता पिता पुत्र आदि जो प्रतिवंध करे तिनको त्याग करियें, याभांति देहसंबंधी तथा देशमें राजादिकको प्रतिवंध होय सो ज्ञान करि विचारि छोडे, एकवार न छुटे तो कमसों सब छोडे अपने भावकी रक्षा करिलेय ओर पुष्टिमार्गकी

सेवा सर्वोपरि जानि सेवाको भाव निधिरूप जानि गुप्त राखे याभांति रहे ताको श्रीमहाप्रभुजीकी कृपातें वेगि अनुभव होय. ॥ ७॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं सप्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वर-जीकृतव्रजभाषाटीकांसमेतं समाप्तम् ॥७॥

शिक्षापत्र ८.

अव अष्टमशिक्षापत्रमें ऐहिक तथा पारलोकिकमें भगवान ही चिंतनकरिवेयोग्यहे परंतु अन्याश्रय तो नांही कर्त्तव्यहे सो निरूपणहे, उपर कहे ता प्रकारकरि भगवत्सेवा भावसहित करे ओर मनमें दृढ विश्वास राखे तो सर्व सिद्ध होय सो आगें कहतहें

मूलं-ऐहिके पारलोके च सर्वसामर्थ्यसंयुतः। स एव गोकुलाधीशश्चितनीयस्तदा हृदि॥१॥

शब्दार्थः - यहलोक ओर परलोकमें सर्वसामर्थ्युक्त श्रीगोकुला धीशहे सोही सदा हृदयमें चिंतनीयहे ॥ १ ॥ टीका - श्रीगोकुलाधी शको अपने हृदयमें सदा चिंतन करे ओर सेवा करे तामें चिंता वाधकहे. एक तो यह जो में तो भगवत्सेवा करतहाँ सो मेरे लोकिक को निर्वाह केसे होयगो ? ओर दूसरी यह जो मेरो अलोकिक केसे सुधरेगो ? यह दोय चिंताको त्याग करे, यह ज्ञान मनमें राखे जो श्रु सर्वसिद्ध करिवेमें सामर्थ्युक्त हे प्रभु लोकिकह सिद्ध करेंगे काहेतें जो श्रीगोकुलाधीशहे सो सर्वसामर्थ्यवान हे यह विश्वास हृद्ध करि सदा नियमपूर्वक स्मरण करे. ॥ १ ॥

मूलं-विश्वासस्तत्र कर्त्तव्यो भद्रमेव विधास्यति। स्वदोषादेव तत्रापि दोषस्फ्रित्यतो भवेत्।।२॥

श्रव्दार्थ:-भगवानमें विश्वास करनो, भगवान कल्याणही करेंगे. ओर वार्में दोपकी स्फ़र्ति होय सो अपने दोपतें होयहे ॥२॥ टीका-हढ विश्वास मनमें राखे यह मुख्य विश्वास भावहे काहेर्ते जो विश्वास दढ होय तो भगवद्धर्म थोरोहू वनि आवे तोहू वाको कल्याण होय ओर लोगनकों दिखायवेकों भगवद्धर्म वोहोत करे परि मनमें विश्वास न होय तो धर्ममें फलिसिद्धि नांही होय सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु विवेकधैर्याश्रयग्रंथमें कहेहें 'विद्यास्त्रचातको भाव्यो प्राप्तं सेवेत निर्भमः" (ब्रह्मास्त्र ओर चातककी भावना राखनी (जो अविश्वासर्ते ब्रह्मास्त्र निष्फल गयो ओर चातकको विश्वासहे तो मेघ जल देयहें > ओर ममतारहित होय जो प्राप्त होय तिनकों सेवन करे) यहवाक्यतें जव हनुमान् सीताजीकी सुधि लेनकों लंकामें गर्ये हते तहां राक्षसनके वाग उजारि अनेकराक्षसनकों मारे तव रावणनें इंद्रजितकों पठायो सो इंद्रजितनें पहिलें तो वहोत उपाय कीये परंतु हनुमानजी पकरे नजाय तच पार्छे बह्यास्त्र चलायेक प्रतीति कीनी तब हनुमानजी बह्यास्त्रको माहात्म्य सत्यकरणार्थ वह ब्रह्मास्त्रमें वंधाये तव इंद्रजित हनुमानकों लेकें रावणपास आयो तब रावणनें कही जो एसो वलवान वानरहे जिननें कितनेक राक्षसनकों मारेहे वाकों यह सुत्रके तारमें केस वांध्योहे ? याकों अब छोहकी जंजीरसांकलसों वांधो, तब बह्मास्रके उपर लोहकी सांकलकों वांध्यो याभांति रावणकों अविश्वास भयो तब ब्रह्मास्त्र आपुरी खुटी गयो और हनुमानजीने अपनो स्वरूप बढायो सो सगरी सांकल द्दिगई पाछें लंका सगरी जराई एसे अभिश्वासर्ते बह्मास्त्र नष्ट भयो, और चातक एक स्वांतिके बूंदको विश्वास रासतहें

ओर जलही पृथ्वी उपर नांही जानत ताविश्वासतें घन (मेघ) जड हे तोहू वाको मनोरथ पूर्ण करतहे. तातें वैष्णवकों मुख्य विश्वास चाहियें अविश्वासहे सो आसुरघर्महे ओर विश्वासहे सो भगवद्धर्महे तातें जाके हृदयमें दृढ विश्वास होय ताकों सर्वफलकी प्राप्ति होय. भक्त अपने दोपकों वारंवार विचारे आपनकों दोपरूप जाने दोपकी स्फूर्ति करि मनमें दोपकी भावना करे काहेतें जो अपनों दोपहे ताकों विचारे तो मनमें दीनता आवे जो में महादोपवतहों मोपर प्रभु केसें दया करेंगे? याभांति दोपकी स्फूर्ति होय तो प्रभुकी परम कृपा जानियें सो भगवदीय गायेंहे "माधो हों पतितनको राजा, हों पतितनको नायक, हों पतितनको ईश् याभांति अपनकों सवनतें दोपरूप जाने तब जानियें जो दोपकी स्फूर्ति भई तब दीनता होय ओर तबहि प्रभु कृपा करे।। २॥

मूलं–आर्तिः फलं साधनं च ब्रजाधिपतिसंगमे । अतः सदा तदासँव स्थायतां तत्क्रपायुतेः ॥३॥

शब्दार्थः — ज्ञजके अधिपति श्रीकृष्णके समागममें आति है सो हि साधन ओर सो हि फल हे तासों प्रभुकी कृपायुक्त होय वैष्णवकूं रहेनो ॥ ३ ॥ टीका—प्रभुक्तें मिलवेकी आर्तिहे सो साधनहे वा आर्तिसमान कोउ साधन नांही हे ओर फल्हू आर्तिहे हृदयमें आर्ति होय तो भगवत्सेवा स्मरण सब होय ओर प्रभु कृपाकरि अनुभव करावे. ज्यों ज्यों आर्ति बढे त्यों त्यों अधिक अनुभव प्रभु करावे, तातें आर्तिहे सो ज्ञजाधिपतिके संगम करायवेमें कारणहे सदा विभयोग आर्ति करत करत आर्तिरूप होयजाय तब प्रभु कृपा करे जेसें अभिके संबंधतें नवनीत द्रवीसृत होय तेसेंही विभयोग आर्ति जब होय तब प्रभुको हृदय द्रवीसृत होय सो निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजीमहाप्रमु कहेहें "किशमानाच् जनाच् हृष्वा कृपायुक्तो यदा भवेत् । तदा सर्व सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं विहः" (आर्तियुक्तजनकों देखिकें प्रमु जब कृपायुक्त होय तब सदानंद भग-वान् हृदयमेंसों वाहिर निकसेहे) यह वाक्यतें अति क्षेशसंयुक्त जीवकों देखे तब प्रमु कृपायुक्त होय हृदयमेंतें वाहिर पधारि दर्शन देय तातें आर्तिही पृष्टिमार्गमें साधनहे तथा आर्तिही फलहे जब विषयोगमें तद्र्य होय जाय तब प्रमु कृपा करें ।। ३ ।।

मुलं-अन्याश्रयो महानेव बाधको भीयतां ततः। तत्क्षणेनेव सचेतो विमुखं च विधास्यति॥ ४॥

शब्दार्थः—अन्याश्रय महान्हीं वाधंकहे तासों अन्याश्रयतें डरपनों काहेतें जो (जाक्षण अन्याश्रय भयो ताक्षणमें ही) सत्पुरुपके चित्तकों निश्रय विहर्मुख करेगो ॥ ४॥ टीका—उपर कहे जो विष्रयोग आर्ति ही साधन ओर फल दोउहे तहां अन्याश्रय वाधकहे सगरी आर्तिकों दृरिकरे सगरे धर्मको नाशकरे तातें अन्याश्रयतें सदा डरपत रहनो सो हारितस्मृतिमें कहेहें " नान्यं देवं नमस्क्रयीन्नान्यं देवं निरीक्षयेत् । नान्यत्मसादमद्याच नान्यदायतनं त्रजेत् " (शब्दार्थः—अन्यदेवकों नमस्कार न करनो, अन्यदेवके पंदिरमें नांही जानो) इत्यादि स्मृतिके वचन विचारि अन्यदेवको देखनेह् नांही नमस्कारारिक न करे प्रसाद कल्ल नलेय ओर अन्यदेवको खाध्य करे ताकों विहर्मुख जानियं अपने भावकी रक्षार्थ अपने मनतें वाको वेगिही त्यागकरे काहेतें जो विमुखके एक क्षणह् संबंधतें दुर्चुद्ध उपजतहे सो श्रीगुसाईजी विज्ञतिमें कहेंहें " अहं क्ररंगीहर्गियसंगिनांगीकृतोऽस्मि यत् । अन्यसंबंधगंधोऽपि कंधरामेव बावते " (जासों मे मृगकी दृष्टिसी चपन्यसंबंधगंधोऽपि कंधरामेव बावते " (जासों मे मृगकी दृष्टिसी चपन

लहिष्टवारें ब्रजभक्तनके संगी जो श्रीकृष्ण तिनको अंगीकृतहों तासों अन्यसंवंधकों गंधह मेरी कंधराकोही वाधकरेंहे) यहवाक्यतें भगवद्भ-क्तनकों अन्यसंबंध याभांति वाधकहे. तातें वहिर्मुखजीवको संग छोडि अपने भावकी रक्षा करे निश्चय सिद्धांतहे ॥ ४ ॥

मूलं-तदीयेषु सदा स्थेयं सद्भावेनेव सर्वथा। त एव भक्तिमार्गस्य सहायत्वे निर्कापताः ॥५॥

श्रुट्यार्थः-सदा भगवदीयमें सत्यभावकरिकेंही निश्चय रहनो काहेतं जो भगवदीयहे सो भक्तिमार्गकी सहायतामें निरूपितहे॥५॥ टिका-भगवदीयके संग रहे तो वहिर्मुखता नहोय अन्याश्रयहू नहोय प्रभुमें सुंदरभावहू वढे सर्वथा शुद्धभावसों तदीयको संग करे यह संग प्रभुक् मिलनके अर्थ करे ओर कछ लौकिक वैदिक चाहना न राखे यह भक्तिमार्गर्मे सहायतें भक्ति वढे प्रभु कृपा करे तार्ते तदीयको संग करे सो श्रीभागवतप्रथमस्कंधमें शौनकको चाक्यहे " तुलयाम लवे-नापि न स्वर्ग नापुनर्भवम् । भगवत्संगिसंगस्य मत्यानां किमुताशिपः" (भगवानके संगी भक्तके एकक्षण वरोवर स्वर्गकों के मोक्षकों नांही तुलना करतहे तो मरणधर्मवारे राज्यादिकके मनोरथकों तो केमें तुलना करे ?) भगवदीयको संग एक क्षण होय तासुख समान स्वर्ग वा मोक्ष नांही हे एसो सत्संग हे ओर श्रीभागवत एकादशस्कंधमें श्रीभगवान् उद्भवजीप्रति कहेहे "न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्भव। न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त्तं न दक्षिणा ॥ व्रतानि यज्ञश्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः । यथावरुधे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम् ॥ सत्संगेन हि देतेया यातुधाना खगा मृगाः। गंधर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्वारणगुह्यकाः ॥ वहवो मत्पदं प्राप्ताः स्त्वाष्ट्रकायाधवादयः॥(हे उद्धव! मोक् योग वश नांही करतहे, नांही

सांख्य, नांही धर्म, नांही स्वाध्याय (वेदाभ्यास), नांही तप, नांही दान, नांही कूपारामादिक, नांही दक्षिणा, नांही व्रत, यज्ञ, छंद, तीर्थ, नियम, यम, यह काहू वदा नांही करतहे जेसो सर्वसंगको मिटायवेवारो सत्संग मोक् वदा करे हे. सत्संग करिकें निश्चय देत्य, यातुधान, पश्ची, मृग, गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, वोहोत वृत्रासुर प्रहाद आदि मेरे चरणारविंदकों प्राप्त भयेहे) श्रीभगवान उद्धवजीप्रति कहत हे जो मोक् सत्संग वदा करतहे ओर नांही योग, सांख्य, धर्म, तप, त्याग, नियम, व्रत, यज्ञ, तीर्थ, इत्यादि मोकों वदा नांही करतहे ओर सत्संगके प्रभावतें देत्य, राक्षस, खग, मृग, गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, मनुष्य कोय होय सो तरत भये तातें शुद्धभावसों भगवदीयको संग करे तो पृष्टिमार्गमें भगवदीयके सहायतें भक्ति वढे सो चोराशीवात्तीमें वर्णनहे जो गदाधरदासके आशीर्वादतें तथा संगतें माधोदासकों भक्ति भई ॥ ५॥

मूलं-अस्माकं तु तदीयानां प्रसंगोऽपि सुदुर्लभः। चेतोऽपि साधनाभावाद्विसुखं तिष्ठति स्वतः॥६॥

शब्दार्थः -आपनकों तो भगवदीयको प्रसंगहू अतिदुर्लभहे ओर चित्तहू साधनके अभावसों स्वतः (आपतें) विमुख रहे हे ॥ ६ ॥ र्टाका-हमकों तो तदीय [भगवदीय] को संगतो पहाही दुर्लभ हे एकक्षणहू भगवदीय नांही मिलत एक तो यह दुःख हे, ओर दुसरो चित्तकरि साधन, स्मरण, भावना कछ भगवद्धमं नांही वनत हे तार्ते भगवदीयके संगको अभावहे ओर अक्ले चित्त भगवद्धममें नांही लागत ताकरिकें वहिर्मुखता हदयमें होत हे. प्रभु प्रसन्न करिवेके दोय यह जपायहे एक तो भगवदीयके संगतें प्रभुमें मन लगे तथा संग न होय तो अष्टप्रहर चित्त भगवछीलामें लग्यो रहे तो प्रभु छपाकरे भग- वदीयको अभाव होय ओर मन करि साधनको अभाव होय तब बहिर्मुखता होय सो हमकों वनीहे अब हम कया करें ? याभांति जीवनके अर्थ श्रीहरिरायजी दैन्य करतहे ॥ ६ ॥

मूलं-गतो हि भगवद्दासः स्वकार्याय विदेशके। व्रजपालोऽपि चलितस्तेन में दुःखितं मनः॥७॥

शब्दार्थ:-भगवानदास अपने कार्यके अर्थ विदेश गयो हे ओर अजपालनामको सेवकहू परदेश गयो तातें मेरो मन दुःखितहे ॥७॥ टीका-एक भगवदीय भगवानदास हमारे पास हतो सोहू अपनें कार्यार्थ विदेश गयो ओर अजपालहू परदेशकों गयो ताकरिकें मन दुःखीहे में उनके संगहू न गयो ओर उनकों अपने पास न राखिसक्यों तातें सत्संगविना मन वोहोत दुःख पावतहे ॥ ७॥

मूलं-मिय यद्यपि नास्त्येव किंचित्तत्क्रपया पुनः। यदस्ति तदिपि स्वीयसाधनाभावतो गतम्॥८॥

शब्दार्थः —यद्यपि मेरेमें कछ धर्म नांहीहे तोहू विनकी कुपातें जो कछहे सोहू फेरि अपने साधनके अभावसों गयोहे ॥ [त्वत्कृपया एसों पाठ होय तो तुह्यारि कृपातें एसो अर्थ होयहे] ॥ ८ ॥ टीका — भगवदीय मेरे पासतें पधारे तासों जानतहों जो मेरेमें खेह होतो तो तुह्यारों संग ओर भगवत्सेवा घरहीं में सबहे सो काहेकों छुटते, परंतु मेरे हृदयमें खेह नांही हे तासों ऐसे वनीहे मोमें यद्यपि खेह नांही हे तोहू एक तुह्यारि कृपाको वल हे जो मोपें प्रसन्नहों मोतें लोकिक वेदिक कार्यह नांही वनत तातें गृहस्याश्रमके कामहूको नांहीहों ओर प्रभु प्रसन्नकरिवेके पृष्टिमार्गीय सेवादि धर्म ताकोहू अभावहें सोहू नांही वनत तातें अब में सवओरतें निःसाधनहों ॥ ८ ॥

मुलं-एताहरोऽर्थे संप्राप्ते स हिरिः शरणं मम। ऐहिके परलोके च नैचित्यं तत एव नः॥९॥

शब्दार्थ:-एसो अर्थ प्राप्त भयो तामें सो हरि मेरे आश्रयरूपहे तासोंही हमकों यहलोक तथा परलोकमें निश्चितताहे ॥ ९ ॥ टीका-एसा निःसाधन जो में सो मेरे हरिशरणहि एक गतिहे सो श्रीआचा-र्यजी महाप्रभु विवेकधैर्याश्रयमें कहेहे जो मनमें येही आश्रय करे "ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः" यह लौकिक वैदिक सिद्धि न होयआवे तोहू हरिशरण सर्वथा करे ताकरि सर्वसिद्धि होयंगे तातें हरि चारणकरि सर्वओरतें निश्चितहों अव प्रभु अपनो करि लेहिंगे सो श्री-आचार्यजीमहाप्रभु कृष्णाश्रयप्रंथमें कहेहें " शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम्" (शरणमें रहे तिनको उद्धार करिवेवारे श्रीऋष्णकों में विज्ञप्ति करुंहूं) यह वाक्यतें जो शरणस्थ भक्तहे तिनको उद्धार त्रभु निश्चय करेंगे साधन बने अथवा न वने, सो भगवान् भगवद्गीतार्मे कहेहे "सर्वधर्मान्परिखज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः "॥ (सर्वधर्मकों छोडिकें एक मोकों शरणहो तो में तोकों सर्वपापतें मुक्त करूंगो शोक मित करें) यह वाक्यतें हरिशरण कीयेहे तार्ते यालोकसंबंधी कार्य तथा परलोक दोउ ओरतें निश्चितहों ॥ ९ ॥

मूलं-कदाचिन्मिलनं चेत्स्थात् सद्धाग्येन भवादशाम्। तदा को वेद चित्तस्य परावृत्तिः प्रनभवेत्॥१०॥

शब्दार्थः — मेरे भाग्यतें कदाचित् आप सारिखेको मिछन होयगो तत्र पेरि चित्तकी परावृत्ति (जो पाछो फिरनों सो, अर्थात् जो चित्तमें धर्म हतो सो गयो एसें अष्टमश्लोकमें छिख्यो हे सो चित्तकी परावृत्ति) होय यह कोन जानतहे ? ॥ १० ॥ टीका—हमतो भगवदीयके संग विना एसो दुःख पावतहे और जीवनकों तो कदाचित (कबहूक) भगवदीय मिलतहे तोहू उनके भाग्यमें भगवलीला, भगवतसेवा, पुष्टिमार्गके रसको अनुभव नांही लिख्योहे तातें सत्संगमें उन जीवनको मनही नांही लागतहे काहेतें जो अबही 'पुनरागमन (बहोत जन्म) संसारमें लेनोहे वोहोत अंतरायहे यह कहिकें श्रीहरिरायजी जतायो जो पहिलें तो भगवदीयको सत्संगही दुर्लभहे तोहू कबहूक भाग्ययोगतें आयमिलतहे तब जीवको मन नांही लागतहे तार्ते जाको मन सत्संगमें न लगे ताकों यह जानियें जो अबही या जीवके भाग्यमें अनुभव नांही लिख्योहे अबही यह जीव संसारमें बोहोत भमेगो इनकों अनेक जन्मको अंतराय जाननो ॥ १०॥

मूलं-कियछेष्यं महाचितासमुद्रो हृदि वर्त्तते। स्थितेऽपि शिरसि प्राणनाथे चित्तविभेदतः॥११॥

शब्दार्थः —में कितनो लिखों? जो मेरे मस्तक उपर प्राणनाथ (श्री-ठाकुरजी) विराजतहे तो हू चित्तके विक्षेपतें हृदयमें महाचिताकों समुद्र रहतहे।। ११॥ टीका—जीवकों स्वभाव तथा जीवकी किया देखिकें मेरे मनमें चिंता वोहोत होतहे सो में अपने मनकी चिंता कहांताई लिखों? चिंताको समुद्र मेरे हृदयमें भयोंहे (यह कहि यह जताई जो अपार चिंता हृदयमें समुद्रवत् भरीहे) कागदमें कहांताई लिखों सो चिंता दृरिकरिवेको मेरो सामर्थ्य नांही मेरे मनको सामर्थ्य होतो तो में उपाय करतो तातें एक मोकों भरोंसोहे जो मेरे माथे प्राणनाथ प्रभु विराजतहे सो श्रीआचार्यजीकी कृपातें मेरे चित्तकों शांत करेंगे यह यल मोकोंहे॥ दृसरो अर्थ कहतहे॥ चिंता-

[्] १ पुनरागमनको अर्थ मृत्के अनुसार नांहीहे. २ चित्तको ग्रांत करिवेको अर्थ मुरुके अनुसार नांहीहे.

करिके मेरे प्राण माथे आयरहेहे एसी चिंता हृदयमें समुद्रवतहे तहां श्रीठाकुर जी मेरे प्राणके नाथहे सो प्राणकी रक्षाकरिवेके लीये मेरो दुःख - [चिंताको समुद्र हृदमें उमङ्योहे सो] प्रभुही ज्ञांत करेंगे. या भांति विप्रयोगको अनुभव करतकरत अपने हृदयमें तंन्मयता होय ओर केवल निःसाधनता होय तो प्रभुके खरूपको अनुभव होय ऐसे श्रीह-रिरायजी आज्ञा करतहे. यह निरूपणकरि केवल रसात्मक खरूपको अनुभव कोन प्रकारसों होय? सो आगें शिक्षापत्रमें वर्णन करतहे॥ ११॥

इति श्रीहरिरायजीकृतम् अष्टमं शिक्षापत्रं श्रीगोपे-श्वरजीकृतत्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम्॥८॥

शिक्षापत्र ९.

अव नवमशिक्षापत्रमें प्रेम, आसक्ति ओर व्यसनको खरूप पृथक् निरूपण करतहे. उपरके पत्रमें दीनता करि निःसाधन होय तो अनुभव होय एसें निरूपण कीयो सो अनुभव कोन प्रकार होय? सो आगें कहतहें.

मूलं-कदा निजपतिः ऋष्णः स्वविंवं दर्शयिष्यति । वद्यवर्हशिखं नीलकुंतलावरणाननम् ॥ १ ॥

शब्दार्थः—मयूरिषच्छतें वांधे नीलकुंतलके आवरणयुक्त मुखवारे अपने पित श्रीकृष्ण अपने खरूपको दर्शन कव देयंगे ॥१॥ टीका— श्रीकृष्ण हमारे पित तिनको दर्शन कव होयगो? (श्रीहरिरायजीनें मेरे पित यार्तें कहे जो अजभक्तनके भावभावित हे, अपनो देहानुसंघान भूलिगये हे, अत्यंत विरहतें वह भीतरको भाव वाहिर उमगिकें निक-स्योहे तातें अपने पति कहे तथा श्रीआचार्यजीद्वारा वहसंवंध भयोहे तलसी चरणारविंदमें समपीहे एसें वह्यसंवंधको स्मरणकरि श्रीठाक-रूजी हमारे पति हे एसें कह्यो) सो श्रीकृष्ण अपने स्वरूपको दर्शन कव देयगें? सो श्रीकृष्ण केसेहे मोरके स्वच्छ पिच्छके गुच्छा करिकें मुक्ट संवारि माथे धरेहे ताको अभिप्राय यह हे जो मुक्टको शृंगार हे सो श्रीखामिनीजीके रसदानार्थहे तातें मुक्ट धरेहें सो विगिही दर्शन देयकें रसदान करेंगे, ओर नीठकुंतल (श्याम अलकाविंह) मुखारविंदके उपर आयरहीहे एसे श्रीकृष्ण कव दर्शन देयंगे ? ॥ १ ॥

मूलं—भूधनुःसंधितशरं कस्तूरीचित्रकांकितम्। इन्दीवरदलाहेर्ह्यविशालनयनद्वयम्॥२॥

शब्दार्थः—अकुटिरूप धनुपमें सांध्योहे शर (वाण) जिननें ओर कस्तरींके चित्रकरिकें चित्रित तथा कमलदलतें वडे विशाल दोय नेत्र हे जिनके (अठारे श्लोकताई स्वरूपवर्णन हे जो एसे स्वरूपको दर्शन कव देहिंगे यह पूर्वश्लोकमें संबंधहे)॥ २॥ टीका—अकुटी धनुपकी नाई तहां रसरूप कस्तूरीको तिलक तथा कपोलनमें कमलपत्र ओर धनुपवाण ले हमारे मनकों कव मारेंगे ओर कमलके पत्रवत् वडे अति विशाल दोल नेत्रकरि दर्शनदेय हमारे तापकों कव हरेंगे ?॥ २॥

मुलं-मौक्तिकाभरणालंबिसुनासं सरसाधरम् । त्रिरेखकंठविलसत्कंठाभरणभूपितम्॥ ३॥

शब्दार्थः – मोतिनके आभरणकों आलंबिहे सुंदर नामिका जिनकी, सुधारससहित हे अधर जिनके, तीन रेखायुक्त कंठमें विशेष शोभित जो कंठाभरण ताकरिकें भृषित है ॥ ३ ॥ टीका – मुक्तानके नकवेसर करिकें युक्त एसी लंबी जो नासिका सो अत्यंत सुन्दर दीसत है ता नक्वेसरको मोती परम शोभा देतहे सो परमशोभायमान उज्वल अरुण अधरपर आयरह्योहे सो मानों श्रीस्वामिनीजीको निर्विकार भाव अधरस्याको पान करतहे, कंठमें तीन रेखाहे ताकरि सात्विक, राजस, तामस तीन प्रकारके भक्तनकी स्थितिहे अथवा त्रिलोकी मोहित होतहे. ओर श्रीकंठमें कंठाभरण (कंठसरी) आदि सोहतहे एसे श्रीकृष्ण हमकों दर्शन कव देयंगे ? ॥ ३ ॥

मूलं-प्रकुछगछयुगलं चिबुकाभरणान्वितम् । सुवर्णसूक्ष्ममणियुक्वनमालाविराजितम् ॥ ४॥

राब्दार्थः - प्रफुछितहे दोय गछ जिनके, चिन्नक भूएण करिकें युक्त हे ओर सुवर्णके सूक्ष्ममिणकायुक्त वनमालाकरिकें विराजितहे ॥ ४॥ टीका - दोउ गछस्थल प्रफुछितहे सो युगलगीतमें वर्णनहे "वदरपांडव-दो महुगंडः" (पके वर जेसो श्वेतहे मुखारिवंद जिनको ओर कोमलहें गंडस्थल जिनके) जेसें पके वेरमें शुक्त चंचू मारे तेसें इहां श्रीस्वामिनीजी अधरसुधाको अनुभव करे तहां रसके आधिक्यतें अधरतें स्वतहे सो श्रीचंद्रावलीजी अनुभव करे तहां रसके आधिक्यतें अधरक्की टीकामें वर्णनहे एसो चिन्नक विराजितहे. सोनेके छोटे मिनकाकी मालासों कंठ विराजितहे एसे श्रीकृष्ण कव दर्शन देयंगे १॥ ४॥

मूलं-उरःस्थललसत्स्वच्छवकवैयाघवाहुजम् । रत्नव्यवहितस्थूलमुक्तामालांचितोदरम् ॥ ५॥

शब्दार्थः-उरःस्थलमें शोभितहे स्वच्छ टेडे वाघनखा जिनकों ओर रत्नके व्यवधानयुक्त वडे मोतिनकी मालाकरिके पूजितहे उदर जिनको ॥ ५ ॥ टीका-उरःस्थलपर उज्वल वाघनखा वक्र लसतहें सो प्रसिद्ध तो यह अर्थ जो श्रीयशोदाजी वालककी रक्षार्थ धरायेहे तथा श्रीस्वामिनीजीको नखक्षत उरपर भावसहित धरेहे, रतकिर गृहित नवरत्नयुक्त वडी माला (जाको वैजयंती माला कहतहे सो) समस्त भक्तनके भावसों विराजितहे और वडेवडे मोतिनकी माला उदरपर विराजितहे एसे श्रीकृष्ण कव दर्शन देयंगे? ॥ ५॥

मुलं-सुवर्णक्विममणिस्थुलमालातिसुंदरम्। गुजाफलमहन्मालालसद्दर्यगांतरम्॥६॥

शब्दार्थः — सुवर्णके कृत्रिम मणिकातं स्थूल एसी जो माला ताकरिकें सुंदर और गुंजाकी वडी मालाकरिकें शोभितहे दोड़ उरको मध्यभाग जिनको ॥ ६ ॥ टीका — सोनेके कृत्रिम मणिकाकरि गूंथी परम सुंदरमाला पेहिरेहे गुंजामाला श्वेत सुंदर गूंथेहे तामें चतुर्थ-स्वामिनीजीके यूथपतिके भावसों पहरिहे मोहनमाला सो उरु जो घुदुताई पहिरेहे एसे श्रीकृष्ण कव दर्शन देहिंगे ? ॥ ६ ॥

मूलं-अनेकरत्नजिटतकरकंकणभूषणम् । बाहुमध्यलसत्स्वर्णनिर्मितप्रिथितांगदम् ॥ ७॥

शब्दार्थः—अनेक रत्नकरिकें जिटत श्रीहरतमें कंकणको हे आभूपण जिनकें ओर वाहुके मध्यमें शोभित तथा सुवर्ण (रत्नादिक) करिकें बनाये विस्तारवारेहे वाज जिनके ॥ ७ ॥ टीका—अनेक रत्नकिर जिटत एसे कंकण दोड हस्तमें पहिरेहे ओर दोड भुजानमें अंगद (वाज) सोनेके रत्नजिटत विराजितहे एसे श्रीकृष्ण कव दर्शन देयंगे ? ॥ ७ ॥

मूलं-अनेकपुष्पतुलसीवनमालातिलालितम्। विचित्रवर्णविलसत्किटिवासोविराजितम्॥ ८॥

शब्दार्थः—अनेक हे पुष्प ओर तुलसी जामें एसी वनमाला करिकें वोहोत शोभित हे, ओर विचित्र वर्णवारे शोभित जो कटिवस्र ताकरिकें विराजित हे ॥ ८॥ टीका—अनेक प्रकारके पुष्प तुलसी-सहित प्रथित एसी लिलत वनमाला विराजित हे, सगरे व्रजभक्तनके भावसों पंचरंगकी अति विचित्र कटिवास (कालनी) धरेहें सो प्रभु सहित चतुर्थ यूथपतिके भावसों कटिपर विराजित हे एसे श्रीकृष्ण कव दर्शन देयंगे ?॥ ८॥

मुलं-किटभावज्ञापिकातिकिकिणीरवशोभितम्। पदद्वयगतस्वर्णमणिनूपुरमंहितम्॥९॥

शब्दार्थः—कटिके भावकों जतायवेवारे किंकिणीके शब्द करिकें शोभित हे, ओर दोय चरणारविंदमें धरे सुवर्णमें जटित मणियुक्त नूपुर करिके मंडित हे ॥ ९ ॥ टीका—कटिमें किंकिणीके रव शोभित हे ता रवकरि व्रजभक्तनकों अनेक रमणादिक लीलाके भावको सूचन करावत हे. दोय चरणकमलकी चाल परम सुंदर हे तिनमें मणिजटित सुवर्णके नूपुर सोहत हे एसे श्रीकृष्ण कव दर्शन देयंगे ? ॥ ९ ॥

मूलं-नखचंद्रप्रकारोकप्रकाशितजगत्त्रयम् । पीतांबरोत्तरीयेषचलदंचलसुंदरम् ॥ १०॥

शब्दार्थः—नखरूप चंद्रके प्रकाशनें मुख्य प्रकाशित हे तीन जगत जिननें, ओर पीतांवरको जो उत्तरीयवस्न सो थोरोसो चलायमान अंचल ताकरिकें सुंदर हे ॥१०॥ टीका—नखचंद्रकें प्रकाशकरि तीन्यो जगतको प्रकाश करतहें आकाश, पाताल, भूलोक यह तीन्यो लोकमें जो भक्त हे तिनके हृदयमें प्रकाश करत हे ओरके हृदयको नखचंद्र प्रकाश नांही करतहे सो भक्त केसेंहे जाने एक श्रीठाकुरजीके चरणारिवें- दको आश्रय कीयो है तिनके हृदयमें नखचंद्र प्रकाश करत है तथा यह लिलत त्रिमंगि स्वरूप श्रीवृंदावनमें स्थित है तिनको अनुभव एक जजभक्तनकों हे सो राजसी, तामसी, सात्तिकी एमें त्रिगुण भक्त है तिनके हृदयमें यह नखचंद्र प्रकाश करत है ओर पीतांवर सो ब्रज-भक्त श्रीस्वामिनीजीके उत्तरीयभावसों धारण कीये हे सो उत्तरीयके दोड अंचल मंद सुगंध वायुकरि चलायमान हे ॥ १०॥

मूलं-प्रदर्शितशिरोभेदं चलन्मकरकुंडलम् । नृत्यंतं नयनानंदं नितांतरितसंप्रदम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थः— वतायोहे मस्तकको भेद जिननें, चलायमान मकराकृति हे छंडल जिनके, नृत्य करतहें, नेत्रमेंहे आनंद जिनकों, ओर निरंतर रितकों देवेवारे ॥ ११ ॥ टीका—मस्तकके दोन ओर सुंदर श्रवणमें मकराकृति छंडल धारण कीये हे सो सांख्ययोगको स्वरूप हे एसे श्रीकृष्ण नृत्य करत हे ताकिर ब्रजभक्तनकें नयनकों परम आनंद देत हे भक्तनकों रितरसको अनुभव करावत हे ॥ ११ ॥

मूलं-नितंबिनी टंदवर्तिरसातुभवलोलुपम्। विहरंतं विशेषण रासलीलापरायणम्॥ १२॥

शब्दार्थः नव्रजभक्तनके बुंदमध्य विराजित हे ताकरि इनके रसानुभवकरिकें छुव्धहे, विहार करतहे और विशेषकरि रासलीलामें परायणहे अथवा रासलीलाको उत्तम हे स्थान जिनको एसे हे।। १२।।
टीका-बजभक्तनके बुंदमें प्रभु विराजमानहे सो भक्तनकों रसानुभव
करायवेमें परम चंचलहे सो यातें जो एककालाविन्छन्न समस्त ज्ञजभकनकों दान करतहे रासादिकलीला करिवेमें प्रभु परमचतुरहे।।१२॥

१ नृत्यमें मस्तक चलायमान होय है.

मूलं-त्रिमंगलितं वेणुकलितं भुजयोरिप। वृंदावनेकफलितं विलतं स्वजनेः सह ॥ १३ ॥

शब्दार्थः-त्रिभंगस्वरूपहे तासों मनोहरहे, दोउ भुजमेंहू वेणु धारणकीये, चृंदावनके मुख्य फलरूपहे ओर स्वभक्तजनसहित मिलि-तहे ॥ १३ ॥ टीका-याभांति त्रिभंग स्वरूपकिर दोउ भुजानसों वेणु-नाद करतहे सो श्रीवृंदावनके फलात्मक स्वरूप श्रीवृंदावनमें सदा विराजमानहे अपने स्वजन (ज्ञजभक्तन) किरकें वेष्टितहे याभांति. लीलासहित स्वरूपके प्रभु मोकों कव दर्शन देयंगे ? ॥ १३ ॥

मूलं-वादयंतं मुरिक्कां मोहयंतं मनः सताम् । जगज्जदं प्रकुवतं रोधयंतं च भक्षणम् ॥ १४॥

शब्दार्थः — मुरलीको नाद करतहे, सत्पुरुपके मनकों मोह करतहे, जंगमकों जड करतहे ओर पशुआदिके भक्षणको रोध करतहे ॥१४॥ टीका — सुंदर सप्तसुरतकी मुरलिका वजायके समस्तभक्तनके मनकों मोह करतहे. श्रीवृंदावनमें स्थित पशु, पिक्ष, वृक्षादिकनकों मोह उप-जावतहे, जडहे तिनकों चेतन ओर चेतन हे तिनकों जड करतहे सो पशुपिक्ष चैतन्ययुक्तह सो जड होयकें स्थितहे एसें रिह वेशुनादा-मृतरसको पान करतहे ओर वृक्षपर्वतादि जडहे सो चैतन्ययुक्त होय मधुधारा वहतहे ॥ १४॥

मूलं-पश्चनां पक्षिणां चैव मौनसंपादकं तथा। तरूणामंतरानंदमधुधारेकवार्षकम्॥ १५॥

शब्दार्थः-जब वेणुनाद करतहे तब पशु पिक्षनकों मौन करिवेवारे, ओर वृक्षनके मध्यमें आनंद करिकें मधुधाराको वर्षण करायवेवारे ॥ १५॥ टीका-पशु पिक्ष वेणुनाद सुनिकें चंचलता छोडि मौन होय रसपान करतहे यह आधिदैविक श्रीवृंदावनके मुनिहे. पुष्टिलीलासंवं-धि वृक्षादितें मधुकी धारा वरपतहे सो अंतःकरणमें भगवदीयनकों जव भगवत्स्वरूपको अनुभव होय तव आनंदतें देहमें पुलकाविल होय सो श्रीवृंदावनके वृक्षहे सो परमभगवदीयहे सो वेणुनादरस अमृतको हदयमें अनुभव करि अंतःकरणमें आनंद पाय मधुधारा स्रवतहे ॥ १५॥

मूलं-हरंतं व्रजभूतापं पदस्थापनतस्तथा। यमुनातीरमावैकजलकोडाकृतिप्रियम्॥ १६॥

राव्दार्थः -चरणारविंदके स्थापनतें ज्ञजकी भूमिके तापकों हरिवेवारे तथा श्रीयमुनाजीके तटमात्रमें मुख्य जलकी डाकी छतिहे प्रिय जिनकों ॥ १६ ॥ टीका -याभांति रासादिकलीला ज्ञजभूमिमें करि ज्ञजभूमिके तापकों हरतहे तथा ज्ञजमें उत्पन्न भये सर्व प्राणिके तापकों हरतहे अथवा ज्ञजमें अपने चरणारविंद स्थापनकरि सगरी गुल्मलता ओपिधआदिके तापकों हरतहें अथवा ज्ञजमें सवठोर चरणचिह्न स्थाप-नकरि यह जतावतहे जो कोज ज्ञजको आश्रय करेगो तिनकोहू ताप द्रि होयगो यामांति रासलीला अनेकमक्तनसों कीये तव श्रमजल भयो तव श्रीठाकुरजी जानें जो यह मक्तनसिंहत श्रमजलहे यह रस कहां देनो ? पार्छे विचारे जो यह रसके पात्र श्रीयमुनाजीहे एसें जानि मक्तनसिंहत श्रीयमुनाजीमें पधारे सो अपनी प्रिया श्रीखामि-नीजीसिंहत जलकीडा करत भये. यामांति श्रीयमुनाजीकों पात्र जानि रसदान कियो, जलकीडा करि श्रमको निवारण कीयो एसे श्रीकृष्ण कव दर्शन देयंगे ? ॥ १६ ॥

मूलं-रसात्मकरसात्मस्यभक्तवृंदसमन्वितम्। निजानुभवसंवेद्यं प्रकटतं क्षणे क्षणे॥ १७॥ शब्दार्थः — आप रसात्मक ओर रसात्मक अपने भक्तनके वृंद ताक-रिकें युक्तहे, तथा अपने भक्तनके अनुभवार्थ सेवाज्ञानकों क्षण क्षणमें प्रकट करिवेवारे ॥१७॥ टीका—रसात्मक श्रीकृष्णहे तेसेंही श्रीकृष्णके आत्मारूप रसात्मक व्रजभक्तनकों अनुभव करावतहे. क्षणक्षणमें अधिक प्रकट धिक रसदान करतहे ताकरि भक्तनको भावह क्षणक्षणमें अधिक प्रकट होतहे एसे रसदानकर्ता श्रीकृष्ण प्रमु कव दर्शन देयंगे? ॥ १७ ॥ मूळं—विरहे युगपत्सर्वनिजळीळानुभावकम् । साकारानंदरूपेण व्रजभक्तहदि स्थितम् ॥ १८॥

राव्दार्थः —िवरहमें एककालाविच्छन्न अपने भक्तनकों अपनी लीलाको अनुभव करायवेवारे, ओर साकार आनंदरूप करिकें व्रज-भक्तनके हृदयमें विराजमानहे ॥१८॥ टीका—एसे भावात्मक रसात्मक श्रीकृष्ण सो केवल शुद्ध विरह करे तब अपनी निजलीलाको अनुभव करावें सो जीव सगरे दिनरात्रि केवल विप्रयोग आर्तिकरि शुद्धहृदय होय तवही निजलीलाको अनुभव होय सो निजभक्त श्रीस्वामिनीजीहे तिनकों विप्रयोगहे तिनहींकों यह लीलाको अनुभवहे एसे भावात्मक श्रीकृष्णहे सो व्रजभक्तनके हृदयमें साकार आनंदरूप सर्वलीलासंयुक्त विराजत हे काहेतें जो रसको स्वभाव हे जो पात्र विना रहे नांही सो रसात्मक साकार आनंदरूप श्रीकृष्णहे ता रसके पात्र व्रजभक्तहे तार्ते व्रजभक्तनके हृदयमें विरहरसात्मक प्रभु स्थिर रहतहे ॥ १८॥ मूलं-एवं दिदक्षा सततं स्थापनीया निजे हृदि ।

सेवास्माकं प्रेमभावोऽन्यरागविनिवर्त्तकः ॥१९॥ शब्दार्थः-उपर अठारे श्लोकमें निरूपण कीये एसे स्वरूपके दर्शन करिवेकी इच्छा अपने हृदयमें स्थापन करनी यहही अन्यमें प्रीति मिटायवेवारो अपनो प्रेमभाव जाननो ॥१९॥टीका एसे श्रीकृष्ण- के दर्शनकी इच्छा जाके मनमें होय सो निरंतर अपने हृदयमें यह स्वरूपको ध्यान किर स्थित करे, तहां कोई कहे जो तुह्यारे हृदयमें तो एसे प्रभु स्थित हे ध्यान किर तुम हृदयमें स्थित कीये हे तहां कहत हे जो मेरे हृदयमें प्रेमको अभाव हे, मेरेमें प्रेम नांही हे ओर यह स्वरूपतो प्रेमकिर धारण करे तब होय ओर मोकों तो अन्यराग-निवृत्तिही दुर्छभ हे तातें में तो अन्यरागनिवृत्तिकरिकें रहित हों. तहां कोई कहे जो तुह्यारेमें प्रेम तो दीसत हे, स्वरूपको वर्णन कीयेहे, प्रभुमें आर्तिहू हे, प्रभुमें आसक्तिहू हे, पुष्टिमार्गकी सगरी रीति हे, ताप्रमाण चलतहो तुमकों कहा वाधक हे? तहां कहत हे ॥ १९॥

मूलं-नतः स्यादात्तिराधिका गेहदैहिकवाधिका। आसत्तिः सेव मार्गेऽस्मिन् गृहस्थास्वास्थ्यकारिका२०

शब्दार्थः - प्रेमभाव भये पीछें गृहकार्य तथा देहकार्यकों वाधकरिवे वारी आसक्ति होय, यह पुष्टिमार्गमें गृहस्थको अस्वास्थ्य करिवेवारी सोहीहे।। २०॥ टीका - हमकों गृहदेहसंवंधी छोकिक आर्त्ति हे सो यह भगवद्भावमें वाधक हे, काहेतें जो देहसंवंधी घर तामें छोकिक वैदिक कार्य हे ताकी आर्त्ति मनमें रहत हे सो वाधक हे ओर यह पुष्टिमार्गमें आसक्ति हे सो परमधमें हे सो जाकी आर्त्ति प्रभुपर है सो गृहस्य घरमें केसें स्वस्थ रहे? गृहमें स्वस्थ जाको मन हे सो यह पुष्टिमार्गमें कोन भांति स्वस्थ होयगो? यह किकें यह जताये जो जाकी आसक्ति प्रभुमें हे तासों देहसंवंधी छोकिक-वेदिक-किया भिल्मांतिसों न वनेगी।। २०॥

मूलं-परितापोदयस्तस्मात् सर्वविस्मृतिकारकः। स एव व्यसनं यत्र प्रपंचस्फूत्तिनाज्ञनम्॥२१॥

१ प्रेमके अभाव ओर अन्यरागकी निरुत्तिको अर्थ मूलके अनुसार नांही है.

राब्दार्थः -यह आसक्तितं सर्व (प्रांचकों) विस्मृति करिवेवारे परितापको उदय होय जामें प्रपंचकी स्फूर्तिको नाश होय सोही व्यसन कहिये।। २१॥ टीका-उपर कहे ताभांति प्रभुमें आसक्ति होय तव प्रभु दया करि आर्तिदान करे तो विषयोग होय, सो विषयोग भयो कव जानियें? जब प्रभुसंबंध विना देहसंबंधी सर्वकार्यकी विस्मृति होय तब विषयोग भयो जानियें. पाछें प्रभुमें व्यसन होय सो प्रभुविना रह्यो न जाय एकक्षण युगसमान जाय यह व्यसनको स्वरूपहे ताव्यसनकरिकें प्रपंचकी स्फूर्तिको नाश होय केवल प्रभुपर तन्मयता होय।। २१॥

मूलं-एवंविधस्तु त्रिविधो भावो निःसाधनो मतः। अतस्तु दुर्लभा लोके तत्प्राप्तिर्भजतां नृणाम्॥२२॥

शब्दार्थः - एसं (प्रेम, आसक्ति, ओर व्यसन) तीनप्रकारको भाव निःसाधन कह्योहे तासों भगवत्सेवा करिवेवारेनकों एसं भावकी प्राप्ति लोकमें दुर्लभ हे ॥ २२॥ टीका - याभांति मन वचन किया करि तीनप्रकारको भाव सिद्ध होय तव निःसाधन होयजाय सो याभांति निःसाधन होनो यालोकमें दुर्लभ हे, निरंतर जो श्रीकृष्णकी सेवा कीयो करे तव निःसाधन होय॥ २२॥

मूलं-चक्रे करणया कृष्णो भावात्माऽग्स्यं तथाविधम् । मूर्तिमद्भावसंबंधात्तत्प्राप्तिरिति वेद यः ॥ २३॥

शब्दार्थः-श्रीकृष्ण करुणाकरिके भावात्मक मुखारविंदरूप तेसें श्रीमदाचार्यजीकों प्रकट कीये अथवा भावात्माख्यं 'एसें पाठ होय तो भावात्माहे नाम जिनको एसे श्रीआचार्यजीकों प्रकट कीये,

र मन वचन कियाको अर्थ मूलके अनुसार नांही हे, शन्दार्थ रत्नभट्टकी टीकाके अनुसार हे.

मृतिंमान् भाव जो श्रीआचार्यजी तिनके संवंधतें यह तीनभावकी प्राप्तिहे एसें जो जानत हे तिनकों ताभावकी प्राप्ति होय हे।। २३॥ टीका—यह भाव विधिपूर्वक कव सिद्ध होय? जव श्रीकृष्ण भावात्मके मुखारविंदरूप श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीकी कृपा होय तव भाव सिद्ध होय. भाव सिद्ध भयो कव जानिये? जव श्रीकृष्णस्वरूप मृतिंमान्हें यह भाव सिद्ध रहे जो येही साक्षात् श्रीकृष्ण भावात्मक हमारे पतिहें यह मन वचन कियाकरि भाव होय तव प्राप्त होय. यह भाव केरें होय सो आगें कहतहें।। २३॥

मूलं-प्रमेयबलतो नान्यत्साधनं तत्र भाव्यताम्। अतः सर्वैः प्रकर्त्तव्यो निजाचार्यपदाश्रयः॥२४॥

शब्दार्थः —यह भावमें प्रमेयवल विना और साधन नांहीहे एसे जाननों तासों सर्वकों अपने श्रीआचार्यजीके चरणारविंदको आश्रय विशेषकिर कर्त्तव्य है।। २४॥ टीका—श्रीकृष्णके स्वरूपमें एसो भाव जीवके साधनतें न होय, श्रीकृष्णही प्रमेयवलतें भावको दान करे तबही भाव होय तातें पुष्टिमार्गकी रीतिसों तन मन धनसों प्रीतिसहित सेवा करे अपने श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके चरणकमलको आश्रय करे तो श्रीआचार्यजी प्रमेयवलतें भावदान करे तातें मार्गकी रीतिसों सेवा ओर श्रीवलमाचार्यजीके चरणकमलको आश्रय यह निश्चय मन लगायकें कर्त्तव्य हे यह सिद्धांत सर्वोपर हे।। २४॥

मूलं-तदभावे न वे भावि फलमेतन्न संशयः। अतएवास्मदीशेस्तु ग्रंथे श्रीवछभाष्टके॥ २५॥ स्वामिन्!श्रीवछभेत्येतत्पद्येशिखलमुदीरितम्। तदाश्रयो न वचनैः किं तु तन्मागीनेष्ठया॥२६॥

शब्दार्थ:-मार्गकी रीतिसों सेवा ओर श्रीआचार्यजीके चरणकम-लको आश्रय यह दोजको अभाव होय तो भावरूप फल नांही होय यामें संशय नांही, तासोंही अपने प्रभु श्रीगुसांईजीनें तो श्रीब्छभाष्ट-कर्में 'स्वामिन् श्रीवलभामें" यह श्लोकर्मे सर्व निरूपण कीयोहे. सो विनको आश्रय केवल वचनकरिकें नांही होयहे किंतु विनर्ने प्रकट कीये एसें प्रिष्टमार्गमें निष्ठा होय तब आश्रय सिद्ध होय॥२५,२६॥ टीका-उपरकहे ताभांति श्रीआचार्यजीके चरणारविंदको आश्रय करि भगवत्सेवा करे तब श्रीआचार्यजी भावदान करे तव भावात्मक रसमें तद्र्प होयजाय तव यह पुष्टिमार्गीय फलकी निश्चय प्राप्ति होय. संशय नांही सो हमारे श्रीगुसांईजी वल्लभाष्टकमें कहेहे ॥ २५॥ "स्वामिन् श्रीवस्त्रभामे क्षणमपि भवतः सन्निधाने कृपातः प्राणप्रेष्ठव्रजाधीश्वर-वदनदिद्दक्षार्त्तितापोजनेषु । यत्रादुर्भावमामोत्युचिततरमिदं यत्तु पश्चादपीत्थं दृष्टेऽप्यस्मिन्मुखँदौ प्रचुरतरमुदैत्येव तिचित्रमेतत् " (हे स्वामिन् श्रीवस्रभरूप अमि क्षणहू आपके समीपमें (आपकी) कृ-पार्ते प्राणिप्रय श्रीव्रजाधीश्वर श्रीकृष्णके मुखारविंदके दर्शनकी इच्छाकी आर्ति भक्तजनन्में प्रकट होयहे सो अत्यंत युक्त हे, परंतु जो पाछेंहू यह मुखारविंदरूप चंद्र दृष्ट भयेहू (यह आर्ति) अत्यंत उत्पन्न होयहे यह आश्चर्यहे) इत्यादि वचनकरि यह वचनके अनु-सार आश्रय ओर यह पुष्टिमार्गमें निष्ठा होय तव सगरी लीलाको अनुभव होय सो आश्रय ओर मार्गमें निष्ठा कोन प्रकार होय सो आगे कहतहे ॥ २६ ॥

मूलं-मार्गनिष्ठा न स्ववाधः किं तु ताह्यगुरूदितेः। गुरूदितानि वाक्यानि न स्वतो ह्यतुवादतः॥२७॥ क्र वंचनामृतसों होय, ओर यह वचनामृत अपनी बुद्धिपरिकल्पित न होय परंतु पुष्टिमार्गके सिद्धांतके अनुवादरूप होय ॥ २७ ॥ टीका—पुष्टिमार्गमें निष्ठा गुरुके बोध कीयेविना न होय जब गुरु प्रसन्न होय कृपा करिकें बोध करे तब मार्गमें निष्ठा होय ओर यहजीवकों गुरुके वचनमें दृढ विश्वास होय, विश्वासकरि गुरुके वचनकों वारंवार अर्थसहित भावना करे अपने मनसों अर्थभावना न होय तो ताह-शीय वैष्णवसों मिलिकें गुरुके वचनको अनुवाद करे वारंवार भावना करे ॥ २७ ॥

मूलं-अनुवादो न स्वबुद्धया कि तु मूलक्रमागतः। अथापि तत्र चापेक्ष्यो दृहः स्वाचार्यसंश्रयः॥२८॥

शब्दार्थः — अनुवाद अपनी बुद्धितं न करनो किंतु मूंलक्रमतं प्राप्त अर्थ करनो, ता पीछेंहू यामें अपने श्रीआचार्यजीको दृढ आश्रय चा-हियें. ॥२८॥ टीका-गुरुके बचनको अनुवाद अपनी बुद्धितें कल्पना किर न करे जो मूलक्रमतं श्रीआचार्यजीमहाप्रभु सुवोधिनीजी नियं-धादि ग्रंथ कीयेहे ताको भाव विचारे तो श्रीमहाप्रभुजीकी कृपातें श्रीसुवोधिनीजी आदिमें जान्यो जाय सो श्रीआचार्यजीके चरणारविंदको दृढ आश्रय होय तव श्रीआचार्यजी कृपा करे तातें श्रीआचार्यजीके च्रणारविंदको दृढ आश्रय करि श्रीसुवोधिनीजी नियंधमें जाक्रमसीं भावहे ताक्रमसीं अपने हृद्यमें भावना करि सेवा करे ॥ २८ ॥

२ एतन्मार्गीय विद्वान् जो पारंपर्यते गुरुके मुखते वा ग्रन्थानुवादको आश्रय वानते आये होय सो हि अर्थ मान्य करनो एसो श्लोकको अभिन्नाय है।

१ श्रीआचार्यजीके प्रकट कीये पुष्टिमार्गीय सिद्धांतके ग्रन्थ यहां "वचनामृत" गुन्दसे लिये जायहे, ताम्रं गुरुकी आज्ञाह अपने मनमें आवें एसी न होय किन्तु श्री आचार्यप्रकटित ग्रन्थानुसार होय. ग्रन्थको अर्थह अपनी बुद्धिपरिकल्पित न करें किन्तु इनके (टीकाकार श्रीपुरुषोत्तमजी प्रभृतिने कीये अर्थके) अनुवाद्द्धप करें।

मूलं-एताहरोन ग्रहणाऽवगत्य निखिलं जनः। आश्रित्य च निजाचार्यान् सदानंदं सदा भजेत्॥२९॥

शब्दार्थ:-भक्तजन एसे गुरुतें सर्व जानिकें अपने श्रीआचार्यजीको आश्रय करिकें सदानंदरूप श्रीऋष्णको सदा भजन करे ॥ २९॥ रीका-याभांति कोई वैष्णव गुरुकी आज्ञाप्रमाण समग्र जानिक चले तो श्रीआचार्यजी महाप्रभु अपनो आश्रय निश्रयही देंहि यामें संदेह नांही. सदा आनंदरूप "श्रीआचार्यजीहें यहभावसों भजनकरे ओर लोकिक वैदिकर्मे आनंद तुच्छहे सदा नांही. लोकिकर्मे विपयादिसुखं ताकरि नरकमें जाय ओर स्वर्गादि सुख सो पुण्य क्षीण भये संसारमें परे दुःखी होय ओर श्रीआचार्यजी सदा एकरस आनंदरूपहे सो श्री-ग्रुसाइजी सर्वोत्तमजीमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके नाम कहेहें "आनं-दाय नमः" "यरमानंदाय नमः" इत्यादि वचनके भावसों जाननें ओर श्रीआचार्यजीकी नामावलीमें नामहे " आनंदमूर्त्तये नमः " "यह श्री-आचार्यजीको स्वरूपहे सो मूर्तिमान् आनंदमयहे सदा एकरस हे या-भांति प्रेमर्सो भजन करे." तहां कोई कहे जो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुके यह पुष्टिमार्गमें सगरे जीव श्रीआचार्यजीको आश्रयकरि सेवा करतहें . ओर तुम कहे भावसों भजन करे सो कहा? तहां कहतहे ॥ २९ ॥ मूलॅ-भजनं भावरूपस्य भावेनेवोपपद्यते।

चेतस्तत्प्रवणं सेवा ह्यत एव निरूपिता ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—भावरूप श्रीकृष्णको भजन (सेवा) भावकरिकेंही प्राप्त होयहे तासोंही श्रीआचार्यजीमहात्रभुनें सिद्धांतमुक्ताविरुमें प्रभुमें चित्त प्रवण (छीन) होय सो सेवा एसें निरूपण कीयेहे ॥ ३०॥

१ मृलमें सदानंद शब्द हे ताको अर्थ श्रीकृष्णपर (रत्नभट्टजीकी) टीकाके अनुसारहे और यामें श्रीआचार्यजीपर लिख्योहे तामूं जितनो विशेपहे वहां " " एसे चिह्न कीयेहे सो काहुने भावसों लिख्योहे एसो अनुमान होयहे.

टीका-भजन सेवा सो भावसों करे काहेतें जो भावविना आगें मानसी फलरूप न होय तातें तनुजा-वित्तजा भावसों करे तब फलरूप मानसी सिद्ध होय. सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु सिद्धांतमुक्तावलिग्रंथमें कहे हैं "कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता" (सदा श्रीकृष्णकी सेवा करे तिनकों मानसी सेवा सिद्ध होय " चेतस्तत्यवणं सेवा तिसद्धचे तमुवित्तजा" (चित्त प्रभुमें एकाग्र होय सो सेवा, ताकी सिद्धिके लीये तनुजा तथा वित्तजा करनी) जेसें नदीको प्रवाह रात्रिदिवस एकरस चले ताभांति अष्टप्रहर चित्तमें मानसी (तिनकों साधिवेवारी तनुजा वित्तजा भाव करि करे तब) सिद्ध होय. तनुजा वित्तजाहू भावसहित मन लगायकें करे तबही वने तब सिद्ध होय याभांति श्रीआचार्यजी निरूपण कीयें हे, मानसी सिद्ध भई होय तिनके लक्षण केसें जानियें? तहां कहत हे।। ३०॥

मूलं-तस्यां तु विस्मृतिर्भाव्या जगतः सर्वथा ध्रुवम् । तदभावे मानसी तु सेवनान्नेव सिख्यति ॥ ३१॥

शब्दार्थः -यह मानसीसेवामें तो सर्वथा जगतकी निश्रह विस्मृति होनी चाहियें, ताके अभावमें सेवनतें मानसी सिद्ध नांही होय ॥३१॥ दीका - तनुजा वित्तजा सेवा मन लगायकें करे तो सगरे जगत, देह-संवंधी पदार्थकी विस्मृति होय मानसी सेवाको यह भावहे जो सगरे जगतकों सर्वथा भुलावे यह निश्रय जाननों अपनों देहानुसंधान खान-पान निद्रादि सब भूलिजाय याभांति भावाविष्ट होय मनमें सेवाकरि स्वरूपानंदको अनुभव करे तब जानियें जो भावरूप मानसी सेवा सिद्ध भई सो प्रथम तनुजा वित्तजा सेवाह दुर्लभहे तहां मानसी कहांते सिद्ध होय ? तातें तामें वाधकहे सो कहतहें ॥ ३१॥

मूलं-तद्वाधकानींद्रियाणि विषया लोकिकी मतिः । प्रतिबंधस्तथोद्वेगो भोगोऽप्यत्रैव लोकिकः॥३२॥

शब्दार्थः-इंद्रिय, विषय, लौकिकबुद्धि, शतिवंध, तथा उद्देग ओर यहां लोकिकभोग यह सर्व मानसी सेवाके वाधकहे. ॥ ३२ ॥ टीका-तनुजा वित्तजा र सेवा मन लगायकें करे तामें दशो इंद्रिय वाधक हे काहेतें जो इंद्रियके देवताहे तिनकों विषय प्रियहे सो भगवत्सेवामें इंद्रिय वाध करतहे सो कोन भांति जो सेवा करिवेमें विषयादिक चुद्धि होय. स्नोकिक चुद्धि होय जो सेवा तो नित्य करतहों, घरको लौकिक कार्यहू करनोहे, भूखहू बोहोत हे या भांति लौकिकबुद्धि होय तव सेवामें मनकों उद्देग होय सो जेसे वने तेसे वोगि करि अनोसर करावे तव श्रीठाकुरजी तो मनकी लौकिकबुद्धि जाने सो सेवामें प्रतिवंध करे एसो लोकिक वैदिक कार्य तथा विषयादिकको कार्य मनमें प्रेरे जो सेवामें प्रतिवंध होय मनमें उद्वेगतें प्रतिवंध होय तव भगवत्सेवा तनुजा वित्तजा न वने, पार्छे खानपानादि विपय-भोगमें मन चले, पार्छे विषयादिक करे, पार्छे केवल लौकिक होय-जाय. सो सेवाफलमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभु कहेहे "उद्धगः प्रतिवंधो वा भोगो वा स्यात्त वाधकः "(उद्धेग, प्रतिवंध अथवा भोग वाधक होय) इत्यादि वचनसाँ जाननो जो इंद्रिय तथा मन विषयमें ममहे ताकरि प्रथम उद्देग पार्छे मितवंध पार्छे भोग पार्छे केवल लोकिक होयजाय. तहां कोई कहे जो इंद्रियनकों विषयमें जोडे एसी बुद्धि सेवामें क्यों होतहे ? तहां कहतहे ॥ ३२ ॥

मूलं-दुष्टान्नभक्षणं चापि ह्यसमर्पितभक्षणम् । असत्संगः सर्वथा हि भाववाधक इष्यते ॥३३॥

१ रत्नमद्रजीकी टीकामें यह सर्व मानसी सेवाके वाधक लिखेंहे.

शब्दार्थ:-दुष्टके अन्नको भक्षण अथवा दुष्ट [अपवित्र] अन्नको भक्षण ओर असमर्पितको भक्षण तथा असत्संग (दुःसंग) यह स-वंथा भावके वाधक हे ॥ ३३ ॥ टीका-इंद्रियादि मनमें विषय याते होतहे एकतो दुष्टप्राणीकी सत्ताके अन्नको भक्षण करे अथवा दुष्टिकया करि अन्न लावे भक्षण करे तथा असमर्पित खाय तथा असत् (विहि-मुंख) को संग करे यह तीन्यो सर्वथाही वाधक कहे हे सो न्यारे न्यारे कहतहे. दुष्ट अन्न वोहोत वाधकहे सो पद्मप्राणमें कहेहे " अवैष्ण-वानामनं च पतितानां तथैव च। अनिर्पतं तथा विष्णोः श्वमांससदशं अवेत् । अनिवेद्य तु यो भुंके हरये परमात्मने । पतंति पितरस्तस्य नरके शाश्वतीः समाः " (अवैष्णवको अन्न तथा पतितको अन्न तथा जो अन्न प्रभुकों आर्पित नांही कीयो सो श्वमांस (कुत्ताके मांस) वरोवर होय ॥ जो हरि परमात्माकों अर्पण कीयेविना आप खाय है तिनके पितृपितामहादि वोहोत वर्पतांई नरकमें गिरेहे) यहवचनते अवैष्णवको अन्न होय तथा पतित [चांडालादि तेली घोवी नीच] को अञ्च तथा असमर्पित अञ्च यह श्वमांस सद्दशहे एसो अञ्च खायेते इंद्रिय बुद्धि सर्व नष्ट होय जाय असुरवत् होय तथा असमार्पित अन्नकी खाय तो पितृसहित नरकमें जाय तार्ते श्राद्धहू प्रसादि अन्नसों करे ओर क्रमपुराणमें कहेहे "अनर्पयित्वा गोविंदे यो भुक्ते धर्मवार्जितः। शुनी विष्टासमं चान्नं नीरं तत्सुरया समम् ॥ (गोविंदकों अर्पण कीयेविना धर्मरहित जो खायहे सो अन्न कुत्ताके विष्टावरोवर ओर जल सुरा [मदिरा] वरोवरहे) यहबचनतें गोविंद जो श्रीऋष्ण तिनकों अपै विना असमर्पित जो खातहे सो सक्ल धर्मकरि रहितहे उह अन्न श्वानकी विष्टासमानहे उह खानहारो निश्रय असुरहे सो द्रष्टसंगर्ते असमार्पित अत्र खाय तातें एकतो दुष्टको अत्र तथा असमार्पित तथा असत्संग यह तीन्यो वाधकहे. जो दुष्टसंगहे ताकरि अन्यसंवंध

होय तव देह इंद्रिय सब विहर्मुख होयजाय विषयके ध्यानमें तत्पर होय तातें वैष्णव होय सो मनमें विचार राखे दुष्टको अन्न, असमार्पित अन्न तथा दुःसंग इनको संबंध कन्नहू न करे ॥ ३३॥

मूलं-तस्मात्त्यक्त्वा दुष्टसंगं कृत्वा स्वाचार्यसंश्रयम्। तदीयजनसंसर्गे स्थित्वा मार्गे तथा ग्ररो ॥ ३४॥ कृत्वा विषयवैराग्यं परितोषं विधाय च। सदानंदं सदानंदं फलप्राप्ये सदा भजेत् ॥३५॥

शब्दार्थ:-तातं दु:खको त्याग करिकें अपनें श्रीआचार्यजी श्रीम हाप्रभुजीको आश्रय करिकें ओर तदीयजनके संबंधनिमित्त तथा गुरु-निमित्त मार्गमें स्थित होय विषयमें वैराग्य करिकें ओर संतोप करिकें निरंतर आनंद होय तेसें सदानंदरूप श्रीकृष्णको सदा भजन (सवा) करे ॥ ३४॥ ३५॥ टीका-दुष्टके संगको त्याग करे काहेतें जो दुष्टके संगर्ते बुद्धि विगरे असमर्पित खाय अन्याश्रयहू करे तार्ते दोपको मूल दुष्टसंगहे ताको त्याग करे, ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणार-विंदको आश्रय करे ओर पुष्टिमार्गीय भगवदीयको संग करे ओर पुष्टि-मार्गीयकी रीतिप्रमाण मार्गमें स्थित होय गुरु कहे ताप्रमाण किया सब करे यह पांचो प्रकार सेहयुक्त करे. दुःसंगको त्याग १, श्रीआचार्य-जीके चरणारविंदको आश्रय २, भगवदीयको संग ३, पुष्टिमार्गर्मे स्थिति ४, गुरु कहे ताप्रकार सेवा ५, यह पांचो प्रकार भगवदीयवेष्णवकों कर्त्तव्यहे ॥ ३४॥ विषयमें वैराग्य होय तबही सर्वधर्म बनी आवे सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी संन्यासनिर्णयमें कहे हे "विषयाकांतदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः " (विषयाकांत देह (अर्थात् देहस्यइंद्रिय) हे तिनजीवनके हृदयमें सर्वया हरिको आवेश नांही है) यह वाक्यतें जाजीवके हृदयमें विषयको ज्ञान होय, देहमें विषयकी कामना होय

ताके हृद्यमें हिर भगवानको आवेश सर्वथा न होय तार्ते विषयादि देहसंवंधी कार्यते वैराग्य होय ओर मनमें संतोप होय यथालाभ संतुष्ट (जो भगविद्च्छातें आय प्राप्तहोय ताहीं मंतोप) होय जव विषयादिकों वैराग्य होय तवही संतोप होय ओर लोकिक वैदिक देहसंवंधी चिंता सव छोडि सदा आनंदमें रहे सो हृद्यमें संतोप होय तव हृद्यमें आनंद आवे चिंता न होय तव भगवद्धमें मन लगे ताहीं तें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी नवरत्नग्रंथमें कहे हें "चिंता कापि न कार्या निवेदित तात्मिमः कदापि" (निवेदित हे आत्मा जिननें एसें जो वैष्णव हे तिनकें कछुहू चिंता कर्तव्य नांहीहे) निवेदितभक्तहे सो चिंता न करे सदा आनंदमें रहे तव सदानंदरूप जो श्रीकृष्ण श्रीवृंदावनमें स्थित अजभक्तसंयुक्त फलरूप उपर कहे हे तिनकी सेवा सदा करे तव सवोंपर फलप्राप्ति होय।। ३५॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं नवमं शिक्षापत्रं श्रीगोपे-श्वरजीकृतत्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम्॥१॥

शिक्षापत्र १०.

अन दशमशिक्षापत्रमें लोकिक छेशको संबंध होय तोह प्रभुमें दोपारोप न करनो ओर प्रभुको आश्रय न छोड़नो, चातकपिक्षिवत दृढ विश्वास राखिकें रहनो भगवान भक्तनको हितही करेंहे, यह निरूपणहे। उपर कहे हे जो विषयमें वैराग्यकिर यथालाभ संतोप राखि प्रसन्नतासों शुद्धहृदयतें भगवत्सेना करे तो फलप्राप्ति होय, सो श्रीकृष्ण फलदान देवेको जन विचार करे तनहीं नने, श्रीकृष्णके मनको अभिप्राय जानि- वेको जीवको सामर्थ्य नांहीहे प्रभु कोन भांति कहा फल देयंगे सो आगें शिक्षापत्रमें कहतहे.

मूलं-को वेद कीह्शः कृष्णाभिप्रायः स्वजने मतः॥ स्वानंदिसिद्धये राति निजाित्तं दर्शनािदेषु॥१॥

शब्दार्थः-स्वजन जो तदीयहे ताके निमित्त श्रीकृष्णको कहा आंभेप्रायहे सो कोन जाने, परंतु प्रमेयवलतें एसो जान्यो जातहे जो अपने आनंदकी सिद्धिके लीये दर्शनादिकमें अपनी आर्तिको दान करतहे ॥ १ ॥ टीका-श्रीकृष्णको अभिप्राय जानिवेको 'वेदहूको सामर्थ्य नांहीहे तासों नेति नेति पुकारतहे, यद्यपि वेद भगवत्स्वरूपहे भगवानके श्वासतें प्रकटेहे तथापि श्रीकृष्णको अभिप्राय जानिवेमें समय नांहीहे तो अपनी बुद्धितें में कहा जानूंगो ? तोहू श्रीआचार्य-जीमहाप्रभुजीकी कृपातें में कछ अपनी मित अनुसार कहतहों काहेतें जो वेदहे सो प्रभुके वंदीजनहे सदा गुण गावतहे वाहिर ईश्वरताको माहात्म्य कहतहे ओर में तो श्रीऋष्णको दासहं ताते प्रभुकी ऋपा मोपरहे श्रीऋष्ण आनंदरूपहे सो अपने आनंदको जब पुष्टिमार्गीय जीवकों अनुभव करायवेकी इच्छा करतहे जो फलाने भक्तकों आनंद सिद्ध करिवेको विचारहे तव वह भक्तकों श्रीकृप्णके दर्शन होतहे तार्ते यह जानना जो श्रीकृष्ण अपने सेवककों आनंद-दानकों विचारे तब अपने दर्शनकी आर्ति सिद्ध करावे उह सेवकके हृदयमें ताप होय जो में कब श्रीऋष्णको दर्शन करूंगो याहीमें स्मरण सेवा कितन सब जाननो काहेतें जो इनसों प्रभुके दर्शनविना रह्यो न जाय तात भगवद्धर्म करिवेमें मीति होय ॥ १ ॥ मूलं-संसाररागाभावाय लोकिकार्ति तथा पुनः। मदाभावाय च स्वाति श्रीराति प्रयच्छति ॥२॥

१ वेदको अर्थ मूलके अनुसार नांहीहे.

शब्दार्थः—संसारमें स्नेहहे ताकी निवृत्तिके अर्थ लोकिक आर्ति देतहे फीर मदकी निवृत्तिके अर्थ ज्ञातिसंवंधि आर्ति अथवा धनकी आर्ति तथा शरीरकी आर्ति [रोगादि पीडा] देतहे ॥ २ ॥ टीका— यह संसार देहसंवंधी जितनो पदार्थ होय तिनमेंतें राग छुटे तव श्री-कृष्ण कृषा करे तात लोकिककी आर्ति देतहे सो लोकिक छुडायवेके लीये देतहे ओर मदको अभाव होय (मेंही सर्वकर्ताहों एसो अभि-मान छुटे) यह श्रीकृष्णकी कृपातें होय ओर अपने शरीरकी आर्ति जो दुःखादिक तथा धनकी आर्ति सोही मदकी निवृत्तिके अर्थहे तातें येह श्रीकृष्णकी कृपातें जानियें ॥ २ ॥

मूलं-संगाभावाय वंध्वात्तिं देशात्तिं देनयसिद्धये। मोहाभावाय भगवान् साधनार्त्तिं ददाति हि॥३॥

शब्दार्थः—जो वंधु विहर्मुख[सगेसंबंधी]होय तिनको संग मिटा-यवेकों इनको नाश इनसों क्षेश इत्यादि आर्ति देतहे ओर दीनताकी सिद्धिके अर्थ देशकी आर्ति (विदेशगमन) देतहे तथा मोहकी निवृत्तिके अर्थ साधनकी आर्त्ति देतहे (जो हमारे फलाने साधनको यह फल भयो एसो मोहन उपजे)।।३॥ टीका-संगको अभाव होय भगवदीयको संग न होय तो वंधु जो देहसंबंधी कुटुंब तिनसों क्षेश होय अथवा तिनको वियोग होय तो यह विचारे जो तिनतें कहा संबंधहे मेरे आत्मसंबंधी तो भगवानहे कामतो उनसोंहीहे याभांति विचारि श्रीकृष्णकी कृपाही माने ओर देशार्ति जो अपने जहां रहत होय कुटुंब घर मित्र जहां होय तादेशमें दुःख होय तोहू मनमें एसे जाने जो श्रीकृष्णकी कृपातें देन्य सिद्ध होय ताके लीये यह क्षेशहे काहेतें जो प्रभु प्रसन्न करिवेकों दीनताही साधनहे सो श्रीगुसांईजीन विक्षिमें कह्यो हे "आचार्यचरणेरुक्तं देन्यं त्वतोपसाधनम्"।। (श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी श्रीसुवोधिनीजी आदि ग्रंथमें कहेहे जो आपकों प्रसन्न करिवेकों दैन्य साधनहे) यह वचनतें दीनतारूप साधनतें प्रभु प्रसन्न होय सो दीनता श्रीकृष्णकी कृपातें सिद्ध होतहे. ओर मोहको अभाव होय श्रीकृष्णविना ओर स्त्री, पुत्र, पति, मित्र, घर, द्रव्य, देह, यहलोक, परलोक, कहं मोह नहोय येहू श्रीकृष्णकी कृपातें होय ओर भगवानकं मिलवेके पुष्टिमार्गकी रीतिके साधन (भगवतसेवा, स्मरण, कीर्त्तन, जप, पाठ, भगवद्वात्तांदिक) हे सोह श्रीभगवान कृपा करिकें करावे तवहीं विन आवे ॥ ३॥

मूलं-प्रारब्धभोजनार्थं वा परीक्षार्थं विलंबनात् । निर्वाहार्थं तथा वेदसाध्यार्थार्तिं प्रयच्छति ॥४॥ एवमातिंप्रदानेऽपि धरमानंददायिनः । समाश्रयो न मोक्तव्यो दृढः स्वाचार्यसंश्रयेः ॥५॥

शब्दार्थः—प्रारव्यभोग करायवेके लिये अथवा परीक्षाके लिये भगवान विलंब करें तातें निर्वाहके अर्थ, तेसेंही वेदसाध्य जो अर्थ (स्वर्गादिक) इनसंबंधी आर्ति (पीडा) देहें अर्थात् लोकवेदकी असिद्धि राखेहें ॥ ४ ॥ एसें आर्ति देतसतेहू अपने जो श्रीआचार्यजी तिनके सुंदर आश्रयवारे वेष्णवके आनंददाता (श्रीकृष्ण) को हढ आश्रय सर्वथा न छोडनो ॥ ५॥ टीका—उपर कहे ताप्रकार लोकिक आर्ति कराय भगवत्संबंधकी आर्ति जब श्रीकृष्ण कृपा करे तब होय, जहां तांई उपर कही इतनी आर्तिमें हढ आश्रय न रहे तहां तांई परमानंदको दान न होय सो सगरे साधनमें जीवके हाथ एक्ह् नांहीहे श्रीकृष्णही सर्व सिद्ध करि पाछें पुष्टिमार्गके परमफलरूप परमानंदको दान करतहे यह आश्रय में अपनी युक्तिसों नांही कहतहों श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय हढकरिकें कहतहों जो सर्व श्रीकृष्णही करतहे सो श्रीआचार्यजी नवरत्नग्रंथमें कहेहे "सर्वेश्वरश्च सर्वीत्मा निजेच्छातः करिष्यति " (प्रभु सर्वके ईश्वर ओर सर्वके आत्माहे सो अपनी तथा अपने मक्तनकी इच्छासों करेंगे) तातें अपने तो मुख्य श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय करि लोकिक आर्त्तिमेंहू मन (चलायमान हे ताकों उपर कहे ताप्रमाण समुझायकें) दृढ राखनो यह कर्त्तव्यहे॥ १॥ ५॥

मूलं-स्वतः कृष्णः सदानंदो निजानंदं प्रदास्यति । तदाशयेव स्थातव्यं सर्वेश्चातकपक्षिवत् ॥ ६॥

शब्दार्थ:-आपतें श्रीकृष्ण सदा आनंदरूपहे सो अपने भक्तनकी अपनो आनंद विशेप करिकें देहिंगे तार्ते चातकपक्षिकी नांई इनकी आशातं रहेनो ॥ ६ ॥ टीका-श्रीकृष्ण आपुही आनंदरूपहे परम दयालहे सर्व प्राणिमात्रकों आनंद देतहे एसे श्रीकृष्ण अपने दासकी आनंद करे सो उचितहीहे दासपर तो ऋपा करिकें ओर अधिक दान करेंगे यह निश्चय श्रीकृष्णको भरोंसोहे श्रीकृष्णके नामतें सगरे कार्य सिद्ध होय यह श्रीभागवतद्वादशस्कंधमें श्रीशुक्देवजी कहेर्हे " कलेदोंपनिधे राजन्नस्ति होको महान् गुणः । कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तवंधः परं ब्रजेत् " (हे परीक्षित् ! दोपके भंडाररूप कलियुगकी एक वडो गुणहे जो श्रीऋष्णके कीर्तनसोंही मुक्तवंध होय परकों प्राप्त होय) यह वाक्यतें यद्यपि कलियुग दोपरूपहे तोहू श्रीकृष्णके नामतें संसार छुटि जाय भक्ति प्राप्तहोय सो भगवदीय गायेहै। रागविहागरी। " करिहे ऋष्णनाम सहाय । अधमता उर आनि अपनी मरत हे अङ्ग-लाय ॥ १ ॥ अधम अमितं उधारे सो कहा तेरो भार । कोन उद्यम अपने निज करि सक्यो निस्तार ॥ २ ॥ नेक ऊधो करि भरोंसो चसत जाके गाम। सो क्यों ममता छांडि हेले जीवन जाको नाम

11 ३ 11 चरद विविध भुलायवो किर हिर न धरिहे लाज । तोपें गदाधर निगम आगम वकत कितवे काज ॥ ४ ॥ " एसे प्रभुको नाम दयालहे तहां प्रभु दया किर अपने भक्तनकों आनंद देहि तहां कहा कहेनो तहां हष्टांत कहतहें जो चातकपक्षिवत दास विश्वास किर रहे काहेतें जो चातकपक्षी जड (मेघ) को स्मरण करतहे सो मेघ वाको मनोरथ पूर्ण करतहे तो श्रीकृष्ण तो परम आनंदरूपहे दया किर सब करेंगे ॥ ६॥

मूलं-लोकिकार्त्तरगणनं परमानंदिचितनात्। यथा न गणयेद्रोगी तिक्तभेषजभक्षणम्॥७॥

राव्दार्थः -परमानंदके चिंतनतें लौकिक आर्त्तिकों नांही गिने जेसें रोगी करूई औपि खातहे सो रोग निवृत्तिके अर्थ खातहे तेसें संसा-रकी निवृत्तिके अर्थ लोकिक आर्त्तिकों सहन करे ॥ ७ ॥ टीका-लौकिक देहसंबंधी संसारकी आर्त्ति करि खेद पावे तहां प्रभुकों चिंता न होय प्रभुके अर्थ यह जीव जब आर्त्ति करे तब प्रभुकों चिंता होय तातें वैष्णवनकों लौकिक आर्त्ति नांही कर्तव्यहे प्रभुकी आर्ति (विप्रयोग) करे. परमानंदरूप भगवानके गुण विचारि विचारि अपने दोप विचारि विचारि चिंतन करे तब प्रभुके हृदयमें दया आवे सो निरोधलक्षण-ग्रंथमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहेहें "क्विश्यमानान् जनान् दृष्टा कृपायुक्तो यदा भवेत्। तदा सर्वं सदानंदं हृदिस्यं निर्गतं चिहः" ॥ [आर्तियुक्त भक्तजनकों देखिकें प्रभु जब कृपायुक्त होय तब हृदयमें सर्व सदानंदरूपहें सो वाहिर निकसेहें] अपने जनको विप्रयोगिकेश प्रभु जब देखत हे तब दर्शन देतहे सो शीभागवतरासपंचाध्यायीमें वर्णनहें जो वजभक्तकों मद भयो तब प्रभु अंत-

भीन भये पाछें भक्तनकों विरह करिकें अत्यंत क्वेश भयो तव श्रीठाकुर जी कृपा करिकें प्रकट भये तेसेंही यह पुष्टिमार्गमें प्रजमक्तनके भाव किर मनसों क्वेश होय तब प्रभु कृपा करे तातें ठोकिकार्त्ति छोडिकें प्रभुको विरहकरि परमानंदको चिंतन करे तो प्रभु कृपा करे तहां हथांत देतहें जो जाके रोग होय सो तिक्त औपियकों खातहे यद्यपि औपिय बहुत कर्र्ड हे सोही रोगी रोगनिवृत्त्यर्थ प्रीतिसों खातहे तेसेंही जाकों संसाररूप काम, कोध, मद, मत्सरादि सबनको रोगसदृश ज्ञान भयो हे सो रोग निवृत्तकरणार्थ छोकिकार्तिकों सहन करि परमानंदके चिंतनरूप औपध खाय तब प्रभु कृपा करि सगरो दुःख निवृत्त करे तातें छोकिकार्ति छोडिकें प्रभुके विप्रयोगको चिंतन करे तब प्रभु प्रसन्न होय ॥ ७॥

मूलं-अहितं निजभक्तानां विद्धाति हरिर्न हि। समस्तानां सखा स्वीयभक्तानां न कथं भवेत् ॥८॥

शब्दार्थः - अपने भक्तनको अहित हिर सर्वथा नांही करतहे काहेतें जो समस्त जगतके सखा हे सो अपने भक्तनके सखा केसें नहोय? ॥ ८॥ टीका-श्रीकृष्ण केसे हे जो अपने भक्तनको अहित [बूरो] कबहू न करे सदा हितही करेंगे सो महाभारतमें भीष्मभक्तके वचन सत्य कीये अपनो पण छोड्यो पाछें अंतसमय कृपाहू करी. जेसें श्रीनं-दरायजी अंविकापूजनको गये अन्याश्रय कीयो ताकिर सुदर्शनस्पेनें असि ही छीये पाछें प्रभुके निजभक्त भये तब प्रभु कृपा किर सुदर्शन-स्पेतं खुडाये तेसेंही पुष्टिमार्गीयकों कछ दोपनिवृत्तिकरणार्थ प्रभु दुःख दे तो मनमें चिंता नांही कर्तव्यहे पाछें प्रभु हितही करेंगे काहेतें जो समस्तजीवनके पालनकर्ता भगवान हे सो अपने भक्तनके उपर कृपा करे यामें कहा आश्चर्यहे निश्चय अपने भक्तके उपर कृपा करत आयेहे सो अवह करतहे ओर आगें करेंगे याभांति पुष्टिमार्गीय वैष्णव प्रभुके गुण विचारि स्मरण भजन करे यह सिद्धांत भयो ॥ ८ ॥ इति श्रीहरिरायजीकृतं दशमं शिक्षापत्रं श्रीगोपे-श्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ १०॥

शिक्षापत्र ११.

अव ग्यारहमे शिक्षापत्रमें भक्तनके कर्तव्य (गुणगान, दुःखभावन, दैन्य, ओर त्याग यह) चतुष्टयको निरूपणहे. उपर कहिआये जो प्रभु अपने भक्तनको वूरो कबहू न करेंगे हितही करेंगे परंतु भिक्तमार्गकी रीतिकों न छोडे सो आगें वर्णन करतहे जो याभांति भक्तनकों रहेनो। मूलं-सर्वदा सर्वभावकहेतुभूतेषु सर्वथा।

श्रीमदाचार्यपादेषु स्थाप्यतां तन्मयं मनः ॥१॥

शब्दार्थः - निरंतर सर्वभावके मुख्य हेतुभूत (कारणरूप) श्रीआ-चार्यजीके चरणारिवंदमें मनकों तन्मय करि निश्चय स्वापन करनों ॥१॥ टीका - अत्र भगवद्भक्तके लक्षण कहतहे सर्वदा (सर्व कालमें) सर्व भावके हेतुभूत श्रीमदाचार्यजीके चरणकमलमें अपने मनकी स्थिति करनी एक इनहींको दृढ आश्रय करनो सो अपने मनसों तन्मयहोय करनो मन वचन कर्म करि श्रीआचार्यजी महाप्रभुके चरणकमलकोही आश्रय राखे ॥ १॥

मूलं-तत एव कृतार्थत्वं निश्चयः क्रियतां हृदि। आसुरत्वं विनिश्चेयमन्यत्तत्साम्यवादिषु॥२॥ शब्दार्थः -श्रीआचार्यजीके चरणकमलमें मन स्थापन करनो तासोंही कृतार्थताहे एसो निश्चय हृदयमें करनो ओर इनतें अन्य तथा वरोवर कहिवेवारेके विषे आसुरपनेको निश्चय करनो ॥ २ ॥ टीका -उपर कहे जो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणकमलमें मन राखे सो कृतार्थरूप हे यह सिद्धांतमें कोई वादीको विश्वास न होय वाद करे ताकों निश्चय आसुरही जाननों, काहेतें जो यह सिद्धांत वेद, शास्त्र, गीता, श्रीभागवतके प्रमाणतें सिद्ध हे तामें विश्वास न होय ताकों निश्चय आसुर जाननो ॥ २ ॥

मूलं-श्रीकृष्णः सर्वदा स्मर्थः सर्वलीलासमान्वतः। भक्तेकहृदयस्थायी सकलः प्रस्वोत्तमः॥३॥

शब्दार्थः—सर्वलीला [वेणुगीत युगलगीतादिक] युक्त, भक्तनके हृद्यमें स्थित अंशकलासहित श्रीकृष्ण पुरुपोत्तम सर्वदा स्मरणकरिवे योग्यहे ॥ ३॥ टीका—श्रीकृष्ण फलात्मक, रसात्मक, भावात्मक, खल्पात्मकहे तिनको स्मरण सदा करनो, लीलासहित भक्तनसहित स्मरण करनो काहेतें जो रसात्मक श्रीकृष्ण ज्ञजभक्तके संग अष्टमहर लीला करतहे एसे श्रीकृष्णको स्मरण करियें ताकिर हृदयमें सदा पुरुपोत्तम स्थित रहे यह रीति भक्तकी हे, जाको ध्यान करे सो हृदयमें आवे लोकिकाविष्ट हृदयमें संसार भरवो रहे और प्रमुको स्मरण करे तो प्रमु [सगरे यद्यपि हे तोहू] भक्तके हृदयमें लीलासहित स्थित होय ॥ ३॥

मूलं-ग्रणगानं तथा दुःखभावनं दैन्थमेव च। तथा त्यागः सिद्धह्याः क्रत्यमेतच्चत्रष्टयम् ॥ ४॥ ज्ञव्दार्थः-ग्रणगान तथा दुःखकी भावना [विप्रयोगार्ति] ओर दैन्य तथा त्याग [लोकिक वेदिक आसक्ति छोडनी] यह चारो सिद्ध दृष्टिवंरिके कृत्यहे ॥ ४॥ टीका-श्रीठाकुरजीकी लीलाको गुण-गान करे, विप्रयोगदुः खकी भावना करे, दैन्य करे, ताकरि सब लोकिक वैदिक त्याग करे, यह चारो कृत्य अवश्य करे काहेतें जो प्रथम गुणगान करे ताकरिकें जितने दोप होय तितने भस्म होय जाय शुद्ध हृदय होय जाय तब अपने दोप स्फूरे अपनकों तुच्छ जाने प्रभुकों सर्वोपरि जाने जो मेंतो कछ साधन कीयो नांही मेरो अंगीकार प्रभु केसें करेंगे? याभांति विचारिवेतें निःसाधनताकी भावना मनमें होय तब दीनता होय तब प्रभु विना ओर कछ न सुहाय पाछें लोकिक वैदिक सब त्याग होय यह चतुष्टय प्रकारहे सो पुष्टिमार्गीय साधन ओर फल्फ्प जानि कर्त्व व्यहे। ४।

मूलं-ग्रणगानं भागवतात् सेवया दुःखभावनम्। तद्देन्यभाववद्देन्यं त्यागो विरहभावतः ॥५॥

शब्दार्थः -श्रीमद्भागवतके [मननपूर्वक] पाठसों गुणगान करनो, सेवा किर दुःखकी भावना करनी [जो प्रथम चोरासी दोसोवावनकी पास प्रभु मांगिमांगिकें अरोगते एसें मोकों क्य होयगो यह दुःखकी भावना करनी जो दैन्य प्रभुकी कृपाको कारण हे सो दैन्य-भावनतें दैन्य सिद्ध होय ओर विरहके भावसों [संन्यासनिर्णयमें कह्यो हे सो] त्याग सिद्ध होय ॥ ५ ॥ टीका-ऊपर श्लोकमें जो चतुष्टयकर्त्तव्य वताये सो कोन भांति सिद्ध होय सो कहतहे जो साध-नरूप गुणगानसों सर्वदोप दूरिहोय ओर फलरूपतें भगवानको दर्शन सिद्ध होयहे जेसें व्रजमक्त वेणुगीत युगलगीत गायकें निर्वाह करतहे तेसेंही वेष्णव सेवाके अनोसरमें गुणगान करे जो प्रभुकी सेवाको क्य समय होय यह दुःख ी भावना होय यह गुणगानतें

१ शन्दार्थमें जो दुःख लिख्योहे सो रत्नमहकी टीकाके अनुसार लिख्योहे तेसही दैन्य ओर त्यागह वा टीकाके अनुसार लिख्योहे.

सेवाको दुःख मनमें होय ताकिर निःसाधनता सिद्ध होय कितनीह सेवा करे परंतु मनमें यहही दुःख रहे जो जन्म सगरो वृथाही गयो कछ भगवत्सेवा न वनी यह देन्य सिद्ध होय यामांति दैन्यकी भावना करत करत सर्व देहसंबंधी पदार्थमें त्याग उत्पन्न होय तब शुद्ध विप्र-योगकी भावना होय यह सर्वोपिर मुख्य फलहे पार्छे सर्व लीलाको अनुभव होय चतुष्ट्यप्रकार फल होय ॥ ५ ॥

मूलं-एतचतुष्ट्यं सिद्धं यदि नान्यदपेक्षितम्। सर्वस्य मूलं सत्संगस्तदभावे न सिद्ध्यति॥६॥

शब्दार्थः - ऊपर श्लोकर्मे कहे यह चतुष्टय जब सिद्ध भये तब दूसरो कछ इच्छित नांहीहे ओर सबको मूल सत्संगहे ताको अभाव होय तो वह फल सिद्धन होय ॥६॥ टीका-ऊपर कहे यह चतुष्टय प्रकार जाकों सिद्ध होय ताकों ओर साधनकी अपेक्षा कछ नांही ताते प्रथम गुणगान करे ओर भगवत्सेवा करि दुःखकी भावना करे देन्ययुक्त होय सर्व त्याग करि विप्रयोगकी भावना करे यह फलरूप साधन सिद्ध भये पीछें दूसरे साधनकी अपेक्षा नांहीहे सो यह चतु-ष्टय फलरूप पदार्थ सत्संगतें सिद्ध होय तातें सर्वको मूल सत्संग हे सो भागवतमें प्रथमस्कंधमें शोनकको वाक्य है " तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् । भगवत्संगिसंगस्य मत्यानां किमुताशिपः " (भगवद्भक्तके संगके क्षणकी तुलना स्वर्ग ओर मोक्षह नांही करेहे तहां मनुष्यके मनोर्थरूप राज्यादिककी तुलना न होय यामें कहा कहनो ?] ओर एकादशस्कंधमें उद्भवजीपति भगवान् कहेहे "न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्भव!। न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रतानि यज्ञा-श्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः । यथावरुधे सत्संगः सर्वसंगापहो

हि माम् ॥ २ ॥ सत्संगेन हि दैतेया यातुधानाः खगा मृगाः । गंधर्वा-प्सरसो नागाः सिद्धाश्रारणगुह्यकाः ॥ ३॥ विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शृद्धाः स्त्रियोंऽत्यजाः। रजस्तमः प्रकृतयस्तस्मिस्तस्मिन् युगेऽनघ ! ॥ ४॥ वहवो मत्पदं प्राप्तास्तवाष्ट्रकायाधवादयः । वृपपर्वा विलविणो मयश्राथ विभीपणः ॥ ५॥ सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृश्रो विणक्पथः । व्याधः कुञ्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथा परे ॥ ६ ॥ ते नाधीतश्चातिगणा नोपासितमहत्तमाः। अत्रतातप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः ॥७॥ " (मोर्को योग वश नांही करेहे, न सांख्य, धर्म, न खाध्याय (वेदजप), तप, त्याग, न इष्ट (अभिहोत्रादि), पूर्त (कूवा वगीचा), न दक्षिणा. ॥१॥ त्रत, यज्ञ, छंद (रहस्यमंत्र), तीर्थ, नियम, यम, (ये कोउ वश नांही करेहे) सर्वसंगर्को मिट्रायवेवारो जेसो सत्संग मोकों वशकरेहे ॥ २ ॥ सत्संग करिकें दैत्य, राक्षस, खग (पक्षि), मृग, गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक ॥ ३ ॥ विद्याधर, मनुष्यमें वैश्य, शूद्र, स्त्रियें, अंत्यज (नीचजातिवारे), रजोगुण तमोगुण प्रकृ-तिवारे यहयहयुगर्में, हे पापरहित ! ॥ ४ ॥ बोहोत मेरे चरणारविं-दकों प्राप्त भये बृत्रासुर, प्रह्लादादिक, बृपपर्वा, वाले, वाणासुर, मय-दानव ओर विभीषण ॥ ५॥ सुग्रीव, हनूमान्, जांववान्, गर्नेद्र, जटायु, तुलाधार, धर्मव्याध, कुञ्जा, त्रजमें गोपीजन, यज्ञपत्नी तथा ओर ॥६॥ ये नांही पठितहे बेद जिनने, नांही सेवितहे बुद्धादिक जि-नने, ओर नांही व्रत के तप करिवेवारे एसेंहू केवल सत्संगतें मोकों प्राप्त भये ॥७॥) इत्यादि वचनतें भगवान् कहेहे जो हे उद्धव!सांख्य. धर्म, स्वाध्याय, तप, त्याग, व्रत, यज्ञ, छंद, तीर्थ, नियम इत्यादि मोकॉ चरा नांही करतह, ओर सत्संगकरि जीव मोकों वश कारिलेतहे एसो सत्संगहे, सत्संगके प्रतापतें देत्य, राक्षस, खग, मृग, गंधवं, अपसरा रिद्ध, चारण. मनुष्य, सब कृतार्थ भये तातें सर्वसाधनको मूळ सत्संगहे.

सत्संगतें तदूपभाव हृदयारूढ होय भावकी सिद्धि होय, तातें भगवि दीयको सत्संग अवश्यही करनो यह सिद्धांत भयो ॥ ६॥ इति श्रीहरिरायजीकृतं एकादशं शिक्षापत्रं श्रीगोपे-श्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ ११॥

शिक्षापत्र १२.

अव द्वादशशिक्षापत्रमें श्रीस्वामिनीजीके वाक्यनकी भावना अहर्निश करनी सो निरूपण करतहें—उपर कहे चतुष्टय प्रकार सिद्ध-भये पीछें कोन भांति अनुभव होय सो आगें शिक्षापत्रमें कहतहें—

मूलं-भावनीयं सदा चित्ते स्वामिनीजिल्पतं मुहः। तापक्षेशेरयं मार्गः श्रीमदाचार्यरूपितः॥ १॥

शब्दार्थः न्वारंवार चित्तमें श्रीस्वामिनीजीके वचन (विप्रयोगदशाके हा नाथ! हा प्रिय! हा रमण! कहां हो? हा महा मुज! आपकी दीन दासी में हूं इनकों दर्शन देहो इत्यादि) भावनीय हे, का हेतें जो यह मार्ग विरह तापके के शसहित श्रीमदाचार्यजीनें निरूपण की योहे ॥ १ ॥ टीका श्रीकृष्णके विप्रयोगमें श्रीस्वामिनीजी कोन प्रकार वारंवार जल्पना करतहे या भांति पुष्टिमार्गीय भगवदीय चित्तमें भावना करे सो प्रेमामृतमें कहतहे "एकदा कृष्णविरहाद्वयायंती प्रियसंगमम् । मनो वाष्पिनरासाय जल्पतीदं महर्मुहुः"॥ (एक दिन श्रीकृष्णके विरहसीं प्रियसंगमको ध्यान करतें श्रीस्वामिनीजी हृदयके अश्रु निकासिवेकी वारंवार एसे शब्द करतहे) श्रीस्वामिनीजी श्रीकृष्णके मिलन अर्थ वारंवार एसे शब्द करतहे) श्रीस्वामिनीजी श्रीकृष्णके मिलन अर्थ

विप्रयोग करि वारंवार जल्पना करतहे यहमांव सर्वोपरिहे तेसेंही यहपु-प्रिमार्ग तापक्केशरूपहे काहेतें जो श्रीस्वामिनीजीके तापक्केशरूपहे काहीतें श्रीमहाप्रभुजीहे तातें इनने प्रकटकीयो प्रिष्टमार्गहू तापक्केशरूपहे ताहीतें तापक्केशकरिकें यहमार्गकी फलसिद्धि हे तातें विरहकरि श्रीस्वामिनीजी जापकार भावसहित अनुभव करतहें सो भावकी भावना करनी. श्रीस्वामिनीजीकी भावनाको स्वरूप आगें कहतहे ॥ १ ॥

मूलं-दर्शनं देहिॐ गोपीश!गोकुलानंददायंक!। गोविंद!गोपविताप्राणाधिंप!कुपीनिधे!॥२॥

शब्दार्थः—हे गोपीजनके ईश ! हे गोकुल (धेनुक्कल अथवा भक्त-क्रल) को आनंद देवेवारे ! हे गोविंद ! हे जजभक्तनके प्राणपति ! हे ग्रुपाके भंडार ! दर्शन देहो ॥ २ ॥ टीका—श्रीस्वामिनीजी कहतहे जो हे गोपीजनके ईश ! हमकों दर्शन देहो काहेतें जो तम गोपिनके पित—ईश—राजाहो तातें राजा अपने प्रजाकों दुंख न देय सुखही देतहें यह मर्यादाहे, तेसेंही हे श्रीकृष्ण ! हम तुझारी प्रजाहे तातें हमकों दर्शन देहो, ओर तुम गायनके कुलकों आनंददाताहो सो गायेंहू तुझारे दर्शनिवना व्याकुलहे तातें गायनकों दर्शन द्यो, तथा वनमें गायनकों चराय आनंद दीये अव विगि पधारि हमकों आनंद द्यो. काहेतें जो तुम गोविंदहो गायनके इंद्रहो, सो इंद्र अपने भोगमें आसक्त वहुतहे तेसें तुम ब्रजभक्तकों सुख देहो, काहेतें जो गोपविनता जीवतहे सो एसे श्रीकृष्ण कृपानिधि हमकों विगिही दर्शन देहो. याभांति श्रीस्वामिनीजी लीलासहित प्रभुके नाम लेय विलाप करतहे ॥ २ ॥

अ चार यूथहे और दरएक यूथमें सोरह शुंगारात्मक सोरह शिस्वामिनीजी है तिनके भावमं चोसठ नाम श्रीठाकुरजीके या शिक्षापत्रके अंतपर्यतमें आवे है, तिनके अंक नामपें लिखे गये हे.

मूलं-गोपालं ! पालितव्रजं ! निजव्रजसुखांबुधे । परमानंदं नंदादिसचिरोत्संगलंकित ! ॥ ३॥

शब्दार्थः — हे गोपाल (गायनके पालन करिवेवारे)! हे ब्रजभक्तनके पालनहार! हे अपने ब्रज अथवा अपने भक्तनके समूहके सुलके समुद्र! हे परम आनंदरूप! हे श्रीनंदरायजी आदिके रुचिर गोदमें खेलिवेवारे! (हमकों दर्शनदेहो यह पूर्वश्लोकको संबंध पंद्रहमें श्लोक तांई चलेगो)॥३॥ टीका—हे गोपाल! तुम गायनके पालनकर्ताहो ओर यह ब्रज तुह्यारोहे तिनसवनको पालन करि सगरे ब्रजके सुखदाता हो तुम सुखके समुद्रहो यह ब्रज तुह्यारोहे तामें ब्रजभक्त पशु, पिक्ष, गाय, गोपाल, जड, चेतन, सवकों सुखदाताहो एसे सुखके समुद्र! हमकों सुख देहु, तुम परमानंदरूपहो तुमकों नंद यशोदादि उत्संगमें लेके लालन पालन करतहे एसे श्रीकृष्ण! हमकों दर्शन देहु॥३॥

मूलं-सद्गिंद निजानंदर्समुदायप्रदायक!। दामोदंर!दयाँद्राद्र!दीनानीथ!दयापर!॥४॥

राव्दार्थः — हे सदा आनंदरूष ! हे निजभक्तनकों आनंदसमुदायके देयवेवारे ! हे दामोदर (भक्तवश्य) ! हे दयाकरिकें जो आर्द्रहे विनकें उपर आर्द्र ! हे दीनताकों प्राप्तभक्तनके चारेओरतें नाथ [रक्षक] ! हे दयापर ! ।। ४ ।। टीका — हे श्रीकृष्ण ! तुम तो सदा आनंदरूपहो, व्रजमें समुदित जीवमात्रके आनंददाताहो, ओर श्रीयशोदाजीनें दाम उदर्र सो वांधेहे एसे भक्तनके वश्यहो, दया करि तुह्यारो हृदय आर्द्र [भीजी रह्यो] हे ओर दीननाथहो जो अतिदीनभक्त होय [जिनकें कोंच नांही] तिनके तुमहो ओर दयापरहो सर्वपर तुह्यारि दयाहें सो हे श्रीकृष्ण ! दया करि हमकों दर्शन देहो ।। ४ ।।

मूलं--पुरुषोत्तम ! सर्वागरुचिर्रं ! प्रेमपूरितं !। अनंगरूपंपरम ! प्रियं! गोपवधूपते!॥ ५॥

शब्दार्थः — हे पुरुपोत्तम! हे सर्व अंगमं सुंदर! हे प्रेमकिर पूरित! हे कामदेवके समस्तरूपतें उत्ऋष्ट! हे प्रिय! अथवा हे गोपवधूके पित! ।। ५ ।। टीका—हे पुरुपोत्तम! सवतें पर एसे सर्वोपर तुझारे सर्व अंग रुचिरहे जाआंगको दर्शन होतहे तहां नेन लागि रहतहे सो भगवदीय गायहे ।। रागनट— "रूप देखि नेनां पलक लागे नहीं। श्रीगोवर्धनघरके अंगअंगपर निरिख नेन मन रहत तिहं" याभांति सर्वांगलियहो ओर प्रेमकिर पूरितहो सर्वांगमें प्रेमस्स भिरह्योहे आधिदाविक अनंगरूप परमसुंदरहो गोपीजनकों तुम परमित्रयहो तुमकों गोपीजन परमियहे गोपवधूके पित तुमहीहो जेसें भूज्यो अन्न खेतमें डारे तो उपजे नांही तार्ते भूज्यो अन्न बीजके काम न आवे देखिवेको अन्नहे तेसही गोप हे. तिनकी बध्नके पित तुमही हो एसे श्रीकृष्ण हमकों वेगि दर्शन देहो ।। ५ ।।

मूलं--व्रजावलंबसुकटे!लंबकेशैं! कलीनिधे!। विरहात्तिहर!स्वीयमनोहरणतत्पैरं!॥६॥

शब्दार्थः — हे ब्रजके आलंबनसुंदरकिवारे! हे लंबायमान केशवारे! हे कलाके निधिरूप! हे विरहकी आर्तिकों हरिवेबारे! हे स्वीय(अपने भक्तनके) मनकों हरिवेबों तत्पर! ॥ ६ ॥ टीका — ब्रजके अवलंब तुमही हो सगरो ब्रज तुहारे आश्रय होय एक तुमहीकों जानत है और तुहारे केश वहे लंबे कुटिल (टेडे) हे सो मानो मधुपपंक्ति आय रहीहे और कलानिधिहो सूर्यमें पोडश कला है तिनको इतनो प्रताप है तो तुम तो कलाके निधिहो सो तुहारे प्रतापगुण कहांताई वरने यामें काहुको सामर्थ्य नांही अपने स्वीय [निज] भक्तकी आर्तिके

हरणहारे ओर अपनो सुंदर मुख श्रीअंग दिखाय तथा अनेक लीला-करि समस्त व्रजभक्तनके मनकों हरणकरिवेमें परायण एसे हे श्रीकृष्ण! इमकों वेगि दर्शन देहो ॥ ६ ॥

मूलं-मनोविनोर्द ! भावाँधे ! भाववद्धदंयस्थित !। चंचलीकृतिचित्त ! स्वभावादोलितरूपधृक्!॥७॥

शब्दार्थः—हे मनके विनोदरूप! भावके समुद्र! ओर भाववारेके हृदयमें विराजिवेवारे! तथा भक्तनको चंचलकीयोहे चित्त जिननें ओर अपने भक्तनके भावकरिकें आंदोलितरूपकों धारण करिवेवारे! ॥७॥ टीका—त्रजभक्तनके मनको विनोद जो आनंद ताके दाता तुमही हो तुमहीकरि व्रजभक्त आनंद पावत हे ओर भावके समुद्रहो, जाभावसों भजे सोई सिद्ध होय. कोउ आपके भावको पार न पावे जगतमें सगरे भावहे सो तुह्यारी कणिकारूपहे तुम भावके समुद्रहो ओर भावहीकिर भक्तनके हृदयमें स्थितहो जाभक्तके हृदयमें जो भाव तहां ताहि रीतिसों विराजतहो ओर अपने भक्तनको चित्त चलायमान करो हो आप ही चंचलहो भक्त कोउ गृहके कामकाज करतहोय तहांतें चित्तकों चलायकें अपनमें लगावतहो भावकरि सर्वांग भरेहे, अपने भक्तनको जो जो भावरसहे सो तुह्यारे स्वरूपमें भरिरह्योहे एसे श्रीकृष्ण मोकों दर्शन देहो। ७।

मूलं-महामुग्धं ! सदादुग्धंपानतत्परमानस !। नवनीतालिप्तमुख! पयोबिंदुयुंताधर!॥ ८॥

शब्दार्थः —हे महामुग्ध! हे सदा दुग्धपानमें तत्पर मनवारे! हे नवि नीतकरि चार्या ओर छिप्त मुखवारे! हे दुग्धिवंदुकरिकें युक्त अधर-वारे!।। ८।। टीका—अपने निजभक्तनमें महामुग्धहो, आप कछ ज्ञान राखत नांही जो भक्त कहे सोई करो सदा दुग्धपानमें तत्परहो मनकरि क्षणक्षणमें श्रीयशोदार्जिके स्तनके दुग्धपान करनमें तत्परहो तथा व्रजभक्त दूध सवारिकें देत है ताके पानमें तत्पर हो, मनहू वाहीमें हे मुखमें नवनीत लिपट रह्यों है ताकरि परम अद्भुत शोभा देतहे दूधकी चूंद अधरमें लिंग है ताकरि अधर शोभायमान है एसे श्रीकृष्ण हमकों दर्शन देहो ॥ ८॥

मूलं-अलकैंग्वृतवदन! मदनाधिकसुंदर!। कपोलिकिंसद्राग! कस्तूरीतिलकांचित!॥९॥

शब्दार्थः — हे अलक्किरकों व्याप्त वदनवारे! हे कामदेवतें अधिक सुंदर! हे कपोलमें शोभित रंगवारे! हेकस्तूरीके तिलक्किरकों पूजित! ॥९॥ टीका—सुंदर अलक्किकिर आवृत एसे वदनकमल शोभायमान हे ओर सगरो श्रीअंग कामसों अधिक सुंदरहे॥ कोटिकाम वारने यह सुंदरतापर करियें॥ दोड कपोलनपर कमलपत्रमें लालकुंकुमादिरागसों सवारेहो ओर कस्तूरीको तिलक भालमें विराजमान हे एसे श्रीकृष्ण हमकों दर्शन देहो॥ ९॥

मूलं-सिंजन्नपुरशोभात्य ! नखभूषणभूषित !। सघोषसूक्ष्मसुकटिविलसत्क्षुंद्रघंटिक !॥ १०॥

शब्दार्थः — हे शब्दायमाननूपुरकी शोभा करिकें युक्त ! हे नखके भूपणकरिकें शोभित । हे शब्दसहित सूक्ष्मकिटमें शोभित क्षुद्रघंटि-काबारे ।। १० ।। टीका—दोड चरणकमलमें स्वर्णनुपुरसों शोभाकी आढ्यता जो एसी शोभा त्रिलोकीमें नांही दशोनखनपर नखभूपण-सिहत नखाबलि विराजितहे सो कोटिसूर्यचंद्रकी कांति लजावतहे और सूक्ष्मकिटपर क्षुद्रघंटिका विलास करत हे तासों वारंवार सुंदर शब्द होत हे एसे श्रीकृष्ण हमकों दर्शन देहो ।। १०॥

मूलं-राजद्धदयवैयाघ्राँनखभूपणभूषित !। कंजलोचाँनलोलाक्ष ! विशालाक्षविलक्षण !॥११॥

राव्दार्थः —हे शोभायमान वधनखाके भूपणसों भूपित! हे कमल-सारिखे चपलनेत्रवारे! हे विशाल नेत्रकरिकें विलक्षण! ॥११॥ टीका-हृदयके उपर वाधको नख सुवर्णमें जिटतकिर नखभूपण श्रीयशोदाजी पहिरायेहे जो मेरे पुत्रकों काहूकी दृष्टि न लगे सो वक्ष-स्थलमें नख-भूपण शोभत हे नेन कमलसमान अतिलोल चंचल हे जेसें कमल शीतल हे तापहारक हे तेसेंही श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल सगरे भक्तनके हृदयके तापहारक हे ओर नेत्रनकिर अनेक भक्तनकों रसदान करत हे संकेत सृचनकरतहे ताकिर लोचन चंचलहे ओर नेत्र कमलवत वडे विशालहे धूर्णायमान आरक्त विलक्षणहे ताकी उपमा काहूसों कही न जाय अनिवचनीयहे एसे श्रीकृष्ण हमकों अब कृपाकिर दर्शन देहो।११। मूलं-दिनकेश्वरण! स्वीर्यसर्वसामर्थ्यसंयुत!

हरा पानग्रारण - स्यायसामान्यसान्ताः व्रजराजसुत ! स्वीयजननीकंठभूषंण !॥१२॥

शब्दार्थः — हे दीनके मुख्य आश्रयस्थान ! हे अपने सर्वसामध्ये— किरकें संयुक्त ! हे श्रीनंदारायजीके पुत्र ! हे अपनी माता श्रीयशोदाजी— के कंठके आभूपणरूप ! [कंठकों ग्रहणकरिके टेरिवेवारे] ॥१२॥ टीका-दीन जो निजमक्त तिनकें शरण्यहों अपने स्वीयमक्त दीनहोय शरण रहें हे तिनकों सर्वभांति प्रभु रक्षा करतहे काहेतें जो श्रीकृष्ण सर्वसाम-र्थ्ययुक्तहे सो श्रीभागवतनवमस्कंधमें भगवान दुर्वासाप्रति कहें दें ये दारागारपुत्रासान् प्राणान् वित्तिममं परम्। हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्यक्तुमुत्सहे ? " [जो स्त्री, गृह, पुत्र, आस, प्राण, द्रव्य, यह-लोक, ओर परलोककों छोडिकें मोकों शरण आये तिनकों छोडिकें में केसें उत्साह करूं !] यहवाक्यते श्रीठाकुरजी कहे जो एसे भक्त

स्ती, घर, पुत्र, प्राण, वित्त, सर्व मोकों समर्पनकरि एक मेरे शरण होय रहेहे तिनकों छोडिवेंकी केसें इच्छा करूं ? में उनकी अप्टमहरही रक्षा करतहों. तातें दीन होय जो भक्त शरणहे तिनकी रक्षा प्रमु आपही करतहे श्रीकृष्ण सर्वसामर्थ्ययुक्तहे व्रजराज जो श्रीनंदरायजी तिनके पुत्र अपनी स्वीयजननी श्रीयशोदाजीके कंठके भूषणहो एसे श्रीकृष्ण हमकों दर्शन देहो ॥ १२ ॥

मूलं–हा ॐक्रष्ण ! हा सदानंदं ! हा वृंदावनभूषण। हा नंदराजैतनय ! हा यशोदांकेंखेलन!॥१३॥

शब्दार्थः –हा फलात्मक! हा सदा आनंदरूप! हा बुंदावनके भूपण! हा श्रीनंदरायजीके पुत्र! हा श्रीयशोदाजीके अंकमें खेलिवेवारे!।।१३।। टीका –हा कृष्ण! श्रीकृष्णनाम फलात्मकहे सर्ववेदस्मृतिको सार सो व्रज्ञमक्त श्रीकृष्ण यहनामको स्मरण जप करतहे ताहीतें श्रीआचार्य-जीमहाप्रभुजी हू अष्टाक्षर – पंचाक्षरमें यहही सवोंपिर श्रीकृष्णहीको शरण बतायो हे विरहकरि हा कृष्ण! कहे. हा सदानंद! तुमतो सदा आनंदरूप एकरसहो सो हमकों आनंद देहो हा बृंदावनभूपण! श्रीकृष्ण! तुम तो श्रीवृंदावनतें एकक्षणहू वाहिर नांही जात काहेतें जो वाके भूपणरूपहो हा श्रीनंदरायजीके पुत्र! हा श्रीयशोदाजीके अंकमें खेलवेवारे एसे श्रीकृष्ण हमकों दर्शन देहो।। १३।।

मुलं–हा गोपिकेशै! हा नीथ! हा गोर्कुलपुरंदर!। हा हा ब्रजेंजनातिब्न! हा हा निःसाधनाधिप!॥१४॥

शब्दार्थः-हा गोपिकाके ईश ! हा नाथ ! हा गोकुलके इंद्र ! हा हा व्रजनकी आर्तिकों हरिवेवारे ! हा हा निःसाधन जनकों अधिक रक्षा

अ इतने श्लोकतांई ग्रुंगारस्वह्रप करिकें संयोगरसकी भावना करिकें अब खेदात्मक. संबोधनतें विश्रयोगात्मकभाव निरूपण करतहे.

करिवेवारे !।। १४।। टीका-हा गोपीजनके ईश राजा ! हा नाथ ! तुम तो हमारे नाथहो तातें हमारी रक्षा वेगिही करो जेसें पंचाध्यायीमें विरह-करि भक्त कहतहे "हा नाथ! रमण! प्रेष्ठ! कासि ? कासि ? महाभुज!। दास्यास्ते ऋपणाया मे सखे! दर्शन सन्निधिम "[हा नाथ!हा रमण!हा प्रिय! हा महावाहो! कहांहो? कहांहो? आपकी दीन दासी में हूं ताकी समीप दर्शन द्यो] तेसेंही इहां कहे जो हा नाथ! हे गोकुलके पुरंदर! जेसें इंद्र एकक्षणहू भोग नांही छोडत तेसें तुम गोकुलके इंद्र होय क्यों वेठि रहोहो हमकों आनंद देहो. बजजनके आर्तिक हरणहार! तुम ब्रज-भक्तनके दुःख कबहू नांही सहोहो काहेतें जो इंद्रयज्ञ छोडि गिरिरा-जको पूजनरूपयज्ञ कीये तब इंद्रनें सगरे बज बोरिवेकों मेघ पठाये सो गोवर्धन उठाय सगरे व्रजकी रक्षा कीनी अव विरहसमुद्रमें डूवतहे सो तुमही काढिवेमें समर्थहे। तातें वेगि यहआर्ति हरो ओर तुम केसेही निःसाधन भक्तनके अधिपतिहो सो हम विरहकरिकें व्याकुलहें देह, इंद्रिय, मन सगरो शिथिल होयरह्योहे साधनकरि रहितहों सो हमको दर्शन देके आर्ति हरो ॥ १४ ॥

मूलं-हा हा नंदादिसर्वस्व ! हा हाऽनंगनवांकुर !। हा निरालंबनालंब ! हाहांऽधलंकुटिप्रिय !॥ १५॥

शब्दार्थः –हा हा श्रीनंदरायजी आदिनके सर्वस्व। हा हा कामदे वके नवीन अंकुररूप! हा आलंबन [आश्रय] रहितके आलंबनरूप! हा अंधके लकुटिवत् प्रिय! ॥१५॥ टीका – नंदादि, गोप. गोपी, सखा, गाय, सर्वके एक तुमही सर्वस्व हो तुमिवना सगरो पदार्थ तुच्छहे एक तुमही सर्वके जीवनप्राणहो ओर तुम अनंग जो कामदेव ताको नवांकुरहो अनंगरूपवृक्षमें नृतन अंकुररूप आप प्रकटेहो साक्षात् मन्मथ के मन्मयहो कामदेवह तुमको देखि मोहित भयो तो हम सगरी मोहित होय यामें कहा कहेनो? जाको कछ ह अवलंब नांही हे तिनके तुमही

अवलंबहो यह कहिकें यह जताये जो सर्वठोरतें आश्रय छोडि एक श्रीकृष्णको आश्रय करे तब प्रभु आश्रय देहिं तातें निरालंबके अवलंब श्रीकृष्णहे, ओर जेसें अंधकों लकुटि प्रियहे वाहि अवलंबहे तेसें हमारे तुम प्रियहो अवलंबहो तुह्यारेही अर्थ सगरी किया करतहें याभांति समस्त श्रीस्वामिनीजी विषयोग करतहें।। १५॥

मूलं-एवंविधानि सततं जल्पितानि सुहुर्मुहुः। अवगत्य च भावेन भावनीयान्यहर्निशम्॥१६॥

शब्दार्थः - एसे श्रीस्वामिनीजी निरंतर जल्पना करत हे सो वारंवार भावसों जानिकें अहर्निश तिनकी भावना करनी ॥१६॥ टीका-या प्रकार निरंतर श्रीस्वामिनीजी वारंवार जल्पना करतहे तव श्रीठाकुरजी पधारिकें समस्त श्रीस्वामिनीजीकों दर्शन देकें उनके मनोरथ पूर्ण करतहे सो यामें ६४ नाम कहेहें ताको अभिप्राय यहहे जो प्रमु चारि-यूथके पतिहे सो एक एक यूथके श्रीस्वामिनीजी पोडशपोडशनाम पोडशगुंगारात्मकरसको अनुभव छीछासहित करतहें तातें चोसठ नाम कहे. अब श्रीहरिरायजी कहत हे जो तुम याभांति श्रीस्वामिनीजीके विरहमावकी भावना अहर्निश करो तव श्रीस्वामिनीजीकी कृषातें हृदयमें भाव स्थित होयगो तव प्रमु अपनो अनुभव करावेंगे यह सिद्धांत सवोंपरिहे ॥ १६॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं द्वादशिक्षापत्रं श्रीगोपे-श्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ १२॥

शिक्षापत्र १३.

अव त्रयोदशशिषापत्रमें सर्वतें चित्तकों निवृत्तकरि एक प्रभुच-रित्रमें निरुद्धकरि पूर्वशिक्षापत्रमें कह्योहे तारीतिसों भावना करनीः यह निरूपणहे. उपर किह आये याप्रकार विषयोग करे तो श्रीस्वामि-नीजीकी कृपातें भाव सिद्ध होय परंतु यह काल महाकठिनहे सत्संग नांहीहे दुःसंग वोहोतहे सर्वकी बुद्धि श्रष्टहे इत्यादि विषयोगके वाधक वोपकों विचारि विचारि दीनता करे तो प्रभु प्रसन्न होय सो उपाय कहतहे—

मूलं-कालः करालः समुपागतोऽयं मातं सतां द्रागहरत् समस्ताम् । श्रीवल्लभाचार्यसमा-श्रितानां यः कालकालः श्राणं स एव ॥१॥

शब्दार्थ:-यह काल महाकराल आयोहे सो समस्त सत्पुरुपनकी मितकों शीघ हरण करे हे तार्ते श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीको आश्रय करिवेवारेनकों कालके कालरूप प्रभु ही शरणहे (तासों जो श्रीम-दाचार्यजीके शरण आये तिनकों काल प्रतिवंध नांही करिसकतहे) ॥ १॥ टीका-यहकाल महाकराल कठिनहे सो सत्पुरुपकी मतिकों हरि लेतहे तो ओरजीवकी कहा गतिहे ? तार्ते यहकलियुगने अपने वलतें सर्वजीवकी बुद्धि हिर लीनीहे तहां कोई कहे जो कोईकों छोड्यो हे ? एसी शंकाके समाधानमें श्रीहरिरायजी कहतहे जो श्रीआचार्यजी-महाप्रभुजीको आश्रय तन मन धनकरि करतहे तिनकों काल नांही वाधक हे प्रत्युत उनको सहायक हे सो थोरे दिनमें फल सिद्ध होयवेकी रीति एकादशस्कंधमें कहीहे "कायेन वाचा मनसेंद्रियेवी बुद्धचात्मना वानुसृतस्वभावात् । करोति यद्यत्सकळं परस्मे नारायणायेति समर्पये त्तत्" [शरीरतें, वाणीतें, मनतें, वा इंद्रियनतें, बुद्धितें, आत्मातें अथवा अपने स्वभावतं जो जो करेहे सो नारायणके लिये अर्पण करे] याभांति श्रीआचार्यजीदारा प्रभुकों समर्पकें पार्छे निश्चित होय श्रीआचार्यजी-महाप्रभुको आश्रयकरिकें रहे तिनकों काल नांही वाधक हे सो

द्वादशस्त्रंधमें श्रीशुकदेवजी कहेहे—"कलेदोंपनिधे राजनिस्त होको महान् गुणः। कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तवंधः परं त्रजेत्" [हे परीक्षित! दोपके निधिरूप कलियुगको एक वडो गुण हे जो श्रीकृष्णके कीर्तन्तेंही वंधमुक्तहोयकें परकों प्राप्त होय] यद्यपि हे राजन्! कलियुग यहकाल दोपको निधि हे परंतु एक यामें महागुण हे जो श्रीकृष्णके नामको कीर्तन करत हे सो सर्व दोपतें छ्टिकं प्रभुकों पावत हे. तातें श्रीआचार्यजीप्रकटित भाव जावेष्णवकों भयो तिनकों यह कलि परम सुंदर हे ॥ १ ॥

मूलं-न सेवा न कथा नैव भावनं नापि संश्रयः। नित्यमुद्धिग्रमनसा कथं कालः प्रयास्यति॥ २॥

शब्दार्थः—जिनकों सेवा नांही, कथा नांही, भावनह नांही, ओर सम्यक्प्रकारसों आश्रय नांहीहे एसेनकों नित्य उद्धिम मन करिकें काल केसें व्यतीत होयगो? ॥२॥ टीका—मुख्य पुष्टिमार्गकी रीति जो भगवत्सेवा सोह नांही करत तथा श्रीआचार्यजीके ग्रंथादिककी कथा सुनतही भगवद्धमें इदयमें आवे सो कथाह नांही सुनत, कोन अकेलो होय द्रव्यादिक सहाय नांही होय अंग रोगि होय तासूं भगवत्सेवा न वने ओर कोन भगवदीयके पास कथा सुने सो भगवदीय न मिले तो म-नहीं किर प्रभुके नाम अष्टाक्षर शरणमंत्रकी भावना मनमें विचार यहन वने तो लोकिक वैदिक सुखदुःख सर्व छोडी एक श्रीआचार्यजीकेही चर-णकमलको आश्रय राखे, याभांति कवह भगवद्धमें मन न लगावे ओर देहसंबंधी संसारामिमें (सुखदुःखकरिके) जरे अष्ट्रपहर सुखदुःखमें हाय हाय करे तिनकों यह काल वाधही करे तहां कोई कहे जो कलिके दोप वोहोतहे सो सेवा ओर कथातें कहा होय ? तहां कहतहे जो नवम-स्कंधमें दुर्वासामित भगवान आपु कहेहें "मत्सेवया मतीतं च सालो- क्यादिचतुष्टयम् । नेच्छंति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविष्छतम् [मेरी सेवा करिकें साक्षात् प्राप्त भई एसी सालोक्यादिक चतुर्विध मुक्ति-कोंहू मेरे भक्त इच्छा नांही राखतहे काहेर्ते जो सेवार्ते पूर्णहे सो काला-दिकतें नष्ट होय एसें राज्यादिककी इच्छा तो केसें करे ?] यहवचनतें भ-गवान् कहतहे जो जीवकों मेरी सेवातें प्रतीत प्राप्त जो सालोक्य?, सामीप्य २, सायुज्य ३,सारूप्य ४, चारों मुक्ति सोहू नांही इच्छितहे एसे सेवाकरि पूर्णहे तिनको काल कहा करिसके? मेरेहू नांही चलतहे. और भगवानकी कथा केसी हे " तस्माद्गोविंदमाहात्म्यमानंदरसमुंदरम्। शृणुयात् कीर्त्तयेन्नित्यं स कृताथों न संशयः "।। (तासों आनंदरस करिकें सुंदर गोविंदको माहातम्य सुने ओर इनको कीर्त्तन करे सो छ-तार्थ होय वामें संशय नांही) ओर द्वितीयस्कंधमें राजापरिक्षितकी वाक्यहे " प्रविष्टः कर्णरंभ्रेण स्वानां भावसरोरुहम्। धुनोतु शमलं कृष्णः सिललस्य यथा शरत्" (कर्णरूपरंभ्रतं अपने भक्तनके भावकमलात्मक हृदयप्रति प्रविष्ट श्रीकृष्ण मलकों मिराय देतहें शरदऋतु जेसें जलकें मलकों मिटावे) यह वाक्यतें जो श्रीठाकुरजीकी कथारूप सुंदर अमृ॰ तकों नित्य कर्णद्वारा पान करतहे सो कृतार्थहे तिनके कर्णरंश्रद्वारा श्रीठाकुरजीकी कथारूप अमृत हृदयमें जातहे तिनके सगरे दोप हृदयतें दूरि होत है. कथा कहे, सुने, अनुवाद करे, यह तीनों जीव कृतार्थ होय जेर्से गंगाजल ल्यावे सो ल्यायवेवारो तथा आसपासके सगरे पवित्र होय तेसें कथाहे. तार्ते भगवद्धभमें मन होय ताकों यह काल वाधक नांही हे ओर सर्वको वाधक है।। २ ॥

मूलं-सत्संगो दुर्लभो दुष्टसंगः संचितनादृते। अनायासेन संसिद्धः का गतिमें भविष्यति॥३॥ शब्दार्थः—सत्संग दुर्लभहे ओर दुःसंग विनाविचारे श्रमविना आछीतरेहसों सिद्ध होयहे सो मेरी कहा गति होयगी?॥ ३॥ टीका- सत्संगतो महादुर्लभहे यहजीवतो स्वभावकरिकें दुष्ट हे तार्ते दुष्टसंग विनाचितितही आपतें विनाजतन दश दिशातें आवतहे सो जीवकों भगवद्धममें लगन नाहीं देत हे दुष्टसंगको गंघहू वाधक होत हे तो दशोदिशातें दुःसंग होय सो वाधक होय यामें कहा कहेनो? सो श्री गुसाईजी विज्ञप्तिमें कहेहे "अहं कुरंगीहरमंगिसंगिनांगीकृतोस्मि यत्। अन्यसंवंधगंधोऽपि कंधरामेव वाधते" (जासों में हरिणीके हिष्टकीसी चपलदृष्टिवारे व्रजभक्तनके संगि श्रीकृष्णको अंगीकृतहों तासों अन्य संवंधको गंधहू मेरी कंधारकोंही दुःखदे हे)या मांति अन्य संवंधके गंधहूतें गरो कटे एसी श्रीप्रभूतकी आज्ञाहे ओर मेरे तो दशदिशातें दुष्टसग विनाचितन आवत हे सो मेरी अब कहागति होनहार हे सो मोकों जानि नाहीं परत हे॥ ३॥

मुलं--संग्राहियतमित्वलं तैः कीडियतमेव च। श्वकलीकर्त्तमधुना प्रभोर्बालिचकीर्षितम्॥ ४॥

शब्दार्थः—समग्र चराचरवस्तुको संग्रह करवेकों ओर इनके संग क्रीडाकरिवेकों ही तथा अब सवनकों भिन्न करिवेकों प्रभुकी वालकीडा करिवेकी इच्छा हे (सो कोन जाने?)॥ ४॥ टीका—उपर कहे हे जो दुःसंगतें संसारी लोक अहंता ममता करि भरे हे तिनकों ग्रहण-करि पास राखि एसे खिलोनामें कीडतहूं संसारीतें अष्टपहर मिलाप हे सो मे कहा करूं? जगतमें एसेंही मनुष्य मोकों मिलत हे सो हे प्रभु आधुनिक जीवकों तुमही नचावतहों काष्टकी पुतरीवत दोरी तुह्यारे हाथ हे सगरे यंत्र हे तुम यंत्रीहों जाभांति वजावतहों तेसिंही वाजत हे ओर तुम तो वालककीनांई कीडा करतहों सहजमें हम तथा सगरों जगत यह माया करि भ्रमत हे याभांति कहि अब अपनी उपर कृपा करिवेको प्रार्थना दीनतासों करतहे॥ ४॥ मूलं--हा नाथ! हा कृपानाथ! गोपीनाथ! दयानिधे!। व्रजनाथ! रमानाथ! निजनाथ! जगत्पते!॥ ५॥

शब्दार्थः-हानाथ! हाऋपानाथ! गोपीजनके नाथ! दयाकेनिधि! व्रजकेनाथ ! लक्ष्मीकेनाथ ! अपने भक्तनकेनाथ ! ओर जगतकेपति ! (हमारी उपर दया करो एसी प्रार्थना अष्टश्लोकमेंहे तहांतांई समस्त संवोधनको संवंध हे)॥ ५॥ टीका-हा नाथ! हमारे तुम नाथहो स्वामीहो तार्ते तुम विना हम ओर कोनसों सुखदु:ख कहें? अव यह संसारदु:ख नांही सह्यो जातहे तुम अपने जानि दया करो, हा छूपा-नाथ! तुम आगें आगेंतें अपने जीवनपर कृपाकरत आयेही सो अव हमपर छपाहींकरो काहेतें जो तुम गोपीजनके नाथहो गोपीजन निः-साधनहे तिनपर सदा ऋपांकरि सगरेकार्य सिद्ध कीये तेसे हमहू निःसाधन हे हमपर कृपाकरो ओर तुम व्रजके नाथहो कंससंबंधी अनेक देश्य आये तिनसवनकों मारे अभितें, जलतें, कालियतें, विपर्ते, सर्वप्रकार अपने व्रजकी रक्षाही कीनी तेसें हमारी रक्षा करो, लक्ष्मीनाथ हो एसे प्रभु हमपर प्रसन्न हो, ओर अपने निजभक्तनके नाथ हो भक्त प्रसन्न रहे सुख पावे सोई करत हो सो श्रीभागवत नवम स्कंधमें दुवांसा प्रति भगवान् कहेहे " अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज!। साधु-भिर्शस्तहृदयो भक्तिभक्तजनिषयः" (हे विप्र! परतंत्र होय तेसें में भक्तनके पराधीनहीं ओर साधु मेरे भक्त हे तिननें मेरो हृदय ग्रहण करिलीनोहे तासों भक्तनही प्रिय हे जिनकों एसो मेंहू) में भक्तनके पराधीन हों स्वतंत्र नांहीहों. हे विप्र ! भक्तजन मोंकों वोहोत प्रिय् हे में भक्तनके हदयमें सदा रहतहीं याभांति तुम अपने निजभक्तनके नायहो तार्ते दया करो ओर जगतके पति हो सगरे जगतमें तुमही करत हो सोई होत हे तातें तुम कृपा करोगे तब यहकाल हमकी निश्रय दुःख नांही देयगो ॥ ५ ॥

मूलं-गोकुलाधीश!गोपीश! ब्रजाधीश! ब्रजाप्रिय!। व्रजानंद!निजानंद!गोकुलानंद!गोप्रिय!॥६॥

शब्दार्थः –हे गोकुलके अधीश!गोपीकाके ईश!हे ब्रजके अधीश! हे व्रजहे प्रिय जिनकों एसे! हे व्रजके आनंदरूप अथवा व्रजमेंहे आनंद जिनकों एसे! हे अपने भक्तनके आनंदरूप! हे गायनके कुलकों अथवा समस्त इंद्रियनकों आनंदरूप! हे गायें हे प्रिय जिनकों एसे! [दया करो] ॥ ६ ॥ टीका-हे श्रीऋष्ण! तुम गोकुलाधीश गोकुलके राजा हो सगरेगोकुलवासी तुमही करि शोभितहे गायनकें रक्षक तुमही हो गोपीजनके ईश तुमही हो ओर सगरे वजके राजा तुमही हो वज तुमकों प्रियहे तुम वजकों प्रियहो सो दशमस्कंधमें ब्रह्माजीनें कह्योहे " अहो भाग्यमहो भाग्यं नंदगोपब्रजीकसाम्। यान्मित्रं परमानंदं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्" (श्रीनंदरायजीके ब्रजमें रहन-हारे सगरेनको अहो भाग्य देखो जिनके सदा आनंदरूप पूर्ण बहा मित्रहे) यहवचनर्ते व्रजके जन नंदयशोदा गोपगोपीके परमभाग्य हे जिनके मित्र श्रीकृष्ण परमानंदरूपह सगरे व्रजके आनंददाताहे ओर निजभक्तनकोहू अपनो आनंददान करतहे. गायनके कुल तिनकों आनंददाताहे काहेर्ते जो गाय आपकों वोहोत प्रियहे सो भगवदीय गायेहे " आगें गाय पाछें गाय इतगाय उतगाय गोविं-दाकों गायनमें रहिवोही भावेरी "एसी गाय प्रियहे एसे श्रीऋष्ण हम उपर कृपा करे ॥ ६ ॥

मूलं-हा कृष्ण ! हा दयासियो ! हा राधावर ! सुंदर !। दीनेषु सततं श्रीमित्रजाचार्याश्रितेषु च॥७॥ दुष्टेषु दोषपुष्टेषु भाग्यसुष्टेषु मत्प्रभो !। तिःसाधनेषुन्मतिषु दयां कुरु दयां कुरु ॥ ८॥

शब्दार्थ:-हा कृष्ण! हा दयाके समुद्र! हा श्रीस्वामिनीजीके वर! हा सुंदर! दीन ओर श्रीनिजाचार्यके चरणके आश्रित,॥७॥ दुष्ट, दोपर्ते पुष्ट भये, भाग्यहीन ओर साधनरहित तथा (आचार्यजीके आश्रयतें) उत्कृष्ट मतिवारे भक्तनकी उपर हे हमारे प्रभु ! दया करों दया करो ॥८॥ टीका-हाऋष्ण! तुम निःसाधन फलात्मकहो सो हमपर कृपा करो ओर तुमतो कृपा करोहींगे यह निश्चयहे परंतु हमको धीरज नांही रहतहे तार्ते विज्ञप्ति करतहे सो श्रीगुसांईजी विज्ञप्तिमें कहेहें "अंबुदस्य स्वभावोऽयं समये वारि मुंचित । तथापि चातकः खिन्नो रटत्येव न संशयः' (मेधको यह स्वभावहे जो समय भये जल छोडे तोहू खेदयुक्त चातकहे सो रटन करचोही करतहे यामें संश्य नांहीहे) मेघको स्वभावहे स्वातिनक्षत्रमें वरसकें समय आये जलदान करतहे परंतु चातक अपनी रटना वर्षदिनलों रिटवोई करे तेसेंही श्रीकृष्ण अपने भक्तनपर निश्चय कृपा करेंगे परंतु भक्तनकों आर्तिही कर्त्तव्यहे. हे दयासिंधो! अव तुम वेगि ही दया करो, काहेतें जो तुम दया करो तो सगरो अनुकूल होय माया नाधक नहोय ओर तुम जहांतांई दयामें ढील करतहो तहांतांई माया करि हम दुःख पावतहे सो श्रीगुसांईजी विज्ञिप्तिमें कहेहे "नाथेऽनुकूलतां याते सर्वे यांत्यनुकू-लताम्। तस्मिस्तद्विपरिते तु सर्वमेव भवेत्तथा "(स्वामी अनुकूल हीय तो सर्व अनुकूल होय ओर यह विपरीत होय तवतो सव तेर्सेही विपरीत होय) हे नाथ ! तुझारे अनुकूलतें सर्व अनुकूलहे ओर तुद्धारे विपरीतर्ते सर्व जगतमें विपरीत भयोहे तातें तुम वेगि दया करो. तुम श्रीस्वामिनीजी के वर हो परमसुंदर हो ओर हम बोहोत दीन दुःखीहें तातें ऋपाकरो तो भलीहे मेरे दोप देखिकें कृपामें ढील करतहो परंतु निरंतर अपनें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीकी कानिकरिकें कृपाकरो. याभांति दीनता करत करत अपने दोपकी

स्फूर्ति होय प्रथम विरहकरि प्रभुके [लीलासंबंधी] नाम कहे ताकरि अति दीनता ओर अपने दोपकी स्फूर्ति होय ॥ ७॥ में वडो दुष्टहों अपार अनेक भांतिके कायिक मानिसक वाचिनक एसी अपारदुष्टता करि दुष्टहों, भाग्यमें भगवद्धर्भ नांही लिख्योहे बुद्धि गईहे शून्यहों, हे मेरे प्रभु ! इतनो भरोंसोहे जो तुम मेरे प्रभुहो में निःसाधनहीं मोर्ते साधन एकहू नांही वनतह एसो जो में तिनपर वेगिही दया करो मेरे दोप मित देखो. कोई कहे जो प्रभुहे दोप क्यों नदेखे गुणदोप होय सो देखेचाहिये याभांति कहे तहां श्रीगुसाईजीने विज्ञिसिमें कह्योहे "वलिष्ठा अपि मद्दोपास्त्वत्क्रपाग्रेऽतिदुर्वलाः । तस्या ईश्वर-'धर्मत्वाद्दोपाणां जीवधर्मतः ॥ अपराधेऽपि गणना नैव कार्या व्रजा-चिप!। सहजेश्वर्यभावेन स्वस्य क्षुद्रतया च नः " (मेरे दोप वलिष्ठहे तोहू आपकी कृपाके पास अतिदुर्वलहे काहेतें जो कृपा हे सो ईश्वर को धर्महे ओर दोपनकों जीवधर्मत्वहे. हमारी तुच्छतातें जो अपराध होय तामें आपके सहज ऐश्वर्यभावकरिकें हे ब्रजकें अधिप ! गणना नांही कर्तव्यहे) यद्यपि मेरे दोप नोहोत विष्ठ हे तोहू तुझारि . ऋपाके आगें दुर्नलहे तुझारि ऋपा ईश्वरधर्मरूपहे ताकीपास दोप जीवधर्महे सो कहांतांई रहेगो तातें कृपाकरो ओर तुम ब्रजके अधिपति हो निःसाधन फलात्मक हो तातें हमारे अपराधहे तिनकी गणना करनी तुझारे उचित नांहीहे काहेतें जो सहजहींमें तुझारो एसो ऐश्व-र्यहे जो यहदोप महाक्षद्रहे सो कहाहे? पुत्रके भावतें अजामिलनें नारायण नामलीयो सो कालके वंधनते छुट्यो तुमतो श्रीकृष्ण दयालु हो सो जीवके दोप देखतही नांही तातें हमपर कृपाकरो ॥ ८॥

मुलं-निवर्स्य सर्वतश्चेतो निरुद्धय चरिते हरेः। हृदिकृत्य कृपावइयं स्थीयतां सज्जैनेः सह॥९॥ शब्दार्थः निचत्तकों सर्व (लोकिक) ते निवृत्त करिकें चरित्रमें निरुद्ध करिकें (प्रभुकी) कृपाके वश्य जो निरोधहें ताकों हृदयमें स्थापित करिकें सज्जन (पृष्टिमार्गीय मक्त) के संग रहेनो ॥९॥टीका हे श्रीकृष्ण ! यह संसारमें देहसंबंधी अहंता ममता करि मेरो चित्त फिसरह्योहे ताकों यह संसारतें निवृत्त करो सर्वओरतें निरोध करि अपनेमें लगावो जेसें अजभक्तनको चित्त दही, दूध, मांखन, इत्यादिकमें हतो ताकी चोरी करि अनेक लीला करि अपनेमें लगायो तेसेंही हमारे मनको निरोध करि अपनेमें लगावो अपनें हृदयमें विचारों जो यह हमारे हे एसें जानि अवश्य कृपा कर्त्तव्यहे अपने सजनके हृदयमें सदा स्थितहो सो हम पर कृपा करी।। ९॥

मूलं-अदृष्टुः खितमुखोऽननुभूतसुखेतरः ।

स्वदुःखितातिकरुणः स कृष्णः श्र्रणं मम॥१०॥

शब्दार्थः—(उपरश्लोकमें कहे ताप्रकार चित्तकों निरुद्ध करिकें भक्त-नके संग रहिकें शरणकी भावना करनी सो दोय श्लोकतें निरूपण करतहें) जिननें दुःखयुक्त (भक्तनको) मुख नांही देख्योहे, दुःखकों अनुभव नांही कियोहे एसे ओर अपने दुःखितनकी उपर अति दया-युक्त एसे श्रीष्ठण्ण मेरो शरण (आश्रयस्थान) हे ॥ १० ॥ टीका—हें श्रीकृष्ण ! तुम अपने भक्त जो दुःखक्तेशकरि पीडित होय सो नांही देखिसकतहो भक्त प्रसन्न रहे सो तुमकों भावतहे भक्त दुःखित होय म्लानमुख होय सो तुम नांही देखिसकतहो काहेतें जो सर्व प्राणि-मात्रके तुम सुखदाताहो सो भक्तनको दुःख केसें देखोगे यहविचारिकें हमकों वडी चिंता होयहे जो अत्र भक्तनको क्वेश सहन लागे, सो विज्ञित्तमें श्रीगुसांईजी कहतहे "जानामि मंदभाग्योऽहं यदयें गोकु-लेखरः । भक्तकेशासिहण्णुत्यस्यभावं कुरुतेऽन्यथा" (में मंदभाग्य

[?] यह अर्थ रत्नभटकी टीकांक अनुसार लिख्योहे.

वारोहूं एसं जानुहूं जाके लीये गोकुलके ईश्वर (श्रीकृष्ण) भक्तके क्षेशकों नांही सहीसके एसे अपने स्वभावकों अन्यथा करतहे में यह जानतहों जो मेरे अब मंद भाग्य हे, हे गोकुलेश्वर! तुम भक्तकेश कबहू नांही सहत सो स्वभाव मेरे लीये फेरे अब सहतहों तो में कहा करूं? सर्व भृतपाणिमात्रके तुमही सुखदाताहों ओर अपने निजभक्तकों दुःखित देखिकें अत्यंत करुणाही करतहों एसे भक्तनके करुणा-सिंधु श्रीकृष्ण मेरे शरणहों एसे शरणकी भावनाही करतहों ओर कहा करिसकों ॥ १०॥

मूलं-अमंदपरमानंदो निजानंदाश्रयस्थितः। स्वरूपानंददाता च स कृष्णः श्रणं मम॥११॥

शब्दार्थः — अधिक उत्तम आनंदरूप, ओर अपने आनंदर्के आश्रय-रूप श्रीमदाचार्यजी अथवा त्रजभक्तादिक तिनमें स्थित, ओर (रसा-त्मक) स्वरूपके आनंद देयवेवारे सो श्रीकृष्ण मेरो शरण (आश्रय-स्थान) हे ॥११॥ टीका—हे श्रीकृष्ण ! तुम वोहोत आनंदकरि पूरितहों परमानंदरूपही हो तुम अपने निजभक्तनके आनंददाताहो जो कोठ तुझारे आश्रयकरिके रहे हें तिनके आश्रयरूप आपही हो तिनकों स्वरूपानंदको दान करतहो. दशमस्कंधमें श्रीनंदरायजी उद्धवजीप्रति कहेहे "मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादांबुजाश्रयाः । वाचोऽभिध्यायिनी नीम्ना कायस्तत्प्रह्णादिपु" (हमारे मनकीवृत्ति श्रीकृष्णके चरणारविंदको हे आश्रय जिनकों एसी होज ओर वाणी इनकेनामकों उचार करिवे-वारी तथा शरीर इनकों दंडवत्प्रणामादिकमें होज) मन, वचन, काय करि श्रीकृष्णके पदांबुजको जो आश्रय हे तिनकों ओर कार्य कछ नांही कर्त्तव्यहे सव सिद्धमयो तार्ते जा भक्तनें तुझारो आश्रय कीयोहे तिनकें स्वरूपानंदके दाताहो एसे जो श्रीकृष्ण सो मेरे शरण (आश्रयस्थान) होऊ सो नवरत्नमं श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहेहें "तस्मात्सर्वातमना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम " [तासों निरंतर सर्वात्मकरिकें श्रीकृष्ण मेरे शरणहे] नित्य श्रीकृष्णकी शरणभावना कर्तव्यहे ओर भगवद्गी-तामें श्रीकृष्ण कहेहें "सर्वधमीन् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज । अहं त्वां सर्वपापेम्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः" (सर्वधमीकों छोडिकें एकमोकों शरणहो में तोकों सर्वपापनतें छुडाउँगो शोक मतिकर) इत्यादि अनेक वचनहे तातें हे श्रीकृष्ण ! मोतें कछुहू धर्म नांहीं विन आवत एक तुह्मारी शरणकी भावना कीयेतें फलिसादि होय एसें जानि सोही करतहों ॥ ११॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं त्रयोदशं शिक्षापत्रं श्रीगोपे-श्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ १३॥

शिक्षापत्र १४.

अव चतुर्दशिश्वापत्रमें प्रभुके चरणारिवंदमें चित्तकों स्थापन करनो, अन्याश्रय ओर दुःसंग नांही, करनो, निवंदनमंत्रको अनुसं-धान करनो, ओर अपने आचार्यके चरणारिवंदको हृढ आश्रय रा-खनो, येही वैष्णवको लक्षणहे यह निरूपणहे। उपर कहे.जो शरणकी भावना कियेतें सर्व फलिसिद्ध होय सो भावना सिद्ध होय एसो उपाय कहतहे।

मूलं-श्रीमत्प्रभुपदयुगले स्थाप्यं चेतश्चमत्कारि। तदनुग्रहणादेव हि भवति तदीयस्य सर्वतः सक्लम्

शब्दार्थः-श्रीठाकुरजी तथा श्रीगुसाईजीके चरणारविंदमें चम-रकारयुक्त चित्तकों स्थापन करनो काहेतें जो इनके अनुग्रहतें ही तदीय-

कों सर्वभकारकरिकें सर्व सिद्ध होय ॥ १ ॥ टीका-श्रीसहित एसे मेरे प्रभु जो श्रीगुसाईजी तिनके दोउ चरणारविंदमें अपनो चित्त स्थापन करनो सो दोउ चरणकमल चित्तकों परम चमत्कारि भक्तिरसको अनुभव करावतहे तामें वामचरणके आश्रयतें पुष्टि-रसको अनुभव होतहे ओर दक्षिणचरणके आश्रयते मर्यादाभक्ति-रसको अनुभव होतहे सो श्रीग्रसाईजी ललितत्रिभंगग्रंथमें कहेहे "पुष्टि-भक्तिं स्थिरीकृत्य मर्यादांच तदाशिताम्। कृत्वा वृंदावनश्लोणीमयथा-पूर्वसंस्थितः "(पुष्टिभक्तिकों स्थिर करिकें मर्यादाकों पुष्टिकी आश्रित करिकें श्रीवृंदावनभूमिप्रति पूर्व नहीभये तेसें स्थितहे) इत्यादि वचनतें श्रीवृंदावनमें ललितत्रिमंगी होय प्रभु वेणुनाद करतहे तहां पुष्टिक्प वामचरणपे स्थितिहे ताके आश्रित मर्यादाभक्तिरूप दक्षिण-चरण टेडोहे एसे प्रभुके दोउ चरणके आश्रयकरि मनलगाईये ताकरि इनके अनुग्रहतें तदीयके सर्वकल्याण सब ठोर सिद्ध होतहे यहकहिके यहजताये जो दोउ श्रीकृष्णके चरणकमलमें चित्त लगावे तिनको कल्याण होय सो नवमस्कंधर्मे भगवान् दुर्वासाप्रति कहेहे "ये दारागारपुत्राप्ताच् प्राणाच् वित्तिममं परम्। हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यकुमुत्सहे" (जो स्री, घर, पुत्र, लोकिक हितैपी, प्राण, धन, यहलोक ओर परलोककों छोडिके मोकों शरण आये तिनकों त्यागकरिवेमें में केसें उत्साह करूं ?) श्रीकृष्णकों घर, स्त्री, पुत्रपा-णादि सर्व समर्पणकरि शरणरहे तिनकों प्रभु कबहू नांही छोडत सो श्रीकृष्णाश्रयमें श्रीआचार्यजी कहेहे " शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञाप-याम्यहम् " (शरजआये तिनको उद्धार करिवेवारे श्रीकृष्णकीं में विनति करूंहूं) यहवाक्यतें श्रणस्थजीवको निश्रय उद्घारहीहे ॥१॥ मूल-अन्याश्रयस्तदीयेकपदाश्रयविरोधकृत्।

प्रमोस्दासीनतायाः कारणं त्यज्यतां द्रुतम्॥२॥

शब्दार्थ:-तदीयके चरणको आश्रयवारेनको विरोध करिवेवारो अन्याश्रय हे अथवा तदीयको स्थानक जो व्रज ताको आश्रय जो निवास ताको विरोध करिवेवारोहे ओर प्रभु (श्रीठाकुरजी तथा श्रीगुसांईजी) की उदासीनताको कारणहे सो शीघ त्याग करनो ॥ ॥ २ ॥ टीका-उपर कहे जो श्रीकृष्णके चरणमें मन लगावे तो सर्वे सिद्ध होय तहां अन्याश्रय महा वाधकहे सो एसो वाधकहे जो भगवदीयकों हू चरणकमलके आश्रयमें विरोधही करे तो ओर जीव कहा वस्तु ? तेसो तो गिरेहीं तासों अन्य देव मनुष्य राजा इनको आश्रय न करे तहां कहतहें "भगवत्पदपद्मपरागजुपो नहि युक्ततरें मरणेऽ पितराम्। इतराश्रयणं गजराजधृतो न हि रासभमप्युररीकुरुते" (भगवानके चरणारविंदकी रजकों सेविवेवारेकों मरणतें अधिक दुःखः मेंहू ओरको आश्रय युक्त नहीं जो हाथी उपर वेठो होय सो रासभ (गधा) कों नांही कबुल करे) भगवानके चरणकमलकों छोडि अन्यदेवकों आश्रय एसोहे जेर्से हाथीकी अस्वारी छोडि गधार्पे चढे। हारितस्प्र-तिम कहेहे "नान्यं देवं नमस्क्रयात्रान्यं देवं निरीक्षयेत् । नान्यप्रसान दमद्याच नान्यदायतनं व्रजेत् ॥ अनन्यशरणा ये तु तथैवानन्यसान धनाः। अनन्यभोगभोग्या ये ते तु सर्वेऽधिकारिणः " (अन्यदेवकों नम-स्कार नांही करे, अन्यदेवकों देखे नांही, अन्यप्रासादकों खाय नांही, अन्यदेवके मंदिरमें जाय नांही, अनन्यहे शरण जिनको तेसेंही अन-न्यहे साधन जिनको, ओर ओरनके भोग्यको भोग नहि करिवेवार जो हे सो सर्वअधिकारीहे) इत्यादि वचनतें ओरदेवकों नमस्कार नकरे, अन्यदेवको प्रसाद नलेय, अनन्य प्रभुकी शरण रहे, एक श्री-कृष्णकी साधन सेवा स्मरण करे तब प्रभु प्रसन्न होय। अन्यआश्रय करे ताके उपर प्रभु उदासीन होयजाय जो में कहादेवेमें समर्थ नांही हैं

जो अन्याश्रय करतहे? जेसें दामोदरदास संभठवारेकी छीनें रंचक अन्याश्रय कीयो तातें पुत्र म्लेच्छ भयो बोहोत खेद पाये तातें वैष्णव भगवदीय अन्याश्रयकों निश्चयही शीघ्र त्याग करे ॥२॥ मुलं-असत्संगस्य च त्यागो भावबाधकता यतः। यथा ठ्याघो बाधकः स्याच्छरीरादेः श्रीरिणः॥३॥

शब्दार्थः — असतके संगको त्याग करनों काहतें जो असतसंगततें भगवद्भावको नाश होय जेसें शरीरी जो जीवहे तिनके शरीरादिकको वाधक वाध हे सो शरीरको नाश करतहे (तासों जीव वाधतें दूररहतहें तेसेंही असतसंगको जानिकें तातें दूर रहेनो)॥३॥ टीका—अन्याश्रय छोडे काहेतें जो भगवद्भावमें असतसंग वाधकहे ताको लोकिक हप्टांत कहतहे जेसें वाध (नाहर) के आगें मनुष्य जाय तो वाके शरीरको विम्नही होय ताकरि देहको नाश होय तेसेंही असतसंग होय तो भगवद्भावको निश्चय नाश होय असतसंगतें जडभरतकों तीन जनम लेने परे ब्रिविदवानरकों नरकासुरके संगतें श्रीवलदेवजीसों लरनो पयों तातें असतसंग महावाधक जानि तत्काल छोडनो ॥ ३॥

मूलं-असत्संगस्तथा प्रोक्तः श्रीमदाचार्यपंडितैः। अध्यासः स्वरारीरादौ तदीयत्वप्रकारतः॥४॥

शब्दार्थः -श्रीमदाचार्यजी जो महापंडित हे तिनने अपने शरीरादिन कमें तदीयपनांके प्रकारसों जो अध्यास ताक़ं असत्संग कहाोहे अथवा शरीरादिकमें [अहंताममतात्मक] अध्यासक़ं असत्संग कहाो हे ओर यह देह तदीय (भगवत्संबंधी) हे यहप्रकारतें जाने सो सत्संगहे ॥ ४॥ टीका-असत्संग महादुःखरूपहे सो हमारे श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी महापंडितनें वेद, शास्त्र, पुराण, श्रीमागवत, सर्वमियक श्रीमुबोधिनीजी आदि ग्रंथ प्रकट कियेहें तामें अन्याश्रय ओर असत्संग महावाधक ठोरठोर निरूपणिकयोहे तार्ते भगवदीयके संग रहे उनके संगर्ते सगरो असत्संग छुटि जाय एसे अन्याश्रयतेंहू वचे ॥ ४॥

मूळं-विधाय सर्वथा भीतिं विधेयेतरयोगतः। सत्संगेन स्वमार्गेकिनिष्ठत्वेन च सर्वथा॥५॥ समर्पणाऽनुसंधानं विधेयं मिलितेः सदा। इदमेवाऽसमदाचार्यमार्गे साधनमुत्तमम्॥६॥

श्रव्दार्थ:-कर्त्तव्य ओर अकर्त्तव्यके योगसों सत्संगकरिके ओर सर्वथा पुष्टिमार्गमेंही एकनिष्ठपना करिके असत्संग प्रति निश्रय भय करिकें मिले एर्से भगवदीयनके संग निवेदनमंत्रको अनुसंधान सदा करनों यहही अपने श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके पुष्टिमार्गमें उत्तम साधन है ॥ ५॥ ६॥ टीका-याभांति असत्संगर्सो महा भय राखे यह निश्रय सिद्धांत मनमें जानियें जो जीवकों यह योग्य हे, यह कर्तव्य हे, एसें जानि जितनो भगवद्धर्म वने तितनो करे परंतु असत्संग न करे, सत्संग करे, जा भगवदीयकी पुष्टिमार्गमें निष्ठा होय ताहीकी संग करे ओरको न करे काहेतें जो एतन्मार्गीय भगवदीयके संगतें अपने पुष्टिमार्गकी सगरी रीति जाने मार्गमें पूर्ण निष्ठा होय जब भाव वहें ओर सव सिद्ध होय ॥ ५ ॥ श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीद्वारा श्रीठाकुरजीको सर्व समर्पण कियोहे एसे भगवदीयसाँ मिलिकें सदा विचारे जो में कहा समर्पण कियो ? अव में कहा किया करतहों ? कितनी वस्तु प्रभुमें अंगीकार होत है ? कोनसी इंद्रिय वहिर्मुख है ? तथा कितने दिनते प्रभुते विद्धरयो हों सो अव श्रीआचार्यजीमहा-प्रभुजीनें ऋपा करिकें मिलायदियों हे सो में कोनप्रकार सेवा स्मरण करुं ? इत्यादि भाव भगवदीयसों मिलिकें विचारे भगवदीयसों देन्य राखे जो वे ऋपा करिकें वतावे येही श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके यह

पुष्टिमार्गमें उत्तम साधनहे. भगवदीयके संग निवेदनको स्मरणकरे ताहीतें नवरत्नग्रंथमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभु कहे हे " निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा ताहशौर्जनैः " [निश्चय ताहश जनके संग निवेद-नको स्मरणकरे] भगवदीयको संग सर्वथा करनो तथा सर्वदा करनो उनसों नित्य निवेदनको प्रकार सुनिकें अपने मनमें भावराखनो यह सत्संगही श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके मार्गमें उत्तमतें उत्तम साधनहे सोई करे यातें विरुद्ध साधन न करे। १ ६।।

मूलं-स्वाचार्यचरणद्वन्द्वदृहाश्रयणमाहतैः। विधेयं तेन सकलमस्मिन् मार्गे भविष्यति॥७॥

शब्दार्थः -अपने आचार्यजीके दोउ चरणको दृढआश्रय आदरयुक्तहोयकें करनोः; ताकरिकें यहपुष्टिमार्गमें सर्वसिद्ध होयगो ॥ ७॥
टीका-अपने श्रीवछभाचार्यजीके दोउ चरणारविंदको दृढआश्रय जो
कोई पुष्टिमार्गीय जीव आदरपूर्वक करे तिनकों यहसवोंपरि पुष्टिमागंको सिद्धांत हृदयारूढ होय तातें देवी जीवनकों श्रीआचार्यजीमहाप्रमुजीके चरणकमलको दृढ आश्रय निश्चयही कर्त्तव्यहे ताहीकरिकें
सकल कार्य सिद्ध होयगो॥ ७॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं चतुर्दशिक्षापत्रं श्रीगोपे-श्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ १४॥

शिक्षापत्र १५.

अव पंचदश शिक्षापत्रमें भगवानकी छीलाके अनुसंधानपूर्वक भगवत्समरण करनो यह निरूपणहे. उपर कहे जो भगवदीयको संग करे अपने श्रीआचार्यजीके दोउ चरणारविंदको आश्रय करे तो यह ' पुष्टिमार्गको फल सिद्ध होय सो श्रीमहाप्रभुजीके चरणकमलको आश्रय कोनभांति होय सो यह शिक्षापत्रमें कहत हे-

मूलं-यदंगीकृतजीवानां न दुःखं लेशतोऽपि हि। सदानंदः 'सदानंदतत्स्मृतिः क्रियतां सदा ॥१॥

शब्दार्थः — जिनको प्रभुने अंगीकृत किये एसे जीवनकों रंचकह दुःख नांहीहे सदानंद एसे प्रभुसो सदा आनंदरूप हे तिनकों स्मरण सदा करनो ॥ १ ॥ टीका—अपनो अंगीकृत जो जीव यह पुष्टिमा-र्गमें शरण आयोहे तिनकों रंचकहू दुःख होय सो श्रीआचार्यजीम-हाप्रभु नांही सहीसकत अपने जीवनको सकल दुःख दूरि करि सदा आनंदको दान करत हे ॥ १ ॥

म्लं-यो निजानतिसंतप्तान्स्वकृते वीक्ष्य विस्मितः। . प्रादुर्भवत्यचिरतस्तत्स्मृतिः क्रियतां सदा ॥२॥

शब्दार्थः—जो प्रभु अपने लिये आते (विषयोगामितें) तप्त अपने भक्तनकों देखिकें विस्मित होय शिष्ठ (आचार्यरूप) प्रकट होयहे तिनकी स्मृति सदा करनी ॥ २ ॥ टीका—यहजीव जादिनतें भगवानतें विद्युत्त्यो तादिनतें चौराशी लक्षयोनिमें भमतहे जन्ममरणके अनेक प्रकार दुःखपावतहे संसारामिमें महासंतप्तहे यद्यपि देवी जीवहे तोह अपनो दासपनो ओर प्रभुको स्वरूप भूलिगयो ताकरि संसारमें महा-दुःसीहे याभांति अपनी कृतिकरिकें दुःसी होतहे सो श्रीठाकुरजी देविकें विस्मित भये ओर मनमें सद्याय कहे जो हमारे देवीजीव वोहोत दुःसीहे तब करणा करि श्रीकृष्ण आपही श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी-

[?] सदानंदा एमो पाठहे वाके अनुसार अर्थ-सदा आनंदछप होयक सदा आनंद-रूप इनकी स्तुवि कर्नी.

' स्वरूप अभितें प्राहुर्भृत होय अपने दैवीजीवनके अनेक चिरकालके सगरे दुःख दूरि कीने एसे श्रीआचार्यजीमहाप्रभु भक्तवत्सलपरमद-याल हे तिनको स्मरण सदाही कर्त्तव्यहे ॥ २ ॥

मूलं-यः स्वतःसेवकानां हि पराश्रयनिवारकः। कृपासरित्पतिः कृष्णस्तत्स्मृतिः क्रियतां सदा ॥३॥

शब्दार्थ:-जो आपतें अपने सेवनकों अन्याश्रयानवारण करिवेवारे श्रीकृष्ण दयाके सागरहे सदा तिनकी स्मृति करनी ॥ ३ ॥ टीका-जेर्से श्रीऋष्ण सगरे व्रजभक्तनकों अन्याश्रय छुडाये गिरिराजद्वारा आपु अरोगे अविकापुजनमें श्रीनंदरायजीकों दंड देयकें छुडाये तेसें श्रीआचार्यजीमहाप्रभु अपने सेवकनकों पराश्रय [अन्य देवको भजन] छोडाय एक श्रीकृष्णहीको भजन वताये, सर्व ओरते निवृत्त करि एक श्रीकृष्णहीकी शरण किये सो श्रीकृष्ण कृपाके समुद्रहे जाको अंगी-कार करतहे ताकों फेरि कवहू छोडत नांही भक्तपर कृपाही करत है सो नवमस्कंधमें दुर्वासाप्रति भगवान् कहे हे "अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज !। साधिभिर्यस्तहृदयो भक्तेभक्तजनिर्यः " (हे द्विज ! में परतंत्रकी नांई भक्तके पराधीनहों ओर साधभक्तननें मेरो हृदय ग्रस्यो हे तासोंही भक्तजन मोक़ं प्रिय हे भगवान् कहे हे, हे द्विज दुर्वासा! में तो भक्तके वश पराधीनहों स्वतंत्र नांही हों मोकों अपने हृदयमें धरि लीनोहे मोको भक्तजन वोहोत प्रियहे एसे ऋपाल श्रीऋ-ष्णहे तिनकी प्राप्ति अपने भक्तजीवनकों कराये एसे श्रीआचार्यजीके चरणकमलको स्मरण सेवकनकों अहानिश कर्त्तव्यहे ॥ ३॥

मूलं-हृदयस्थः समस्तानां धुनोति विषयादरम्। दयादामोदरः श्रीमांस्तत्स्मृतिः क्रियतां सदा॥ ४॥ शब्दाथ: —समस्त भक्तनके हृदयमें रह्ये एसे द्याकरिकें दामोदर भये एसे श्रीमान विषयमें (भक्तनकों) आदर मिटावे एसेहे तिनकी स्मृति सदा करनी ॥ ४ ॥ टीका—श्रीकृष्ण सर्व प्राणिमात्रके हृदयमें स्थितहें सो भक्तनके हृदयमें होय यामें कहा कहनों ? परंतु जीव (विषयादि, खान, पान, देहसंबंधी संसारसुखमें आदर करि मनको लगावे हे ताकरि) हृदयमें प्रभुहे तिनकों भूलि गयोहे अनेक विषयके लीये अमत हे ओर प्रभु दामोदर हे शीयशोदाजी उपर दया करि आपु वंधाये एसे शोभायमान श्रीकृष्ण तथा श्रीआचार्यजी एकरूप जानि तिनके स्मरण वैष्णवकों सदा कर्त्तव्य हे ॥ ४ ॥

मूलं-यःप्राणप्रेष्ठगोपीनां संगं गोपयति स्वतः। निलायनादिलीलाभिस्तत्समृतिः क्रियतां सदा॥५॥

शब्दार्थः—जो प्रभु प्राणिपय गोपीजन गोपांतरिस्थत होय तिनके संगमकों निलायनादि [छुपि छिपिकें खेळनरूप] कीडाकरिकें आपतें गोप्य करतहे तिनकी स्मृति सदा करनी] ॥५॥ टीका—स्वामिके संग गोपीजनकों रसात्मकताकों गोप्य करतहे जामें श्रीनंदरायजी, श्रीयशो-दाजी, और अनेक गोप जाने नांही याभांति प्रजमक्तनकों रसदान करतहे सो गोपीजन श्रीटाकुरजीके प्राणिप्रयहे सो उद्धवजीसों भगवान दशमस्कंधमें कहे हें "ता मन्मनस्का मत्प्राणा मद्धें त्यकदेहिकाः। ये त्यक्लोकधर्माश्च मद्धें तान् विभर्धहम् " [यह गोपी मेरेमेंहे मन जिनको मेरेमेंहे प्राण जिनको अथवा मेंहूं प्राण जिनको, ओर मेरे अर्थ सर्व दिहिकधर्म जिननें त्याग किये हे एसीहे तो जो मेरे अर्थ लोकधर्मको त्याग करिवेवारेहे तिनकों में पोपण करूंहूं) तन, मन, प्राण, देह प्रभु-अर्थ अर्पण कियोहे और प्रभुके अर्थ लोक, वेद, धर्म स्थाग कियोहे तार्त श्रीकृष्णकों प्राणसमान प्रियहे. प्रभु केसे दयाल हे सो तृतीयस्कंधमें

उद्धवजी कहे हे "अहो वकीयं स्तनकांलकृटं जिघांसया पाययदण्य-साध्वी। लेभे गतिं धात्र्यचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम" (अहो दुष्टपूतनानं मारिवेके लियेहू स्तनको विप जिनकों प्यायो सो पूतनाहू माताके योग्य गतिकों प्राप्तमई तासों अन्य एसो कोन दयालु होय जिनके शरण जईये) पूतना अपने स्तनमें कालकृट (विप) लगाय प्यावनलागी एसी राक्षसीकों श्रीकृष्ण माताकी गति दीनी तव जो भक्त दूधआदि नानाप्रकारकी सामग्री अरोगावतहे एसे व्रजभक्तनके वश्य भगवान् होय यामें कहा केहेनो? एसे श्रीकृष्ण प्राण-प्रेष्ठ गोपीकों सवतें लिपायकें रसदान करत हे नित्य रासादिलीला करतहे एसे रसात्मक श्रीकृष्णको स्मरण सदाही कर्त्तव्यहे॥ ५॥

मूलं-य उद्धवेन भक्तेन स्वस्वरूपमबोधयत्। गोपिकानां हृदंतस्थस्तत्स्मृतिः क्रियतां सदां ॥६॥

शब्दार्थः – जो प्रभु अपने भक्त उद्धवकों स्वरूपको वोध करत भये ओर गोपिकाके हृदयकी भीतर रहेहे अथवा गोपिकाके हृदयमें रहो एसे स्वरूपको उद्धवजीद्वारा गोपिजनकों जिनमें वोध कियो तिनकी स्मृति सदा करनी ॥६॥ टीका – श्रीकृष्ण उद्धवजीकों निजभक्त जाने तब वि-चारे जो उद्धवजीनें वोहोत सेवाकरि अब व्रजलीलाको अनुभव होय तो आछो सो अनुभवतो श्रीस्वामिनीजीके हाथहे भावात्मक स्वरू-पतो श्रीस्वामिनीजीके ओर व्रजभक्तनके हृदयमें स्थितहे तातें योगको मिपकरिकें उद्धवजीकों अपने निजस्वरूपके वोधार्थ भगवाननें व्रजमें पटाये तब गोपीजननें भगवानके सखा जानि अपनी सगरी लीला उद्धवजीकों दिखाई तब उद्धवजीकों अनुभव भयो तब

१ यहश्लोक भाषाकी टीकावारे पुस्तकमें ७ मो लिख्यो हे परंतु रत्नभट्टकी टीकाके अनुसार यहां लिख्योहे तथा संगतिह एसी दीखेहे.

अपने योगकों भूलिगये, वंदन करन लागे "नायं श्रियोंऽगउ! नितांतरतेः प्रसादः स्वयोंपितां निलनगंधरुचां कुर्तोऽन्याः। रासोत्स-वेऽस्य भुजदंडगृहीतकंठलञ्घाशिषां य उदगादुव्रजवलवीनाम्॥ १॥ आसामहो चरणरेणुजुपामहं स्यां वृंदावने किमपि गुल्मलतौपधीनाम्। या दुस्त्यजं स्वजनमार्थपथं च हित्वा भेजुर्मुकुंदपदवीं श्रुतिभिवि-मृग्याम् ॥२॥ वंदे नंदन्नजिल्लाणां पादरेणुमभीक्ष्णशः। यासां हरि-कथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥३॥" (रासोत्सवर्मे भगवानके श्रीहस्त-करिकें ग्रहण कियो एसो जो कंठ ताकरि प्राप्तभयेहे सर्व मनोरथ जिनके एस जो व्रजभक्त तिनकों जो प्रसाद भयोहे सो निरंतर प्रीतिवारी लक्ष्मीजीकों नांहीभयो कमलसरिखोहे गंध तथा कांति जिनकी एसी अप्सरानकों हूं नांही भयो तो दुसरेनकों कहासों होय? ॥१॥ जो व्रजभक्त पति पुत्र संवंधि सगरो कुदुव तथा वेदमर्यादा छोडिकें श्रुतिनतें विमृग्य [ढुंढिवे योग्य] श्रीऋष्णकी पदवीकों प्राप्त भये काहेतें आपश्चतिरूपाई तिनकी चरणरेणुको सेवन करतहे एसे जो बंदावनके प्राणी होवेमें तो योग्यता नांहीहे तासों गुल्म लता औपधिनमें कछुहू में होउं अर्थात् सात्त्विक, राजस, तामस, जो स्था-चरहे तिनमें कछुहु में होउँ ॥२॥ जिनकी हरिकथाको स्वतंत्र निकस्यो एसो रटन तीन लोककों पवित्र करतहे एसे जो व्रजभक्त तिनके चरणकमलकी रजकों क्षण प्रति दंडवत् करतहूं ॥३॥) यह दशा उद्धव-जीकी भई सो गोपीजनके चरणकमलकी रजकी आज्ञा करिकें गुल्म लता औपधीकी प्रार्थना करी सो भावात्मक भगवान् व्रज-भक्तनके हृदयमें स्थितहे तो भावरूप श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीहें तिनके चरणकमलको स्मरण सदा करे ॥ ६ ॥

मूलं-यः स्वमाहात्म्यवोधाय प्रादुभीवितवान्स्वयम्। प्रभुः श्रीवल्लभाचार्यास्तत्समृतिः क्रियतां सदा।।७॥

शब्दार्थः — जो प्रभु (अपने भक्तनकों) अपनो माहात्म्य जतायवेके लिये आप श्रीवछभाचार्यजिकों प्रकट करतभये तिनकी स्मृति सदा करनी ।। ७ ।। टीका—श्रीकृष्ण उद्धवजीकों अपनें निजभक्त जानि (अपने स्वरूपकों आपु नांही जताये) गोपीजनके पास पठाये तहां यह जताये जो भगवान कृपाकरे ताहुतें अधिक भगवदीयद्वारा स्वरूप-को वोध होय सो सर्वोपरिहे तेसेंही देवी जीव संसारमें प्रभुकों भूलि गये तव श्रीठाकुरजी अपने स्वरूपमाहात्म्यवोधार्थ श्रीआचार्यजीकों पठाये तव श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी पृथ्वी पर प्रादुर्भूत (प्रकट) भये भूमि उपर स्थित होय देवीजीवनकों स्वरूपानंदको अनुभव कराये एसे श्रीकृष्ण सर्व सामर्थ्ययुक्त हें तिनके चरणकमलको स्मरण सदा कर्त्तव्य हे ॥ ७॥

मूलं-यस्य स्मरणमात्रेण सक्लार्तिविनाश्नम्। तत्क्षणादेव भवति तत्स्मृतिः क्रियतां सदा॥८॥

शब्दार्थः - जिनके स्मरणमात्रतेंही सवनकी सर्व आर्तिको नाश तत्क्षणतेंही होय हे तिनकी स्मृति सदा कर्त्तव्य हे।। ८।। टीका - एसे श्री कृष्णरूप भावात्मक श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके चरणारविंदको स्मरणकरतमात्रही सकल आर्ति, संसारके दुःख सर्वदोपको नाश होय जाय ओर तत्काल श्रीवलभदेव श्रीकृष्णदेव वा जीवके उपर प्रसन्न होय तार्ते यह पुष्टिमार्गीय वैष्णवनको यह धर्म निश्चय हे जो एसे श्रीमहाप्रभुजीके चरणकमलको स्मरण मन लगायके अहर्निश करनो जेसे ज्ञजभक्त रात्रिदिवस स्मरण करतहें तेसेंही करनो ॥ ८॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं पंचदशं शिक्षापत्रं श्रीगोपे-श्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ १५॥

शिक्षापत्र १६.

अव पोडश शिक्षापत्रमें, अहर्निश भगवत्सेवन, स्मरण कीर्तन करे तिनकों भगवान् निरोध करतहे तथा ऐहिक पारलोकिक स्वतः-सिद्ध करतहें तासों भक्त कछ चिंता न करे यह निरूपणहे। उपर कहें तामोंति महाप्रभुजीको स्मरण करे तो प्रभु प्रसन्न होय तव प्रभुके स्वरूपको ज्ञान होय और अपनो दोप स्फुरे सो प्रकार कहतहें-

मूलं—सदा स्वभक्तहृदयावासः स्वाचार्यभावितः। यशोदाऽतिप्रियः श्रीमान् नंदसूनुर्वजेश्वरः॥१॥ स्मरणीयो यथाशक्ति सेवनीयस्तथा पुनः। तादृशेः सह संगेन कथनीयश्च सर्वथा॥२॥

शब्दार्थः -सदा अपने भक्तनके हृदयमें विराजिवेवारे, अपने श्रीआचार्यजीके भावसों भावित, श्रीयशोदाजीकों अति प्रिय, शोभा- युक्त, श्रीनंदरायजीके पुत्र, व्रजके इश्वर ॥ १ ॥ स्मरण करिवे योग्य तथा अपनी शक्ति अनुसार सेवा करिवेयोग्यहे फेरि ताहशीनके साथ संगकरिकें निश्चय (इनकी लीलाकी) कथा कर्तव्यहे ॥ २ ॥ टीका- सदा श्रीठाकुरजी अपने भक्तनके हृदयमें वसतहे सो केसेनके हृदयमें वसतहे ? तहां कहतहें जो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकों भावकरि प्रसन्न कीयहे श्रीआचार्यजीके भक्त हे एसे पुष्टिमार्गीय भगवदीयनके हृदयमें प्रभु सदा विराजतहे सो प्रभु केसेहे ?श्रीयशोदोत्संगलालित श्रीयशोदोजीकों अति प्राणिपय श्री (श्रीमा) सिहत नंदस्तु नंदर्र रायजीके पुत्र सो दशमस्कंधमें नंदमहोत्सवमें शुकदेवजी कहे हे ''नंदस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताहादो महामनाः" (श्रीनंदरायजी अपने

आत्मज (आत्मानें अथवा देहतें उत्पन्नभये एसे पुत्र) उत्पन्न भये तव आल्हादयुक्त ओर वडेमनवारे भये) नंदरायजीके आत्मातें उत्पन्न भये .एसे श्रीकृष्ण व्रजके राजाहे सो सदा व्रजहीमें भक्तनके संग विहार करत हे एसे श्रीकृष्ण पुष्टिमार्गमें सेव्यहें सो एतन्मार्गीय भगवदीय [श्रीआचार्यजीके कृपापात्र] हैं तिनके हृदयमें वसतहे तथा श्रीठा-कुरजीके हृदयमें भक्त वसतहे सो श्रीभागवतनवमस्कंधर्मे भगवान् दुर्वासा प्रति कहेहे 'साधवो हृद्यं मह्यं साधूनां हृद्यं त्वहम्। मद्न्यत्ते न जानंति नाहं तेभ्यो मनागि " (साधहे सो मेरो हृदयहे ओर में साधनको हृदय हों मोर्ते अन्य यह भक्त नांही जानतहे ओर में इनसों कछुहू अन्य नांही जानतहों) भगवान कहे भक्तनके हृदयमें मेंहों मेरे हृदयमें भक्तहे भक्त मोर्ते अन्यजानत नांही ओर भक्ततें ओरकीं में जानतही नांही एसे श्रीकृष्ण हे एसे व्रजमें सदा विहारकर्ता नंद-यशोदाजीके पुत्रहे तिनहीको स्मरण करनो काहेतेजो एसे भावात्मक प्रभु व्रजभक्तनके वश्यहे तातें व्रजभक्तनसहित स्मरण करनो ओर सेवाहू एसेंही भक्तनके भावसहित करनी तथा तादृशीयभगवदीयसाँ मिलिके श्रीकृष्णकी कथा हू सर्वथा नित्य नियमसों सुननी ॥२॥

मूलं-अहर्निशं व्रजाधीशः प्रपंचास्मृतिसाधकः। स्वकीयपक्षपाती च निजसक्त्या विरोधकृत्॥३॥ स्मरणीयः कृपापारावारो विदितरूपवान्। स एवास्मत्सर्वकर्ता चिंताणुरपि नो हृदि॥४॥

शब्दार्थः - अहर्निश प्रपंचकी विस्मृतिके साधक, अपने भक्तनके पक्षपाती, ओर अपनी आसक्ति करायकें निरोध करिवेवारे श्रीव्रजाधीश ॥३॥ कृपाके समुद्र ओर वेणुगीतमें "वर्हापीडं" यह श्लोकमें नटवर रूप जतायोहे सो रूपवारे स्मरणीयहे सोही अपनों सर्व सिद्ध

करिवेवारेहें तासों हृदयमें अणुमात्र चिंता नांही कर्त्तव्य हे ॥४॥ टीका-स्मरण, सेवा, कथा, वार्त्ता, अहर्निश एक व्रजाधीशकी करे तो यह प्रपंच देह संबंधी लौकिक बैदिक सबकी विस्मृति होय येही (स्मरण, सेवा, कथा, वार्ताही, प्रपंच विस्मृतिको साधन तथा पुष्टि-मार्गीय भगवद्धर्म हे ओर नांही सो व्रजाधीश अपने भक्तनके पक्षपातीहे अपने सामर्थ्य करि भक्तनको सब ठोरतें निरोध सिद्ध करत है और जो जप, तप, यज्ञ, होम, तीर्थ, व्रतादिक मर्यादामार्गके साधन हैं तार्मे अनेक कालादिदोप प्रतिबंधक होतहे तामें प्रभु रक्षा नांही करतहे ओर भगवद्धमें प्रभु रक्षा करतहें जेसें प्रह्लादके अर्थ प्रभु स्तंभतें प्रकटे भक्तकी रक्षा कीनी तार्ते श्रीकृष्णको स्मरण सेवादिक मनलगायकै करनो तहां कालादिक कछ वाधक न होयगो अपने भक्तनके पक्षपाती भगवान् हे सो अपनी आसक्तिको सामध्ये भक्तनमें धरि सब ठोरतें निरोध करतहे ॥३॥ एसे श्रीकृष्णको स्मरण सदाही कर्त्तव्यहे सा श्रीकृष्ण परमकृपाछहे सो वेद, शास्त्र, श्रीभागवतमें प्रसिद्ध हे। पष्ठ-स्कंधमें कहेहे 'सांकेत्यं पारिहास्यं च स्तोभं हेलनमेव वा । वैकुंठनाम-अहणमशेपाघहरं विदुः॥१॥ अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्। संकीर्त्तितमघं पुसां दहेदेधो यथाऽनलः ॥२॥"(संकत्युक्त, हास्ययुक्त, मशकरिमें कहा।, अपराधतें लियो, एसोह वैकुंठ (भगवान्) के नामको ग्रहणहे सो सर्व पापकों हरिवेवारो हे एसें ऋपि जानतहे ॥ १॥ अज्ञानते अथवा ज्ञानते उत्तमयशवारे भगवानके नामको कीर्त्तनहे सो अभि जेसे काष्टकों जरावतहे तेसे सर्वपापकों जराय देतहे ॥२॥) यह वचनतें ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभु नवरत्नग्रंथमें कहेर्हे "अज्ञानादथवा ज्ञानात्कृतमात्मनिवेदनम्। येः कृष्णसात्कृतप्राणेस्त्-पां का परिदेवना " (अज्ञानसों अथवा ज्ञानसों प्रभुके आधीन प्राणवारे जिन भक्तनमें आत्मनिवेदन कियोहे तिनकों लोकिक वैदिककी

[विधिनिपेधादिककी] चिंता कहाहे ? कछु नांही) इत्यादि-वचनसों जाननों जो सेवा स्मरणादिक भगवद्धमं जानिकें करे अथवा अनजाने करे तो हू प्रमु कृपा करे सो श्रीमहाप्रमुजीके चोराशी वैष्ण-वकी वार्तामें कहेहें जो गदाधरदासनें शाककी कही सो माधवदास ले आयो ताकरि माधवदासकों भिक्त भई यागांति प्रमु सेवा मानिले-तहे याभांति प्रमुकी कृपा शास्त्रमें प्रसिद्ध हे तातें प्रमुही हमकों अप-ने जानि सर्वकार्य सिद्ध करेंगे तातें भगवदीयकों लोकिक वैदिककी चिंता तथा अपने उद्धारकी चिंता नांही कर्त्तव्य हे ॥४॥ मूलं-सतामप्यसतां वाऽपि स्वकीयानां कृपानिधिः। करिष्यति स्वतः सर्वमतिश्चिता न काऽपि हि॥५॥

राव्दार्थः — सत् [साचिक] असत् [तामस] अथवा सत् व्रजभक्त असत् अपनेहू उनके शरण जाय उनके भये तिनके सर्व मनोरथ कृपाके निधिक्प प्रभु आपुद्दी करेंगे तासों निश्चय कछुदू चिंता नांही है ॥ ५ ॥ टीका — प्रभुकी यह प्रतिज्ञाह जो भक्तनके उपर सदा कृपाद्दी करतहे सो प्रतिज्ञा सत्यहे मन, वचन, क्रिया, तीनो करि अपने स्वकीय भक्तनपर कृपाद्दीहे कृपानिधि एसो प्रभुको नाम हे सो त्रिविधनामा-विलमें नाम कहेंहें "भक्तजनकल्पवृक्षाय नम", "भक्ताधीनाय नमः" इत्यादि चोहोत नाम हे सो प्रभु स्वतः आपुद्दी सर्व सिद्ध करेंगे तार्ते अपने कछुद्दी चिंता नांही कर्त्तव्य हे ॥ ५ ॥

मूलं-सत्संगाऽभावतो नित्यमसत्संगस्वभावतः। वर्तते विषयाऽवेशेश्वकाऽऽरूदेव मन्मातः॥ ६॥

शब्दार्थः-[अय श्रीहरिरायजी वैष्णवनकों दीनताभाव शिखाय-वेके लिये पांच श्लोकमें अपनी व्यवस्था लिखतहे]सत्संगके अभावसों ओर नित्य दुःसंगके स्वभावसों विषयके आवेश करिकें मेरी मित चक्रमें आरूढ होय तेसे अमित है।। ६।। टीका—अव श्रीहरिरायजी कहतहे उपर कहे जो चिंता नांही कर्त्तव्यहे प्रभु सर्वप्रकार रक्षा करेंगे तोहू भगवदीयनके संगको अभाव हे जो सत्संग होय तो दुःसंग वाधा न करे सो सत्संग तो यह कालमें दुर्लभहे ओर असत्संग यत्न विना यह कलिकालके स्वभावतें सिद्ध हे सो हृदयमें विषयावेश करावत है यद्यपि भगवद्धमीदिक करतहों तोहू विषयको आवेश हृदयमें रहतहे सो आवेश जहां तांई होय तहां तांई प्रभुको आवेश होय नहीं सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभु संन्यासिनर्णयमें कहेहें "विषयाकांतदेहानां नावेशः सर्वदा हरेः" [विषयाकांत देहवारेनके हृदयमें निरंतर अथवा निश्चय हरिको आवेश होय नहीं] इत्यादि वचनतें असत्संगतें विष्यको आवेश होतहे ताकरिकें मेरी बुद्धि चक्राक्टकीनांई दशो दिशा फिरे हे प्रभुमें विश्वास नांही होतहे चिंतातें अनेक संसारको दुःखही आय लगतहे ताकरि बुद्धि मलीन हे ।। ६ ।।

मूलं-नेतिस्मन् समये कोऽपि सहायो मम वर्तते। विना श्रीवञ्चभाचार्यचरणांबुरुहाश्रयात्॥ ७॥

शब्दार्थः-यह समयमें श्रीवहःभाचार्यजीके चरणाविंदके आश्रय विना मोकों काहू सहाय नांहीहे।। ७।। टीका-दुःसंग करि विषया-वेशतें मन भ्रमतहे अनेक दुःख पावतहों भगवदीय कोड मिलत नांही तातें यह कराल कालमें मेरी सहाय कोन करनहारो हे एक श्रीवहःभाचार्यजीके चरणकमलको में आश्रय कीयो हे सोई मेरे सहाय हे ओर कोड सहाय करिवेमें नांही समर्थ हे यह करिके श्रीहरिरायजी यह जताये जो यह कलिकालमें श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय कीये हे तिनकों तो सर्व फलकी सिद्धि होयगी ओर जिनके

[?] सर्व फलप्राप्तिषे कालदोष, संगदोष, तथा अनदोष वाधकहे सो श्रीआचार्य-जीको आश्रय जिनको दढ होय तिनकी सब किया इन श्रीमहाप्रभुनकी आज्ञानुसार विवेक, धेर्य, और आश्रयको अनुसरीके होय ताते यह उपरकहे दोष वाधक न होय-

श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय नांहीहे सो कोटानकोटि साधन करो परंतु संगदोप कालदोपतें विषयावेश करि चकारूढकी नांह अमेगो उनकों कछ फलसिद्धि नांहीहे तातें यह पुष्टिमार्गीय वैष्णवनकों श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणकमलको दृढ आश्रय निश्रयही कर्त्तब्य हे ॥ ७॥

मूलं-ततइच्युता मितः कालबलात् केवललोकिके। नित्यं स्थिता ततो भीतिर्भूयसी जायते हृदि॥८॥

राब्दार्थः —कालवलसों आश्रयतें मित निकस गई हे ओर केवल लौकिकमें नित्य रही हे ताकरिकें हृदयमें वोहोत वड़ो भय हे ॥ ८ ॥ टीका —में अपने श्रवणसों कालको दुःख सुन्यो हे जो जन्ममृत्युसमान ओर कोई दुःख नांहीहे यह अनेक वार वड़ेनके मुखतें सुन्यो हे ओर मनहूमें कालदुःख आवतहे तोहू यह काल एसो किनहे जो वलातकार किर सगरो ज्ञान घरचो रहतहे केवल लौकिकही कार्य विन आवत हे याभांति नित्यही लौकिककार्यमें स्थितिहे ताकरि अपने हृदयमें वोहोत भय वारंवार पावतहों जेसें परीक्षितराजाकों कालको भय भयो तव प्रभुकी छपातें शुकदेवजी भगवदीय आय उह कालभय निवृत्त कीयो तेसें अब मेरे मनमें वोहोत भय भयोहे सो श्रीआचार्यजीके छपापात्र भगवदीयके संगतें दूरि होय सो मोकों दुर्लभहे तातें भयकरि वारंवार हृदय कंपायमानहे ॥ ८ ॥

मूलं-किंवा को वेद भगवान करुणात्मा चिकीर्षाते। न जाने तेन में चेतः खिन्नं भवति सर्वथा॥९॥

शब्दार्थः -करुणात्मा भगवान् कहा करिवेकी इच्छा करत हे सो कोन जाने ? में नांही जानतहों ताकरिकें मेरो चित्त निश्चय खेदयुक्त होय हे ॥ ९॥ टीका-करुणात्मा भगवानके अभिप्रायकों कोन जाने ? काहूमों नांही जान्यो जातहे कोटानकोटि साधन करे परंतु भगवानके हृदयके अभिप्रायको ज्ञान न होय काहेतें जो भगवानकी करुणा होय तो सर्व जान्यो जाय मन वचन करि भगवद्धर्म सेवा स्मरण वान आवे सो प्रमुकरुणा विना कहूं हृढ विश्वास नांही होत हे तातें में अपने चित्तमें निश्चयही खेद पावतहों जहां तांइ प्रमुकी कृपा नांहीं तहांताइ सर्वथा सर्वकार्यमें दुःखहीहे ॥ ९ ॥

मूलं-विशेषः प्रेमजित्पत्राद्योधव्यः सकलोऽपि हि। अनेनैव वयं किंचित्स्वास्थ्यं मन्यामहे हृदः॥१०॥

शन्दार्थः —िवशेष सकलहूं समाचार प्रेमजिरूप पत्रमों (अर्थात प्रेमजी वैष्णवके मुखसों) अथवा प्रेमजीके पत्रसों जानने यह प्रेमजितिही हमारे हृदयके कल्ल स्वास्थ्यकों हम मानतहें ॥१०॥ टीका—ओर विशेष समाचार प्रेमजी वैष्णवके पत्रमें लिखि पठाये हे सो यह पत्रतें वोध न होय तो वामें देखिकें मन लगायकें वांचि जाननें तार्ते करुणात्मा प्रमुकेहि हमहे यह जानि हृदयमें किंचित्स्वास्थ्य (धीरज) हे जो प्रमु कृपाही करेंगे काहेतें जो भगवद्धमें जानिकें करियें अथवा अनजाने कल्ल विन जाय तोहू प्रमुक्तपा करे सो नवरत्नग्रंथमें कहेहें "अज्ञानादथवा ज्ञानात्कृतमारमिनवेदनम्। येः कृष्णसात्कृतप्राणेस्तेषां का परिदेवना" (अज्ञानसों अथवा ज्ञानसों प्रमुके आधीन प्राणकरिकें जिननें आत्मिनवेदन कियोहे तिनकों कहा लोकिक कर्तव्यकी चिंता है?) सो निवेदन तो कोई प्रकार भयोहे तातें मनमें स्वास्थ्य हे जो प्रमु करणा करेंगे ॥ १०॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं पोडशं शिक्षापत्रं श्रीगोपे-श्वरजीकृतत्रजभापाटीकासमेतं समाप्तम्॥ १६॥

शिक्षापत्र १७.

संप्तदश शिक्षापत्रमें त्यागके द्वैविध्य निरूपणपूर्वक अत्यागको निरूपण तथा जीवके स्वरूपनिरूपणतें मार्गिस्थितिकी दृढ अशक्य-ताहे तासों अपने आचार्यजीके चरणारविंदको दृढ आश्रय करिके दुःसंग तथा अविश्वासके अभावकरिकें सर्व फलकी प्राप्ति होय सो निरूपणहे। उपरकहे जो भगवानके अभिप्रायकों कोन जाने तार्ते मनमें खेदहे ताहू प्रभु करुणात्माहे ताकरि कछु मनमें धीरजहे सो प्रभु करुणा करे तव उत्तम मध्यम भगवद्धमें वनि आवे तहां कोड कहे जो भगवद्धमें तो एकसो हे उत्तम मध्यम कहा? तहां कहतहे—

मूलं-यदुक्तमस्मदाचार्यगाणमुख्यविमेदतः।

त्यागो गृहधनादीनामथवा ऋष्णयोजनम्॥ १॥

राव्दार्थः — जो अपने आचार्यजी श्रीमहाप्रभुजीने गौण ओर मुख्य मेदसों त्याग दोय प्रकारको संन्यासिनर्णयादिग्रंथमें कह्योहे तामें गृहधनादिकको त्यागहे सो गौण त्यागहे अथवा गृहधनादिक-नको श्रीकृष्णमें विनियोग करनो सो मुख्य त्यागहे ॥ १ ॥ टीका— श्रीआचार्यजी महाप्रभु भक्तिवर्द्धिनी—आदि—ग्रंथमें उत्तम, मध्यम, प्रकार कहेहें "अव्यावृत्तो भजेतकृष्णं पूज्या श्रवणादिभिः । व्यावृ-तोऽपि हरी चित्तं श्रवणादौ यतेत सदा" (अव्यावृत्त होय पूजा तथा श्रवणादि करिकें श्रीकृष्णकों भजे ओर व्यावृत्त होय तोहू हरिनि-मित्त जो श्रवणादिक तामें सदा यत्न करे) यह वचनतें श्रीकृष्णकी कथा, सेवा, स्मरण, अव्यावृत्त होयकें करे यह मुख्य, ओर व्यावृत्तिहू करे परंतु मन हरिमें राखे यह गौण सो श्रीहरिरायजी कहतहे जा घर, धन, लौकिक. वैदिक, सब त्याग करि प्रभुको भजन करे जैसें गदाधरदास अव्यावृत्त रहे जलकी लोटि भरी पद्मनाभदास छोला धरे यह मुख्य प्रकार यह न बने तो सर्व श्रीकृष्णके अर्थ लगावे राजसेवा करे तामें सगरो धन गृह लगावे तोहू प्रभु कृपा करे ॥ १ ॥

मूलं-वैराग्यपरितोषादेरत्यागोऽपि निरूपितः। तथा विषयभोगस्य त्यागोऽपि विनिवोधितः॥२॥

शब्दार्थ:-वैराग्य, ओर परितोषादिकनको अत्यागहू निरूपण कियोहे ओर विषयभोगको त्यागहू विशेष करिकें निरंतर बतायोहे ॥ २ ॥ टीका-वैराग्य ओर संतोपको त्यागन करे काहेतें जो वैराग्य होय तो यह संसारमें लोकिक देह संबंधी सुख दु:ख हदयमें वाधा न करे भगवद्धर्म वन्यो जाय ओर संतोप होय तो सहजर्मे आय प्राप्त होय ताही करि आनंद रहे लोभ करि पाप आचरण न करे काहेते जो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी श्रीसुवोधिनीजी निवं-धादि ग्रंथमें कहेहें "अचौर्याणामपापानां" (चोरीकरिवेवारेन होय तथा पापी नहोय तिनके द्रव्यको प्रभु अंगीकार करे] चोरीकरि पा-पकरि कछ ल्याचे ताद्रव्य (अन्न) प्रभु केर्से अरोगे ? ताते वैराग्य संतोपादिक धर्म न छोडनो ओर विषयभोगको त्याग करनो कहिते जो विषय बहुत कियेतें हृदयमें विषयको ध्यान होय जाय पार्छे विष-यावेश सगरे देहमें होय तो प्रभुको आवेश न होय सो संन्यासनि-र्णयमें श्रीआचार्यजी कहेहें " विषयाकांतदेहानां नावेशः सर्वदा (सर्वधा) हरेः " (विषयकरिकें आक्रांत देहवारेनकों निरंतर अथवा निश्रय हरिको आवेश न होय) तार्ते विषयाभोगकोहू अवश्य त्याग करनो ॥ २ ॥

मूलं-तथा सत्संगमाऽत्यागः सर्वत्रैव विशेषतः। अन्याश्रयपरित्याग उक्तो वाधकरूपतः॥३॥

शब्दार्थः-तेसंही सर्वजगोह विशेष करिकें सत्संगको अत्याग है ओर वाधकरूपसों अन्याश्रयको चार्योओरसों त्याग कह्यो हे ॥३॥ टीका-भगवदीयको संग न त्यागे यह सत्संग बोहोत वडोहे सर्वोपरि कर्त्तव्य हे सो श्रीभागवतप्रथमस्कंधमें शौनकको वाक्यहे "तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्। भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुता-शिषः" (भगवद्भक्तके संगके एकलववरोवर नांही स्वर्गकों के नांही मोक्षकों हम तुलेहें तहां मनुष्यनके आशिपनकी तुलना तो कैसें करे ?) सत्संगके सुखसमान स्वर्गलोक, अपवर्ग, (मोक्षहू) नांही हे तार्ते भगवदीयको संग छोडनो नांही जहां भगवदीय होय तहां आपु जायकें सर्वथाही संग करे ओर अन्याश्रयकों शीवही त्याग करे काहेर्ते जो यह (अन्याश्रय) भावमें वाध्वहे. श्रीनंदरायजी अविका-पूजनकों गये सो सर्पनें यस श्रीगुसाईजीकी सेवकनी डोकरीने हाक-मको कही तुम मोकों जीवाई इतनो कहत प्रभु अंतर्धान भये दामो-दरदासकी स्त्रीने अन्याश्रय कियो सो पुत्र म्लेच्छ भयो तार्ते अन्या-श्रयको सर्वथा त्याग करनो सो अन्याश्रय वडो वाधक है ॥ ३॥

मुलं-एवं निरूपितो त्यागाऽत्यागो सर्वत्र सर्वशः। न जीवाः स्वबलात्किचित्कर्त्तं शक्तुवते स्वतः॥४॥

ज्ञव्दार्थः-एसं सर्वप्रकारसों सर्वत्र त्याग ओर अत्याग निरूपण कियेहे सो जीव अपने चलसों क्छु करिवेमें समर्थ नांहीहे ॥ ४ ॥ टीका—यागांति निरूपण श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी सुवोधिनीजी आदि ग्रंथमें कियेहे सो विचार करि त्याग करनो होय ताको त्याग करनो अत्याग करनो होय ताको अत्याग करनो भगवद्धर्ममें साधक होय ताको अत्याग यह विचार राखे परंतु जीवको वल नांहीहे न त्यागि सके न राखि सके वह्यादिक, शिवादिक, नारदादिक, वडे त्यागी हे तिनकों हू त्याग कछ वश्यमें नांही तो तुच्छ जीवको कहा सामर्थ्य ? वाको कियो कछ नांही होत हे जीवतो मायाके वश्य स्वभावकंरि दुष्ट होय रह्यो हे ! ॥ ४ ॥

मूलं-अतः कथं भवेन्मार्गस्थितिर्जीवेषु सर्वथा। फलाशार्था कथं कार्या जनेस्तत्रास्थितो पुनः॥५॥

शब्दार्थः—तासों जीवके विषे मार्गस्थिति सर्वथा केसें होय ओर मार्गमें स्थिति विना फिर मनुष्य फलकी आशाह केसें करे ? ॥५॥ टीका—एसें दुष्ट किया करिवेवारे दुष्ट जीव हे तिनकी यह सर्वोपिर पुष्टिमार्गमें स्थिति सर्वथा नहोय अष्टप्रहर लौकिक विषयादिकमें ए पङ्योहे सो पुष्टिमार्गमें कोनभांति स्थिति होय? सर्वथा न होय तो यह जीव पुष्टिमार्गीय फलकी आशा केसें करे ? यह स्थिति नांही तो फल कहांते सिद्ध होयगो जीवतो तुच्छ अरु दुष्टहे तिनकोंह जाप्रकार लौकिकतें छटिवेकी सिद्धि होय सो उपाय कहत है ॥ ५॥

मूलं-तथार्गपे श्रीमदाचार्यचरणाश्रयणाद्गि । अश्वयमपि यच्छक्यं तद्भवेत्सव्येव हि ॥६॥

शब्दार्थः - तोहू श्रीमदाचार्यजीके चरणारिवंदके आश्रयसों जो अशक्यहे सोहू सर्वथाही शक्य होय ॥६॥ टीका-यद्यपि जीव अनेक दोपसों भरचोहे याजीवसों दोप नांही छूटत एसे हू जाजीवनें श्रीआ-चार्यजीमहाप्रभुके चरणकमलको हु आश्रय कियोहे तिनकों दोपको त्याग अशक्यहे तोहू शक्य होय ओर पुष्टिमार्गीय फलिसिडि होय सो श्रीगुसांईजी कहेंहें "चित्तेन दुष्टो चचसाऽपि दुष्टः कायेन दुष्टः कियया च दुष्टः। ज्ञानेन दुष्टो भजनेन दुष्टो ममापराधः कृतिधा विचार्यः ॥१॥ संसारसागरे ममजीवोद्धारपरायणम् । आश्रये त्वत्पदांभोजं पुरुषोत्तमं ! सद्गुरो ! ॥२॥ " (चित्तकरिकें दुष्ट, वचनकरिकें
हृष्ट, कार्याकरिकें दुष्ट, कियाकरिकें दुष्ट, ज्ञानकरिकें दुष्ट ओर भजनकरिकें दुष्टहों सो मेरो अपराध कितनें प्रकारको विचारिवेयोग्यहे ?
॥१॥ संसाररूप समुद्रमें ममजीवके उद्धार करिवेमें तत्पर एसे तुद्धारे
चरणारविंदकों हे श्रीपुरुषोत्तम!हे सद्गुरो! में आश्रय करूं हूं ॥२॥)
श्रीमहाप्रभुजी कहेहें "शरणस्थसमुद्धारम्" [शरणमें रहे तिनके उद्धार
करिवेवारे] "अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः" [अशक्यमें
तथा सुशक्यमें निश्चय हिर शरणहे] यामांति निःसाधन होय
श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके चरणकमलको हढ आश्रय करे तिनकों यह
पुष्टिमार्गको फल निश्चय होयगो ॥ ६॥

्मूलं–यदि दुःसंगदोषेण न भवेच्छिथिलं मनः। यदि वा कालदोषेणार्गविश्वासोर्गि भवेन्न हि॥७॥

शब्दार्थः—(उपर श्लोकमें कहा। जो श्रीमदाचार्यजीके चरणार-विंदके आश्रयसों अशक्यह शक्य होय तामें वाधकहे सो वाधक नहोय तव अशक्यह शक्य होय सो कहतहे) जो दुःसंगके दोप करिकें जब मन शिधिल नहोय ओर काल दोपकरिकें जब अवि-श्वास नहोय तब अशक्यह शक्य होय ॥ ७ ॥ टीका—उपर कहे जो आश्रयतें निश्चय फलसिद्धि होय तामें जो दोप महा वाधकहे तिनसों वचे तो फलसिद्धि होय एकतो दुःसंग होय तो तादोपतें भाव घटि जाय मन शिथिल होयजाय तातें आश्रय जातरहे भरतकों मृगके दुःसंगतें तीन जन्म भये द्विविदवानर रामभक्त हतो सो नरकासुरके संगतें श्रीवलदेवजीसों लखो एसें ओर वोहोत जीव दुःसंगतें गिरेहें तथा कालदोपतें विश्वास न रह्यो जहां अविश्वास भयो तहां आश्रय खुट्यो तव यह जीव निश्चय गिरचो ॥ ७॥ मूलं-'अविश्वासो न कर्त्तव्यं' इत्युक्तेः स तु बाधकः। अयमेवाऽस्य मार्गस्य मूलमाश्रयसाधकः॥८॥

ं शब्दार्थः-अविश्वास निह करनो काहेते जो वाधकहे एसे श्रीआ-चार्यजीमहाप्रभुजीनें विवेकधेर्याश्रयमें कह्यो हे तासों यह वाधक है काहेते प्रष्टिमार्गको आश्रय सिद्धकरिवेवारो यह विश्वासह सोही मूल-है।। वृक्षको मूल स्थित होय तो समग्रवृक्ष स्थित रहे तेसेंही विश्वास हर होय तो पुष्टिमार्गीयधर्म-आश्रय हर रहे ११८॥ टीका-अविश्वास न करनों सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी विवेकधेर्याश्रयग्रंथमें कहेर्हे "अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा वाधकस्तु सः। ब्रह्माऽस्रचातकौ भाव्यो प्राप्तं सेवेत निर्ममः" (अविश्वास नांही करनो यह निश्वय वाधकहे बह्यास्त्र ओर चातकपक्षीकी भावना करनी) जो बह्यास्त्रमें... अविश्वासर्ते हनुमान् लोहकी सांकलमें वांध्ये न रहे ओर चातककों विश्वासहे तो मेघ जलदेतहें तेसें विचार ओर ममतारहित होय प्राप्तको सेवन करनो यह वचनतें अविश्वास सर्वथा न करे रावणको अविश्वास भयो तब ब्रह्मास्त्र छुटिगयो हनूमाननें लंका जराई चातककों विश्वास है तो मेघही मनोरथ पूर्ण करतहे तातें अविश्वास आसुरधर्महे सो सर्वथा न करे यह श्रीआचार्यजीमहाप्रभुके पुष्टिमार्गमें मूल हे सर्वोपरि आश्रयको साधक विश्वास ही है।। ८॥

मूलं-आश्रयणैव सक्लं सिडिमेति न संश्यः। पृथक्शरणमार्गोक्तिरत एव प्रभारिप॥ ९॥ शरणस्थसमुद्धारकृतिविज्ञापनादिप।

विवेकधेर्यभक्त्यादिसाधनाभाववादतः ॥ १०॥ शब्दार्थः-आश्रय करिकेंही सर्व सिद्धि होय यामें संशय तांही तासोंही "पृथक्शरणमागांपदेष्टा" एसे नाम श्रीग्रसांईजीने कहेहे॥ १॥ १

ओर विवेक, धेर्य, भक्त्यादिक साधनके अभाववादतें शरणमें रह्ये एसे जीवनको उद्घारकरिवेकी विज्ञप्तिकरि तासोंही आश्रयते सकल सिद्ध होयँगे ॥ १० ॥ टीका-जाजीवकों प्रभुमें दृढ आश्रय भयो तिनको सकल कार्य निश्चय सिद्धभयो यामें संशय नांही, श्रीकृष्ण फलात्मक पुष्टिपुरुपोत्तमकी शरणको यह पुष्टिमार्ग, अपने दैवी जीवनके अर्थ श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीनें न्यारो प्रकट कियोहे।। ९ ॥ श्रीआचार्यजी-महाप्रभु कृष्णाश्रयप्रंथमें कहेर्हे 'शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम्' (शरणमें रह्ये एसे जीवको उद्घार करिवेवारे (अथवा उद्घार करिवे निमित्त) श्रीकृष्णकों में विद्यप्ति करूं हूं) याभांति श्रीमहाप्रभुजीनें श्रीकृष्णसों कहि अपनें पुष्टिमार्गीय सेवकनकों शरण सिद्धकिये ओर विवेकधेर्याश्रयमें कहे साधनको जीवनमें अभावहे विवेकधेर्यभक्त्यादि-रहितहे तिनहुंकों शरण कियेहे ओर विवेकधैर्याश्रयमें कहहें "अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वधा शरणं हरिः" (अशक्यमें तथा सुशक्यमें निश्चय हरि शरणहे)याभांति पुष्टिमार्गीय शरण, विनसाधनके जीवनकों सिद्ध किये ओर मर्यादामार्गमें भगवद्गीतामें भगवाननें शरणमार्ग ऋद्यो हे " सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं वज्ञ। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्ष-यिष्यामि मा शुचः " सर्वधर्मकों छोडिकें एक मोकों शरणहो, में तोक़ं सर्वपापर्ते मुक्त करूंगो शोक मित करे) भगवान् कहे हे अर्जुन ! तूं सर्वधर्म छोडिकें मेरि शरण आव में सगरे पापनकों दूरिकरिकें मोक्ष करूंगो. यह मर्यादाकी रीतिहे जो पाप दृरि करिकें फल देय ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीनें तो अपने जीव यद्यपि दोपसहित विवेक, धेर्य, आश्रय, रहितहे तोह् तिनकों शरण सिद्ध कियेहे ॥ १० ॥

मूलं-सन्मार्गविद्धिः सततं कृतप्रभुपदाश्रये। तंदुक्तवांक्यभावार्थविभावनपरायणेः॥ ११॥ राज्दार्थः—सन्मार्गकों जानिवेवारे तथा निरंतर कियो हे प्रभु (श्रीकृष्ण तथा श्रीगुसांईजी) के चरणारिवंदको आश्रय जिनने एसे ओर इनने कहो वाक्य [गीताजी तथा विज्ञित्त आदि] को जो भावार्थ ताकी विशेष भावनामें तत्पर एसे [भगवदीयन] के संग सदा रहेनो यह संवंध तीसरे श्लोकमें मिलेगो॥११॥ टीका—पृष्टिमार्गमें जो जीव श्रीआचार्यजीद्वारा शरण आयेहें तिनकों श्रीआचार्यजी निश्चय प्रभुके पदको आश्रय आपुही सिद्ध करेंगे अपने जीवनके अर्थ तो यह शरण-मार्ग प्रकट कियोहे तातें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुके वाक्यकी भावना अष्टप्रहर करे जो मेरेलिये श्रीमहाप्रभुजी प्रतिज्ञा करि शरण सिद्ध कियेहे यामांति वचनके भावमें अष्टप्रहर परायण रहे, दृढ विश्वास राखे, श्रीकृष्णके सन्मुख कृष्णाश्रय ग्रंथको पाठ करे, तो सकल कार्य सिद्ध होय ॥ ११॥

मूलं-यथाशक्तिस्वमार्गीयप्रभुसेवापरेरापि। विरुद्धकृतिसंदेहदाहनोद्योगतत्परेः॥ १२॥

राव्दार्थः -यथाराक्ति अपने (श्रीमहाप्रभुजीके प्रकटित) मार्गमें सेव्य प्रभुकी सेवामें तत्पर एसेहू विरुद्ध कृतिमें जो संदेह ताको अथवा विरुद्ध कृति तथा संदेहके दाहनको जो उद्योग तामें तत्पर एसेनके संग रहेनो ॥ १२ ॥ टीका -यथाराक्ति पृष्टिमार्गीय भगवत्सेवा जितनी वने तितनी करे, "अकाले वा सुकाले वा विकाले वा " (समयविना, आछे समयमें, अथवा विपरीत समयमें) या भांति तीनो वचन श्रीआचार्यजीमहाप्रभुक्हे हें. श्रीभागवत अष्टमस्कंधमें बह्याजी कहे हें "यथा हि स्कंधशाखानां तरोर्मुलावसेचनम् । एवमाराधनं विष्णोः

१ यह उत्तरादं भाषाकी टीकावारे पुस्तकमें त्रयोदशस्त्रोकमें हे. और यहां त्रयोदश स्रोकको पूर्वादं हे परंतु रत्नमहकी टीकाके अनुसार इहां लिएयो हे.

संवेपामात्मनश्च हि" (जेसे वृक्षके मूलकों (जलकों) सिंचनहे सो चडी शाखा छोटी शाखा पत्रताई प्राप्तहोयहे, ओर पत्रशाखामें सिंचन करे तो कछ फूळ नहोय उलटो विगार होय तेसे विष्णुको आराध-नहे सो सर्वदेवनको तथा आत्माकोही आराधन होयहे ओर अन्य देवको आराधनहे सो वह देवकों तथा प्रभुकोंहू प्राप्त नांही होय) भगवानकी सेवा करि सो वृक्षके मूलमें जल दीयो तातें शाखा पत्र सर्व हयों होय तेसें ओरदेवनकी सेवा पत्रशाखावतहे तातें प्रभुकी सेवा करनी सो पुष्टिमार्गीय भगवदीयको मुख्य धर्महे ओर पुष्टिमा-गेमें जितनो विरुद्धहे ताकों अभिवत जाननो जो यातें जरूंगो या-भांति भय मानि छोडिवेको उद्यम राखे जो एतन्मार्गविरुद्ध कृतिको त्यागही करनों ॥ १२ ॥

मूलं-निरंतरं स्वमार्गीयसतां संगसमन्वितेः। स्थेयं संसारविमुखेः स्वग्रहं प्रणतेरपि ॥१३॥

शब्दार्थः निरंतर स्वमार्गीय सत्पुरुपके संग करिकें युक्त तथा अहंताममतारूप संसारतें विमुख ओर अपने गुरु श्रीमदाचार्यजीकों अत्यंत नम्रीभूत (नमनपूर्वक श्रीआचार्यजीकों आज्ञामें रहिवेबारे) एसे भगवदीयके संग रहेनो ॥१३॥ टीका—पृष्टिमार्गीय भगवदीयकों संग निरंतर करे सो भक्तिवर्द्धिनीमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभु कहे हें "सेवायां वा कथायां वा यस्यासिकिर्दढा भवेत" (सेवामें अथवा कथामें जिनकी आसक्ति हढ होय) सेवासों पोहोचिकें भगवदीयके मुखतें सुननो काहेतें जो निरोधळक्षणमें कहेहें "महतां कृपया यद्धत्कीतेंनं सुखदं स्पृतम्। न तथा ळोकिकानां तु स्निग्धभोजनरूक्षवत्" (महत्युरुपकी कृपातें कीर्तन जेसो सुखदेयवेवारो सुन्योहे तसो लोकिक संगतें नांहीहे महत्संगहे सो खिग्ध (धृतयुक्त) भोजन वरोविष्हे

ओर लौकिक संगहेसो रूक्ष (घृतविनारूखे) भोजन बरोबरि है) भगवदीयके संग कथा हे सो सुंदर क्षिण्धहे महाप्रसादभोजनहे ताते सर्वदोप जाय ओर लौकिक जनके मुखकी वार्ताहे सो रूखो आसुरी भोजन हे तार्ते स्वमार्गीयवैष्णवनको संग कर्त्तव्यहे ओर यह लौकिक संसारतें विमुख रहे अपने गुरुके शरण रहि दीन होय प्रणिपत्तिमें रहे " त्रायस्व भो जगन्नाथ! गुरो! संसारविह्नना। दग्धं मां कालदर्षं च त्वदीयशरणागतम्" (हे जगतके नाथ! गुरो! संसारक्य अतिते जरबो ओर कालरूप सर्पनें डस्यो एसो आपके शरण में आयो हों ताको रक्षण करो) याभावकरिकें गुरुकी शरणागत रहे काहेतें जो गुरुकी कृपा होय तो प्रभु कृपा करे ओर गुरु अप्रसन्न होय तो प्रभुहू अप्रसन्न होय "हरों रुष्टे गुरुखाता गुरों रुष्टे न कश्चन" (प्रभु अप्रसन्न होय तो गुरु रक्षाकरे ओर गुरु अपसन्न होय तो कोई रक्षा न करे) तार्ते गुरुतें प्रणिपातयुक्त रहे या भांति वैष्णव रहे ताकों श्रीआचार्यजीमहा-प्रभुजीकी कृपातें पुष्टिमार्गीयसिद्धांतके फलको अनुभव होय ॥१३॥ इति श्रीहरिरायजीकृतं सप्तदशं शिक्षापत्रं श्रीगोपे-श्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ १७॥

शिक्षापत्र १८.

अष्टादश शिक्षापत्रमें भगवदीयंनकों केवल उदरभरणायें कार्य करनो उचित नांही किंतु विरह करिकें सर्वत्र भगवत्स्फूर्तितें लीलाति-रिक्त सृष्टिमें आनंदरहित जानि जो कछु उपायकरिकें प्रपंचको विस्म-रण किर श्रीकृष्णकों हृदयमें स्थापनकरे ओर श्रीमदाचार्यजी तथा श्रीगुसांईजी ओर श्रीस्वामिनीजी आदिसों अन्यमें भगवत्तुल्यबुद्धि न करनी यह निरूपण हे. उपर शरणको ओर सेवाको प्रकार कहे तामें यह काल वाधकहे सो जीव नांही जानत तिनको जाभांति ज्ञान होय सो निरूपण करतहें—

मूलं-कालः स्वकार्यं कुरुते न जानाति जनो यतः । प्रमाद्यति हरेः कार्ये स्वात्मकार्येऽतिविह्नलः॥ १॥

शन्दार्थः नाल [सर्वको आयुष्यहरिवेह्ण] अपनो कार्य करतहे सो जीव नांही जानतहे जासों प्रमुके कार्य सेवादिकमें प्रमाद करतहे ओर अपने कार्यमें वोहोत विह्वल हे ॥ १ ॥ टीका – यह काल अपनो कार्य किये जातहे क्षण क्षणमें जीवकी आयुष्यकों हरतहे ओर जीव नांही जानत जो मेरी आयुष्य दिनदिन घटतहे काल नित्य लियेजातहे यह ज्ञान जीवकों नांही होतहे तासों अपने कार्यमें प्रमादी होपरह्योहे. लोकिक, वेदिक, संसारको काम, देह इंद्रियनको पोषण, विषयादिक, अनेक कार्यकी चिंता करिकें प्रसितहे तातें प्रमादीहे ताकिर ज्ञान नांही होत जो काल सगरी आयुष्यकों भक्षण करतहे मेरी कहा गित होयगी ? मोकों कहा कर्त्तव्यहे ? यह ज्ञान नांही होत हे अनेक कार्यमें प्रमादीहे ओर अपने कार्यमें विह्वलहे देहसंबंधी संसारको कार्यहे तामें तत्परहे आत्मसंबंधी भगवद्यमें, सेवा, स्मरण, कीर्तन, वार्ता, कथा इत्यादि कार्यमें विह्वल नांही होतहे ॥ १ ॥

मूलं-केवलीदरिकत्वं तु तदीयानां न चोचितम्। न पुरयेत् किमुदरं सेवकानां कृपानिधिः॥२॥

. शब्दार्थः-तदीयनकों केवल उदरभरणसंबंधी व्यापार करनो उचित नांही काहेतें जो कृपाके निधि प्रभु अपने सेवकनके उदरकों कहा नांहीपुरे १ पुरेहींगे ॥ २ ॥ टीका—उपर कहे जो छोिक्ककार्यमें विद्वलहे सो केवल उदरभरणके कार्यमें तत्परहे सो यह पुष्टिमार्गीय; वैष्णवनकों उचित नांही काहेतें सो श्रीकृष्ण ता कृपांक निधिहे सगरे जगत्के भरणपोपण कर्ताहे सो कहा अपने सेवकनको पालन नांही करेंगे १ सेवकनके उपरतो सदा कृपा करतही आये हे याभांति वैष्णव श्रीठाकुरजीको विश्वास मनमें राखि सर्वदा भगवद्धमें आचरण करे तथा व्यवहारविना न चले तो अनवरसमें प्रहर एक तथा घडी चार व्यवहारहू करे ओर मनमें यह जाने जो जितनो मिलनहार होयगों सो प्रहर एक तथा घडी चारमें सव मिलिरहेगो यह विचार वैष्णव मनमें राखे भगवानको माहात्म्य विचारे जो प्रभु सर्वसामर्थ्ययुक्तहे सव सिद्ध करेंगे ॥ २ ॥

मूलं-चिंता कापि न कार्येति प्रभुवाक्यं विचित्यताम्। अज्ञानिनो ज्ञानिनश्च यदि स्यात् समता कृतो॥३॥ तदा तु साधनाभावात् किं वृत्तं ज्ञानतः फलम्।

शब्दार्थः नवरत्नमें श्रीमहाप्रभुजी कहें हैं जो चिंता कछ नांही करनी ताकी उपर विवरणमें श्रीग्रसांईजी कहें हो लोकिक चिंता तो अगवदीयकों होय नांही परंतु भगवदर्थ हू चिंता न करनी एसी प्रभुको काक्यहे सो विचारनो ओर जब अज्ञानी ओर ज्ञानीनकी कृतिमें तुल्यता निरूपण करीहे तासों साधनको अभाव होय तबतो साधनके अभावसों ज्ञानतें कहा फल भयो ? ॥ ३॥ टीका-मनमें चिंता न करे सो नवरवमें श्रीआञ्चार्यजीमहाप्रभु कहें हैं "चिंता कापि न कार्या

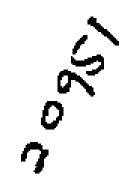
१ नवरत्नमें कबाह जो अज्ञानसों अथवाज्ञानसों जिनने नियेदन कियोहे तिनकों कछ चिंता नांही करनी तामें ज्ञानी ओर अज्ञानी तुल्य गिनेहे तामें ज्ञानीनको फल दोय सो आगे स्रोक देढ करिके निरूपण कियोहे.

निवेदितात्मभिः कदाऽपि। भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्" (निवेदन कियोहे आत्मा (आत्मसंवंधी सर्व) जिननें एसे वैष्णवनकों कछहू चिंता नांही कर्त्तव्यहे काहेतें जो जिनकों निवेदित भयोहे एसे भगवानह पुष्टिस्थहे सो लौकिकगति नांही करेंगे,) इत्यादि वचनको चिंतन अहर्निश मनमें करे यह न जाने जो में तो कछ जानत नांही प्रभु केर्से ऋपा करेंगे ? यह विचारनो जो प्रभुकों ज्ञानी भक्त ओर अज्ञानी भक्त दोउ वरावरहे सो नवरत्नमें श्रीआचार्यजी कहेहें "अज्ञा-नादथवा ज्ञानात् कृतमात्मनिवेदनम् " (अज्ञानसों अथवा ज्ञानसों जिननें आत्मनिवेदन कियोहे तिनकों कहा चिंता हे?) यह निवेदन श्रीआचार्यजीद्वारा ज्ञानकरि कियो अथवा अज्ञानर्ते काहूकी देखादेखि कियो तोहू चिंता नांही कर्त्तव्यहे काहेतें जो अमिको यह स्वभावहे जो अनजाने हाथ धरे अथवा जानिके हाथ धरे सो भरम होय यह लोकिक अभिमें इतनो सामर्थ्यहे तो यह तो श्रीआचार्यजीद्वारा निवे-दन कियो ताकों लोकिक गति कवह नहोय. श्रीभागवतपष्टस्कंधमें कहेहें "अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्। संकीर्तितमघं पुंसां दहेदेधो यथाऽनलः "(अज्ञानसाँ अथवा ज्ञानसाँ ग्रहण कियो एसो जो उत्तमयश्वारे भगवानको नामहे सो अभि काष्टकों जरावेहें तेसें पापकों जारिदेतहे) अज्ञानतें ओर ज्ञानतें भगवन्नाम ले तो सकल दोप भस्म होयजाय इत्यादि वचनकी भावना मनमें राखि चिंता रंचक्ह नांही करनी एक प्रभुको आश्रय मनमेंराखि तहां जीवबुद्धितं यह चिंता होय जो साधन कछ नांही तव ज्ञानतें कहा फल सिद्ध होय ? सोह चिंता नांही क्त्रंच्यहे जो साधन नांही बने तोड श्रीआचार्यजीके अंगीकारतें निवेदनकी फलिसिदि हे और ज्ञानवारे भक्तनकों जो विरहभावना होय मो आगे श्लोकमें कहतहे ॥ ३॥,

मूलं-विरहेण हरिस्फूत्यां सर्वत्र क्वेशभावनात् ॥४॥ लीलातिरिक्तसृष्टौ हि निरानंदत्वनिश्चयात्। यथाकथंचिद्विस्मृत्य प्रपंचं हृदये न्यसेत्॥५॥

शब्दार्थः-जो ज्ञानवारेहें तिनकों लीलाव्यतिरिक्तपदार्थमें आनंद-रहितको निश्रय होयवेसूं सर्वत्र क्षेशकी भावना होय तासों विरहकरिकें हरिकी स्फूर्ति होय ताहिसों जेसेंतेसें प्रपंचको विस्मरणकरिकें श्रीकृ-ष्णकों हृदयमें स्थापन करे ॥४॥ टीका-जब श्रीआचार्यजीमहाप्रभु जीवकों विप्रयोगदान दे तव विरह हृदयमें होय, क्वेशकी भावना होय, हरि सर्व दु:खहर्त्ताको विरह सवठोर होय, श्रीठाकुरजीके संवंधविना ओर ऋछ न सहाय, क्षणक्षणमें विप्रयोगकी भावना होय याभांति जाकों विप्रयोग अमि हृदयमें प्रकट होय तिनहीकों ये पुष्टिमार्गीयफलको अनु-भव होय लीलासंबंधरहित जो प्रवाहीसृष्टिहे सो निरानंदहे उनकों प्रभु अपने आनंदको दान कवहू नांही करतहे वे चंपणिकीनांई सदा संसा-रमें अमतहे उनकों यह संसारही फलहे उनकों भगवछीलासंबंधको आनंद नांहीहे आनंदकरि रहितहे यहनिश्चय जाननों ओर भगवछीला-संवंदी देवी सृष्टिहे सो श्रीमहात्रसुजीद्वारा शरण आय सत्संगकार एकही वार जिनकों यह प्रपंच नांही छुटत सो थोरो थोरो कमकमतें छोडतहें अहर्निश अपने मनमें विचार करि प्रभुको स्मरण करतहें यह ज्ञान हृदयमें होतहे जो हमतो प्रभुके दासहे अज्ञानकरि प्रभुकों भूछि गर्वेहें हमारो तो धर्म यहहीहे जो प्रभुकी सेवा स्मरण करने या भांति देवीजीवकों ज्ञान होतहे आसुरीजीवनकों नांही होतहे ॥४॥

[?] पुष्टिमार्गीय ओर मर्यादामार्गीयके संबंधवारे ओर अंगीकाररहित होय सी धर्माचरण करे परंतु उनकी रुचिस्थिर न होयवेमूं जो भ्रमतहे सो चर्णी जानने.



मूलं-कृष्णं गृहं सदानंदं तथा लीलायुतं सदा। रसं स्वसमनामानं भक्तभावात्मकं पुनः॥६॥

शब्दार्थ:-[पूर्वश्लोकमें श्रीऋष्णकों हृदयमें स्थापन करे ऐसे कह्यो सो -श्रीकृष्ण केसेंहे?सो आगें निरूपण करतहें] गृढ, सदाआनंदरूप, तथा लीलायुक्त, सदा रसरूप, अपनो नाम जो सचिदानंदात्मक (कृष्ण) हैं तिन वरोवर नामवारे (ब्रह्मरूप) ओर फिर भक्तनके भावात्मक एसे कृष्णकों हृदयमें स्थापन करे ॥ ६ ॥ टीका-श्रीकृष्ण केसेहें ? महागृह सर्वोपरि हें जिनकों वेदआदि पार नांही पावतहे 'नेति नेति' कहतहे, बुद्धिवानीतें अगोचरहे ओर सदा आनंदरूपहे, एकरसरूपहे 'जिनके आनंदकी एककणिकामें सगरे जगतको आनंदहे सो श्रीकृष्णा--अयमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहेहें "प्राकृताः सकला देवा गणि-तानंदकं बृहत्। पूर्णानंदो हरिस्तरमात् कृष्ण एव गतिर्मम " (सर्वदेव प्राकृत हे (इनके आनंदकी गिनती होतहे जो मनुष्यनके शत आनंद होय जब मनुष्यगंधर्वको एक आनंद होय एसें गिनत गिनत) अक्षर-बहाहू आनंदकी गणनावारेहे ओर श्रीकृष्ण पूर्णानंदहें सो मेरी गति होउ) ओरदेवता तो प्राकृतहे तिनको आनंदहू प्राकृत हे अक्षरानंदहू सगरे आनंदकी गणनामेंहे अपार नांहीहे ओर श्रीऋष्ण पूर्णानंदहे जाके आनंदको पार नांही श्रीऋष्ण सदा आनंदरूप हें ओर सदा विजयक्तनके हित रसरूप छोछामें मबहें भक्तनके संग मानादिक ेळीळानमें रसवृद्धि करतहें आपु रसरूप अपने भक्तनसों मान छोडेहें दीन होय मनावतहे सो गीतगोविंदमें कहेहें-स्मरगरलखंडनं मम 'शिर्सि मंडनं घेहि पदपछवमुदारम् " याभांति प्रार्थना करतहें जो अपनो चरणारविंद मेरे मस्तक उपर धरो तुझारो पदपहन मेरे मस्तक ·को शुंगारहे या भांति अनेक देन्यकरतहें व्रजभक्तनके भावात्मकहें . -श्रीकृष्णको रस वजभक्त भावकरिके अनुभव करतहे ॥ ६ ॥

मूलं-यशोदोत्संगलितं सुग्धभावसमावृतम् । प्रपंचवैरिणं बाधहेतुलोकिकनाशनम् ॥ ७॥

शब्दार्थः-श्रीयशोदाजीके उत्संगमें शोभित, मुग्धभावतें अति-सुंदर, प्रपंचके वैरी ओर सेवामें वाधरूप लौकिक हेतुनको नाश करिवेवारे (श्रीकृष्णकों हृदयमें स्थापन करे)॥७॥ टीका-श्रीकृष्ण केसेहें ? श्रीयशोदाजी अपने उत्संगमें लेय खिलावत हे सो परम शोभी देतहें, मुग्धवालककीनांई श्रीयशोदाजीके कंठमें वेष्टितहे, प्रपंच जो यह देहसंबंधी स्त्री, पुत्र, पति, घर, लौकिक बैदिक कार्य, ताके बैरी हैं श्रीयशोदाजी रंचकहू भूमिपें प्रभुकों धरिकें दूध उफनत हतो सौ सहारन गई सो श्रीठाकुरजी (जाने मोतें दुग्ध विशेष प्रिय हे यह) न सिंह सके दिधिके माट फोरिडारे ओर वार्मे मांखन भयो हतो सौ वंदरनकों खवायदियो यहकहिकें यह जताये जो मोकों छोडिकें गृह-कार्य करेंगे ताको गृहकार्य लोकिक, वैदिक, कछु न सिद्ध होयगो. जो जो भक्तनें प्रभुको आश्रय कियो तिन सवनको प्रपंच नष्ट भयो कहिते जो प्रपंचमें आसक्ति वाधकहे तासों लोकिक, काम, क्रोध, मद, मत्सर, अहंता, ममता, मायाकृत लौकिक सवनके नाशकर्ताहे ओर अपनेमें आसक्तिवारे भक्तनको लोकिक सब दूरि करतहे ॥ ७ ॥

मुलं-स्वप्रवेशाय कामादिसर्वदोषनिवारकम् । स्वाथत्यक्ताखिलस्वीयपरमात्तिमहोत्सवम्॥८॥

शब्दार्थ:-अपने प्रवेशके अर्थ (हृदयमें तें कामादिदोप निकसे तव प्रभुको आविभीव होय ताके छिये) कामादिक सर्व दोपनकों निवृत्त

१ यहां 'स्वार्थ त्यक्ता' एसो ह पाठ काह पुस्तकमें दिखेहे. ताको अर्थ-अपने स्वार्थ (रमण) क् छोडिके ह अंतर्हित होय सब भक्तनक् असिदान देयवेते परम उत्सववारे श्रीकृष्णकों हृदयमें स्थापन करने.

करिवेबारे ओर अपने लिये त्यक्तिकयेहे अखिल (लौकिकवैदिक) जिनने एसे स्वीय-भगवदीयनकी विषयोगकी आर्ति करिकें हे वड़ो उत्सव जिनकों (एसे श्रीकृष्णकों हृदयमें स्थापन करे)॥ ८॥ टीका-एसे श्रीकृष्ण जब भक्तनके हृंदयमें प्रवेश करनको विचार करतहें ताही समय उहभक्तके हृदयके काम, कोध, मद, मत्सर, आदि सकल दोष दूरी करतहें यह कहिकें यह जताये जो जहांताई भक्तके हदयमें कामादि दोप भरेहे तहांतांई श्रीकृष्ण हृदयमें नांही पधारें जन दोप दूरी होय तव जानियें जो प्रभु हदयमें निश्चयही पधारें, श्रीकृष्ण भक्तके हदयमें पधारिकें (लोकिक वैदिक कार्य छोडिकें अपने दर्शनकी आर्तिवारे भक्तनको विरह होतहे सो) परमआर्ति (दुःख) देतहें सो महा उत्सव-रूप जाननहें सो व्रजभक्तनकों सिद्धहे जिनके हृदयमें भावात्मक श्रीकृष्ण विराजतर्हे तातें गृहकार्यनांही वनिआवत सगरोदिन वेणु-गीतयुगलगीतादिको गान करिकें वीतावत हें ओर रासपंचाध्यायीमें प्रभु अंतर्धान भये पाछें व्रजभक्तनकों महा विरह भयो तव फेरी प्रभु प्रकटे रसदान किये सो विरह न होतो तो प्रभु केर्से प्रकटतें? तार्ते श्रीकृष्णमें जितनी विरहआर्ति अधिक होय सो महोत्सवरूप हे ॥८॥

मूलं-श्रीमदाचार्यहृदयशेषपर्यंकशायिनम्। अनंतभावरूपात्मगोपीरमणतत्परम्॥ ९॥

शब्दार्थः -श्रीमदाचार्यजीके हृदयरूप शेषशय्यामें पोढिवेवारे ओर अनंत भावरूप हे स्वरूप जिनको एसे ब्रजभक्तनके संग रमण करिवेमें तत्पर (श्रीकृष्णकों हृदयमें स्थापे) ॥ ९ ॥ टीका-एसे भावात्मक श्रीकृष्ण श्रीआचार्यजीके हृदयमें भक्तनसहित लीलांकरतहें जेसें शीर-सागरमें शेषशय्याहे तेसेंही श्रीआचार्यजीको हृदय श्रय्यारूपहे तहां शेषश्यापर नारायण पोढ़ेहें यहां श्रीकृष्ण भावात्मक रसात्मक पोढेहें वहां एकलक्ष्मी संगहे यहां अनेक भावात्मक कोटानकोटि व्रजभक्तनें संग रमणमें तत्परहें सो श्रीआचार्यजी अपने हृदयको भाव जतायके दशमस्कंघके श्रीसुबोधिनीजीमें कहेहें "नमामि हृदये शेपे लीलाक्षीरा- विधशायिनम् । लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्" (हृदय- रूप शेपमें लीलारूप श्रीरसागरमें पोहिवेवारे ओर अनेक लक्ष्मीकी लीलाकरिकें सेव्यमान कलाके निधिरूप श्रीकृष्णकों में प्रणाम कर्ल्हं । याभांति अपने श्रीआचार्यजीके हृदयमें प्रमु लीला करतहें तिनकों (मंगलाचरणमें) नमस्कार करि श्रीसुबोधिनीजी प्रकट कियेहे याभांति श्रीआचार्यजीमहाप्रमु अपने निजभक्तनकों अपने हृदयकी लीला प्रकटकिर दिखावतहें सो भक्त याभांति लीलासहित श्रीआचार्यजीमहाप्रमुजीको स्मरणकरे तो अनुभव होय ॥ ९ ॥

मूलं-मधुपालिजवोद्युक्तरोमालिसुविराजितम् । प्रसन्नवदनांभोज करुणारसवदृशम् ॥ १०॥

शब्दार्थः - भ्रमर पंक्तिके वेगयुक्त रोमपंक्तिकरिके विशेष शोभित ओर प्रसन्नहे मुखारविंद एसे ओर करुणा [द्या] रसवारीहे दृष्टि जिनकी (एसे श्रीकृष्णकों हृदयमें स्थापन करे)॥१०॥ टीका-श्री-कृष्ण केसेहें नाभिकमल पास रोमावलिहे सो भ्रमरकी पंक्तिकी नाई शोभादेतहे मुखारविंद अत्यंत प्रसन्नहे ज्ञजभक्तनके सग अनेकलीला करतहें ताकों आनंदभयोहे ताकरि वदनकमल अति प्रफुलितहे करुणारस संयुक्तहे भक्तनके उपर करुणारसयुक्तहे भक्तनके उपर करुणादृष्टि करि रसपान करावतहें॥१०॥

मूलं-वर्हिपिच्छिशिरोभूपं शृंगाररसरूपिणम् । एवंविधानंतराणं विधाय हृदये सदा ॥ ११ ॥

तस्य सेवां प्रकुर्वीत यावज्जीवं स्वधर्मतः। न फलार्थं न भोगार्थं न प्रतिष्ठाप्रसिद्धये॥१२

शब्दार्थः-मयूरके पिच्छकोहे मुकुट जिनको एसे ओर शृंगाररसरूप एसे अनंतगुणवारे श्रीकृष्णकों सदा हृदयमें स्थापन करिकें। ११। स्वध-र्मसों जीवे तहांतांई इनकी सेवा करे फलके अर्थ, भोगके अर्थ, ओर प्रतिष्ठाकी सिद्धिके अर्थ नांही करे ॥ १२॥ टीका-वर्हि जो मो-रके पिच्छ ताको मुकुट सवारिकें मस्तकपें धरेहे सोई शुंगार रसरूपहे. मोर जब रसदान करतहे तब नृत्य करतहे तेसेंही श्रीठाकुरजी मोरकें मुकुटको शुंगार करि भक्तनको रसदान करतहें तार्ते मोरमुकुटको सिंगारहे सो शृंगार रसरूपहे या भांति रासादिक छीछामें अनेक जलस्थल लीलासंयुक्त श्रीकृष्णकों अपने हृदयमें ध्यान करि. स्मरणकरि, दर्शन करि हृदयमें सदाहि नित्य नियमकरि धारण करे ॥ ११ ॥ उपर कहे एसे शृंगाररसरूप श्रीकृष्णको सदा हृदयमें मानसी सेवासों ध्यान करे सो प्रथम तनुजा वित्तजा सेवा मन लगायकें करे तब मानसी सिद्ध होय सो सिद्धांतमुक्तावलि यंथमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभु कहेहें " कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता" [कृष्णसेवा सदा करनी सो मानसी उत्तमहे] श्री-कृष्णकी सेवा सदा करे तिनकों मानसी सेवा सिद्ध होय यह पुष्टि-मार्गीय वैष्णवनको धर्महे जो श्रीकृष्णकी सेवा सदा करे जेसे बाह्यण गायत्री न जपे तो बाह्मणपनो जाय तेसँ वैष्णव होयके भगवत्सेवा न करे तो वैष्णवता जाय तातें श्रीकृष्णकी सेवा अपनो स्वधर्भ जानिकें करे. कछ लोकिक, बैदिक, मोक्ष, आदि फलकी आशा राखिकें सेवा न करे में सेवा करूंगो तो मोकों वैष्णव जानिकें कोड कुछ दे जाय यह लोभ मनमें न राखे ओर प्रतिष्ठाके अर्थह

सेवा न करे में सेवा करूंगो तो मेरी वडाई होयगी लोक भलों वेष्णव जानेंगे या भांति अपनकों मिसद्ध करिवेके लिये सेवा न करें सो श्रीभागवतनवमस्कंघमें भगवान दुर्वासाप्रति कहेंहें "मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम् । नेच्छंति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविष्छतम् " (मेरी सेवा करिकें पाप्त भये एसे सालोक्यादि चारे मोक्ष तिनकों नांही चाहतहें काहेतें जो सेवाकरिकें पूर्णहें सो कालमें ह्वे एसे राज्यादिककों केसेंचाहे ?] इत्यादि वचनसों श्रीभगवाद कहतहें जो भक्त मेरी सेवा करी पूर्णहें ता करि प्रतीत चारोप्रकारकी मुक्ति [सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, सारूप्य) में देतहों सो नांही लेतहें एसे पूर्ण निष्कामहें तिनकों कालवाधित पदार्थ कहाहे ? या भांति मनपूर्वक सेवा करे सो वैष्णवको स्वधर्महे ॥ १२ ॥

मूलं-श्रीमदाचार्यमार्गेण नान्येनापि कदाचन। न कल्पितप्रकारेण न दुर्भावसमन्वयात् ॥१३॥

शब्दार्थः—श्रीमदाचार्यजीनं सर्वनिर्णयमं सेवाप्रकार निरूपण कियोहे तारीतिसां सेवा करे अन्यमार्गतं कवह न करे कियतप्रकारसों [प्राष्मऋतुमें आभरण धरनें इत्यादिकसों] न करे ओर दुर्भाव आयजाय [जेसें थोरी समृद्धिमें आभरण वस्त्रादि उत्तम न मिलें तासों दुर्भाव आवे] तेसें न करे ॥ १३ ॥ टीका—वे णव सेवा करे सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके पुष्टिमार्गकी रीतिहे ताअनुसार करे कदाचित भूलिकेंद्र अन्यमार्गकी रीतिसों न करे ओर अपने मनतें कित्त प्रकारसोह न करे जो प्रकार न जाने सो पुष्टिमार्गीय भगव दीयसों पुष्टिलेय मनकिएत सर्वथा न करे दुर्भावसों न करे जो जेसें लोकिककार्यहे तेसें सेवाह्रहे एसें अश्रद्धासों न करे प्रीतिपूर्वक सर्वोपरि परमफलरूप जानिकें सेवा करे ॥ १३ ॥

मूलं-तत्त्वं विदित्वा परमं यशोदोत्संगलालितम्। श्रीमदाचार्यतत्पुत्रान् हित्वाऽस्मत्स्वामिनीरिप॥१४॥ ततुल्यबुद्ध्या नाशः स्यात्सर्वथेति विनिश्चयः। एतावती सती शिक्षा संक्षिप्ता श्रियतां हृदि॥१५॥

शब्दार्थः-श्रीयशोदाजीके उत्संगमें लालित श्रीकृष्णकों परमतत्व जानिकें श्रीमदाचार्यजी, इनकेपुत्र, ओर श्रीव्रजभक्तनकों छोडिकें इनके तुल्य बुद्धितें सर्वथा नाश होय यह निश्रयहे इतनी सत्य संक्षेप शिक्षा हृदयमें धारण करनी ॥ १४॥ १५॥ टीका-वैष्णव भगवत्सेवा करे ओर यह चारों पदार्थकों परमतत्व जाने श्रीयशोदोत्संगलालित प्रथ-मतत्त्व, सो श्रीगुसाईजी कहेहें "जानीत परमं तत्त्वं यशोदोत्संगला-लितम् । तदन्यदिति ये प्राहुरामुरांस्तानहो चुधाः" (श्रीयशोदोत्संग-लालित श्रीऋष्णकों परमतत्त्व जानें तार्ते अन्य अथवा सो अन्य एसें जो कहे तिनकों आसुर जानने) याभांति प्रथमतस्व श्रीयशोदोत्संग-लालित, श्रीआचार्यजीमहाप्रभु दूसरो तत्त्व, श्रीग्रसाईजी (श्रीविञ्चल-नाथजी) तृतीयतत्त्व, अस्मत्स्वामिनीजी (व्रज्ञभक्त) चतुर्थतत्त्व, यह परमतत्त्व अपने मनमें जाने ॥१४॥ उपर कहे चारों तत्त्व श्रीकृष्ण, श्रीआचार्यजी, श्रीगुसांईजी, श्रीस्वामिनीजी समान लौकिकमें काहूकों जाने इनको शीघ्रही नाशहोय वाकों असुर जाननो सो वार्तामें कहेहे जो मीरांवाईके घर रामदासजीने श्रीआचार्यजीके पद गाये तव वाईनें कही जो कछ श्रीठाकुरजीके पद गाओ यह सुनतहि रामदासनें कही जो दारी रांड यह पद कहा तेरे खसमकोहे ? आजु पीछें तेरो मुख न देखूंगो पीछें मीरांवाई वोहोत मनुहार करि राखन लागी परंत् न रहे उह गाम छोडिदियो ओर छीतस्वामी वीरवलके इहां वरसोंदी छेन गये हते तहां गायो "छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविष्टल येही तेही

तेही येही कछ न संदेह "यह सुनिकें वीरवलनें कही देशाधिपति पूछेगो तो कहा जवाव द्योगे यह सुनतही छीतस्वामी कहे जो मेरे भाये तो तुही म्लेच्छहे आज पीछें तेरो मुख न देखूंगो एसें कहिकें वरसोंदी छोडिकें चले आये एसी टेक वैष्णव राखे तातें यह चारो तखकों लोकिकमें कोई ईनसमान जाने ताको निश्चय नाश होय. अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो या प्रकार पत्रमें शिक्षां लिखेंहे सो तुम विचारिकें हृदयमें अवश्यही धारण करियो ॥ १५ ॥

मूलं-अन्येऽपि चोपदेष्टव्या यदि स्युर्धिकारिणः। मिलंति स्वेच्छया श्रद्धायुताः पृच्छंति चेत्तदा॥१६॥

शब्दार्थः-जो अन्यह अधिकारी मिले ओर श्रद्धायुक्त होय अपनी इच्छातें पूछे तो इनकोंहू उपदेश करनो ॥ १६ ॥ टीका-यह ऊपर शिक्षा कहीहे सो ओरकें आगें मित कहियों कोई शिक्षाकें अधिकारलायक होय ताकेही आगें किहयों सो भगविदच्छातें आपुही आयकें प्रार्थना किर श्रद्धायुक्त होय पूछे, चित्तलगायकें सुने, तासों किहयों अपनी इच्छातें बुलायके मित किहयों यह सवोंपिर सिद्धांतहें तातें अधिकारी पात्रविना रस नांही ठहरे यह जानिकें ओरकें आगें मित किहयों ॥ १६॥

मूलं-जीवतत्परतासिद्धौ कृपालुस्तेषु तुष्यति। यथा विपयिणां तोपो दृतिकासु तथा हरेः॥१७॥

शब्दार्थः - जीवकी भगवत्परताकी सिद्धि होय तब कृपाल प्रभु भगवद्वार्तादिक करिवेबारेडपर प्रसन्न होय जेसें कामीपुरुपनको संतोप दृतीके उपर होयहे तेसें हिरको संतोप भगवद्वार्ता करिवेबारे भक्तनकी उपर होयहे! ॥ १७॥ टीका-उपरं कहे ताप्रकार यह जीव भगवद्वर्ममें तत्पर होय तब यह पुष्टिमार्गीय फल सिद्ध होय जेसें प्रहा- दकों हिरण्यकशिपुनें वोहोत दुःख दियो परंतु महादजीनें अपनी तत्परता भगवद्धर्म भगवानको आश्रय न छोड्यो तव श्रीनृतिंहजी मकट होय प्रतिवंध दूरि किये फल सिद्ध भये तेसेंही पुष्टिमार्गीय वैष्णव पुष्टिमार्गमें तत्पर होय तो फल सिद्ध होय. प्रभु कृपाल हे सो एसे भक्तनके उपर संतोप पावे प्रसन्न होय जेसें विषयीकों दूतीमें संतोप होय तेसेंही श्रीभगवान अपने भक्तकी अनन्यता देखिकें ताकी उपर वोहोत प्रसन्न होतहे प्रसन्न होय अपने दासके सगरे कार्य पूर्ण करतहें सदा कृपा करतहें प्रतिवंध दूरि करिकें फल देतहें यह निश्चय सिद्धांतहे॥१७॥

इति श्रीहरिरायजीकृतमष्टादशं शिक्षापत्रं श्रीगो-पेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥ १८॥

शिक्षापत्र १९.

एकोनविंशतितम-शिक्षापत्रमें यह कराल कलिकालमें कुसंगतें सत्पुरुपनकीहू बुद्धि नाश पावतहे तहां सत्संग तो अत्यंत दुर्लभहें तासों निरंतर अष्टाक्षरमंत्रको उचार करिकें मन श्रीमदाचार्येकशरण करनो सो निरूपणहे. उपर कहे ताप्रकार वैष्णव तत्पर रहे तो फल सिद्ध होय तामें यह कलिकाल महावाधकहे यासो वचे तो फल-सिद्ध होय सो आगे कहतहे-

मूलं-इदानीं वर्त्तते कालः करालः कलिरीहराः। यस्मिन् विनञ्यति मतिः सतामपि कुसंगतः॥१॥ शब्दार्थः-अव एसो कराल कलिकालहे जामें सत्पुरुपकीह् मति कुसंगतें नष्ट होयजायहे ॥ १ ॥ टीका—यहं अव जो काल वर्त्तमानहें सो महाकरालहे प्रसिद्ध याको प्रवाह देखियतहे काहेतें जो सत्पुरुपकी मतिहू कुसंगतितें अप्ट भईहे तो अज्ञानीकी बुद्धि अप्ट होय यामें कहा केहेनो ? एसो कठिन काल आयोहे ॥१॥ तहां कोई कहे जो सत्पुरुपकी बुद्धि क्यों अप्ट भई ? तहां कहतहें—

मूलं-सत्संगो दुर्लभो यत्र सततं सत्प्रसंगतः।

कथाः कृष्णचरित्रेकयुता नित्यं भवंति हि ॥२॥

शब्दार्थ:—सत्संग दुर्लभहे जा सत्संगमें सत्पुरुपके प्रसंगसों श्रीकृष्णके चिरत्रकरिकें युक्त एसी कथा नित्य होतहे ॥२॥ टीका—सत्संगतों वोहोत दुर्लभहे मिलत नांही निरंतर दुःसंगतें सत्प्राणीकी बुद्धि नाश भईहे एकश्रण हू भगवदीयको प्रसंग दुर्लभभयोहे तो सदा कहांते होय? जब निरंतर भगवदीयको संग होय कृष्णकी कथा कृष्णकी लीला प्रीतिसों सुने नित्य श्रीकृष्णकी सेवा करे, सो जो भगवदीय आपह भगवत्सेवा करत होय कथा लीला सुनत होय एसो भगवदीय होय आपह करे ओरकों वतावे ताकों संग करे जेसे भींज्यो कपरा होय सो सुके कपराकों भींजावे तेसेंही आपु भगवद्धमें तत्पर होय ओरहूकों तत्पर करे ॥ २॥

मूलं-निजाचार्यपदांभोजसेविनस्तु सुदुर्लभाः। अदंभिनः कृष्णसेवाकथाचितनतत्पराः॥ ३॥

शब्दार्थः -अपने श्रीआचार्यजीके चरणार्विंदकों सेवन करिवेवारे ओर दंभरहित तथा श्रीऋष्णकी सेवा कथाके चिंतन करिवेम तत्पर एसे भगवदीय तो दुर्छभहें ॥ ३ ॥ टीका-ओर भगवदीय केसें होय ? जो अपने श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणकपलकी सेवामें अहर्निश जाको मन होय एसे अनन्य पुष्टिमार्गीय भगवदीय वोहोत दुर्छभ हे अदंभी होय, पाखंडी न होय, श्रीकृष्णकी सेवामें तत्पर होय, श्रीकृष्णकी लीलाचितनमें तत्पर होय काहुके दिखायबेके लिये सेवा न करत होय, मनसों शुद्ध होय, एसे भगवदीय तो या कालमें बोहोत दुर्लभहें 11 ३ 11 क

मूलं-अहं तु सर्वथा नित्यं तथा सत्संगवर्जितः। क्रिश्यामि मनसा नृनं निरानंदेन नित्यशः॥४॥

शब्दार्थः - अब श्रीहरिरायजी अपनकों सत्संगके अभावको निरूपण करतहें जो में तो सर्वथा नित्य एसे सत्संगकरिकें वर्जितहों (तासों) आनंदरिहत मनकरिकें नित्य क्षेश पावतहों ॥ ४ ॥ टीका - ओर में केसोहूं जो सर्वथा नित्य सत्संग करिकें वर्जितहों मोको तो सत्संग मिलत नांही तातें में मनमें बोहोत क्षेश पावतहों जो मोको भगव-दीयको संग न भयो जो भगवदीयको संग होय तो श्रीकृष्ण सदा आनंदरूपहे तिनके आनंदको अनुभव होय, भगवदीय विना आनंद करि नित्य रहितहों ॥ ४ ॥

मूलं-बाष्पनिःसरणोपायं न पश्यामि महीतले। को वा मदीयहृदयदुःखं दूरीकरिष्यति॥५॥

शब्दार्थः - अश्रुके निकसवेको उपाय (भक्तकों) पृथिवीके तलमें में नांही देखतहों तासों मेरे हृदयकों जो दुःखहें तिनकों कोन दूर करेगो ? ॥ ५ ॥ टीका - अब श्रीहरिरायजी दीनताके आवेशमें कहतहें जो में यह महीतल (पृथिवीमें) वास कियो सो काहेतें कियो जब हरिशरणको उपाय न बिन आयो काहेतें जो पृथिवी उपर आय हरिशरण न करे ताको जन्म वृथाहे सो प्रहादजी श्रीभागवतसप्तमस्कंधमें कहेहें - "कीमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान भागव-तानिह। दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रवमर्थदम् " (कुमार अवस्थामें बुद्धिमान् यह संसारमें भगवद्धर्मकों आचरण करे काहेतें जो मानुष-जन्म दुर्लभहे फेरि निश्चल नांहीहे तोहू अर्थ देवेवारोहे) ओर एकादश-स्कंधमें जनकविदेह कहेहें—"दुर्लभो मानुपो देहो देहिनां क्षणभंगुरः। तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुंठिपयदर्शनम् "(देहिजीवकों यह मनुष्यको देह दुर्लभहे ओर क्षणभंगुरहे तामेंहू भगवद्भक्को दर्शन दुर्लभ मानूहूं) यह वाक्यतं यह मनुष्यदेह महाउत्तमहे कौमार अवस्थामें प्रभुही शरण करि भगवद्धर्म करनों उचित है काहेतें जो क्षणमें भंग होय-जाय तो अंतकालसमय कछ नांही वनि आवेगो फेरि यह देह मिलनीं दुर्लभहे तार्ते भगवद्धमं भगवानको दर्शन दुर्लभहे यहदेहसों वने सो अवश्य कर्त्तव्यहें सो मोसों तो कछु न भयो तार्ते यह देहको महाशोकहे जेसे चिंतामणि पायकें कोडिके पलटे देई फेर चिंतामणिके गुण सुने तब अनेक दुःख पावे तेसं यह देह पायके लौकिकमें लगावे हरिशरण नांही करे ताको जन्म चुथाहे तार्ते में हरिशरणको उपाय नांही कियो सो हृदयमें महादुःखहे यह मेरे हृदयको दुःख दूरि करे एसो कोन हे? ॥ ५॥

मूलं-व्रजवासस्तथा श्रीमद्यमुनादर्शनं गतम्। दूरे गोवर्धनदृशिद्रे तन्नाथदर्शनम्॥६॥

शब्दार्थः - ब्रजमें वास तथा श्रीमद्यमुनाजीको दर्शन तथा यमुनाजीके स्वरूपको ज्ञान तथा श्रीगिरिराजके स्वरूपको ज्ञान ओर श्रीगोवर्धननाथजीको दर्शन सर्व दृरि गये ॥ ६ ॥ टीका-हरिशरणको साधन कछ न विनआयो ब्रजवासह न भयो ब्रजदेशहे सो महाउत्तमहे प्रभुशरण करिवेको स्थलहे तहां परे रहियें तो प्रभु अपनो जानिकें कृपाकरे सोह मोकों न भयो ओर श्रीयमुनाजीको दर्शन नांहीहे सो श्रीयमुनाजी केसे हे जो दृष्ट प्राणी अनजाने एकवारहू जलपान करे तो उह जीवकों यमयातना न होय एसी प्रतापहे. जा जीव श्रीयमुनाजीको आश्रय करे तिनकों श्रीयमुनाजी श्रीठाकुरजीकी लीलाको अनुभव करावे सर्व कार्य सिद्ध करि अलोकिक देह सिद्ध करे एसे श्रीयमुनाजीको दर्शनहू नांहीहे ओर श्रीगिरिराजहू मोतें दृरिहे सो श्रीगिरिराज केसेहे जो इनके संगतें भीलनीकोंहू भक्ति भई एसें श्रीगिरिराजहू मोतें दृरिहे और श्रीगोवर्द्धननाथजीको दर्शनहू मोकों दुर्लभ भयोहे या भांति में परदे-रामें हों अब में कहा करूं तहां कोई कहे जो मनमें भाव करि जा वस्तुको स्मरण करे सो पासही हे तातें मनसों भाव करि ब्रज, श्रीयमुनाजी, श्रीगिरिराज, श्रीगोवर्द्धननाथजी, इन सवनके दर्शन करि लेउ इतनो खेद क्यों पावतहों ? याभांति कोई कहे तहां कहतहे ॥ ६ ॥

मूलं-विषयाकांतितो दूरे भगवद्भावसंतातिः। देशांतरस्थितस्याद्य दूरे संगः सतामपि॥७॥

शब्दार्थः - विषयाकांतिसों भगवद्भावको विस्तार दूर रह्यो ओर अव देशांतरमें रह्यो एसो जो में ताकों सत्पुरुषको संगह दूर रह्यो ॥ ७॥ टीका - विषयाकांतिसों देह भिर रह्यो होय तिनकों भगवद्भाव बोहोत दृश्रिहे जिनको हृदय शुद्ध होय अप्टमहर लौकिक नांही स्फूरे मनमें भगवत्समरण रहे तिनकों भावनासों सगरी वस्तु सिद्ध हे ओर मोकों विषयावेश करि भगवद्भाव दृश्रिहे अनेकदेशांतरमें स्थितहों तासों अनेकमकारके लौकिक मवाही सृष्टिको संगहे भगवदीयनको संग मोतें दृश्रिहे भगवदीय मिले तब उनसों मिलिकें भगवद्भाव विचारे सो मोतें दृश्रिहे तार्ते मनमें खेद बोहोत होतहे ॥ ७॥

मूलं-तदभावात् कथा दूरे ततो विमुखता हृदः। एवंविधस्य सततं श्रीकृष्णः श्रग्णं मम॥८॥

शब्दार्थः-सत्संगके अभावसों भगवत्कथा दूरिहे तासों हृदयकी विमुखता (वहिर्मुखता) होयहे एसे प्रकारको जो में ताकों निरंतर श्रीकृष्ण आश्रय हो ॥ ८ ॥ टीका-जो भगवदीय होय तो श्रीसुवी-धिनीजी आदि भावात्मक कथा कहे सो सुनिकें हृदयमें भाव उत्पन्न होय सो भगवदीय मोतं दूरिहे तातें भावात्मक कथाहू मोतें दूरि हे तार्ते हृदयमें विमुखता छायरहीहे सो याभांति सर्वसाधनकरि रहितहों यह देशांतरमें स्थितहों एसो जो में ताकों श्रीकृष्णही शरण होउ जब ओर कछ न वने तव शरणकी भावना करतहों ओर में कहा करू सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभु श्रीऋष्णाश्रयमें कहेहें "विवेकधैर्यभक्ता। दिरहितस्य विशेपतः। पापासक्तस्य दीनस्य कृष्ण एव गतिर्मम (विवेक, धैर्य, भक्ति आदिसों रहित, विशेषकरिकें पापमें आसक्त ओर दीन एसो जो में तिनकों गति (आश्रयस्थान) श्रीकृष्णही है) विवेक, धैर्य, भक्ति आदि सर्व धर्म करि रहित होय, पापासक्त होय, अति दीन होय सोउ श्रीकृष्णकूं शरण करे तातें में सर्वसाधन करि रहितहों तासों निरंतर श्रीकृष्णही शरण किये हे ॥ ८॥

मूलं-को वेद ऋष्णः किं कत्तां न जानेऽहं ऋषानिधिः। तथापि श्रीमदाचार्यशरणं करवे मनः ॥ ९॥

शब्दार्थः—कोन जानें कृपाके निधि श्रीकृष्ण कहा करेंगे सो में नांही जानतहों तो हु मनकों श्रीमदाचार्यजीरूप एकशरण कहं ॥ ९॥ टीका—सो यह में नांही जानत जो श्रीकृष्ण कहा करिवेवारे हे मेरी कहा गित करेंगे सो जानी नांही जात हे परंतु इतनो श्रीआचार्यजीन महाप्रभुजीकी कृपातें जानतहों जो श्रीकृष्ण दयानिधि हैं अपने निजभक्तनपर निश्रय कृपा करतहें तातें में एक श्रीआचार्यजीके चरंणकमलकी शरण अपने मनतें किर रह्योहं ताकरि श्री-

कृष्णहू कृपा करेंगे ओर सगरो कार्यहू सिद्ध होयगो यहकहिके यह जतांये जो श्रीआचार्यजीकी शरण जीव आयोहे तिनके सगरे कार्य सिद्ध होयंगे व्रज, श्रीयमुनाजी, श्रीगिरिराजजी, श्रीजीकी सगरी लीला इनके अनुभव होयगो ओर जो श्रीआचार्यजीकी शरण नांही आयो तिनकों कछ फलसिद्धि नांही हे तार्ते में श्रीवल्लभाचार्यजीकी शरण मन कियोहे या आश्रयकरि अपने मनकों समुजाय राखेहे ! ॥ ९ ॥ मूलं-विशेषः प्रेमजित्पत्राद्योद्धव्यः सर्ववृत्तयुक्।

अनेन केव्लेनेव किंचित्स्वस्थं मनो मम॥ १०॥

शब्दार्थः - सर्ववृत्तांतसहित विशेष (समाचार) प्रेमजीनामके पत्रसों जाननो यह केवल वोधकरिकेंही मेरो मन कछ स्वस्थ हे ॥ १०॥ टीका-अवश्रीहरिरायजी लिखतहे जो विशेप समाचार प्रेम-जीके पत्रतें जानोगे श्रीमहाप्रभुजीकी शरण करिकें किंचित् मनर्मे स्वास्थ्य हे जो महाप्रभुजी कृपा करि अपनी ओर देखेंगे ॥ १०॥

इति श्रीहरिरायजीकृतमेकोनविंशतितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषा-टीकासमेतं समाप्तम् ॥ १९॥

शिक्षापत्र २०

विंशतितमशिक्षापत्रमें शरणागतिसों प्रथम भये दोपकी चिंता न करनी, ओर शरणागित पीछें तो सावधानतासों रहेनों, निवेदनको अनु-संधान करनो, भगवत्सेवा गुणगानादिक करने, थोरे जानिवेवारेके वच-नर्ते पुष्टिमार्गतें बुद्धि चलित न करनी, सर्वदा सत्संगर्सो रहेनों, अपने

१ यद्यपि बोहोत पढे भये होय परंतु पुष्टिमार्गीय ग्रंथ जानते न होय अरू जानते होय तो वामें अद्धा न होय सो धोरे जानिवेवारे समजने.

श्रीआचार्यजीकेही वाक्यमें निष्ठा राखनी, पुष्टिमार्गीय भगवदीयसीं मिलिकें रहेनो यहमार्गतें विरुद्ध होय तिनके संगरहित होयकें रहेनो यह निरूपण हे.

मूलं-समाचारावगत्येव संतोषो जिनतो महान्। सदोषेऽपि हरिजीवेऽनुग्रहं कुरुते स्वतः ॥ १ ॥

शब्दार्थः—समाचारकों जानिकेंही वड़ो संतोप भयो काहेतें जो दोपसिहत जीव उपरहू हिर भगवान आपतेंही अनुग्रह करतहे ॥१॥ र्धाका—अव श्रीहरिरायजी कहतहे जो तुद्धारो पत्र आयो सो वांचिकें मनमें संतोप भयो काहेतें जो यद्यपि गृहमंगको वड़ो दुःख हतो सो तुद्धारो दुःख निवृत्त भयो तुद्धारे हृदयमें संतोप भयो ताकरि हमहू मनमें संतोप पाये आगें जो शिक्षा हे सो मनमें धारण करियो. हिर जो भगवान सो केसेंहे यद्यपि जीवके दोपकों जानतहे तोहू अपनी ओरतें जीवपर अनुग्रह करतहे जीवकी ओर नांही देखतहे. शिशुपाल श्रीकृष्णकी निंदाही करतो एसो दुष्ट हतो ताहूकों गित दीनी, इंद्रने जलगृष्टि करि देप कियो तोहू वापें प्रसन्न भये, एसे श्रीकृष्ण हे सदा कृपाही करत हे अपने प्रमेयवलतें यह जीवपर अनुग्रह करत हे तातें श्रीकृष्णहीको भजन, स्मरण, आश्रय सदा कर्तव्य हे ॥ १॥

मूलं-प्रमेयवलमासाद्य किमसाध्यं तदा भवेत्। अतः प्रथमदोषाणां चिंता नैव विधीयताम् ॥२॥

१ मूलशोकमें गृहमंगकी वात नांहीहे और टीकामें गोपेश्वरजीनें लिखिहे तासों यह अनुमान होयहे जो छहे शिक्षापत्रके प्रथमश्चोकके टिप्पणमें लिख्यों है ता प्रमाण नवमशिक्षापत्रमें प्रेम, आसिक, और व्यसनको निरूपण वांचिके तथा दशमपत्रमें आर्तिके कारण वांचिके चित्तको समाधान भयो ताके समाचार उन्नीसमें पत्रके जवानमें लिखे सो वांचिके श्रीहरिरायजीनें यह श्लोक लिख्यों ताको अभिप्राय श्रीयोपेश्वरजी ज्ञानिके टीकामें यह धृचांत लिख्यों है.

शब्दार्थः - प्रमेयवलकों प्राप्त होय तब असाध्य कहा होयहे तासों प्रथमकें दोपनकी चिंता नांही कर्त्तव्यहे।। २।। टीका - यह पुष्टिमार्गमें तो प्रमेयवलहीतें सर्वकार्य सिद्ध होयहे जीवके साधनतें कछ कार्य सिद्ध होत नांही ओर जीव कहांतांई साधन करेगो याके साधनतें दोप दृरिहू नांही होय सकत तातें वृथा चिंता क्यों करनी सो श्रीमहाप्रभुजी कहेंहें "जीवाः स्वभावतो दृष्टाः" (जीव स्वभावसों दृष्टहें) जीव तो स्वभावतें दुष्टहें परंतु अपने अज्ञान करि उत्तम मानतहे तासों जीवके साधनतें कछ नांही सिद्ध होय प्रभु प्रमेयवलतें सिद्ध करेंगे एसें विचारि चिंता नांही करनी ।। २ ।।

मूलं-संजातभगवद्भावमपथ्यामिव सद्ग्रणम् । लोकनिदाभवं दुःखं न धर्त्तव्यं हि मानसे ॥ ३॥

राज्यार्थः—आछे गुणवारे औपधकों अपध्य जेसें तेसें भगवद्भाव उत्पन्नभयो तामें लोककी निंदासों दुःख होय सो मनमें नांही धरनों ॥३॥ टीका—लोकिकचिंतातें भगवद्भावको नारा होय ताको हष्टांत कहतहें जेसें सुंदर ओपद खाय ताके उपर अपध्य करे (खारो खाटो खाय) तो विनापध्य ओपदको गुण जाय ओर रोग वहे तेसें मनमें भगवद्भाव होय स्मरण भजन करे सो सुंदर ओपदकीनांईहे सो लोकिक चिंतादि कुपध्य करे तो भगवद्भाव उल्लेशे जाय ताहीतें श्रीआचार्यजीमहापसु नवरत्न ग्रंथमें चिंतानिवृत्तिकरिवेकें लिये कहेहें "चिंता कापिन कार्यो निवेदितात्मिक्ष कदापि" (निवेदन कियेहें आत्मसंबंधी जिननें एसे वेष्णव कल्ल चिंता कोयदिनह नांही करें) जाजीवने निवेदन कियोहें तिनकों तो निश्चयहीं चिंता नांही कर्त्तव्यहें ओर जो लोकिकवारे निंदा करतहें सोहू महादुःखरूपहें सो अपने मनमें नांही धरनी काहेतें जो लोकिकमें अनेक भांतिके जीवहें तिनकों कहाी न

करियें तो निंदा करे ताको सहनही उचितहे जेसें श्रीभागवतमें निरूपणहे जो गोपीजननें लोकवेद छोडिकें प्रभुको भजन कियोहे तब गोपनें ओर मातापितानें निंदा करि सो धारण न करी तब श्रीकृष्ण प्रसन्न होयकें रासलीलामें फलदान कियो तातें भगवदीयकों लोकिक निंदा सहन करनी ॥ ३ ॥

मूलं-अग्रे तु सावधानत्वं विधेयं सर्वथा पुनः। दुःसंगादिमहादोषा नाश्यंत्येव तत्क्षणात् ॥४॥

शब्दार्थः —आगं निश्चय फेरि सावधानपनो करनो काहेतें जो दुःसंगादि वडे दोप हे सो जविमले ताही क्षण भगवद्भावको नाश करे। था टीका-आगं सर्वथा सावधान रहियो काहेतें जो दुःसंग दोप महावाधक है सो जन्मजन्मतें भगवद्भाव जोरिकें एकठोर कियो होय सो एक क्षणमें ही तत्काल दुःसंगतें सगरे भावको नाश होय. श्रीभागवतादिपुराणमें कहेहे जो वडे वडे भगवदीय दुःसंगतें गिरेहें तातें तुम दुःसंगतें निश्चय क्षणक्षणमें सावधान रहियो।। थ।।

मूर्ल-असज्जनकृता निंदा तुष्ट्ये सत्त्वविनिश्चयात्। यतस्तेषां न रोचंते संत एव हि सर्वथा॥ ५॥

शब्दार्थः — असत् पुरुपने करी एसी जो निंदा सो धैर्यके विशेष निश्चयके कारणसों संतोपार्थ हे काहेतें जो जासों असत् पुरुपनकों निश्चय सत्पुरुप प्रिय नांही छागत हे तथा सत्पुरुप असत्पुरुपकी वाणीमें प्रीति नांही राखत हे ।। ५ ॥ टीका — असज्जन (अवेष्णव तथा अन्यमार्गीय तथा वहिर्मुख निंदा करे सो सुनिकें मनमें, दुःख मति पाईयो मनमें प्रसन्न (संतुष्ट) रहियो जो यह सत्य ही कहतहे में तो निश्चय ही दोपवान ही हों या भांति मनमें ज्ञान, करि, विचारि निंदाकों सहन करनी सो यातें जो संत जनहे उन दुएनकी वाणीमें सर्वथा रुचि राखत नांही जेसें प्रहादजीकों हिरण्यकशिपुनें केसो दुःखिदयों ओर निंदा किर सो प्रहादजीनें सहीलियों तामें प्रहादजीकों कि विगयों नांही हिरण्यकशिपुकों प्रभुनें मायों तातें जो संतहे सो दुएनकी वाणीमें मन सर्वथा राखत नांही ॥ ५॥

मूलं-मार्गिविश्वासरिहताः पूर्वदोषेकदृष्टयः। यतो नामैव हि हरेः सर्वदोषिनवर्त्तकम्॥ ६ ॥

शब्दार्थः-जासों [असज्जन] पुष्टिमार्गमें विश्वासरहितहे ओर । पूर्वतेंही दोपदृष्टिवारे हे तासों इनकी वाणीमें रुचि न राखे तथा इनकों सत्पुरुप न रुचे ओर हरिको नामहे सोही सर्वदोपकी निचृत्ति करिवे-वारोहे ॥ ६ ॥ टीका-वह दुष्ट केसेहें जो यह पुष्टिमार्गमें विश्वास रहितहे सो काहेर्ते जो पूर्वजन्मतें दोपही देखतहे पुष्टिमार्गको प्रकार सगरे जगतमें पसिद्धहे सो देखियत नांही तासों मार्गमें शरण आये हैं तोहू प्रथमकी दुएताहे तार्ते दोपही देखतहें अपनी कुटिलता नांही छोडतहें काहेतें जो वह असुरहें तातें मार्गमें विश्वास नांहीहे सदा दुष्टहें तार्ते दुष्टता प्रकट करतहें एसे जाननो ओर भगवा-नको नाम साधारणमें हूं एसोहे जाको नाम छेतमात्र सर्व दोप दूरि होतहें सो पष्टस्कंधश्रीभागवतमें कहेहें "अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तम-श्लोकनाम यत्। संकीत्तितमधं पुंसां दहेदेधो यथानलः ॥१॥ सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा । वैकुंठनामग्रहणमशेपाधहरं विदुः ॥२॥ नामोचारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः । अजामिलोऽपि ये-नैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥३॥" (अज्ञानसों अथवा ज्ञानसों उत्तमश्लोक (भगवान्)के नामको कीर्तन अभि काष्टको जेर्से जारें तेसे पुरुपके पापकों. ज़ारेहे ॥१॥ संकेतमें लियो, परिहासमें लियो, गीतालापपूरणार्थ और

अवज्ञामूं लियो एसो जो भगवन्नामको ग्रहण सो समग्र पापकों हरे है एसें ऋषिलोक जानेहें ॥२॥ हे पुत्र [दूत]! हरिके नामको माहातम्य देखो जाकरिकेंही अजामिलहू मृत्युके पाशसों छुटि गयो ॥ ३॥) और अष्टमस्कंधमें वाक्यहे "मंत्रतस्तंत्रतिछद्रं देशकालाईवस्तुतः। सर्व करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्त्तनं तव" [शुकाचार्य श्रीवामनजीकों कहेर्हे-मंत्रसों, तंत्रसों, देशकालयोग्यवस्तुसों जो न्यून होय सो सर्व आपके नामकीर्त्तनहि पूर्ण करतहे] ओर "ते सुभाग्या मनुष्येषु कृताथा नृप निश्चितम् । स्मरंति स्मारयंतीह हरेर्नाम कली युगे" (जो यह ' कलियुगमें हरिके नामकों स्मरण करेहें तथा स्मरण करावेंहे सो हे राजन्! मनुष्यनमें भाग्यसहितहें तथा कृतार्थहें यह निश्चयहे) द्वादशस्कंधमें शुकदेवजीको वाक्यहे "कलेदोंपनिधे राजन्नस्ति होको महान् गुणः। कीर्त्तनादेव ऋष्णस्य मुक्तवंधः परं ब्रजेत्" (दोपके निधिरूपकलियुग-को एक वडो गुणहे जो श्रीकृष्णके कीर्त्तनसोंही मुक्त होयगयेहे वंध जिनके एसे एनुष्य परकों प्राप्त होय) पष्ठस्कंधमें विष्णुदृतको वाक्यहै "ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाचार्यहाधवान् । श्वादः पुरुक्सको वापि शुद्धचेरन् यस्य कीर्त्तनात्" (ब्रह्महत्या करिवेवारो, पितृहत्या करिवे-वारो, गोहत्या करिवेवारो, मातृहत्या करिवेवारो, आचार्य (वेदोक्तयइ करिवेवारो) अथवा आर्य (अपनेसें चडे)की हत्या करिवेवारो, पापी होय, चंडाल होय, नीचजातिमें उत्पन्न भयो होय सोहू जिनके कीर्त्तनसी शुद्ध होय) इत्यादिक ठोर ठोर नामको माहातम्य हे तार्ते सहजहुमै मुखमें भगवन्नाम अनजाने निकसिजाय तोहू वह नाम सर्वदोप दृरि करत है।। ६॥

मूलं-तदिपि श्रीमदाचार्यवदनांबुजिनिःसृतम्। तत्प्रकाशितमार्गस्य सर्वसंपादनक्षमम्॥ ७॥ राव्दार्थः—सो भगवन्नामहू श्रीमदाचार्यजीके मुखारविंदसों निकस्यो [अष्टाक्षरमंत्र हे सो] श्रीआचार्यजीने प्रकाश कियो एसो जो भक्तिमार्ग हे तिनकों सर्व संपादन करिवेमें योग्यता वारो हे ।। ७ ।। टीका—यद्यपि सर्व भगवन्नाम सर्वग्रणदाताहे संसारदुःखतें छुडावेहे तोहू तामें यह अष्टाक्षरमंत्र [श्रीकृष्णः शरणं मम] रूप नाम श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके वदनकमलतें निकस्योहे सो पृष्टिमार्गमें स्थिति करावतहे काहेतें जो यह पृष्टिमार्गहू श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीनें प्रकट कियो हे तासों जा जीवकों श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीनें प्रकट कियो हे तासों जा जीवकों श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीनें प्रकट कियो हे तासों जा जीवकों श्रीआचार्यजीहारा नाम प्राप्त भयोहे तिनकों सर्व सिद्धि होयगी सो श्रीग्रसाईजी विज्ञितिमें कहेंहें "यदुक्तं तातचरणेः 'श्रीकृष्णः शरणं मम '। तत एवास्ति नैश्रिंत्यमेहिके पारलौकिके " [जो तातचरण श्रीमहाप्रभुजीने "श्रीकृष्णः शरणं मम " यह अष्टाक्षरमंत्र कह्योहे तासोंही यहलोक ओर परलोकसंबंधि सर्वमें निश्चिंतता हे] इत्यादि वचनके भावसों अष्टाक्ष-रमंत्रको जप वैष्णव करे यह सर्व सिद्ध करिवेमें समर्थ हे ॥ ७॥

मूलं-ततोऽपि ब्रह्मसंबंधः सर्वदोपनिवर्त्तकः। निर्दोषानंदसेवापि दोषाभावप्रसाधिका ॥८॥

शब्दार्थः -तासोंही [भगवनामसोही] ब्रह्मसंबंधहे सो सर्वदोपकों निवृत्त करिवेवारोहे ओर निर्दोप आनंदरूप भगवानकी सेवाहू निर्दोप आनंदरूपहे ओर दोपके अभावकों साधिवेवारीहे ॥८॥ टीका-उपर कहे जो नामतें सर्वदोपको नाश होतहे तो जा जीवकों ब्रह्मसंबंध होय तिनके सर्वदोपको नाश होय यह तो उचितहीहे काहेतें जो सर्व दोप निवृत्तकरणार्थ तो प्रभुनें ब्रह्मसंबंधकी आज्ञा दिनीहे सो सिद्धांत-रहस्यमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभु कहेहें " ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देंह-जीवयोः । सर्वदोपनिवृत्तिहिं दोपाः पंचिवधाः स्मृताः" (ब्रह्मसंबंधिक-जीवयोः । सर्वदोपनिवृत्तिहिं दोपाः पंचिवधाः स्मृताः" (ब्रह्मसंबंधिक-

येतं सर्वके देहजीवके सर्वदोपकी नियृत्ति निश्चय होतहे सो दोप पांच मकारके हे) इत्यादि वचनसों जाननो जो श्रीआचार्यजीद्वारा जा जी वकों बह्यसंबंध मयो तिनके सकल दोप दृिर भये काहेतें जो भग वान् निदोंपहें सो जीवहू निदोंप होय सेवा करे तो अंगीकार होय तातें श्रीमहाप्रभुजी अपने जीवनकों ब्रह्मसंबंध कराय निदोंप किर्कें पाछें सेवामें लगाये सो भगवत्सेवा केसीहें जामें दोपही नांही निदोंप आनंदरूपहें सगरे दोप (प्रतिवंध) कों नाश करिवेवारीहें, तहां कोई शंकाकरें जो ब्रह्मसंबंधतेंहीं सर्व दोपको नाश भयो तब फेरि सेवार्त कोनसे दोपको नाश होय ? ताको समाधान यहहे जो देहजीवकें सगरे दोप तो ब्रह्मसंबंधतें निवृत्तभये फेरि प्रभुकी लीलाप्राप्तिमें प्रतिवंधरूप जो दोपहें सो सेवार्त दृिर होय तब स्वरूपानंदको अनुभव होय यह भाव विचारि ब्रह्मसंबंध ओर भगवत्सेवा करे ॥ ८॥ मूलं-गुणगानं तु सर्वेषां दोपाणां विनिवारकम् ।

गुणगाने ज्ञानमागोद्धत्कपेः प्रभुणोदितः॥ १॥ शब्दार्थः -गुणगान तो नर्वदोपनको निवृत्त करिवेवारो हे तासी ज्ञानमार्गसों गुणगानमें उत्कर्प प्रभुनें कह्योहे॥ १॥ टीका - जो भगव द्गुणगान सगरे दोपको निवारक हे सो गुणगान दोय प्रकारको है एक पुष्टिमार्गीय तथा एक मर्यादामार्गीय सो दोयके भेद कहत है पुष्टिमार्गीय गुणगान जेसें व्रजभक्त गुणगान करत हे श्रीठाकुरजी के संयोगमें सेवा दर्शन करत हे ओर श्रीठाकुरजी गोचारणकों प्रधारत हे तब विरहकरिकें वेणगीत युगछगीत गाय गाय संध्या प्रयत काल वितावत हे तेसेंही श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके पुष्टिमार्गमें विरहकरि गुणगान विषयोगकी भावना हे संयोग विषयोग दों रसको अनुभव हे ओर मर्यादामार्ग (ज्ञानमार्ग) में केवल गुणगानही करत है ॥ ९ ॥

मूलं-ज्ञानं सकलदोषाणां दाहकं परिकीर्तितम्। तथापि न प्रभोः प्राहुर्भावे यत्प्रतिबंधकम्॥१०॥ तन्निवर्त्तियेतुं शक्तमतो न्यूनं निरूपितम्। ततःस्वाचार्यसान्निध्यं क्षणाद्भावप्रदायकम्॥११॥

शब्दार्थः—ज्ञानकों सकलदोपनकों भरम करिवेवारो कह्योहे तोहू प्रभुके प्रादुर्भावमें जो प्रतिवंधकहे तिनकों निवृत्त करिवेमें समर्थ नांहीहे तासों न्यून कह्योहे तातें अपने श्रीआचार्यजीको सांनिध्यही क्षणमें भावकों देतहे ॥ १० ॥ ११ ॥ टीका—ज्ञानमार्गको गुणगान केसोहे जो ताकरिकें संसारके सकल दोप भरम होय जातहे पाले सदा निर्विद्य होय तो मोक्षकी प्राप्ति होय परंतु प्रभु प्रकट होयकें दर्शन न देहि तातें ज्ञानमार्गको गुणगानहे सो भक्तिमार्गमें प्रतिवंधक्रपहे सो काहेतें जो प्रभुको दर्शन नांही, लीलाको अनुभव नांही, स्वरूपानंदको अनुभव नांहीहे तातें ज्ञानहे सो भक्तिमार्गमें प्रतिवंधकही जाननों ताभांति सेवा करियो तवही श्रीआचार्यजीमहाप्रभु भावदान करेंगे यह निश्चय सर्वोपरि सिद्धांत हे ॥ ११ ॥

मूलं-तिहृदक्षाऽऽत्तितापानां ऋमादेवेह संभवात्। तत उत्तरभावस्य भावनं विह्नरूपतः॥ १२॥

शब्दार्थः -श्रीकृष्णके दर्शनकी इच्छा, आर्त्ति ओर तापको क्रमसींही यह पुष्टिमार्गमें संभव (उत्पत्ति) हे तासों विरहात्मकको भावन
[भावना] विप्रयोगाप्तिसों होय ॥ १२ ॥ टीका - पुष्टिमार्गमें ज्यों
ज्यों मन लगायक भगवत्सेवा करे त्यों त्यों श्रीकृष्णके दर्शनको ताप
क्रमक्रमतें वढे या भांति जव अधिक ताप होय ता करिकें सगरो
दोप दूरि होय जाय तव देन्य सिद्ध होय तापाछें जव उत्तरभाव
हृदयमें सिद्ध होय तव व्रजभक्तनके भावकी भावना करे जाकों
मानसी सेवा कहत हैं सो सवोंपिर हे व्रजभक्तनको भाव अधिक्ष है
सो भाव हृदयमें होय तव जानियें जो श्रीआचार्यजीमहाप्रभु हृदयमें
पधारे भावािं स्त्र श्रीआचार्यजीमहाप्रभु हे ॥ १२ ॥

मूलं-क्षणेन दोषसंघस्य नाशकं सर्वथा मतम्।
एवंभूते स्थिते मार्गे नूनं येषामभाग्यतः॥१३॥
अविश्वासस्ततस्तेषां न गतिः काऽपि विद्यते।
अतः स्वयं श्रुतं यद्वा भाग्यादहृदि समागतम्१४
तदेव हि दृढं स्थाप्यं सर्वथा जावनावाध।
नाल्पज्ञवचनाचाल्या वृद्धिरापातसुदरात्॥१५॥

शब्दार्थः-उपर श्लोकमें कह्यो एसो वित्रयोगानिको भावन दोपनके समृहको निश्रय नाशकरिवेवारो हे एसो यह पुष्टिमार्ग हे तामें जिनकी

[्]रे १ संयोगात्मक भाव पूर्वदलहे ओर विप्रयोगात्मक भाव उत्तरदल हे.

अभाग्यहे तिनकों अविश्वास होय तासों तिनकों काहू गति नांही है तासीं अपने सुन्यो अथवा भाग्यसीं हृदयमें आयो एसो जो विप्र-योगानिको भावन सोही जीवनपर्यंत हृढ स्थापनों थोरे जानिवेवारेके वचन, उपरतें सुंदर दिखतें होय तासों बुद्धि चलित नांही करनी॥ 11 १३ || १४ || १५ || टीका-रंचकह भावरूप अमि हृदयमें होय तो एकक्षणमें सगरे दोपकों सर्वथा नाश करे याभांति पुष्टिमार्ग सर्वोपरिहे एसो अजभक्तनके भावात्मक यह पुष्टिमार्ग हे भाग्यहीननकों विश्वास न होय तार्ते अविश्वाससृहि पुष्टिमार्गीय फलसिद्धि नांही होय॥१३॥ जा जीवकों यह प्रिधमार्गमें अविश्वासहे ताकों कहूं गति नांहीहे कोउ जीव होय अविश्वास सवकों वाधक हे सो अविश्वास केसो होय एक-तो अपने मनमें स्वकिष्पत विचार उठे जो यहपुष्टिमार्गमें कछ मोकों सिद्धि नांही दिसत, दूसरो कोउ ज्ञानमार्गीय, कर्ममार्गीय, भावविरुद्ध कहे सो 'सुने अन्यमार्गीय यह पुष्टिमार्गकों देखि नांही सकत हे तातें उनको संगह वाधकहे उनके मुखतें मार्गकी निंदा सुनिकें आविश्वास होय, तीसरो पुष्टिमार्गको फल सर्वांपरिहे सो भाग्यमें न होय जीवही भीतर प्रवाही होय, मर्यादामागींय होय, पुष्टि न होय तो यह फल कहांते पावे ? वाकों अविश्वास होय, चोथो हृदयमें अनेकभांतिके लौकिक वैदिकके विपयके तरंग उठे तो विश्वास छूटिजायवेसूं ओरही किया करनलागे, पांचमो काहू वहिर्मुखके समागमतें दुःसंगतें अविश्वास होय। एसे पांच प्रकारके कारणतें अविश्वास होय तार्को पुष्टिमार्गीय फल सर्वथा न होय ॥ १४ ॥ उपर कहे इत्यादि दोपतें अविश्वास हृदयमें हृढ होयजाय सो अविश्वास सर्वया जीवकों वाधकहीहे जेसें जल अभिको नाशकरे तेसें दुःसंगदोप भावको नाश करे अल्पज्ञानवारे जीवके वचनचातुर्यते बुद्धि चलायमान न करनी

अर्ल्यज्ञजीव अज्ञानकरि निंदा दुर्वचन (मर्यादा छोडिकें) वोले तातें अज्ञानीके संग वाद सर्वथा नांही कर्त्तव्यहे ॥ १५॥ ।

मूलं-सत्त्विनश्चयतः संगः साधको निह संश्चात्। यत्र वे विपरीतेव कृतिस्तत्र भ्रमः कथम्॥ १६॥

शब्दार्थः-विवेकधैर्यादिकके निश्चयसों संगहे सो सर्व सिद्धकरिवे चारो हे संशयसों नांहीहे ओर जहां विपरीतही कृति हे तहां भ्रम केसें होय ? ॥ १६ ॥ टीका-तातें यहनिश्रय मनमें जाननो जो या जीवकी सत्संगही भगवद्धर्मको साधकहे संशय नांही सो श्रीभागवतप्रथम स्कंधमें शौनकको वाक्यहे "तुलयाम लवेनापि न स्वर्ग नापुनर्भवम् । भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः" (भगवद्भक्तके संगके क्षण-वरोवर स्वर्गओर मोक्ष तुलेनांहीहें तहां मनुष्यकी दीनी आशिपको तो कहा कहेनों) ओर एकादशस्कंधमें भगवद्वाक्यहे "न रोधयात मां योगी न सांख्यं धर्म उद्भव ! । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त्तं न दक्षिणा॥ ॥ १ ॥ व्रतानि यज्ञाश्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः । यथावर्धं सत्संगः सर्व संगापहो हि माम् ॥ २॥ " (हे उद्धव! मोकों योग वश • नांही करें हे, नांही सांख्य, धर्म; नांही स्वाध्याय, तप, त्याग; नांही ः इष्टापूर्त्त (कूप, आराम, मठादिक); नांही दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, नियम, यम (कोड वश नांही करें हे). जेसें सर्व संगकों मिटायवेवारो सत्संग मोकों वश करें हे) इत्यादिक वचनर्ते जाननी जो जीवकों सत्संगही वडो साधकहे तातें यह पुष्टिमार्गीय वैष्णव निश्रयही सत्संग करे ओर पुष्टिमार्गतें जिनकी विपरीत कृति होय

१ यह वीन स्रोकको अर्थ टीकामें लेएकदोपलों उलटो लिख्योहे परंतु पांच दश पुस्तकमें एसेंही दीखनेमें आयो तामें तेसेंही कछ सुधारिके लिख्योहे या शिवलों अर्थ सबंधा नाही होयसके किन्तु प्रथम शन्दार्थ लिख्योहे तेसे होयहें.

तामें वैष्णवकों अम काहेतें होय तातें पुष्टिमार्गतें विपरीत कृतिवा-रेको संग सर्वथा न करे ॥ १६॥

मूलं-तत्र आंताः परं मृहास्तत्संगः खळु बाधकः । अतः सत्संगसहितस्तिष्ठेत्सर्वत्र सर्वदा ॥ १७॥

राव्दार्थः—तामें जो भ्रांतहे सो अत्यंत मृढहे इनको संग निश्चय वाधकहे तासों सत्संगसहित सर्वजग्गे सदा रहे ।। १७ ।। टीका—जो जीव भ्रांतहे या पुष्टिमार्गमें विश्वासकिर रहितहे सो महामूढ अज्ञानीहे तासों खल (दुष्ट)को संग महावाधकहे तातें पुष्टिमार्गीय विष्णव जहां जाय तहां सवठोर सदा पुष्टिमार्गीय भगवदीयके संगही स्थित रहे तवहीं दुःसंगतें वचे तातें सर्वथा सत्संगमें रहे सो नव-रत्नग्रंथमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहेहें "निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा ताहरों जैनेः " (निश्चय ताहर्शीय विष्णवजननके संग निवेदनको स्मरण करनों) यह निवेदनको स्मरण सदा सर्वदा ताहर्शीयसों मिलिकें करे तातें सत्संगहे सो भाववृद्धिकर्त्ता होयवेसं पुष्टिमार्गीय भगवदीयकुं नित्य कर्त्तव्यहीहे ।। १७ ॥

मूलं-सेवां कुर्वन् सदाचारो धर्ममार्गस्थितोऽपि च । * अविरुद्धवचोवका ह्यविरुद्धकृतिप्रियः॥ १८ ॥ *

शब्दार्थः—सेवाकरिवेवारो, सदाचारवारो, ओर धर्ममार्गमें रह्यो होय तोहू अविरुद्धवचन कहिवेवारो तथा अविरुद्ध कृतिकों प्रिय करिकें रहिवेवारो होय ॥ १८॥ टीका—पृष्टिमार्गीय वैष्णव श्रीआचार्यजी-द्धारा निवेदन पायकें पुष्टिमार्गकी रीतिसों आचारसहित भगवत्सेवा करे आचारहे सो विष्णवको प्रथम धर्महे तातें आचार विचार पूर्वक खासा, सेवकी, छयो, सखडी, अनसखडी, प्रसादी, जूठन, प्रभृतिको ज्ञान राखे, धर्ममें तत्पर रहे, अपने पुष्टिमार्गीय धर्ममें रहे ओर पापा-चरण न करे पुष्टिमार्गतें अविरुद्ध वचन कहे ओर जो कोई पुष्टिमा-र्गसों अविरुद्ध खुंदर शिक्षा देय ताकों मानिलेय अविरुद्ध (क्रिया) मार्गकी रीतिकी सेवाकृंहि मनमें प्रियजानें ॥ १८॥

मूलं-स्वाचार्यमात्रवाक्येकनिष्ठः सततभावुकः। तदीयजनसंसृष्टः सर्वसंगविवर्जितः॥ १९॥

शब्दार्थः -अपने श्रीआचार्यजीके वचन-निवंध, श्रीसुवोधिनीजी, ओर पोडराग्रंथादिकनमें निष्ठावारे, निरंतर भाववारे, भगवदीयसों मिलिवेवारे, ओर दूसरे सर्वसंगतें वर्जित होय॥ १९॥ टीका-एक अपने श्रीवल्लभाचार्यजीके वचनपें निष्ठा राखे इननें किये श्रीसुवोधिनीजी-निवंधादिक-एतन्मार्गीयग्रंथको कहे सुने तामें जो किया भाव कहेहें ताहीमें मन लगायकें ताहीभांति रहेनो ओर जो भगवदीय श्रीआचार्यजीके वचन अनुसार चलतहे श्रीआचार्यजीम्महाप्रभुजीके वचनमें जिनकी पूर्ण निष्ठाहे, एसेनको संग करे ओर सर्वको त्याग करे. जो एसे भगवदीय मिले तो संग करे नांही तो सर्वसंग छोडिकें भगवत्सेवा स्मरण मार्गरीतिप्रमाण करे परंतु अन्यको संग सर्वथा न करे या भांति वैष्णव रहे तो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीकी कुपातें पुष्टिमार्गको फल पावे॥ १९॥

ं इति श्रीहरिरायजीकृतं विंशतितमं शिक्षापत्रं श्री गोपेश्वरजीकृतत्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम्॥२०॥

शिक्षापत्र २१.

अव एकविंशतितमिंशक्षापत्रमें लौकिकव्यावृत्तिकों छोडिकेंही सेवा करनी सो बुद्धि हढ होय तव होय, भगवदीयके संग निरंतर निवेदनके चिंतनतेंही बुद्धि हढ होय, विपरीतवार्त्ताके श्रवणसों चित्त खेदयुक्त होय ताकी प्रभु उपेक्षा करेहें, यह कालहे सो सत्पुरुपनकी बुद्धिकों हरेहे तासों पुष्टिमार्गीय—भगवदीयनके संग रहेनो यह निरूपणहे उपर कहे ताप्रकार वैष्णव रहे तो फल सिद्ध होय सो कलिकालदोपतें भक्तिमार्गको भाव ओर सत्संग तिरोभ्तहे याकों केसें फल होय सो कहतहें.

मूलं-भक्तिमार्गस्तिरोभूतस्तथा संगः सतामपि। ततो भावस्य शैथिल्यं तदभावेऽखिलं वृथा॥१॥

राज्दार्थः - भक्तिमार्ग तिरोभूत होय गयो हे तेसेंही सत्पुरुपनको संगृह तिरोभूत होय गयोहे ताकरिकें भावकी शिथलता भईहे और भावको अभाव भयो तब सकल वृथाहे ॥ १ ॥ टीका - यह महाकठिन कालतें भक्तिमार्ग तिरोभूत भयोहे और पुष्टिमार्गीय भगवदीयको संगृह तिरोभूत भयो हे ताकरिकें पुष्टिमार्गको भावह शिथल भयोहे सो भावविना सर्व वृथाहे काहेतें जो यहपुष्टिमार्गमें सगरो भावहीहे भावात्मक मार्गहे जितनी किया दीसतहे सो सर्व भावात्मकहीहे ताभा-वकों तो पुष्टिमार्गमें स्थित होय भगवदीयको संग होय तबही जाने नांही तो केसें जाने ? भक्तिमार्गमें अष्ट्रपहर केवल प्रभुकोही सुख विचारे अपनो देहसंबंधी सुख रंचकह न विचारे याभांति सेवा करे सो दुर्लभहे नाकरिकें भाव शिथल होयरहोहे तातों भावविना सर्व वृथाहे ॥ १ ॥

मूलं-भक्तिमार्गीयताभावे क्रियामात्रं हि कर्मवत्। तत्रापि न मनःस्थैर्यं विक्षेपाद्व्यवहारतः॥२॥

शब्दार्थः—भक्तिमार्गीयपनेको अभाव होय तब कर्मकीनांई (यह-सेवाहू) क्रियामात्रहे तामेंहू व्यवहारसों विक्षेपतें मनकी स्थिरता नांहीहे ॥ २ ॥ टीका—भक्तिमार्गकी रीति यहहे जो अप्टप्रहर भावमें रहे सो तो कहांहे ? परंतु कर्मवत् क्रियाहे जेसें कर्ममार्गीय कर्म करें तहांतांई प्रयोजन पाछें कछ नांही तेसेंही सेवासमय न संयोगको सुख भयो के न अनोसरमें विप्रयोग भयो तातें कर्ममार्गवत् क्रिया मात्र-हीहे सो कर्मवत्हू मनलगायकें नांहीहे तहां सेवामेंहू मन एकाप्र नांही अनेक भांतिके विक्षेप मनमें होतहे नानामांतिके व्यवहारके तरंग मनमें उठतहे ताकरि मन स्थिर नांही किन्तु विक्षेप पावतहे सो कर्मवत् क्रियामात्रहू भगवत्सेवा नांही वनतहे ॥ २ ॥

मूलं-व्यवहारोऽप्यासिद्धश्चेद्विशेषक्षोभको मतः। तदभावे तु गार्हस्थ्यप्रकारेः सेवनं कुतः॥३॥

शब्दार्थः -व्यवहारहू सिद्ध न भयो तव विशेपक्षोभ करिवेवारों होयहे काहेतें जो व्यवहारको अभाव होय तव गृहस्थाश्रमके प्रकारसों, सेवन केसें होय ? ॥ ३ ॥ टीका-भगवत्सेवामें व्यवहारके तरंग उठ तहे सो व्यवहारहू सिद्ध न होय तव मनमें ओर अधिकक्षोभ होतहे विरज छटिजातहे तव गृहस्थकों भाव केसें रहे ? ओर भगवत्सेवाहू केसें करे ? तातें यह पुष्टिमागी तो भावात्मक सर्वापरिहे ओर जीव तुच्छहे यह काल महाकठिनहे सेवाकरतमें व्यवहारको स्मरण स्वतम्कालदोपतें होयहे सो व्यवहार खाली परे सिद्ध न होय तव धीरज केसें रहे ? मनमें अतिहीं दुःख पावे तव लोकिकविंतातें मनमें भगवद्भाव केसें रहे ? ओर गृहस्थाश्रममें सवहीं (लोकिक, वैदिक, कुटुंबको

भरणपोपण, इत्यादिक सव) माथेहे सो करनो ओर भगवत्सेवा केसें करे ? मनतो चिंताने आय प्रस्योहे तहां कोई कहे जो व्यवहार मित करो प्रभु तो सर्वसामध्यवान हे ठौकिक वैदिक सर्वकार्य सिद्ध करेंगे तुम भग-वत्सेवा मनलगायकें करो याभांति कोई कहे तहां आगें कहतहे ॥३॥

मूलं-व्यावृत्यभावपक्षस्तु बुद्धयदार्ख्यात्सुदुर्लभः। बुद्धिदार्ख्यं तु सततं निवेदनविचितनेः॥४॥

शब्दार्थ:-व्यावृत्तिके अभावको पक्ष (लोकिकवैदिक छोडिवेको पक्ष) बुद्धिकी दृढता नांही हे तासों अत्यंत दुर्लभहे ओर बुद्धिकी दृढता तो निरंतर निवेदनके विशेप चिंतनकरिके होय ॥४॥ टीका-व्यावृत्तिको अभाव केर्से करे ? यद्यपि अव्यावृत्त होय भगवत्सेवा करे सो तो सर्वोपरि हे परंतु एसी बुद्धि उत्कृष्ट नांहीहे याभांति याकालमें प्रभुको पूर्ण विश्वास तो दुर्लभहें तातें पूर्ण विश्वास विना अव्यावृत्त होय तो बहुतही दुःख पावे श्रीठाकुरजीमें दोपबुद्धि होयजाय में इनके आश्रय सेवा करतहों ओर मेरो छोकिकहू नांही सिद्ध करतहें याभांति होय तो अनर्थ होय दासभाव जात रहे तार्ते अव्यावृत्त केसे होय ? एसी तीव उत्तम बुद्धि नांहीहे पूर्ण विश्वास तो दुर्लभहे, तहां कोई कहे जो बुद्धि उत्तम होय पूर्णविश्वास जाभांति होय सोहि कार्य करो तहां कहे जो बुद्धि उत्तम ओर पूर्णविश्वास तो तव होय जब अप्टमहर निवेदनको चिंतन करे अष्टाक्षर और शरणकी भावना करे गद्यमें कहा निवेदन कियोहे ? अब केसी किया करतहाँ ? कितने दिनको भृत्योहाँ ? सो अब श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीद्वारा संबंध भयोहे प्रभुकेसेहें ?जीव केसोहे ? जीवकों कोनप्रकार दासत्व करनोहे? याभांति, पंचाक्षरमें प्रभुही गतिहे याभाति निवेदनको चिंतन होय बुद्धि प्रवल उत्तमहोय तब विश्वास संपूर्ण होय । अय निवेदनको चिंतन करिवेको प्रकार कहत है ॥ ४ ॥

मूलं-तत्रापि सहभावस्तु सतामेव निरूपितः। ते दुर्लभा दूरगाश्च ततो बुद्धिर्न तादृशी॥५॥

शब्दार्थः—तामें (निवेदनके चिंतनमें) हु सत्पुरुष (भगवदीय) कोही संग तो निरूपण कियो हे सो भगवदीय दुर्लभ ओर दूरि रहत हे तासों एसी उत्तम बुद्धि नांही हे ॥ ५ ॥ टीका—निवेदनको चिंतन अपनी बुद्धितें नांही होयसकतहे सो नवरता ग्रंथमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी निरूपण कियेहे " निवेदनं उ स्मर्तव्यं सर्वथा ताहशोंजनैः" (निवेदन तो निश्चय ताहशीयजनके संग स्मरण करिवेयोग्य हे) तातें निवेदनको चिंतन भावसहित ताहशीय पुष्टिमार्गीय भगवदीयसों मिलिकें करे तब भाव सिद्ध होय, तहां कोई कहे जो भगवदीयसों मिलिकें निवेदनको चिंतन करिलें तहां कहतहे पुष्टिमार्गीय भगवदीय मिलनें वोहोतही दुर्लभ हे कहंहे सो दृरिहे तिनको संग कोन भांतिसों होय? उन भगवदीयन के संग विना एसी बुद्धि केसें होय ? ॥ ५ ॥

मूलं-स्थिताऽपि शीर्यते नित्यं पोषकाभावतो मम । खिन्नं च जायते चित्तं वार्त्ताश्रवणतोऽन्यथा॥६॥

शब्दार्थः - मेरी बुद्धि स्थित है [अथवा ' स्थितोपि ' एसो पाठ होय तो भाव स्थितहे) तोहू पोपणकरिवेवारे अभावसों शिथिल होय जायहे ओर अन्यथावार्ता सुनिके चित्त खेदसुक्त होय है ॥ ६ ॥ धीका-ओर भाव वढे सो तो परम दुर्लभ हे परंतु कछक भाव आगेर्त इदयमें स्थित हे सोहू श्लीण होतहे दिनदिन घटत जातहे काहेरों जो पोपकको अभाव हे भगवदीयको मिलाप होय तो भावको पोपण होय भाव वढे सो सत्संग विना भाव शिथिल होतहे ओर लाकिक मनुष्य-

नको संग आयवन्योहे सो अनेकप्रकारकी लौकिक वार्ता कहनी परतहे ओर अन्यथा-लौकिकवार्ताश्रवणतें चित्तकों महा खेद होयर- ह्योहे अहर्निश अन्यवार्ता अन्यश्रवण मेरे कर्णमें होतहे सो में किनसों कहूं एसो मनमें खेद होतहे ॥ ६ ॥

मूलं-श्रुतोत्तमप्रकाराश्च भगवन्मानसा अपि। अस्मदीया लौकिकेषु प्रतिष्ठामात्रसाधकाः॥७॥ चित्तव्ययं प्रकुर्वति वृथा देहं च तद्गतम्। भगवन्मार्गनिष्ठा तु लोकनिष्ठाविरोधिनी॥८॥

शब्दार्थ:-भगवानमें मनवारे एसे हमारे जो उत्तम प्रकार सुनिनेवारे हे सोहू लौकिकमें प्रतिष्ठामात्र सिद्ध करिवेवारेहे ॥ ७॥ चित्तकों ओरजगे लेजातहे ओर देहकों तामें प्राप्त करे हे काहेतें जो भगवन्मार्गकी निष्ठाहे सो लौकिककी निष्ठासों विरुद्धहे ॥ ८ ॥ टीका-याभांति में मनमें दुःखीहों भगवद्भाव दिनदिन शिथिल होतहे ओर में अपनें अवणतें उत्तमप्रकार (अपनी वडाई) सुनतहों कोई कहतहे जो अप्टप्रहर ईनको मन भगवानमें लग्यो रहतहे इत्यादि अनेक वडाई में अपनी श्रुतितें सुनतहों ताकरिकें कहा सिद्धिहे लौकिकमें मितष्ठा भई सो प्रतिष्ठामात्रकी साधक भई लौकिकमें यह फल भयो ओरक्छ दीसत नांही तव यह प्रतिष्ठातें मेरो कार्य कहा सिद्ध होतहे? यह प्रतिष्ठा भगवद्भावमें वाधकहे ॥ ७ ॥ सो आगें निरूपण करतहें जो यह चित्त भगवानके चरणारिवंदमें न लगे ओर यह मनुष्यदेह इंद्रिय मगवानमें विनियुक्त न भई सो वृथाजातहे सो एकादशस्कं-धर्मे राजा जनक कहेहें "दुर्लभो मानुपो देहो देहिनां क्षणभंगुरः" (देही (जीव)को यह मनुष्यदेह दुर्लभ ओर क्षणमें नाशहोय एसोहे) सो ख्या जातहे ओर सप्तमस्कंधमें प्रहादजी कहतहे 'कीमारआचरेत्पाज्ञो धर्मान्

भागवतानिह । दुर्लभं मानुपं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् (बुद्धिमान् कुमार अवस्थामं यह संसारमं भगवद्धर्मको आचरण करे काहेतं जो मनुष्यजन्म महादुर्लभहे सोहू निश्चल नांहीहे ओर पुरुपार्थकों देवे-वारोहे) इत्यादि वचनसों जान्योजातहे जो मनुष्यदेह महादुर्लभहे क्षणमें याको नाशहे तातें भगवानको दर्शन सेवा परमदुर्लभहे सो वने तो आछो यह कौमारअवस्था भगवद्धर्मकरणयोग्यहे तातें भगवद्धिनियोगविना देह यौवन सर्व वृथाहे ओर भगवन्मार्गकी निष्ठाहे सो लोक निष्ठाविरोधिनीहे काहेतें जो अपनी वडाई सुनिके आनंद मानी वडो जाने सो भगवानकों बुरी लगे मद होय तो भगवान हृदयमेंतें जातरहे तातें यहलोगनकी वडाई हे सो भगवद्धर्मकी निश्चय विरोधिनीहे।।८॥

मूलं-संसारवैरी कृष्णोऽपि मूढानेतातुपेक्षते। कालः सतामपि हरत्यसो संप्रति सन्मतिम्॥९॥

शब्दार्थः—संसार [अहंताममतात्मक] के वैरी श्रीकृष्णहू एसे
मृढ संसारासक्तनकी उपेक्षा करेहें और यहकाल यासमयमें सत्पुरुपकीहू
सुंदरमितकों हरतहे ॥ ९ ॥ टीका—संसारवेरी यह श्रीकृष्णको नामहे
जहां श्रीकृष्ण हृदयमें आवे तहां संसार नाश करे निश्रय वासों
लोकिक देहसंवंधी न वने सो यह जीव अज्ञानीहे श्रीकृष्णकों चाहतहे
ओर संसारहूकी अपेक्षा करतहे संसार होयगो तहांतांई श्रीकृष्ण कहां?
जव श्रीकृष्ण कृपाकरेंगे तव [अहंताममतात्मक] संसार कहां ? सो
यह कालदोपतें प्रभुको ज्ञान नांही होतहे एसो काल कठिन आयोहे
जो सत्प्राणीह्की मित जो बुद्धि ताहूको हरिलेतहे तातें वारंबार संसारकी अपेक्षा राखतहे यद्यपि संसारकों तुन्छ जानतहे ओर भगवानको
गुणह् संसारनाशकहे यहही जानतहे तोह यह कालकिर सत्पुरुपनकी,
बुद्धि हीन होय जायहे ॥ ९ ॥

मूलं-कालदोषिनराकत्तां न संगोऽस्ति सतामिष । अतः स्थेयं सावधानेः समस्तेमीर्गवर्त्तिभिः॥१०॥

शब्दार्थः-कालदोपकों मिटायवेवारो सत्पुरुपनको संग नांही हे तासों समस्त पुष्टिमार्गीय वैष्णव सावधान रहियो।।१०।। टीका-अव श्रीहरिरायजी सगरे पुष्टिमार्गीय वैष्णवनकों शिक्षा देत हैं जो सावधान रहियो कालदोप हे सो महादुष्ट हे सर्व धर्ममें प्रतिवंधक हे सो मेंहू यह कालदोपको नाश नांही करिसकतहों काहेतें जो सत्संग नांही मिलतहे जो भगवदीयको संग मिले तो कालदोप वाधा न करे सो सत्संग दुर्लभहे तातें हे वेष्णव ! तुम समस्त क्षणक्षणमें सावधान रहियो यह पुष्टिमार्ग सर्वोपरिहे तामार्गमें तुम स्थितहो सो दुःसंगतें वचे रहियो भगवदीयकों संग करियो ओर श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके चरणकम-लकों अपने चित्तमें धरियो।। १०।।

इति श्रीहरिरायजीक्तमेकविंशतितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीक्तत्रजभापा-टीकासमेतं समाप्तम् ॥ २१ ॥

शिक्षापत्र २२.

अव द्वाविंशशिक्षापत्रमें यह पुष्टिमार्गमें अपनो भावह सो साधनहें ओर भावात्मा भगवान्हें सो प्रमेय ओर फलरूपहें तामों निधिरूप भावकी रक्षा करनी ओर इनमों विरुद्ध होय ताको त्याग करनो हरि-कृष्णनामके विष्णवको चित्त अतिशुद्धहें तातें इनकी उपर कृपाराक्षिकें इनको संग करनो यह निरूपणहे। उपर कहे जो, सत्संगविना यह जीव कालदोप दूरि नांही करिसकतहे तार्ते समस्त वैष्णव सावधान रहियो काहेतें जो यह भावात्मक मार्गहे ताको प्रकार आगें कहतहें मूलं—भावोऽत्र साधनं मार्गे प्रमेयं भगवान् हि सः। प्रमाणं कृष्णसेवादो (सेवादिः) सएव च फलं पुनः॥१॥

शब्दार्थ:-यह पुष्टिमार्गमें भावहे सो साधनहे प्रमेय सोही भगवान् हे प्रथम श्रीकृष्णकी सेवा प्रमाणरूपहे ओर फेरि सोहि फलरूपहे अथवा श्रीकृष्णकी सेवा आदि जो कार्यहे सो प्रमाणहे ओर फेरि सोहि फल-रूपहे ॥ १ ॥ टीका-यह पुष्टिमार्गमें भाव सोई सर्वोपरि साधनहे भग-वानको प्रमेयवल फल हे श्रीठाकुरजीह फलात्मक भावरूप प्रमेयरूपहे यह पुष्टिमार्गमें यह प्रमाण नांही जो इतनी सेवातें फल होय जब प्रमेय वल विचारे ताहीक्षण फलदानहोय तार्ते श्रीकृष्णकी सेवाहे सोई प्रमाण ओर सोई फलक्षिह ज्ञानमार्ग तथा कर्ममार्गमें साधन तथा फल न्यारो न्यारो हे फल पाये पीछे साधन न करे सो यह पुष्टिमार्गमें नांही है साधनहुमें श्रीऋष्णकी सेवा ओर फलहुमें श्रीकृष्णकी सेवा हे तार्ते फलरूप जानि सेवा कर्तव्य हे श्रीकृष्णकी सेवा उपरांत ओर फल कहा हे ? सो नवमस्कंधमें श्रीभगवान कृहेहें "मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादि चतुष्टयम्। नेच्छंति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालिवप्छतम्" (मेरी सेवातें प्रतीयमान सालोक्यादि चतुर्विधमोक्षकों मेरी सेवातें पूर्ण मेरे भक्त नांही इच्छतहें सो कालमें हुवे एसे राज्यादिककों कहांतें चाहें?) एसे भक्त मेरी सेवामें विश्वास किये हे जो चारों प्रकारकी मुक्तिकीह नांही चाहतहंं सेवाहीकरि पूर्णहे सो मुक्तिकोंहू वाधकरूप जानि नांही चाइतहें तिनकों ओर कहा नांही वाधकहे तातें प्रमाणह कृष्णसेवा और फलह कृष्णसेवाहे ॥ १॥

मूलं तस्मात् स एव संरक्ष्यो निधिरूपस्तु सर्वथा । यत्तद्विरुद्धं तत्सर्वज्ञात्वा ज्ञात्वा निवर्त्तयेत् ॥२॥

शब्दार्थः—तासों यह निधिरूप भावही सर्वथा सम्यक्ष्रकारसों रक्षा करिवेयोग्यहे ओर जो तासों विरुद्धहे सो सर्व जानि जानिकें निवृत्त करे ॥ २ ॥ टीका—तातें निधिरूप श्रीकृष्णहे तेसेंही निधिरूप भगवद्भावकों जानि लौकिक दुःसंगतें निश्चय रक्षा कर्त्तव्यहे यह पुष्टि-मार्गक्रं जो अनुकुल होय ताको संग्रह ओर प्रतिकृल होय ताको त्याग, करनों यही श्रीआचार्यजीकी आज्ञाहे ॥ २ ॥

मूलं-हरिकृष्णे यथापूर्व स्नेहः स्थाप्यो विशेषतः। गोष्ठी चतादशैः[तादशी]कार्या ध्रवमस्मत्प्रयत्नतः २

शब्दार्थः —हरिक्ठष्णनामके वैष्णवर्षे प्रथमकीनांई विशेषसों स्नेहास्थापन करनो ओर गोष्ठी (स्नेहसहित वार्ता) तेसेंके संग अथवा तेसी अपने प्रयत्नसों निश्चय करनी ॥ ३॥ टीका —हरिक्ठष्णमें प्रथमकीनांई स्नेह स्थापन करनो पुष्टिमार्गीय तादृशीय वैष्णव होय तिन्हीसों गोष्ठी प्रयत्नकरिकें करे उनसों मिलिकें पुष्टिमार्गको भाव विचारे तो हृद्यमें भगवद्भाव अचल होय तातें अवश्य भगवदीयको संग कर्त्तव्यहे॥ ३॥

मूलं-एतस्यांतःस्थितिः प्रायः समीचीनाऽवलोक्यते । नान्यच लोकिकं चित्ते विचार्यमिह सर्वथा ॥४॥

शब्दार्थः - इनकी (हरिकृष्णकी) वोहोतकरिकें अंतः स्थिति (अंतर्मुखता) दीखवेमें आवतहे तासों इनको संग करनो और चित्तमें इहां अन्य लोकिक सर्वथा नांही विचारनो ॥ ४॥ टीका-भगवदीयके संग नित्य गोष्ठी करतकरतं अंतः करणमें भावकी सिद्धि होय तब हृदयमें सदा भगवान स्थितहे तिनको दर्शन होय तब यह जीवको चित्त लोकिकमें सर्वथा न लगे नानाप्रकारके लोकिक विचार, मिध्याध्यान, मिथ्याक्रिया, मिथ्यावाणी सब निश्चय छटिजाय ॥ ४॥

मूलं-विशेषस्त समग्रेऽपि भांडागारिकपत्रतः।

विज्ञेयः सर्वथा शीघं लिख्यतां च तदुत्तरम्॥५॥

शब्दार्थः-विशेष तो सर्वसमाचारह भंडारिकें पत्रसों जानने और इनको उत्तर शीघ्र निश्चय लिखेनो ॥ ५ ॥ टीका-विशेषसमाचार भंडारिके पत्रतें जानोगे पत्रवांचिकें सर्वथा वेगही प्रति उत्तर लिखोगे ॥ ५ ॥

> इति श्रीहरिरायजीकृतं द्वाविंशतितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषा-टीकासमेतं समाप्तम् ॥ २२ ॥

शिक्षापत्र २३.

अव त्रयोविंशशिक्षापत्रमें लोकिकदुःख हृदयमें न घरनो, अलो-किकमें चिता न करनी, वहिर्भुखता न राखनी, वहिर्भुखतानिष्ठतिके प्रकार, (श्रीभागवतको पाठ तथा अर्थश्रवण, वैष्णवके संग निवेदनको स्मरण, सदा भगवन्नामग्रहण, सदाशरणभावना,) अष्टाक्षरको उचारण राखनो, पंचाक्षरमंत्रकरिकें तदीयत्वभावना करनी, वैराग्य ओर संतोप

१ विश्वभिषत्रके प्रथमश्लोकके टीप्पणमुजन श्रीगोपेश्वरलीके पत्र आयवेलगे वन् श्रीहरिरायजीने लिपि जो उत्तर गेगि लिखोगे जनताई पत्र नांही आवते वन्तांई उत्तर लिखिवेकी नांही लिखते.

राखनो, यह निरूपणहे! उपर कहे भगवदीयसंग गोष्ठी कियेतें हृदयमें भाव सिद्ध होय तव हृदयमें प्रभुकों देखें तव छौकिक विचारमें चित्त न जाय परंतु हृदयमेंतें चिंता न छुटे तहांतांई भाव केसें आवे? सो सर्व प्रकार आगें निरूपण करतहें—

मूलं-भवंतः श्रुतिसद्धांताः कथं मुह्यंति लोकिके। अलोकिके तु चिंता या विषयाभावतो न सा॥१॥

शब्दार्थः -श्रीहरिरायजी लिखतहे जो सुन्योहे सिद्धांत जिनने एसे तुमहो सो लोकिकमें क्यों मोह पावतहो ? ओर अलोकिकमें जो चिंताहे सो तो विषयके अभावसों नांहीहे ॥ १ ॥ टीका - अव श्रीहरिरायजी लिखतहे जो तुम श्रुति, स्मृति, वेद, पुराण, श्रीभागवत, सर्वके सिद्धांतकों जानतहो सो यह लोकिकमें मोह काहेकों पावतहो यह तुमकों उचित नांही हे अव में तुमकों सिद्धांत कहतहों सो चित्त लगायकें सुनियो. जहांतांई लोकिकविषय हृदयमेंतें नांही जात हे तहांतांई अलोकिक भाव हृदयमें नांही रहत हे तातें क्षणक्षणमें चिंता होत हे, जब हृदयतें विषयको अभाव होय तब वह चिंता नांही होति हे सो अपने पृष्टिमार्गमें लोकिक अलोकिक दोन चिंता नांही कर्त्तव्य हे ॥ १ ॥

मुलं-यतःसर्वसमर्थोऽस्मत्प्रभुः सर्वं करोति हि। पितेव (पतिवत्) निजदासानामेहिकं पारलोकिकम् २

शब्दार्थः —जासों अपने प्रभु सर्व समर्थहे सो पिताकीनांई अथवा पतिकीनांई अपने दासनकों लोकिक और पारलोकिक दोउ सिद्ध करें-गे ॥२॥ टीका—श्रीकृष्ण अपने प्रभु सर्वसामर्थ्ययुक्तहे सो श्रीगुसांईजी विद्मिसमें कहेहें "कर्तुं पुनरथाकर्तुमन्यथाकर्तुमीश्वर । सामर्थ्यं यन्मया दृष्टं त्वय्येवातो न संशयः" (ईश्वर एसे जो तुम तिनमेंही करवेको, न करवेको ओर विपरीत करिवेको सामर्थ्य जो देख्यो तार्ते मोकों संशय नांही) श्रीकृष्ण कर्त्तु, अकर्त्तु, अन्यथाकर्त्तु, सर्वसामर्थ्ययुक्तहे सो प्रमु लौकिक, अलौकिक सर्व सिद्ध करे तार्ते भगवदीयकों चिंता नांही कर्त्तव्यहे सो दृष्टांत कहत हे जेसे लौकिकमें अपने पिता पुत्रकी रक्षा करे तेसे प्रमु अपने निजदासनको लौकिक, अलौकिक, सर्व सिद्ध करेंगे यह निश्चय जाननो ॥ २ ॥

मूलं-अत एवास्मदाचार्यवचनं वे विराजते। 'भगवानिप पृष्टिस्थोन करिष्यति लोकिकीं च गतिम्'

राव्दार्थः नतासों ही 'भगवान हू पुष्टिमार्गमें विराजमान हे सो लौकिन कगित नां ही करेंगे " यह श्रीमदाचार्यजीको वचन निश्रय विराजित हे ॥ ३ ॥ टीका — पुष्टिमार्गीय वैष्णवकों चिंता नां ही कर्त्तव्य हे एसे अपने श्रीआचार्यजीके वचनामृत विराजत हे जो उत्तराई हे आर्याच्त्तसों लिख्योहे सो नवरत्न ग्रंथके प्रथमश्लोकको उत्तराई हे सो वचनतें यह पुष्टिमार्गमें भगवान साक्षात विराजमान हे सो अपने निवेदनीय जीवकी लौकिकगित कवहू न करेंगे यह विचार वैष्णव निश्रय मनमें राखे तातें यह पुष्टिमार्गममान ओर दूसरो कोउ मार्ग नांही हे जामें शरण आये पाल लौकिकगित कवहू न होय तहां कोउ कहे जो वैराग्यकिर लौकिक गित न होय परंतु लौकिकमें रहे, सगरो लौकिक कार्य करे तिनकों लौकिक गित केसें न होय ? तहां कहतहे ॥ ३ ॥

मूलं-मर्यादामार्गवेराग्याद्यभावेऽपि गतिः सताम्। चितासंतानहंतारोऽप्याचार्यपदरेणवः॥ ४॥

शब्दार्थः -पुष्टिमार्गीय विष्णवको मर्यादामार्गके वेराग्यादिक साधनको अभाव होय तोह सत्पुरुपकी गति होय और चिताके

विस्तारकों मिटायवेवारी श्रीआचार्यजीके चरणारविंदकी रजहू (अपनेपें विराजमान) है ॥ ४ ॥ टीका-मर्यादामार्गकी यह रीतिहे जो ज्ञान-वैराग्यकरिकें गति होय. जितनो साधन जीव करे तितनी उत्तमगति वाकों मिले ज्ञानमार्ग करि सत्य लोक (ब्रह्माके लोक) में जात है यह मर्यादामार्ग (प्रमाणमार्ग) की रीति हे ओर यह पुष्टिमार्गमें प्रमेयतें फल हे साधनतें फल नांही होतहे सो श्रीभागवतएकादश-स्कंधमें भगवान् कहेहें "केवलनैव भावेन गोप्यो गावो मृगाः खगाः। येऽन्ये मूढिधियो नागाः सिद्धा मामीयुरंजसा "[केवल भावकरिकेंही गोपीजन, गार्ये, मृग, पश्ची, ओर जो अन्य मृढबुद्धिवारे नाग सो सिद्ध होय विनाश्रम मोकों प्राप्त भये] त्रजमें श्रीकृष्णभगवान् निःसाधनहे तासों प्रभु अपने प्रमेयवलतें फलदान कियेहें तेसेंही यह पुष्टिमार्गमें श्रीकृष्ण विराजतहे सो साधनकी अपेक्षा नांही राखतहें स्वतः प्रमेय-वलतें निश्रय फलदान करेंगे तातें पुष्टिमार्गीय वैष्णवकों लोकिक अलोकिक चिंता कबहू नांही कर्त्तव्यहे सो नवरत्नग्रंथमें श्रीआचार्यजी-महाप्रभुजी कहेहें "चिंता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापि " (निवेदन कियो हे आत्मा जिनने एसे वैष्णवनकों कवह कछह चिंता नांही कर्त्तव्य है) निवेदन कियो ताजीवकों चिंता नांही कर्त्तव्य है ओर श्रीगुसांईजीनें नवरत्नकी टीकामें मंगलाचरण कियो हे "चिंता-संतानहंतारो यत्पादांबुजरणवः। स्वीयानां तानिजाचार्यान् प्रणमामि मुहर्मुहः " [अपने भक्तनके चिंताके विस्तारकों मिटायवेवारी जिनके चरणारविंदकी रेणुहें इन अपने श्रीआचार्यजीकों वार्वार प्रणाम करूंहुं] श्रीआचार्यजीके चरणकमलकी रेणुके प्रसादतें सगरीं चिंताको आपुते नाश होतहे एसे श्रीआचार्यजीके चरणकमलकों, में वारंवार नमस्कार करतहाँ ॥ ४ ॥

मूलं-अतस्तदीयाः किं भ्रान्ताश्चिता विद्धते जनाः। ज्ञानिनोऽपिन वैद्धःखं चित्ते दधित लोकिकम्॥५॥ सेवारसादिरहिताश्चित्रं भक्ताः कथं तथा। यैः स्वरूपस्य सेवायां दर्शनस्पर्शनादिकम् ॥६॥ अनुभूतं सदा तेषां चित्तं दुःख्युतं कथम्। प्रमानंदसंबंधे दुःखं तिष्ठति नेव हि॥७॥

शब्दार्थ:-तासों श्रीआचार्यजीके शरण आये एसे भगवदीयजन क्यों भांत भयेहें जो चिंता करतहें सेवासुखके अनुभवकरिकें रहित एसे ज्ञानिजनहू चित्तमें ठौकिकदुः खको नांही धरेहें तव सेवायुखसहित भक्त चित्तमें लौकिकदुःखक्यों धरतहें?यह आश्चर्यहे जिननें स्वरूपकी सेवामें दर्शन चरणस्पर्शादिकको सदा अनुभव कियो हे तिनको चित्त दु:खयुक्त केसें होय ? काहेतें जो परमानंदरूप श्रीकृष्णके संबंधमें निश्रय दुःख नांही रहतहे ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ टीका-एसे पुष्टिमार्गीय वैष्णव श्रीआचार्यजीके सेवक तदीय आंत होय चिंतामें क्यों परेहें ? काहेतें जो ज्ञानमार्गमें जीवहे सोहू लौकिकदुःख मनमें नांही धरतहें उनहूके चित्तकों लोकिकदुःखामि नांही दहतहें तब यह तो पुष्टिमार्गहें जहां श्रीआचार्यजीद्वारा भगवानसों संबंध भयोहे सो अज्ञानकरिके चिंतामें जरतहें सो चिंता न करनी प्रभु सर्व सामर्थ्ययुक्तहें ॥ ५ ॥ एसे पुष्टिमार्गीय वैष्णव श्रीकृष्णकी सेवारसिवना क्यों रहतहें ? ज्ञानीकों सेवारसको ज्ञान नांही सोह चिंता नांही करतहे तो यह तो साक्षात् श्रीकृष्णके स्वरूपकी सेवा करत हे दर्शन करत हे चरणस्पर्श करत हे तोह चित्तमें भगवद्रसके अनुभव करि रहित क्यों रहत हे ? ताने यह जान्यों जात हे जो चिंता चित्तमें भरी हे तातें रसको अनुभव नांही होत है ॥ ६ ॥

एसो पुष्टिमार्ग हे जामें भावात्मक सर्व पदार्थको अनुभव हे तिनकों चित्तमें दुःख क्यों होतहे ? सो ठौकिक चिताहितें अज्ञान करि दुःखिहें भावात्मक रसको अनुभव नांही होत हे ओर श्रीकृष्ण परमानंदरूप फलात्मकको संबंध श्रीआचार्यजीद्वारा भयो हे एसे निवेदनीय वैष्णवके हृदयमें दुःख केसें उहरत हे ? सो अज्ञान करि ठौकिक चितातें दुःखी होत हे ॥ ७॥

मूलं-पित्रादयस्तुसर्वेऽपि संबंधादुःखहेतवः (संबंधाय स्वहेतवः)। बहिर्मुखजनस्येव बाहिर्मुख्यं ततस्त्यजेत्८

शब्दार्थः - पिता, स्नी, पुत्रादिक सर्वह वहिर्मुखजनकों ही संवध सो दुः खके कारणरूपहे (अथवा संवंधके लिये वहिर्मुखकों अपने कारणरूप हे) तासों वहिर्मुखताको त्याग करे ॥ ८॥ टीका - लोकिकमें पिता हे सो अपने पुत्रकों सर्वस्व देतहे तासों प्रिय लागत हे तेसे स्नीपुत्रादिक ह अपने लिये प्रिय लागतहे परंतु यह पुष्टिमार्गमें श्रीकृष्णसों साक्षात संवंध भयो हे तहां सर्व वस्तु सिद्ध हे तोहू अज्ञानकरिके चिंताकरि पित्रादिक सों लोकिक अर्थ स्नेहकरि वहिर्मुखता करतहें अपनो (श्रीकृष्णसों भयो एसो) संवंध विचारे तो वहिर्मुखताको त्याग होय॥ ८॥

मूलं-बहिर्मुखस्य बाधंते दोषा देहिकमानसाः। क्षीणधातोरिवार्त्तस्य रोगा वातिकपेत्तिकाः॥९॥

शब्दार्थः—जेसं क्षीणधात रोगी होय तिनकों वायुके तथा पित्तके रोग वाधा करे तेसे वहिर्मुखको देहसंबंधी ओर मनसंबंधी दोपवाधा करतहे ॥ ९ ॥ टीका—बेष्णवकों वहिर्मुखको संग वाधकहे संगतें देहिकदोप मानसदोप निश्चयही आयलागे संग दृष्टांत कहतहे जो

⁻ १ मोको पिवासाँ, सीसाँ, धुनसाँ कार्य सिद्धहोतहे एसँ बहिर्हेखकों शान होतहे.

रोगी होय ताकी धातु क्षीण होय तिनकों वायु पित्त सर्व आयग्रें या भांति विहर्भुखको संग होय तिनकों सब दोप आय लगे॥९॥ मूलं-तिन्द्वित्तिस्तु संपाद्या सतां संगेन सेवया। श्रीभागवतपाठेन तदर्थश्रवणादिपि॥१०॥

शब्दार्थः — इनकी निवृत्ति तो सत्पुरुपनके संगत तथा सेवार्ते संपादन करनी ओर श्रीभागवतके पाठसों तथा इनके अर्थश्रवणसों हू विहर्भुखताकी निवृत्ति करनी।। १०॥ टीका — जेसे रोगी सुंदर औपर्य खाय तो वाको रोग जाय तेसे ही ताह शीय भगवदीयको वेष्णव संग करे, उनकी सेवा करे तो वहिर्भुखता जाय भगवदीयके संगतें देहिक, मानिमक सर्व दोप दूरि होय, तहां कोई संदेह करे जो ताह शीय वेष्णव मिलने दुर्लभ हे सो न मिले तो कहा करे ? तहां कहतहें जो श्रीभागवतको पाठ करे काहेतें जो श्रीभागवत श्रीकृष्ण हिको स्वरूप हे ओर श्रीभागवतके पाठको अभ्यास न होय तो पुष्टि मार्गीय भगवदीयके मुखतें श्रवण करे तो सर्व दोप जाय।। १०॥ मूलं — निवेदनस्मरणतः सद्भिः सह कथादिभिः।

सदा नामग्रहणतः सदा श्रुणभावनात् ॥११॥

शब्दार्थः — निवेदनके स्मरणसों, सत्पुरुपनके संग कथादिकरिकें, सदा भगवन्नामग्रहणसों, सदा शरणकी भावनासों, चिंता निवृत्त होतहे एसे चतुर्दश श्लोकमें संबंध है ॥ ११ ॥ टीका—जो श्रीभागवत श्रवणकरिवेको संयोग न बनी आवे तो अहर्निश निवेदनको स्मरण कियोकरे तथा सदा भगवदीयके मुखतें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीं, श्रीगुसाईजींके बंधनकी कथा सुने, येहू न बने तो सदा श्रीकृष्णके नामको स्मरण करे परंतु नामहुको स्मरण यह जीवकों दुर्लभ हे सो श्रीगुसाईजी विद्यिम कहेर्हें "तन्नामोचारणेऽप्यस्ति न जीवेष्वान

धिकारिता। अलोकिकत्वात्वनाम्नस्तद्वाचो लोकिकत्वतः " (श्रीगु-साईजी श्रीगोवर्द्धननाथजीसों कहतहें जो तुद्धारो नाम तो महा करिवेकी योग्यता जीवमें नांहीहे काहेतें जो तुद्धारो नाम तो महा अलोकिकहे सो जीवकी लोकिकवाणीतें केसें लियो जाय?) तास्त्रं नामहू न वनिआवे तो शरणकी भावना करे सो विवेकधैर्याश्रयमें श्रीआचार्यजीमहाप्रमुजी कहेहें "ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरि:। दुःखहानों तथा पापे भये कामाद्यपूरणे ॥ भक्तद्रोहे भन्त्यभावे भक्तश्रातिक्रमें कृते। अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वाथें शरणं हरि:" (यहलोकमें तथा परलोकमें निश्रय हरि शरणहें. दुःखकी हानिमें, तथा पापमें, भयमें, कामादिक अपूर्ण होय तहां, भक्तकृतद्रोहमें अथवा भक्तको द्रोह होयजाय तहां, भक्तिके अभावमें, ओर भक्त अतिक्रम करे तहां, अशक्यमें तथा सुशक्यमें, सर्व अर्थमें हरि शरणहें) इत्यादि वचनके अनुसार शरणकी भावना करे।। ११॥

मूलं-अष्टाक्षरमहामंत्रकीर्त्तनेन विशेषतः। पंचाक्षरेण मंत्रेण तदीयत्वविभावनात्॥ १२॥

शब्दार्थः -अष्टाक्षर महामंत्रके कीर्तनकरिकें, विशेषसीं पंचाक्षरमंत्रकरिकें तदीयपनेके विशेषभावनसीं चिंता निवृत्त होतहे ॥ १२ ॥ टीका -अष्टाक्षर महामंत्रहे "श्रीकृष्णः शरणं मम " येही मंत्रकी अष्टमहर पुकारिकें कीर्तन करे तो सर्व सिद्ध होय सो द्वादशस्कं अमें श्रीशुकदेवजी कहेहें "कलेदोंपनिधे राजन्नस्ति होको महान् गुणः। कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तवंधः परं त्रजेत" (यद्यपि कलियुन दोपनिधिहे परंतु तामें एक वडो गुणहे जो श्रीकृष्णके नामको कीर्तन जो करतहे सो यहकालवंधनतें छूटिजातहे) तातें अष्टाक्षरमंत्रको कीर्तन करे तथा गंचाक्षरमंत्रकी भावना तदीयहोयकें तदीयके संग मिलिकें करे.

श्रीआचार्यजीमहाप्रभु नवरत्नमें कहेहें "निर्वेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा ताहरीर्जनेः " [सर्वथा ताहरीय वैष्णवजनके संग निवेदन तो स्मरण करिवेयोग्यहे] भगवदीयके संगिवना पंचाक्षरभाव प्रकट न होय तार्तें निवेदनके स्मरणमें भगवदीयकी अपेक्षाहे ॥ १२ ॥

मूलं-वैराग्यपरितोषाभ्यां कृष्णसन्निहितस्थितेः। लोकिकक्केशजोदास्यात् प्रत्राद्यननुरागतः॥१२॥

श्रदार्थ:-वैराग्य तथा संतोपकरिकें, श्रीकृष्ण (भगवत्स्वरूप)के सन्निधानमें स्थितिसों, लौकिकक्केशमें भयो जा औदासीन्य तासी, ओर पुत्रादिकनमें अप्रीतिसों चिंता निवृत्त होतहे।। १३।।टीका-संसार (यहदेहसंबंधी लौकिकपदार्थ)में वैराग्य राखनो संसारमें वैराग्य होय तो यह लोकिक दुःख सुख चित्तकों वाधा न करे तातें वैराग्य राखे और यथालाभ संतोप होय (जो सहजमें आय प्राप्त होय ताहीमें संतोप होय) तो मनमें विक्षेप न होय ओर श्रीकृष्ण जहां विराजत होय पुष्टिमार्गकी रीतिसों सेवा होय तिनके पास स्थिति होय तो दर्शन सेवि वनिआवे सो भक्तिवर्द्धिनीमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें "अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति " (समीपर्मे अथवा दूरिमें जेसे चित्त दोपयुक्त न होय तेसें रहे) निकटरहिकें सेवा करे तो चित्तकें सगरे दोपको नाश होय परंतु बोहोत निकटमें चित्तमें दोप आवे ती नेक दूरि रहे परि नित्य सेवा दर्शन वने सो करे लोकिक्केशतें अपनो मन उदास राखे अपने चित्तमें लोकिक केश न करे ओर देहसंबंधी पुत्र, स्री, वंधु, काहुमें अनुराग न राखे ॥ १३ ॥

मूलं-गृहवित्ताद्यनासत्त्या तदीयेष्वतिरागतः। नवरत्नस्य पाठेन सर्वचिता निवर्त्तते॥ १४॥ राज्दार्थः -गृह ओर धनआदिमें अनासिक रिकें, तदीय वैष्णव-जनमें अतिस्नेहसों, ओर नवरत्न ग्रंथके पाठकरिकें छौकिक अछौकि-कसंबंधी सगरी चिंता निवृत्त होतहे ॥१४॥ टीका -गृह, धन इत्या-दिकमें आसिक न राखे ये सगरे चिंताके मूलहे तार्ते इनमें प्रीति न करे पुष्टिमार्गीय मगवदीयमें अनुराग राखे तथा नवरत्न ग्रंथको पाठ नित्य नियमसों वने तितनो करे तो मनमेंतें सगरी चिंता निवृत्त होय चिंताना शके अर्थ गोविंद्दु वे वैष्णवके मिप एतन्मार्गीय सवनके लिये श्रीआचार्य जीमहाप्रसुजी नवरत्न ग्रंथ प्रकट कियेहे तार्ते नवर-लिके पाठतें सर्वचिंता निश्चय दृिर होय ॥ १४॥

मूलं-एवं निवृत्तवेमुख्यं जनं दुःखं न बाधते। अतस्तन्मात्रथत्नेस्तु भवितव्यं भवादशेः॥१५॥

शब्दार्थः—उपर कहे ताप्रकार निवृत्त होय गईहे वहिर्मुखता जिनकों एसे वेष्णवजनकों दुःख वाधा नांही करतहे तासों वहिर्मुखता निवृत्तिमा- त्रमेंहे यत्न जिनकों एसे तुह्यारे सारिखेकों रहेनो ॥ १५ ॥ टीका— उपर सगरे भगवद्धमें कहेहे तिनसों वहिर्मुखता निवृत्त करीहे तिनकों सगरों दुःख दूरि होयगों उह मनमें परम सुख पावेगों याभांति दुःख निवृत्तिके अनेक यत्न कर्त्तव्यहे यह यत्न भावके वर्द्धकहे जाके भाग्यमें वेगि फलदानहे तिनसों भावके वर्द्धक यत्न वनिआवेंगे ॥ १५ ॥

मूलं-दुःखेन न तृथा नेयः कालः परमदुर्छभः।
कृष्णसेवानुकूलस्तु निजाचार्याश्रयाश्रितेः॥१६॥
दुतं हेया वृथा चिंता प्राप्ताऽपि निजदोपतः।
चित्तोद्वेगं विधायापीत्येतद्वचनचिंतनात्॥१७॥

- : शब्दार्थः -अपने अभिचार्यजीके आश्रयके आश्रित अथवा अपने श्रीआचार्यजीके हढ आश्रयवारे भगवदीयके आश्रितं एसे वैष्णवको दुःखकरिके भगवत्सेवामें अनुकूल यह परम दुर्छभ कोल नांही वीतावनो ॥ १६ ॥ और अपने दोपते प्राप्त भई एसीह वृथा चिंता (चित्तको उद्धेग करिकेंहू भगवान् जो जो करेंगे सो इनकी लीला हे) नवरत्नके वचनके चिंतनसों शीघ्र छोडनी ॥ १७ ॥ टीका-यह काल परम दुर्लभ हे फेरि एसो समय न वनेगो यह मनुष्यदेह श्रीकृष्णकी सेवाके अनुकूलहे सो यह लौकिक चिंताकरिके वृथा न खोवे काहेतें जो येही देहतें श्रीकृष्णकी सेवा वनतहे ओरयुगर्मे यह पुष्टिमार्गीय सेवा नांही तासों यह समय ब्रह्मादिकनकों दुर्छभ हे श्रीआचार्यजीद्वारा बह्मसंबंध ओर युगमें कहां हे ? श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीको आश्रय फेरि कहां ? तथा श्रीआचार्यजीमहाप्रभु-जीके आश्रयवारे तादृशीय निजसेवकको आश्रय फेरि कहां हे? या भांति मनमें विचारिकें यह काल परम दुर्लभ जानि दुःख क्वेश लोकिकमें मन लगाय नांही खोवनो भगवदीयको आश्रय तथा अपने श्रीवस्त्रभाचार्यजीको आश्रय करि श्रीकृष्णकी सेवा अवश्यही कर्त्तव्यहे सो यह देह तथा काल सेवानुकूलहे यह जानि एकक्षणहू सेवाविना न रहे ॥ १६ ॥ शीघही चिंताको त्याग करे एकचिंताते अनेक दोप प्राप्त होतह तार्ते नवरत्नको वचन चिंतन करि निश्रयही चिंताको त्याग करे सो नवरत्नमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभु कहेहें-" चित्तोद्वेगं विधायापि हरिर्यद्यत्करिष्यति । तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिंतां दृतं त्यजेत्" (चित्तोद्वेग करिकेंह् हरि भगवान् जो जो करेंगे तेसेंही इनकी छीलाहे एसें मानिकें शीघ्र चिंताको तजे) यह व वचनतें शीघ्रही चिंताको त्याग करि उपर भगवद्धर्म कहे तामें प्रवृत्त होय भगवत्सेवा, स्मरण, ताहशीयको संग, मन लगायक करे यह

नवरत्नप्रंथको नित्य चिंतन करे पाठ करे भाव विचारे तो चिंता दिता होत होता । १७॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं त्रयोविश्वतितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषा-टीकासमतं समाप्तम् ॥ २३॥

शिक्षापत्रं २४

अव चलुविंशशिक्षापत्रमें भगवत्कृपाही कारण हे तासों अपने आचार्यको दृढ आश्रय राखनो अवतारदशामें जेसें श्रीयमुनाजीआदि भगवत्संवंध करायवेवारेहें तेसें अनवतारदशामें श्रीमदाचार्यवर्थ भगवत्संवंध साधकहें जेसें सवनकों मारिवेवारोहू सर्प अमृतपानकरिवेवारोकों सुंधिवेमेंहू समर्थ नांहीहे तेसें सवनकी बुद्धिको नाश करिवेवारोहू यह करालकाल श्रीमदाचार्यजीके आश्रय करिवेवारेकों कछ करिवेकों समर्थ नांहीहे तासों अपनकों तो संपत्तिमें तथा विपत्तिमेंहू श्रीआचार्य-चरणोदित अप्रक्षर महामंत्रही साधन ओर साध्य हे यह निरूपण है। उपरक्हे जो चिंता तजे भगवत्सेवादि भगवद्धमें करे सो जीवमें कहा सामर्थ्य है? कालदोपतें ग्रिसतहे तातें श्रीआचार्यजी महाप्रजीको दृढ आश्रय होय तो प्रमु कृपाकरे सो आश्रय कोन भांतिकरे सो आगें कहतहे-मूलं-मिक्तमार्ग कृपामात्रं कारणं परमुच्यते।

तेनेव मार्गे सकलं सिद्धिमेति न संशयः॥ १॥

शब्दार्थः-भक्तिमार्गमें कृपामात्र उत्तम कारण हे या कारणतेंही सक्लिसिद्धकों पावेंगे संशय नांही ॥ १ ॥ टीका-यह श्रीआचार्यजी-

१ यह शिक्षापत्रमें आगे दोषक अगे सोकांकमें कछक गदबद दिखेहे परंतु ता यमाण रासिवेसं अथसंदर्भ ठीक दिखेहे तासं पूर्ववत् स्टोकांक रखेहे.

महाप्रमुजीको पुष्टिमक्तिमार्ग हे तामें एक कुपाही फलको कारण हे साधनतें फल नांही हे कुपाहीतें फलिसिद्ध हे तातें श्रीकृष्णकी कुपां परमकारणहे ताहीतें यहपुष्टिमार्गमें स्थित जो वैष्णवहे तिनकों सकल फल सिद्धहीहे यद्यपि इनजीवनतें साधन नांही वनत तोहू कहा भयो? पुष्टिमार्गमें स्थिति तो भई निवेदन तो कियो तातें प्रमेयवलतें विनाही साधन इनकों श्रीकृष्ण सर्वथा सर्वसिद्ध करेंगे यामें संशय नांही ॥१॥ मूलं-सा तु स्वाचार्यद्वारणागतों तेर्जापितः प्रभः। यदेव कुरुते कृष्णस्तदा भवति सर्वथा ॥२॥ यदेव कुरुते कृष्णस्तदा भवति सर्वथा ॥२॥

शब्दार्थः -यह कृपा तो अपने श्रीआचार्यजीके शरण जाय तव इननें जताये एसे प्रभु श्रीकृष्ण जवही कृपा करेंगे तब निश्चय होयगी ॥ २ ॥ टीका-पुष्टिमार्गमें आय अपने श्रीवरूभाचार्यजीके शरणागत होयरहे तब श्रीआचार्यजी जीवकों श्रीकृष्णकों जतावेंगे तब सर्वथा उह जीवपर श्रीकृष्ण कृपा करेंगे ॥ २ ॥

मूलं-अतस्तदाश्रयो जिवेर्द्रह एव विधीयताम् । यथावतारलीलायां तासां श्रीयमुना मता ॥३॥ यथा वा हिरदासो हि पुलिंदीनां गिरिर्मतः । यथा वाग्निकुमाराणां व्रते कात्यायनी मता॥४॥ प्राहुर्भूतः स्वयं कृष्णो यथा स्वप्रापणे मतः। यथा वा दैन्यमावात्मा प्राहुर्भावे स्वयं मतः ॥५॥ तथा परोक्षे जीवानां पुष्टिसंवंधसिद्धये । श्रीमदाचार्यसंवंधो नान्यदस्ति हि साधने ॥ ६ ॥ श्रवदार्थः-तासों जीव श्रीमदाचार्यजीको हृद्ध आश्रय करे काहेतें जो जेसे अवतारलीलामें कुमारिकानकों श्रीयमुनाजीहे॥ ३॥ अथवा जेसे पुलिदीकों भगवद्भक्त गिरिराजहे अथवा जेसे अभिकुमार-नकों व्रतमें कात्यायनीहे यह सर्व भगवत्संबंध करायवेवारेहे ॥ ४ ॥ जेसें श्रीकृष्णकी प्राप्तिमें आपही श्रीकृष्ण प्रादुर्भूत भयेहें ओर जेसें रासपंचाध्यायीमें प्रादुर्भावमें दैन्यभावात्मक आपहीहें ॥ ५॥ तेसें जीवनकों परोक्षमें पुष्टिसंबंधकी सिद्धिके अर्थ श्रीमदाचार्यजीद्वारा संबंधही साधन हे अन्यसाधन नांहीहे ॥ ६ ॥ टीका-तार्ते यह पुष्टिमार्गीय जीव श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणकमलको दृढ आश्रय निश्चयही करे तब फल पाप्त होय जेसे अवतारदशामें श्रीयमुनाजी-द्वारा कुमारिकानकों प्रभु प्राप्त भये तेसेंही अव श्रीआचार्यजीद्वारा जीवनकों प्रभुको संवंध भयो ताते मुख्य श्रीआचार्यजीको आश्रयहे ॥३॥ या समयमें तो एक श्रीआचार्यजी द्वार हे जेसे अवतारलीलामें हरिदास (श्रीगिरिराज) परमभक्तहे तिनके संगर्ते पुलिंदीकों भक्ति सिद्ध भई लीलाकी प्राप्ति भई ओर अभिकुमारीकानकों कात्यायनीमिसर्ते श्रीयमुनाजीद्वारा सिद्धि भई पुलिंदीकी सेवा श्री-गिरिराजद्वारा प्रभु अंगीकार करी कुमारिकानकी सेवा श्रीयमुनाजी-द्वारा अंगीकार करी तेसेंही अब श्रीआचार्यजीद्वारा वेष्णवकी सेवा प्रभु इहां अंगीकार करतहें ॥ ४ ॥ ओर श्रीकृष्ण प्राकट्यदशामें स्वयं प्रभु आपकी प्राप्ति करावतर्हे फलप्रकरणरासपंचाध्यायीमें अतिदैन्यकी भावनार्ते आपही प्रभुपकटे सो "इति गोप्यः प्रगायंत्यः प्रछपंत्यश्र चित्रधा । रुखः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥ तासामाविर-भुच्छोरिः स्मयमानमुखांबुजः ॥ पीतांबरधरः स्रग्वी साक्षान्मनमथ-मन्मथः" (ऐसं (गोपिकागीतसाँ) उत्कृष्टगान करते, ओर विचित्रप्रकार विलाप करते, श्रीऋष्णके दर्शनमें लालसावारे, गोपीजन हेपरिक्षित्! विभयोगद्योतकस्वरसाँ रुदन करत भये॥ इनके मध्यमेंते हास्ययुक्तहे मुखारविंद जिनको, एसे पीतांवर धारणकरिवेवारे, वनमालायुक्त, ओर'

साक्षात् कामदेवके कामदेवरूप प्रभु प्रकट भये े याभांति दैन्यतें प्रकटे।। ५ ॥ प्राकट्यदशामें जेसे श्रीयमुनाजी, श्रीगिरिरांज, प्रभु आप ओर दैन्य उनतें सब सिद्ध हे तेसेंही अब परोक्षदशामें पुष्टिसंबंध भयोहे काहेतें जो यह किन्युगमें ओर साधन नांही हे तार्ते श्रीआचार्यजीमहाप्रभुके संबंधतें निवेदन होय सोही साधन हे ओर दूसरो साधन नांही एक श्रीआचार्यजीके संबंधतेंही प्रभु फलदान करतहें॥ ६॥

मूलं-अत एवोक्तमाचार्यैः स्तोत्रे कृष्णाश्रयाभिधे। ''शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम्"॥७॥

शब्दार्थः—तासों ही श्रीमदाचार्यजी श्रीकृष्णाश्रयस्तोत्रमें "शरणमें रहे एसे जीवनके उद्धारिनिमित्त श्रीकृष्णकों में विज्ञप्ति करू हुं " एसे कहे हें ॥ ७ ॥ टीका—हमारे श्रीवरूमाचार्यजी श्रीकृष्णाश्रयग्रंथमें श्रीकृष्णसों जीवके लिये विज्ञप्ति किये हे जो, जीव शरण आये तिनको उद्धार करो ओर प्रतिज्ञा करि जीवनकों विश्वास कराय धीरज दिये जो उद्धार होयगो चिंता मित करो सो अव कहतहें ॥ ७ ॥

-मूलं-विश्वासार्थं वरमदादिति श्रीवछभोऽत्रवीत्। अतो नान्यप्रकारेण फलं स्वहृदि चिंखताम्॥८॥

शब्दार्थः—वैष्णवकों विश्वासके अर्थ श्रीकृष्णाश्रयप्रंथमें [श्रीकृष्ण के समीप श्रीकृष्णाश्रयको जो पाठ करे तिनकों श्रीकृष्ण आश्रय होय] एसं श्रीवरूभाचार्यजी कहतहें यह प्रतिज्ञा करिहे तासों अन्य प्रकारकरिकें अपने हृद्यमें फलको विचार नांही करनो ॥ ८ ॥ टीका-श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी प्रथम श्रीकृष्णसों [उपरके श्लोकमें लिखे ताप्रकार] विज्ञप्ति करिकें अव अपने पुष्टिमार्गीय वैष्णवनसों कहतहें "कृष्णाश्रयमिदं स्तोत्रं यः पटेत्कृष्णसन्निधों। तस्याश्रयो भवेत कृष्ण

इति श्रीवल्ठभोऽत्रवीत "यह कृष्णाश्रयप्रंथको पाठ श्रीकृष्णके सन्मुख करियें ताकरिकें श्रीकृष्ण अपने आश्रय निश्चय सिद्ध करेंगे यह मेरी प्रतिज्ञा हे या प्रकार श्रीमहाप्रभुजी प्रतिज्ञा, किये जेसें चीरहरणमें श्रीठाकुरजी भक्तनसों कहे जो शरदऋतुमें रास करि तुह्यारे मनोरथ पूर्ण करेंगे यह कहे तब भक्तनको विश्वास भयो नांही तो शरदऋतु-पर्यंत विश्वास न रहेतो तेसेंही श्रीआचार्यजीमहाप्रभु प्रतिज्ञा करि अपने निजसेवकनकों विश्वास दिये तातें एक श्रीआचार्यजीमहाप्रभु-द्वारा फलसिद्धि हे ओर प्रकार फलको चिंतन न करनो ॥ ८ ॥

मूलं-विश्वासेन यथाप्नोति चातकः स्वातिजं जलम् ॥ तथा चेत्कृष्णजलदः स्वानंदं वर्षयिष्यति॥९॥

शब्दार्थः - विश्वासकरिके जेसें चातक पक्षी स्वातिके जलको पावेहें तेसेंही श्रीकृष्ण घनश्यामहे सो अपने आनंदकों वरखेंगे ॥९॥टीका-विश्वामकरि चातक जेसें स्वातिके जलकी अपेक्षा राखतहे ओर पृथ्वी-पर क्वा, तलाव, नदी, समुद्र पर्यंत भयोंहे तामें आशा नांही करतहे यह विश्वास देखि घनह चातकको मनोरथ पूर्ण करतहे तेसेंही जा वै-ष्णवनें एक श्रीकृष्णहीको दृढ आश्रय मनमें कियोहे ओर अवतार तथा ओर देवतासों फलकी अपेक्षा नांही राखतहे तिनकों जलद (मेघ) रूप श्रीकृष्ण अपनो आनंद वरखेंगे निश्रय आनंददान करेंगे ॥९॥

मूलं-एवं विश्वाससद्भावे सर्वमेव भविष्यति। यतः परिवृदोऽस्माकं सर्वं कर्तं क्षमो मतः ॥१०॥

• शब्दार्थः -एसं विश्वास होय तो सर्वही सिद्ध होयंगे काहेते जो अपने स्वामी प्रभु सर्व करिवेमें समर्थहे ॥ २०॥ टीका-या भांति पृष्टिमार्गीय विष्णव शुद्धभावसों विश्वास करे तिनकों सर्व सिद्ध होय

सो श्रीहरिरायजी कहतहे जो एसे हमारे प्रभु सर्वकरणमें सामर्थ्य-युक्तहे तार्ते कृपा करेहींगे ॥ १०॥

मूलं-स हि स्वतः समर्थत्वान्न साधनमपेक्षते। कालकार्यं विलोक्यात्र तदीयानां विशेषतः॥ निःसाधनत्वसंस्फूत्त्यां दृढः स्यात्तत्पदाश्रयः॥११॥

शब्दार्थ:--अपने स्वामीप्रभु आपर्तेही समर्थहे तासी साधनकी अपेक्षा नांही राखतहें तासों कालके कार्यको देखीकें तदीय वैष्णवनकों विशेषकरिकें निःसाधनपनेकी वरोवर स्फूर्ति होय ताकरिकें इनके चरणारविंदको हढ आश्रय होय॥ ११॥ टीका-श्रीकृष्ण आपुद्दी स्वतः सामर्थ्ययुक्तहे कर्त्तु, अकर्त्तु, अन्यथाकर्त्तु समर्थहे सो अपने भक्तनके साधनकी अपेक्षा नांही राखतहें जो यह इतनी साधन करे तो यह फल होय यह तो अन्य देवतामें हे जो जितनो साधन करे तितनो लौकिक फल देय सो श्रीकृष्णमें नांहीहे यह कालकी कृति महा कठिन विपरीतधर्मयुक्त देखिकें अपने तदियपर विनसाधनही विशेष कृपा करतहे जेसे व्रजभक्त रासपंचाध्यायीमें अंतर्धानसमय अनेक साधन किये लीला किये, पाछे निःसाधन होय गुणगान किये तब प्रभु अपनोही आश्रय जानिके प्रकटे तेसेंही जव वैष्णव मनतें निःसाधन होय दैन्य करि दृढ आश्रय करे तव प्रभु कृपा करे ॥ ११॥

मूलं-असुराणामविश्वासस्तथा तत्संगिनामपि। मतिमोहो महादोपनिधानं संभविष्यति ॥१२॥

शब्दार्थः-असुरजीवकोही प्रभुनमें अविश्वास हे तेसें इनके संगी-कोंह अविश्वासहे तार्ते इनमेंस्रं काह्को संग होय तो मितमोहरूप महादोपके निधानको अवश्य संभव हे ॥ १२ ॥ टीका-जिनके मनमें अविश्वास हे सो केवल असुरहीहे तिनको जो कीय संग करे तिनकों हू आसुरावेशरूप अविश्वास होय तातें उनको संग न करनो याजीवकों मितको मोह भयोहे तातें दोपरूप होयरह्योहे तातें निःसा-धनता नांही आवतहे अहंतादोपसहितहे अपनकों यह जानतहे जो मेंही करतहों यह अज्ञानदोप कबहू न दूरि होय ॥ १२॥

मूलं-यथा पूर्वकथां श्रत्वा भगवत्पादसोविनाम्। स्वस्मिन् देन्यसमुत्पत्तिस्तथा साधननाज्ञानम्॥१३॥

राव्दार्थः—भगवानके चरणारविंदकों सेवन करिवेवारेनकी पेहेलेंकी (प्रहादादिककी) कथासुनिकें जेसें अपनेमें दैन्यकी वरोवर उत्पत्ति होतहे तेसें साधनको नाश होतहे ॥१३॥ टीका—जब पूर्वजो प्रथमके भक्त प्रहादजी तथा व्रजभक्तादिक श्रीभागवतमें कहेहें तथा पुष्टिमार्गीयश्रीआचार्यजीमहाप्रभुके सेवक चोराशिवेष्णवकी वार्ता प्रभृति कथा सुने प्रथम याभांति सेवा करीहे में कहा करतहों याभांति दैन्य होय भगवत्सेवा करे तब निःसाधन होय सर्वदोप दूरि होय तार्ते श्रवण मुख्य सेवाको पोपकहे तार्ते श्रीआचार्यजीमहाप्रभु भक्तिवर्द्धनीमें कहेहें "सेवायां वा कथायां वा" दोय कर्तव्यहे सो भगवत्सेवा प्रीतिसों करे भगवदीयके मुखतं कथा सुनिवेतें देन्य होय ताकरिकें अहंतारूप [में साधन करतहों यह] दोपको नाश होय ॥१३॥

मूलं-तदीयानां सर्वमस्ति सदा तद्भावभाविनाम्। इतरेषां कालिकानां कालेन निखिलं गतम्॥१४॥

शब्दार्थः-निरंतर इनके भावकरिकें भावित जो तदीयहे इनकों सर्व सिद्धहे ओर जो कालके वश्यहे तिनको सर्व काललिरकें गयो है ॥ १४॥ टीका-तदीय जो हे तिनके भावकरिकें भावित होय वे जो भावतें करतहे ता भावमें येह लगे तब फलिसिद्ध होय तार्ते अवणह

आवश्यक हे सो गोपिकागीत में कहे हें "तव कथा मृतं तप्तजीवनं किनिस्रीडितं कलमपाप हम्। श्रवण मंगलं श्रीमदाततं भिव गृणंति ते भूरि-दा जनाः" (संसारतें तप्त अथवा विषयोगा मितं तप्तकों जीर्वनरूप, किवजननें प्रशंसा कियो, पाप (मद)कों मिटायवेवारे, श्रवणतें मंगलरूप, लक्ष्मीयुक्तं, ओर सर्वत्र ज्यासं, एसे आपकी कथा रूप अमृतके कि विच वारे जो हे सो वोहोत अर्थ देवेवारे अजन (भगवद्रूप) अथवा जन्मादिदोपरहितहे) तातें श्रवणतें सर्व दोप दूरि होय ओर भगवद्राव वढे तातें यह भावरहित जो हे तिनको सगरो साधन यह कराल काल खातहे काहेतें जो काल सगरेको संहारकर्ताहे सो अखिल जगतकों खातहे।। १४॥

मूलं-यतः कालस्तिहिभृतिः "कालः कलयतामहम्"। मुख्याधिकार्यपि हरेरिच्छाशक्तिस्वरूपवान्॥१५॥ तदंतरंगदासेषु न तत्सामध्यमिष्यते ॥ १६॥

शब्दार्थ:-जासों कालहे सो भगवानकी विभूतिहे काहेतें जो गीता जीमें विभूतिके अध्यायमें श्रीभगवानमें कह्योहे जो संख्या करिवे वारेनमें कालहे सो मेंहूं तासों यह काल मुख्य अधिकारी इच्छाश किरूपहे तोह श्रीभगवानके अंतरंग दासनकी उपर इनको सामर्थ नांहीहे ॥ १५ ॥ १६ ॥ टीका-काल भगवानकी विभृतिहे सो यह कलिदोपतें महामलिन सृष्टि यहकालमें लीन होतहे सो काल

१ वेराग्यसाधक, २ ज्ञानसाधक, ३ ऐथर्य अथवा धर्मसाधक, ४ आनंद्रसाधक, ५ लक्ष्मीयुक्त, ६ वीर्य अथवा ऐथर्ययुक्त एसं पद्गुणयुक्त आपकी कथा आप जेसीहे एसो श्रीमुवोधिनीजीमें निरूपणहे, ७ जेसें लॉकिकमें राजाको मुख्य दीवान होय सोह एसं राजाके हर्राकी उपर हुकम नांही करि सक्तहे किंतु इनसों हरपतहे तेसिंही काल मुक्तनको कछ नांही करि सकतहे.

भगवानको मुख्य अधिकारीहे इच्छाशिक्तको स्वरूपहे तातें ब्रह्मादि-कनकों नांही छोडतहे एसे कालकोह सामर्थ्य श्रीकृष्णके अंतरंग दासनकी उपर नांहीहे भगवदीयकों वाधा नांही करिसकतहे ॥१६॥ मूलं—स हि सपों यथाऽन्येषां मारकोऽपि न हि क्षमः। पीतामृतं जनं जातु स्प्रष्टुमाघ्रातुमेव च॥१७॥ तथा कालेऽपि मनुजं महापुरुषसंस्थितम्। भक्तिपीयूषपातारं न किंचित्कर्त्तुमीश्वरः॥१८॥

शब्दार्थ:-जेसे यह सर्प अन्यकों मारिवेवारोहे सोहू असृतपान करिवेवारेकों कदाचित् स्पर्श करिवेमें ओर सुंघिवेमेंही समर्थ नांहीहे ॥ १७ ॥ तेसँ कालहू महापुरुप (श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी) को आश्रय कविवेवारे, भक्तिरूप अमृतपान करिवेवारे मनुष्यकों कछु करिवेमें समर्थ नांहीहे ॥ १८ ॥ टीका-यह कालरूप सर्पहे सो सगरे जगतकों खातहे परंतु श्रीकृष्णके चरणामृत तथा अधरामृत जिननें पान कियेहें एसे भक्तको स्पर्श नांही करतहे ओर सुंघतह नांहीहे सो श्रीगुसांईजी सप्तश्लोकीमें कहेहें 'अघौघतमसावृतं कलिभुजंगमासादितं जगद्विपयसागरे पतितमस्वधर्मे रतम्। यदीक्षणसुधानिधिः समुदितोऽ-नुकंपामृतादमृत्युमकरोत् क्षणादरणमस्तु मे तत्पदम् " (पापके समूहरूप अंधकारकरिकें आवृत, कालरूप सर्पने ग्रसित, जगतके विषयरूप समुद्रमें गिऱ्यो, ओर अपने धर्मतें विमुख, एसे जीवकों जीनके [श्रीआचार्यजीके] कृपाकराक्षरूपचंद्र उदित होय दयारूप अमृतसों एकक्षणतें अमर करिदियो इनके चरण मेरो शरण होउ) याभांति श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके चरणामृतको पान जो कोउ जीव कियोहे तिनकों कालरूप सर्प नांही स्पर्श करतहे ओर सूंघतह नांही ॥ १७॥ महापुरुपसर्वमें उत्तम श्रीआचार्यजीमहात्रभु तथा

पुष्टिमार्गीयं भगवदीयके आश्रित जो मनुष्य होयरहेहें पुष्टिभित्ते अमृतरसको पान करतहें तिनकों रंचकह कालदोप वाधक नांहीहें काल जेसें ईश्वरकी आज्ञामें रहतहे तेसेंही भगवदीयसों डरपतहे ईश्वरह भगवदीयकों वाधा नांही करत तहां काल कहाहे ? सो वार्तामें प्रसिद्धहे जो प्रभुदासनें दहीकेपलटे मुक्ति दीनी जो भिक्त मांगते तो भिक्त देते इनकों काल कहा करि सके ? ॥ १८ ॥ मूलं-तदीयेः सर्वकार्येषु न कालश्चित्यतां हृदि।

" तथेव तस्य लीलेति" वचनात् सर्व चित्यताम्॥१९॥

शब्दार्थः—जो तदीयहे तिनकों सर्वकार्यमें हृदयमें कालको चिंतन नांही करनो काहतें जो नवरत्नग्रंथमें श्रीमहाप्रभुजी कहेहें "जो जो भगवान करेंगे सो तेसेंही इनकी लीला जानिकें चिंताकों छोड़नी" यह वचनतें प्रभुकी लीलाकोही चिंतन करनो ॥ १९ ॥ टीका—जो तदीयहे सर्वकाल भगवद्धमेंमें निपुणहे तिनकों अपने कालकी चिंता नांही करनी कोईकालमें चिंता नांही कर्त्तव्यहे सो नवरत्नग्रंथमें श्री-आचार्यजीमहाप्रभुजी कहेहें "तयेंव तस्य लीलेति मत्वा चिंता हुतं त्यजेत्" (तेसेंही इनकी लीलाहे एसें मानिकें शींग्र चिंताकों तजे) यह वचनको चिंतन हृदयमें करिकें चिंता नांही कर्त्तव्यहे सगरी शींकृष्णकी लीलाही जाननी ॥ १९॥

मूलं-सर्गादिलीलाकर्नृत्वात् किं चित्रं तादृशि प्रभो। विवेकोऽप्ययमेवात्र स हितं वे विधास्यति ॥२०॥ स्वकीयानां निजेच्छातस्ततिश्चिताऽत्रका भवेत्॥२०॥

शब्दार्थः-श्रीभागवतमं कहा एसी सर्गादिलीला करिवेपनो जामें हे एसे प्रभुमें आश्रयं कहाहे? प्रभु निजेच्छात अपने भक्तनको हित्तहीं करेंगे यहह इहां विवेकहे तासों इहां चिंता कहा होय?॥ २०॥ २१॥ टीका-श्रीभागवतमें सर्गविसर्गादि दश्विधलीला कि एसं प्रभुकी कि सगरे जगतमें लीला जाने एसो जाके मनमें होय सोई विवेकी कि हियें सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभु विवेकधेर्याश्रयमें कहेहें "विवेकसतु हिरें सब निजेच्छातः करिष्यति" (हिर अपनी तथा अपने भक्तनकी इच्छातें सब करेंगे यह विवेक जाननो) येही विवेक जो सब कार्यमें निजेच्छा माने या भांति भगवानके स्वकीय निजभक्तहे सो सर्वकार्यमें भगवदिच्छा जानतहें 11 २० 11 २१ 11

मूलं-भवंतः श्रुतसद्वात्ताः सत्संगक्तयोऽपि हि। प्रभुपादेकगतयस्तेषां का परिदेवना ॥ २२ ॥

शब्दार्थः - तुम सुनीहे सद्वार्ता (भगवदीयनकी वार्ता) जिननें एसे, ओर सत्संग करिवेवारे, तथा प्रभुके चरणारविंदमें ही एक आसक्ति-वारे हो इनकों कहा चिंताहे? ॥ २२ ॥ टीका - ओर तुम तो भगवानके संबंधीहो भगवद्भाव सुनोहो भगवद्भार्ता सुनोहो ओर सत्संगह वोहोत करोहो तार्ते तुमकों कोईप्रकारकी चिंता नांही कर्त्तव्यहे प्रभु जो श्रीकृष्ण तथा श्रीआचार्यजीमहाप्रभु तिनके पदकमलमें तुह्यारी पीतिहे एसे तुमहो तासों परिवेदना (चिंता) नांही कर्त्तव्यहे ॥ २२ ॥

मूलं-धर्मसंस्थापनार्थाय यस्य प्राकट्यमुच्यते। स हि धर्मव्यतिकरं स्वकृतं सहते कथम्॥२३॥

शब्दार्थः -धर्मके सुंदर स्थापनके अर्थ जिनको प्राकट्य सर्वत्र कहाहि सो स्वकृतिसाँ धर्मको व्यतिक्रम (नारा) करे सो केसे सहन करे? ॥ २३ ॥ टीका -धर्मके स्थापनके लिये श्रीमहाप्रभुजीको तथा श्रीगुसाईजीको प्राकट्यहे सो उचितहे प्रभु सदा धर्मकी रक्षा करीहे सो भगवदीय गायहे "चहुजुग विद्वचन प्रतिपायों। धर्मग्लानि भई जवहीं जव तव तव तुम वपु धायों॥ १॥ सल्युग बेतव- राहरूप घरि हिरण्याक्ष रिपु मायों। त्रेता रामरूप दशरथगृह रावण-कुल संहायों।। २।। द्वापर जज इवततें राख्यो सुरपति पावन पायों। कंसादिक दानव सब मारे वसुधाभार उतायों।। ३॥ किल-युग श्रीवल्लभगृह प्रकटे मायावाद निवायों। मानिकचंद प्रभु श्री-विक्वल पुरुपोत्तमरूप निहायों।।४॥" याभांति श्रीविक्वल पुरुपोत्तमरूपहे धर्मस्थापनार्थ प्राकट्यहे तासों जेकोई वेदधर्मको अतिक्रम करे अपने मनमानि किया करे उन्मत्त होय सो प्रभुकों न सुहाय॥ २३॥ मूलं-ब्रह्मणयो धेनुविप्रेशो वेदधर्मिकपालकः।

स कथं सहते कृष्णस्ति हिरोधं जनैः कृतम्॥२४॥

शब्दार्थः -श्रीकृष्ण बाह्मणकी रक्षा करिवेवारेहें, धेनु ओर बाह्मणके ईशहें, वेदधर्मके मुख्य पालकहें सो श्रीकृष्ण बाह्मण, गाय, ओर वेदधर्म, इनको विरोध जननें कियोहे सो केसें सहेंगे? ॥२४॥ टीका-प्रभु बह्मण्यहें, धेनु, विप्र, वेदधर्मके प्रतिपालकहें एसें भगवानसों वहिर्मुख जीव [उनसों विरोधकर्ता मनुष्य] की विरुद्धकृति श्रीकृष्ण केसें सहे ? ॥ २४॥

मूलं-परमानंदसंदेहो दयालुः सुतरामिष । स कथं सहते कृष्णो दयाभावं जनष्विष । अतोऽत्र यदिदं जातं तत्स्वदोषेण सर्वथा ॥२५॥

राव्दार्थः -श्रीकृष्ण परमञानंदके समृहहें ओर निरंतर अत्यंतहीं द्यावारेहें सो मनुष्यनमें दयाके अभावकों केसे सहन करे? तासों इहां यह जो भयो सो अपने दोपकरिकें निश्चय भयोहे ॥ २५॥ टीका-श्री-कृष्ण परमानंदरूपहे, परमद्यालुहे, काहुको दुःख नांही देखि सकतहे, प्राणिमात्रके आनंददाताहे, सो अपने स्वकीय निजभक्तनके दुःख केसें सहेंगे सर्वया न सहेंगे तातें वृष्णव भगवदीयको यह लक्षणहे जो लौकिक वैदिक कछ कार्य सिद्ध न होय काहू वस्तुकी हानि होय तहां अपनोही दोप विचारनो देहसंवंधी अनेक दुःखमें अपनोही दोप विचारनो ॥२५॥

मूलं-निर्दोषपूर्णग्रणता हरो नित्यं विराजते। कदाचित् स्वप्रभोदोषो नानेयः सर्वथा हृदि॥२६॥

शब्दार्थः नहिरमें निदोंपपूर्ण गुणपनो विराजितहे तासों काहू समय प्रभुके दोप सर्वथा अपने हृदयमें नांही छावने ॥२६॥ टीका—प्रभुविषे रंचकहू दोप न विचारनो प्रभु तो भछीहीं करतहें मेरो दोपहे तातें यह केश भयो हे यह निश्चय मनमें जानियें जो श्रीकृष्ण निदोंप सदाहें सकलगुणकिरकें पूर्णहें एसे श्रीकृष्ण सर्वदुः खके हर्ताहें तामें निदोंप-पूर्णगुण सदा विराजमानहे तातें कदापि कोई प्रकारसों प्रभुको दोप हृदयमें सदा नांही छावनो ॥ २६॥

मूलं-के वा वयं वराका यदुद्धवाद्या आपि प्रभोः। श्रुतवंतो विसदृशीं लीलां पश्चातिस्थता अपि ॥२७॥

शब्दार्थः - जासों उद्धवादिक भक्तद्द प्रभुकी विपरीत (प्रभासमें आसुरव्यामोहकी) लीला सुनकेह पाछ पृथ्वीपर रहे तहां तुच्छ अपन कॉनमात्र?॥ २७॥टीका-श्रीहरिरायजी कहतहें जो में अपनकों कहा-कहं महातुच्छह उद्धवादिक वडे भगवद्धक्तकीह यह गतिहे जिनकी लीला सुनि देखि अनुभव करि सो उद्धव अपने प्रभुके अंतर्थानसमय सुनिके फिर प्रभुविना स्थित रहे तो में कहा कहं ?॥ २७॥

मूलं-कुंतीवदीहरां भाग्यं कस्य भाग्यवतो भवेत्। सद्यः प्राणविमोकोऽत्र श्रीकृष्णविरहेण हि॥२८॥

शब्दार्थः-श्रीकृष्णके विरह करिकें शीघ इहां शणको त्याग होय एसा कुंतीजीके वरोवर कोन भाग्यवारेको भाग्य होय?॥ २८॥ टीका-कुंती वडी भक्त परम भाग्यवती जो श्रीकृष्णके अंतर्धान सुन नतही विरहकरिकें अपने प्राण तत्काल छोडि दिये तातें कुंती महान भाग्यवती भक्त हती ॥ २८ ॥

मूल-अस्माकं तु प्रभुनित्यमक्षताव्याहतोऽधना । विराजते ततो दुःखं न विधेयं मनस्यपि ॥ २९॥

शब्दार्थः--अपने प्रभु तो अखंडित सदा अव नित्य विराजतहे तासों मनमें हू दुःख न करनो ॥ २९॥ टीका--हमारे प्रभु तो नित्यही प्रत्यक्ष विराजमानहे श्रीआचार्यजीद्वारा जिनको संबंध भयो हे सो प्रभु सदा घरमें विराजमानहें तातें मनमें दुःख धारण सर्वधा नांही कर्त्तव्यहे ॥ २९॥

मूलं-भवद्भिर्मिलितैः सर्वेरियं शिक्षा विचार्यताम् । ततः संदेहजातं यद्बुद्धिस्थं तद्व्यपोह्यताम्॥३०॥

शब्दार्थः -श्रीहरिरायजी लिखतहें जो तुम सगरे भगवदीयनसीं मिलिकें यह शिक्षा विचारोंगे तासों जो बुद्धिमें रह्यो संदेहसमृह सो दूर होयगो ॥ ३०॥ टीका-अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो यह शिक्षा में तुमकों लिखि पठाई हे ताको सगरे पुष्टिमार्गीय भगवदीय भक्तसीं मिलिके विचार करियो तातें मनको चिंतारूप सकल संदेह दूरि होय जायगो सुंदर बुद्धिकी पोपक होयगी ॥ ३०॥

मूलं-अस्माकं साधनं साध्यं 'श्रीकृष्णः श्रणं मम'। संपत्स्वापत्स्वपि सदा स्वाचार्यचरणोदितम् ॥३१॥

शब्दार्थः-हमारे संपत्तिमें तथा आपित्तमेंह सदा अपने श्रीआ-चार्यजीमहाप्रभुजीने कह्यो जो "श्रीऋष्णः शरणं मम" यह अष्टाक्षर मंत्रसो साधन तथा फलक्षप है ॥ ३१॥ टीका-हमारे तो साधन और सिद्धिह् एक 'श्रीकृष्णः शरणं मम 'यह हे सो यह श्रीवछभाचार्यजी अष्टाक्षर महामंत्र प्रकट करि श्रीकृष्णहीके शरणिसिद्धि कियेहे तातें हम तो एक श्रीकृष्णहीको आश्रय हृदयमें करिकें श्रीकृष्णहीको शरण मन वचन कर्म करिकें सर्वभांति यही साधन तथा साध्यजानेंहे तातें संपत्ति अनेक सुखहूमें श्रीकृष्णकी शरणहे ओर आपत्ति (दुःख) हूमें एक श्रीकृष्णहीकों शरण कियेहे काहेतें जो हमारे आचार्यचरणननें यह मंत्र प्रकट कियोहे सो श्रीग्रसाईजी विक्षित्में कहेहें "यदुक्तं तातचरणः 'श्रीकृष्णः शरणं मम '। तत एवास्ति नैश्रित्यमेहिके पारलोंकिके "(जो पितृचरण श्रीमहाप्रभुजी कहेहें जो 'श्रीकृष्णः शरणं मम ' तासोंही यहलोक तथा परलोक संबंधी सगरेमें निश्चितताहे) इत्यादिवचनानुसार अष्टाक्षरमंत्रही हमारे साधन तथा साध्य हे ॥३१॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं चतुर्विशातितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषा-टीकासमेतं समाप्तम् ॥ २४ ॥

शिक्षापत्र २५.

अव पंचिवंशिक्षापत्रमें फलातमक श्रीमदाचार्यचरणद्वय सदाही हृदयमें धारण करने तामें फलको संशय नांही राखनो ओर यामें जो संशय राखे सो आसुरी जानने सुवोधिन्यादियंय विद्यमान सते मनुष्य भक्तिमार्गमें प्रवृत्त नांही होत हे तासों भगवानकी कृपाही साधन हे एसे जानिवेमें आवतहे जैसे इंद्रियनकी वृत्ति प्राण विना नांही चलेहे तेसे प्रभुकी कृपा विना साधनको उपयोग

नांही होय हे यह निरूपण हे. उपर कहे जो चिंता नांही कर्तव्य हे अष्टाक्षरही परमगति हे सो कोटानकोटि साधन करे सगरे धर्म होय ओर श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय सिद्ध न होय तो कछ सिद्ध न होय तार्ते जा भांति श्रीआचार्यजीमहाप्रभुके चरणकमलको सदा आश्रय होय तिनको फलदान होय सो आगे शिक्षापत्रमें निरूपण करतहें

मूलं-श्रीवल्लभपदांभोजभजनादरणादिप । दयापरः कदाचित्तं न जहाति जनं हरिः॥ १॥

शब्दार्थः — श्रीवल्लभाचार्यजिके चरणकमलकें भजनमें आदरसींह दयालु हिर कोयदिन वह जनकों नांही छोडत हें ॥ १ ॥ टीका — जो वेष्णव श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणारविंदको भजन आदरपूर्वक करतहे एक वाहीमें अनन्य भाव हे जेसें सूरदासजीने गायो "भरोंसो हु इन चरनकेरो । श्रीवल्लभ नगचंद्रछटाविन सब जगमेंही अंधेरो " श्रीआचार्यजीमहाप्रभुके चरणकमलकी सेवामें सदा जो वेष्णव आदर करेहे तिनके उपर हिर जो श्रीकृष्ण सो सदा दया करत हे प्रसन्न होयकें कृपाहू करतहें अपने स्वरूपानंदको दान सदा करत हे ॥ १ ॥

मूलं-कृपाकटाक्षसंपातपक्षपातपरो हिरिः। क्षमते तत्कृतं दोपलक्षमप्यक्षमं स्वतः॥२॥

शब्दार्थः -श्रीमदाचार्यजीके कृपाकटाक्षको सुंदरपात जिनपे तिनके पक्षपात करिवेवारे हिर ता जीवने किये लक्षदोप जो आपतें सहन नहोय एसेकोंह सहन करतहें। २। टीका - जिन वेष्णवनके उपर आप श्रीआचा- यंजीमहाप्रसुजी कृपाकटाक्ष करतहें तिनको पक्षपात श्रीटाकुरजी करतहें पद्मनाभदास छोला धरते सो श्रीटाकुरजी श्रीआचार्यजीमहाप्रसुकी

कृपा तें प्रीतिसों आरोगते या भांति जापर श्रीआचार्यजी कृपाकटाक्ष करिकें भिक्तरसदान करतहें तिनकों श्रीकृष्ण आप सदा पक्षपात करतहें सो उन वैष्णवनतें लक्षावि अपराध परतहें तोहू श्रीकृष्णचंद्र सर्व अपराध क्षमा करिकें आप कृपाही करतहें ॥ २ ॥

मूलं-यदीयहृदये श्रीमदाचार्यचरणद्यम् । त एव श्ररणं दोषशतावृत्तिमतो मम ॥ ३॥

शब्दार्थः — जिनके हृदयमें श्रीमदाचार्यजीके चरणदयहे वहही शतदोपकी आवृत्तिवारों मेंहूं तिनकों शरणहे ॥ ३ ॥ टीका — जो पुष्टिमार्गीय भगवदीयके हृदयमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके दोज चरणकमल विराजतहें ताके शतादिक अपराध होय तिनहूको नाश करि प्रतिबंध दृरि करतहें ॥ ३ ॥

मूलं-यदंगुलिनखानंदचंद्रशैत्यं सदा हृदि। तापं हरति भक्तानां तदानंदपदांबुजम्॥४॥

शब्दार्थः - जिनके अंगुलियनके नखरूपचंद्रकी शीतलता हे सो आनंदरूप चरणारविंद भक्तनके हृदयमें सदा तापकों हरत है।। १।। टीका-श्रीआचार्यजी महाप्रभुके चरणकमलकी दशअंगुलि परमसुंदरहे. तिनमें नखचंद्र १० हे सो एक नखचंद्रकी छटा आगें कोटिचंद्रमाकी कला छजा पावतहे एसे नखचंद्र जिन वैष्णवननें हृदयमें धारणिकयेहें तिन भक्तनके हृदयके त्रिविध ताप (आध्यात्मक, अधिमातिक ओर आधिदेविक, तथा कायिक, वाचनिक ओर मानसिक) अनेक जन्मके दोपरूप तथा श्रीकृष्णके मिलनमें प्रतिवंधरूप सगरे पाप दृरि होतहें एसें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके चरणकमलहे सो सेवकनकों सदा आनंददान करतहें।। १।।

मूलं-अस्त वस्तुशतं लोके वेदे च परिकीत्तिम्। फलत्वेन निजाचार्यचरणाव्जद्वयं मम्॥ ५॥

शब्दार्थः - छोकमं तथा वेदमं कहो एसे शतवस्तु होउ परि मोकों फलत्वकरिकें अपने श्रीआचार्यजीके दोउ चरणकमलहें ॥ ५॥ टीका - छोकमें ओर वेदमें कीर्तित एसो वस्तुरूप पदार्थ वोहोतहे सत्य छोक (ब्रह्मछोक) सगरे ज्ञानमार्गीय मर्यादामार्गीयकों सर्वोपि फलरूपहे सो हमारे पुष्टिमार्गमें ब्रह्मछोक कहा ? मोक्षचतुष्टयताई सब तुच्छहे एसे यह पुष्टिमार्गहे जामें श्रीकृष्णाधरसुधापानही परमफलहे सो साधन करिकें सिद्ध नांही होतहे एक श्रीवछभाचार्यजीके चरणांवुज- इयही फलरूपहे इनही करि श्रीकृष्णाधरामृतसिद्धिहे ॥ ५॥ मुलं-न कर्म वेदविहितं फलं जनयति श्रुवम् ।

यतो बहिर्मुखं चित्तं जायतेऽन्यश्चतेहरः॥६॥

शब्दार्थः —वेदोक्त कर्म निश्रय फलकों नांही उत्पन्न करतहें काहेतें जो भगवानसों भिन्नश्रवणतें चित्त वहिर्मुख होतहे।। ६।। टीका—वेदविहित अनेक प्रकारके कर्महे ज्ञानमार्ग, योगमार्ग, कर्ममार्ग, उपासना-मार्ग, अनेकन्नत, संयम, नियम, इत्यादि अनेक साधनहे तासों यह पृष्टिमार्गको फल निश्रय जान्यो नांही जातहे काहेतें जो पृष्टिमार्ग केवल न्नजमक्त भावात्मक सर्वोपिर हे सो श्रीमहाप्रभुजीकी कृपातें साध्यहे साधनतें सिद्धि नांहीहे जासों वहिर्मुखजीवके चित्तमें तथा श्रवणमें श्रीहरिकी कथारूप अमृत ओर भगवद्धमें न सहाय।। ६।। मूलं-ज्ञानं तु (मुक्ति) भक्तिहतुत्वात्सानेव फलरूपिणी।

यतो जीवस्य दासत्वहेतुभेदिनवित्तिका॥७॥

शब्दार्थः−ज्ञान तो मर्यादाभिक्तकों उत्पन्न करिवेवारो होयवेस्. कदाचित् फलरूपहे परंतु मर्यादाभक्ति फलरूप नांहीहे काहेतें जो सो मर्यादाभक्ति जीवकों दासत्वके कारणरूप भेदकों मिटायवेवारी है अथवा ज्ञान तो मुक्तिकों उत्पन्न करिवेवारों हे वा मुक्ति फलरूप नांही हे काहेतें जो मुक्ति जीवके दासत्वके कारणरूप भेदकों मिटायवेवारी हे (मुक्तिमें प्रभु ओर जीवको भेद नांही रहे)॥ ७ ॥ टीका—शास्त्रमें एसें कहेहें जो ज्ञान हे सो भिक्तिकों हेतु हे तातें भिक्तिकों ज्ञान भयो हे ताकरि भिक्ति होय सो यह मर्यादामार्गीयभिक्तिहे जामें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष फलहे तामें प्रथम ज्ञानहीं मुख्य हे तापाछें मर्यादाभक्ति होय सो ज्ञान ओर मर्यादामार्गीयभक्ति दोउ पृष्टिमार्गके फलके विरोधी हे काहेतें जो वामें दासत्व नांही रहत हे ओर पृष्टिमार्गमें तो जीवकों दासत्व मुख्य हे जीव सेवक हे प्रभु स्वामी हे या भांति श्रीभगवत्सेवा हे ता भावकों निवर्त्तक ज्ञान हे तहां स्वामी सेवकभाव नांही हे॥ ७॥

मूलं-मर्यादाभक्तिरप्येषा ताबदेव फलात्मिका। यावन्न जायते (ज्ञायते) प्रष्टिभक्तिःसकलमूर्द्दगा॥ ८॥

शब्दार्थः —यह मर्यादाभिक्ति ज्ञवताँई सकलके मस्तकपर रहेवे-वारी पुष्टिभिक्ति उत्पन्न भयी न होय अथवा जानिवेमें आवे नांही तवतांई फलात्मक हे ॥८॥ टीका—उह मर्यादाभिक्तिके ज्ञानमें अहंन्रस मानत हे जो मेंही नहाहों ताकरिकें प्रभुसों सेवकभाव छटिजात हे तातें यह पुष्टिमार्ग सर्वांपरि (शिरोमिण) हे ज्ञान तथा मर्यादामार्गकी भक्तिके माथेपर विराजत हे ॥ ८॥

मूलं-पुष्टिभक्तिहरेरास्यं तत्त्वस्मत्प्रभवः स्वयम् । त एव संश्रिताः संतः फलरूपा भवंति हि ॥९॥ शब्दार्थः-हरि भगवानको मुखारिवंद हे सो पुष्टिभक्ति हे सो मुखारिवंद तो अपने श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी आपहे इनको श्रद्धा- पूर्वक आश्रय करे तो यहही निश्चय फलक्ष होय ॥ ९ ॥ टीका-यह पुष्टिभक्ति हे सो श्रीठाकुरजी रासादिलीलाकिर भक्तनकों सुधादान दिये सो श्रीकृष्णके मुखारविंदक्ष श्रीवल्लभाचार्यजी (यह कलियुगमें पुष्टिभक्तिके लिये) प्रकटे हे सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभु स्वयंभगवान श्रीकृष्णचंद्रके मुखारविंदक्ष प्रकटेहें तार्ते श्रीआचार्यजीके चरणकमलके हढ आश्रितहें तिनहीभगवदीयनकों फलिसिद्धिहे ॥ ९ ॥

मूलं-तदुत्तरं न कर्त्तव्यमनुभूतेः परं किमु । यथा लोके फले प्राप्ते न भोगादिधिका कृतिः॥१०॥

शब्दार्थः – ताकों उत्तर (सामनो तर्क) नांही करनो काहेतें जो अनुमवसों अधिक ओर कहाहे जेसें लोकमें फलप्राप्त होय तब भोगसों अधिक कृति नांहीहे ॥१०॥ टीका – तातें उत्तर जो पुष्टिमार्गतें प्रतिकृल विचार (ज्ञान, कर्म, वेद, मर्यादाभिक्त, इत्यादिक विरुद्ध धर्मकें अनुसार विचार) नांही कर्त्तव्य हे जेसें लोकिक फल प्राप्त भयो तब वाको भोग करनो येही कर्त्तव्य हे ओर किया अधिक नांही तेसें पुष्टिमार्गको अनुभव भयो तापाळें ओरकों अधिक नांही जाननों ॥१०॥ मूलं – तस्मात् फलं निजाचार्यपदां भोजद्वयं सदा।

हादि धार्य नेव कार्य संश्वायायितमान्सम्॥११॥

शब्दार्थः—तासों फलरूप अपने श्रीआचार्यजीके चरणारविंद दों सदा हृदयमें धारण करने (तामें) संशययुक्त मन नांही करनो ॥११॥ टीका—यह पृष्टिमार्गीय भगवद्धमें सेवादि करि अपने श्रीआचार्यजीम हाप्रभुजीके दोंड चरणकमलकों अपने हृदयमें धारण करने मनमें संशय (अविश्वास) न राखनों सो गीताजीमें कहेहें "संशयातमा विनश्यति" (संशयरूप अंतः करण होय सो नाशकों पावत हे) संशयते पते फलको नाश होय तातें संशय न करे ॥११॥

मूलं-अत्र संश्यमापन्नाः सर्वथा ह्यासुरा मताः। देवा अपि पुरा तेऽपि हरिणा पातिताः करात्॥ १२॥

शब्दार्थः —यामें संशयको प्राप्त भये यह निश्चय आसुर जीव जाननें पहेले दैवीसृष्टिमें उत्पन्न भये होय सोहू हरिने अपने श्रीहस्तसों [संसारमें] डारेहें ॥ १२ ॥ टीका —श्रीवछभाचार्यजीके स्वरूपमें संशय होय तथा यह पुष्टिमार्गमें संशय होय ताकों सर्वथा आसुरही जानियें दैवी जीव होय अथवा आसुर कोई होय जाकों अविश्वास होय ताकों श्रीठाकुरजी अपने हाथ संसारमें डारि देय ताको अंगीकार कवहू न करे तातें विवेकधैर्याश्रयग्रंथमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभु कहेहें " अविश्वासों न कर्त्तव्यः सर्वथा वाधकस्तु सः" [अविश्वास नांही करनो काहेतें जो वह सर्वथा वाधकहे] तातें अविश्वास महावाधक हे ॥ १२ ॥ मूलं—अहो महचित्रमिद्मवतीर्णे हरी भुवि ।

विद्यमाने भागवते विद्यताविष सर्वथा ॥ १३ ॥ सत्यां भवि सुवोधिन्यां सत्स सत्स कचित्कचित्। प्रथेषु विद्यमानेषु सर्वार्थज्ञापकेष्विष ॥ १४ ॥ तथापि न प्रवर्तते जना भक्तिपथे पुनः। प्रायः कृषेव हरिणा कारणत्वेन रक्षिता ॥ १५॥

शब्दार्थः -यह वडो आश्चर्यहे जो पृथ्वीपर हरि प्रकट भयेहे, श्रीभागवत विद्यमानहे, विवरणह सर्वथा विद्यमानहे, ॥१३॥श्रीसुवोधिनीजी पृथ्वीउपर विद्यमानहे कहूं कहूं सत्पुरुप (भगवदीय) विद्यमानहे, ओर सर्व अर्थकों जतायवेवारे सगरे ग्रंथह विद्यमानहे ॥१४॥ तोह मनुष्य फिर भक्तिमार्गमें प्रवृत्त नांही होतहे तासों यह जान्योजातहे जो हिनें अपनी कृपाही कारणरूप राखीहे ॥१५॥ टीका-मेरेमनमें वडो आश्चर्य होतहे जो भृमिविषे श्रीकृष्णके मुखारविंदरूप श्रीवरुभाचार्यजी

प्रकटेहे तिनको कुल निष्कलंक भूमिपर विराजमानहे ओर श्रीभागवत हू विद्यमानहे श्रीभागवतकी टीकाहू विराजमानहे तोहू जीव सर्वथा मार्गमें नांही प्रवृत्तहोतहे यह मोकों वडो आश्चर्यहे ॥ १३॥ श्रीसुवोधिनीजी निवंधादि भूमिपर विराजमानहे कहूं कहूं श्रीसुवोधिनीजी निवंधादिकके वक्ता सत्पुरुपहू विराजितहे ओर छोटेवडे श्रीगुसाईजी श्रीमहाप्रभुजीके प्रथहू विद्यमान हे सो प्रंथ केसेहे जो सर्व पृष्टि मार्गके भावके ज्ञापकहे इनप्रंथद्वारा पृष्टिमार्गीय सगरी रीति जानि जातहे या भांति सगरी वस्तु विद्यमानहे ॥ १४॥ उपर कहे सो सगरे पदार्थ भूमिपर विराजमानहे तोहू जीव यह पृष्टिमार्गमें नांही प्रवृत्त होतहे सो काहेतें जो एक श्रीहरिकी छपाही कारणहे सगरे पदार्थ होय परि श्रीहरिकी छपा होय तवही जान्यो जाय श्रीहरिकी छपा विना जीव भक्तिमार्गमें नांही प्रवृत्त होतहे तातें यह पृष्टिमार्ग तो केवल प्रमेयमार्गहे सो श्रीहरिकी छपा प्रमेयवल विना तामें केसें आवे?॥१५॥ मरुं—मर्च्छितें छियवक्तीनामद्भवो नासमंतरा।

मूलं-मूर्चिछतेंद्रियचुत्तीनामुद्भवो नासुमंतरा। तथा कृपां विना सर्वसाधनानां न चोद्भवः॥ १६॥

शब्दार्थः मूर्चिछत इंद्रियनकी वृत्तिहे तिनकी उत्पत्ति प्राणिवना नांही होतहे तेसे छुपाविना सर्व साधनकी उत्पत्ति नांही होतहे ॥१६॥ टीका -श्रीमहाप्रभुजीकी छुपाविना कछु सिद्ध न होय सगरी इंद्रिय मूर्छित होय तिनतें प्राणिवना कछु कार्य न होय जब प्राण आवे तय सगरी इंद्रियनमें चैतन्य आवे अपने कार्यमें तत्पर होय तेसेंही जहांतांई श्रीकृष्णकी छुपा (प्राणस्थानीय) नांहीहे तहांतांई सगरे साधन (इंद्रियस्थानीय) तें कछु न होय जब श्रीकृष्ण छुपा करे तबही यह पुष्टिमार्गमें आय सेवादि करे भाव सिद्ध होय यह निश्चयहे ॥ १६॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं पंचिविंशतितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतत्रजभापाटीकासमेतं समाप्तम्।२५!

शिक्षापत्र २६.

पिंद्विश्व शिक्षापत्रमें जेसें माता वालककी रक्षाके लिये डाकिनी आदि प्रहर्सों डरपेहें तेसें भावकी रक्षाके लिये दुःसंगसों डरपनों, जेसें व्यभिचारिणी स्त्री परपुरुपिवेपे अपनो स्नेहहें ताकों अपने समस्त संबंधीसों गुप्त राखेंहें तेसें भगवत्सेवामें प्रतिवंधक जो अपने संबंधीहोय तिनके आगें भाव ग्रप्त राखनों, जेसें दृतीके वचन ओर संग व्यभिचारिणी स्त्रीकों प्रीति करेंहे तेसें भक्तके वचन ओर संग भावकों बुद्धि करतहे, ओर जेसें व्यभिचारिणी स्त्रीकों चित्त सदाही गृहादिकमें उदासीन रहेहे तेसेंही चित्तकों गृहादिकमें उदासीन राखनों, यह निरूपणहे । उपर कहे जो पृष्टिमार्गीय सगरो पदार्थ प्रकटहे परंतु श्रीकृष्णकी कृपाविना जीव नांही प्रवृत्त होतहे तहां कोई कहे जो श्रीकृष्ण कृपा नांही करत होयंगे जीव कहा करे ? तहां कहतहें— मूलं—स्वकीयानामेहिकं यदथवा पारलोंकिकम ।

मूलं-स्वकीयानामेहिकं यदथवा पारलोकिकम्। अकरोत् कुरुते कत्ता प्रभुरेव न संशयः॥ १॥

शब्दार्थः—स्वकीय भक्तनके जो लौकिक अथवा पारलोकिक हे सो प्रभुनेंही कियोहे, प्रभुही करतहें ओर प्रभुही करेंगे संशय नांही हे ॥ १ ॥ टीका—श्रीकृष्ण परम कृपालु हे अपने स्वकीय निजभक्तनकों यहलोक परलोक दोल सिद्ध करतहें यहलोक सिद्ध करतहे सो विप-यादिक सिद्ध करतहें एसें मित जानियों यह लोकमें स्त्री, पुत्र, धन, सब देवी करतहें जो भगवत्सेवादिक में विरोध न करे या भांति लोकिक सिद्ध करतहें ओर अलोकिक में लीलाको अनुभव स्वरूपानंदको दान यह सिद्ध करतहें सो त्रिविधनामाविल में श्रीआचार्य जी महाप्रभु कहें हैं "भक्तसर्वदुः खिन्वारकाय नमः" भक्तके लोकिक अलोकिक सर्व ्दुःख दूरि करिकें सर्वथा सर्वकार्य सिद्ध करतहें यामें संशय नांही ॥१॥ मूलं-तथापि कुरुते जीवः प्रयत्नं निजदोषतः। अज्ञानात् करुणावाद्धिःक्षमते तादृशं स्वतः॥२॥

शब्दार्थः-तोहू जीव अपने दोपतें अज्ञानसों प्रयत्न करतहे एसे जीवकों कृपाके समुद्र प्रभु आपतें क्षमा करतहें ॥२॥ टीका-या भांति श्रीकृष्ण लोकिक अलोकिक सर्वकार्य सिद्ध करतहें तोहू जीव अपने सनमें अनेक प्रकारके साधन करत हे जीव बुद्धिके अज्ञानतें अनेक यत्न करतहे एसे अज्ञानी जीवनपर श्रीकृष्ण कृपानिधिहे सो सगरों अपराध अपनी ओरतें क्षमाकरतहे सो अंतःकरणप्रवोधमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें "सत्यसंकल्पतो विष्णुर्नान्यथा तु करिष्यति" (प्रभु सत्यसंकल्पहे तासों अन्यथा नांही करेंगे) श्रीकृष्ण सत्यसंकल्पहे श्रीआचार्यजीद्वारा अंगीकार कियहे सो दृढहे जीव अज्ञानकरि भूलत हे परंतु प्रभु केसें भूलेंगे ?॥ २॥

मूलं-अविरुद्धं प्रकुरुते विरुद्धं वार्यत्यपि। दासेषु कृष्णो बालेषु पितेव कुरुते हितम्॥३॥

राव्दार्थः -श्रीकृष्ण अपने दासनमं अविरुद्ध करतहें ओर विरुद्धः कोह् वारण करतहें जेसें वालकनकी उपर पिता हित करतहे तेसें भक्तः नकी उपर श्रीकृष्ण हित करतहें ॥३॥ टीका—यह पृष्टिमार्गमें अविरुद्ध भगवत्सेवादिक सो करावतहें ओर अनेक साधन प्रयत्न जो पृष्टिमार्गतें विरुद्धहे तासों नियृत्त करतहें एसे श्रीकृष्ण श्री शचार्यजीकी कानितें रक्षा करतहे जेसें पिता वालकको हित करे वालक अज्ञानतें दोप करें परंतु पिता दोपकों नांही विचारत हितही करतहे सो संन्यासिनणयमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभु कहेहें "हरिरत्र न शकोति कर्नु वाथां कुतोऽपरे अन्यथा मातरो वालात्र स्तन्येः पुपुषुः कचित्" (यह भक्तिमार्गमें)

F111

हरि भगवान वाधा करिवेमें समर्थ नांहीहे तहां ओर कहांतें समर्थ होय ओर एसें न होय तो माता वालककों स्तन्यपान करायकें पोपण कहूं न करते जेसें माता पुत्रकों वारंवार अपने स्तन्यसों पोपण करतहे तेसेंही जो जीव श्रीआचार्यजीद्वारा शरण आयेहें तिनकों प्रभु वाधा नांही करतहें जाप्रकार मिक्त वढे दासको कल्याण होय सोई प्रभु करतहें एसें कृपालुहें ॥ ३ ॥

मूलं-न जानाति निजाज्ञानात्तः । क दोषराशिजीवोऽयं क हरिग्रणवारिधिः॥ ४॥

शब्दार्थः — जीव अपने अज्ञानसों कृत महे तासों भगवानकी कृतिकों नांही जानत हे काहेतें जो दोपके समृहरूप यह जीव कहां ? ओर गुणके समुद्र हिर कहां ? ।। ४ ॥ टीका—याभांति प्रभु करत हें ओर जीव अपने अज्ञानतें नांही जानत हे सो जीव कृतन्न हे उपकारकों नांही जानत हे एसो दोपको भयों जीव हे ओर हिर [श्रीकृष्ण] गुणनिधि हे जीव दोपनिधि हे ॥ ४ ॥

मूलं-कथमन्योन्यसंबंधः स्यात्तमस्तेजसोरिव। तथापि दोषराशीनां दाहनेन निवेदनात्॥५॥ स्वाचार्यदारकात्तु स्याद्योग्यता हरियोजने। अतः स्वाचार्यचरणो स्थाप्यो हदि निरंतरम्॥६॥

शब्दार्थः-[भगवान् गुणनिधिहे ओर जीव दोपनिधि हे तिनकों] अंधकार ओर तेजकीसीनांई अन्योअन्य (परस्पर) संबंध केसें होय? तोह अपने श्रीआचार्यजीद्वारा निवेदन भयो हे तासों दोपके समृहको दाह भयो ताकरिकें हरिभगवानकें संबंधमें योग्यता होयहे तासों अपने श्रीआचार्यजीके दोउ चरणारविंद हृदयमें स्थापन करने ॥५॥

॥६॥ टीका-उपर कहे ऐसें श्रीकृष्णसों जीवको परस्पर संबंध केसें होय जेसें अधियारेको संबंध सूर्यसों केसें होय ? जहां तेज होय तहां तम केसें आवे तेसेंही यह जीव कोनप्रकार श्रीकृष्णसों मिले सो कहतहें जो ओर तो कोउ उपाय नांही हे जीव सर्व भगवानमें निवेदन करे तबही सर्व दोप दूरि होयं सो चोराशी वैष्णवकी वार्तामें प्रसिद्धहे जो श्रीआचार्यजीकों चिंता भई तब श्रीकृष्णनें येही आज्ञा करी जो समर्पण करावो निवेदनतें जीवके सगरे दोप दूरि होयंगे तातें जीवके दोप निवेदनतें निश्चय दूरि होतहे ॥५॥ एसे दोपक्ष जीवकों जब अपने श्रीआचार्यजीकारा निवेदन होय तब सगरे दोपको नाश होय तब श्रीकृष्णकी सेवामें योग्य होय ओर कोउ उपाय नांही, एसें श्रीवहन् भाचार्यजीके चरणकमल अपने हृदयमें स्थापन करनें येही योग्य हे तातें पुष्टिमार्गीय वैष्णवको परम धर्म येही हे जो श्रीआचार्यजीके चरण हृदयमें आहर्निश धारण करे याहीतें सर्वफल सिद्ध होय॥६॥ मूळं—यथा वाळकरकार्यो द्याकिनीतो विभित्ति हि।

मूलं-यथा वालकरक्षाये डाकिनीतो विभेति हि। माता तथेव भेत्तव्यं दुःसंगाद्भावरक्षकेः॥ ७॥

शब्दार्थः - माता जेसे वालककी रक्षाके लिये डाकिनीसों डरपतहें तेसेंही भावकी रक्षा करिवेवारेनको दुःसंगसों डरपनों ॥ ७ ॥ टीका-जेसें वालककी रक्षा माता करे डाकिनी वालकको घात करत हे सो वालककी रक्षार्थ डाकिनीतें माता भयभीत हे तासों वालककों छिपाय राखेंहे तेसेही पुष्टिमार्गीय भगवदीय दुःसंगरूप डाकिनीतें डरपें अपने भगवद्भावरूप वालककी रक्षार्थ डाकिनीरूप दुःसंग त्याग करे तातें विष्णवकों दुःसंग वोहोतहीं वाधकहे तासों सर्व भाव जाय यह जानिके दुःसंगतें अहर्निश डरपत रहे तो भावकी चृद्धि होय ॥ ७ ॥ मृत्ं-समस्तेभ्यो निजस्नेहं गोपायित यथा (ऽ) सती। तथेव भगवद्भावगोपनं क्रियतां जनेः ॥ ८ ॥ खेंचके प्रभुमें चित्त स्थापन करनो।।१०॥ टीका—जेसें व्यभिचारिणी सी (असती) को चित्त अपने गृहमें सर्वथा न लगे सदा गृहमेतें मन उचा टितही रहे परपुरुपमें लग्यो रहे तेसेंही भगवदीयको चित्त श्रीठाकुर जीके स्वरूपमें लगावनो एक श्रीकृष्णके चरणारविंदमें आश्रित भगव-दीय अपनो मन गृहदेहसंबंधी लौकिक बैदिक कार्यमें न लगावे एक प्रभुकी वार्त्ता ओर भगवत्सेवामें लगावे।। १०।।

इति श्रीहरिरायजीकृतं पिङ्कातितमं शिक्षापत्रं श्री-गोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमतं समाप्तम् ॥२६॥

शिक्षापत्र २७.

सप्तिवंश शिक्षापत्रमें श्रीभगवानकों विस्मरण करे एसे दोपकों निरूपण हे अव सवनकी वृद्धिको नाश करिवेवारो काल आयो है, साधनहू सिद्ध नांही होयहे जो सेवामें तीन प्रतिवंधहे सो सिद्धहें तोहूं श्रीमदाचार्यजीके चरणारिवंदिक आश्रयतें फललाभ होयगो तासों फलमें निराशता नांही राखनी यह निरूपणहे। उपर कहे जो भक्त प्रभुके आश्रित हे तिनको चित्त लोकिकमें नांही लगतहे तहां फलमें अनेक वाधकहे तिनकों तिजयें तब फल सिद्ध होय सो कहा वाधक है ? केसें तिजयें ? सो आगें निरूपण करतहें—

मूलं-निजाचार्यपदांभोजयुगलाश्रयणं सदा। विधेयं तेन निस्विलं फलंभावि विना श्रमम्॥ १॥ शब्दार्थः-अपने आचार्यजीके दोउ चरणारविंदको आश्रय सदा करनो ताकरिके श्रम विना सर्व फल होयगो॥१॥ टीका-पृष्टिमार्गीय शब्दार्थः - लोकिकमें वोहोत प्रीति, (भक्तिं) विरुद्ध विषयकी इच्छा, (लोकिकतें:) अविरुद्धमें आसक्ति, विषयहेतु सुंदर भोजन, ॥ ३॥ टीका - लोकिक जो देहसंवंधी स्त्रीपुत्रादिकमें परम प्रीति सो भक्तिमें वाधकहे। ७। भक्तिमें विरुद्ध जो लोकिक विषय ताकी इच्छा सो फलमें वाधकहे। ८। लोकिकतें अविरुद्ध विषयमें आसक्ति सोउ वाधकहे। ९। विषयभोगार्थ आछो आछो खानो भगवत्सेवार्थ वैष्णव महाप्रसाद लेतहे सो भाव नांही विषयार्थ आछो भोजन घतादिकको करनों सोउ वाधकहे। १०॥ ३॥

मृतं-देहाभिमानः कुलजो विद्यादिविहितोऽपि च। भगवत्सेवनाऽभावसहितं देहपोषणम् ॥ ४॥

शब्दार्थः—देहको अभिमान, कुलको अभिमान, विद्यादिकसीं भयो एसो अभिमान, भगवानकी सेवाके अभावसहित देहको पोपण, ॥ ४॥ टीका—देहाभिमान जो मदतें काहु न गिने देह संहारे रहे, चोटी नित्य संहारे, अपनो देह देखिकें मनमें फुले यह वाधकहे । ११। कुलको मद जो में वहे कुलमें हों ओर सब मोतें नीचेहें मोसमान कोड नांही यह भक्तिमें वाधकहे । १२। विद्यामद जो में वोहोत पढ़्योहीं मोकों पदशास्त्रको ज्ञानहे और तो सब मूर्ख हे यह विद्यामद वाधक हे या मदतें देन्यसिद्धि नांही होत । १३। भगवत्सेवा नांही करत लीकिक विदेक अनेक कार्यमें दिन वितावतहे भगवत्सेवामें मन नांहीहे यह भक्तिमें वाधकहे जेसें बाह्यण गायत्री न जपे तो बाह्यणपनों जाय वह निक्कि विद्यामद होएके भगवत्सेवा न करे तो विष्णवपनों जाय यह वाधकहे। १४। देहको पोपण करे रंचकह शीत उष्ण सही न सके अनेक औपधतें खानपानतें देहकी रक्षा करे देहकी रक्षा तो भगवत्सेवार्थ करनी सो भाव नांही हे केवल लोकिकार्य देहको पोपण करे सो वाधकहे। १४।। ४।।

मूलं-असत्संगैः सदा दुष्टः कृष्णानुच्छिष्टभक्षणम्। निवेदनानुसंधानत्यागः शरणाविस्मृतिः॥ ५॥

- शब्दार्थ:-असत्पुरुपके संग करिकें सदा दुष्ट रहे, श्रीकृष्णकों भोग धरे विना अन्नको भक्षण, निवेदन मंत्रके अनुसंधानको त्याग, श्ररणकी विस्मृति, ॥ ५ ॥ टीका-असत्संग महादृष्ट वहिर्मुखको संग ताके संग एक क्षणहू वेठे तो भगवद्भावको नाश होय तिनहूको संग सदा करे तातें वहिर्मुखता (दुएता) होय सो वाधकहे ।१६। ओर श्रीऋष्णको उच्छिए महाप्रसाद छोडिकें असमार्पित खाय यह महा वाधकहे सो पद्मपुराणमें कहेहे "अनिवेद्य तु यो भुंक्ते हरये परमात्मने। पतंति पितरस्तस्य नरके शाश्वलीः समाः ॥ अवैष्णवानामन्नं च पतितानां तथैव च अनर्पितं तथा विष्णो श्वमांससदृशं भवेत्" (हरि परमात्माकों अर्पण कियेविना जो खायहे ताके पितृपितामहादिक बोहोत वर्पपर्यंत नरकमें गिरतहें ॥ अवैष्णवनको अन्न पतितनको तथा विष्णु-निमित्त अर्पण नांही कियो एसो अन्न श्वानके मांस वरावर होय) कुर्मपुराणमें कह्योहे "अनर्पयित्वा गोविंदे यो भुक्ते धर्मवर्जितः। श्विष्ठासद्द्यं चात्रं नीरं तत्युर्या समम् " (गोविंद्निमित्त अर्पण किये विना धर्मरहित जो खायहे सो अन्न श्वानके विष्ठासमानहे ओर जल मदिरासमानहे) यह वाक्यतें असमर्पिततें बुद्धि अष्ट होय तातें महा वाधकहे।१७। निवेदन कियोहे ताको अनुसंधान नांही करतहे, जो में समर्पण कियोहे पंचाक्षरको कहा अभिप्रायहे या भांति निवेद-नको अनुसंधान नांही करत है यह वाधकहै।१८। श्रीऋष्णके शरणकी विस्मृति जो अष्टाक्षर महामंत्र "श्रीकृष्णः श्ररणं मम" यह हे ताकी विस्मृति वाधकहे। १९॥ ५॥

मूलं-देवांतराश्रयस्तेभ्यः प्रार्थनाऽपि फलार्थितः। भगविचित्तरहिता व्यावृत्तिरपि लोकिकी॥६॥

शब्दार्थ:-ओरदेवनको आश्रय, फलकी इच्छासों इनकी पास प्रार्थना करनी, भगवानमें चित्तरहित (एसी) लौकिक व्यावृत्ति,॥ ६॥ टीका-ओरदेवको आश्रय महा वाधकहे साक्षात् पूर्णपुरुपोत्तम श्रीकृ ष्णको आश्रय छोडिकें अन्यदेवको आश्रय करे ताकों यह प्रिंपार्गको फल नांहि सिद्धहे. हारितस्मृतिमें कहेहें "नान्यं देवं नमस्कुर्यात्रान्यं देवं निरीक्षयेत्। नान्यप्रसादमद्याच नान्यदायतनं व्रजेत् " (अन्य-देवकों नमस्कार न करे, अन्यदेवके दर्शन न करे, अन्यदेवको प्रसाद न खाय ओर अन्यदेवके मंदिरमें न जाय) या भांति अनन्य रहे तो फल सिद्ध होय सो श्रीग्रसांईजी कहेहें "भगवत्पदपद्मपरागजुपो नांहें युक्तितरं मरणेऽपि तराम्। इतराश्रयणं गजराजधृतो नहि रासभ मय्युररीकुरुते ॥ अन्यसंवंधगंधोऽपि कंधरामेव वाधते "(भगः वानके चरणारविंदके रजकों सेविवेवारेकों मरणपर्यंत संकट आयजाय तोहू अन्यको आश्रय करिवो उचित नांहीहे जेसें हाथीकी स्वारी करिवेवारो रासभ (गर्भ) की कवूल नांही करतहे ॥ अन्यः संबंधको गंधहू कंधरा (ब्रीवा) को वाध करतहे) याभांति अन्य देवादिकको आश्रय वाधकहै। २०। अन्यदेव इंद्रादिक, शिवादिक, ब्रह्मादि, गणेश, सूर्य, यह देवनसों फलकी आशा सो वाधकहै, श्रीकृष्ण सर्वसामर्थ्ययुक्त हे तिनकों छोडिकें अन्यदेव सदा पराधीन्हें तिनसों फलाकांक्षा सो यह पुष्टिमार्गमें वाधकहे ।२१। भगवानक चरणारविंद्षे वेराग्य, लोकिक वैदिक कार्य, मनमें असंभावना विपरीतभावना, मिथ्याध्यान, यह पुष्टिमार्गके फलमें वाधकहे ।२२। अप्रमहर लोकिक च्यावृत्ति करि लोकिकावेश होय ताते अप्रमहर यह लोकिक कार्य वाधकहै। २३॥६॥

मूलं-गुरुद्रोह्स्तदीयेभ्यः स्वस्याधिक्यविभावनम्। अत्यंतदेहसामर्थ्यामद्रियाणां च पोषणम्॥ ७॥

क्ताकी भावना, वोहोत देहको सामर्थ्य, इंद्रियनको पोपण, ॥७॥ टीका—गुरुद्रोह करे तो गुरु अपसन्न होय सो वाधकहे प्रभु अपसन्न होय तो गुरु रक्षा करे परंतु गुरु अपसन्न होय तो रक्षा करिवेमें कोड समर्थ नांही । २४। पुष्टिमार्गीय भगवदीयकों अपनेतं न्यून जाने अपनकों अधिक जाने सो वाधक हे।२५। देहमें अत्यंत सामर्थ्य होय सो काहूकों गिने नांही अहंकार होय तथा वडो विषयी होय यहहू वाधकहे ।२६। अपनी इंद्रियनके पोपणमें तत्पर रहे सो इंद्रियनकों विषयभोगही प्रिय हे तातें इंद्रियनके पोपणमें तत्पर रहे सो इंद्रियनकों विषयभोगही

मूलं-गृहेष्वभिरतिर्भार्यापुत्रादिषु मनोगतिः। कृष्णानुभावरहितदेशे सततसंस्थितिः॥ ८॥

शब्दार्थः —गृहादिकमें प्रीति, स्रीपुत्रादिकनमें मन लग्यो रहे ओर श्रीकृष्णकी कथा-सेवा-कर्तिनादिरहितदेशमें निरंतर स्थिति, ॥ ८॥ टीका—गृहादि लौकिक कार्यमें अष्टप्रहर प्रीति।२८। स्रीपुत्रमें मनकरिकें प्रीति जो देहसंवंथी स्रीपुत्रादिक हे तामें मन रहे इनके दुःखतें दुःखी होय इनके सुखतें सुखी होय यह पुष्टिफलमें वाधकहे।२९। श्रीकृष्णके अनुभव विनाके देशमें रहेनो श्रीगोवधननाथजी तथा सातोस्वरूपके मंदिर तथा श्रीवलभकुलके मंदिर तथा पुष्टिमार्गीय ताहशीयके इहां राजसेवा तथा व्रज इतनीठोर वैष्णवकों अनुभवहे उत्सव भगवद्याती विना जीवकों अनुभव कछ न होय। ३०॥ ८॥ मूलं—हर्पशोको लोकलाभतदभावकृतों तथा।

स्वातंत्र्यभावनं स्वस्य जीवस्वाभाविको हठः॥९॥

शब्दायः - लोकमें लाभ ओर हानिकी कृतिमें हर्णशोक होय, तथा अपनकों स्वतंत्रताकी भावना ओर जीवको स्वामाविक हठ, ॥९॥ टीका - यह लौकिकमें हर्ष शोक होय देहसंबंधि, कुटुंब, द्रव्य, अनेक कार्य, आछो होय तो सुख पावे हर्ष होय बूरो होय तथा हानि होय तो दुःख पावे, शोक होय सो यह संसाररूपी बुक्षमें दोय फलहे कबहू सुख होय कबहू दुःख होय यांही में मन रहे सो फलमें वाधकहे। ३१। द्रव्यादिक लाभमें लोभ होय जो इतनो तो द्रव्य भयो अब ओर होयगो तो आछो, कुटुंब बढे तो आछो इत्यादिक लोभ पृष्टिमार्गमें वाधकहे। ३२। आपनकों स्वतंत्रकी भावना मनमें राखे दासपनो भूले यहहू वाधकहे। ३२। जीवको स्वभाव दुष्टताही है ताकरिकें सबको बूरोही चाहे यह वाधकहे। ३२॥ ९॥

मूलं-अधिकारः पापरतिः पक्षपातो दुरात्मनाम्। हृदयकूरता दीनजनोपेक्षाऽक्षमा पुनः॥१०॥

शब्दार्थः — अधिकार, पापमें पीति, दुरातमा (दुष्टपुरुप) को पक्षपति, हृत्यमें ऋरता, दीनजनकी उपेक्षा, फिर अक्षमा, ॥ १० ॥ टीका काहको अधिकार छेई तातें अनेक जीवको भलो चुरो करनो पडे सो वाधकहे सो शिआचार्यजीमहाप्रभुजी श्रीसुवोधिनीजी ओर निवंधमें कहें जो नारायणने बह्यासों श्रीभागवत कहे सो ब्रह्या सृष्टिकरिवेके अधिकारीहे तासों ब्रह्माको अनुभव नभयो फिर ब्रह्मानें नारदजीसों कह्यो सो नारदजीकों सगरे फिरनोहे एकाग्र मन नांही तातें इन्ह्यं ह अनुभव न भयो फिर न्यासजीवेद पुराणके अधिकारीहे तातें इन्ह्यं अनुभव न भयो फिर न्यासजीनें श्रीशुकदेवजीमों कह्यो सो शुकदेवजी काह्यातके अधिकारी नांही तातें अनुभव भयो तासं अधिकारहे सो फलमें वाधकहे। ३५। जो जीव पापमें प्रीतिवारोहे ताकों इष्ट अनिष्टकी परीक्षा नांही सो फलमें वाधकहे। ३६।

खोटे मनुष्य चौरादिक दुष्टिकिया करिवेवारे इनको पक्षपात करे साचेकों जूठो करे जुठेकों साचा करे ताकों फलमें वाधक है। ३७। हृद्यतें कूर होय काहूको भलो न विचारे महा कपट छल राखे सो वाधकहे। ३८। दीनजन कोई होय सो आयके शरण होय तिनकी उपेक्षा करे वाको त्याग करे यह पुष्टिभक्तिमें वाधक है। ३९। ओर क्षमा न होय विनाकारण कोघ होय अकुटी चडी रहे सहन न होय यह पुष्टिमार्गमें वाधक है। ४०॥ १०॥

मूलं-एते चान्ये च बोद्धव्या दोषा विस्मारका हरेः। सावधानीभूय दासेः कृष्णस्य स्थेयमादरात् ॥११॥

शब्दार्थः - यह उपर कहे ओर या सिवाय ओर दोपहे सो सव हरिकों विस्मरण कराइवेबारे हे तासों श्रीकृष्णके दासनकों आदरसों सावधान होयके रहेनो ॥ ११ ॥ टीका - यह चाळीस दोप कहे ओर अनेक दोप हे तिनमें यह चाळीश मुख्य हे यह दोप हरिके विस्मारकहे यह दोप जिनमें होय तिनकों हरि न जाने जाय तातें श्रीहरिरायजी कहत हे जो उपर कहे समस्त दोपतें सगरे वेष्णव सावधान रहियो (यह दोपतें डरपत रहियो) इन दोपनकी नियृत्तिके नवगुण कहतहे - श्रीकृष्णके चरणारविंदमें अत्यंत आदर राखनो । १ । यही सर्वस्व जानने ॥ ११ ॥

मुलं-भगवन्मार्गमात्रस्थैस्तन्मार्गफलकांक्षिभिः । विरक्तेरन्यतःकृष्णग्रणासक्तांतरात्मभिः॥ १२,॥ स्वाचार्यशर्णं यातेस्तिद्धश्वाससमन्वितेः । परित्यक्तारिवलैःस्थेयं सदा तद्दर्शनोत्सुकैः॥१३॥

शब्दार्थः-भक्तिमार्गमें रहिवेवारे, यह मार्गके फलकी इच्छावारे, अन्यसी विरक्त, ओर श्रीकृष्णके गुणमें आसक्तियुक्त हे मन जिनको

एसे, ॥ १२ ॥ अपने आचार्यजीके शरण गये, इनमें विश्वासयुक्त, समग्र त्याग करिवेवारे ओर सदा इनके दर्शनमें उत्साहवारे, (वेष्ण-वनकों) एसे होय रहेनो ॥ १३ ॥ टीका-भगवन्मार्ग (भगवानही अपने मुखारविंदरूप श्रीआचार्यजी प्रकट भये हे तिननें प्रकट कियां पुष्टिमार्ग सो भगवन्मार्ग) में स्थित होय रहे। २। एतन्मार्गीय (यह पुष्टिमार्गके) फलकी आकांक्षा होय मर्यादामार्गके फलकी इच्छा न होय काहेतें जो पुष्टिमार्गको फल श्रीकृष्णकी सेवा, स्वरूपानंदको अनुभव, यह हे ओर अन्यमार्गमें स्वर्गादिक, ब्रह्मलोक, चतुर्विध मुक्ति, यह फल हे सो पुष्टिमार्गतें विरुद्ध हे तातें वा फलकी चाहना न करे पुष्टिमार्गर्के फलकी चाहना करे। ३। यह लौकिक अन्यकार्यते विरक्त रहे श्रीऋष्णकी सेवा स्मरण विना सर्वठोरतें मन विरक्त राखे । ४। श्रीऋष्णके गुणमें आसक्त रहे आत्मामन करिकें ध्यान करिकें श्रीकृष्णहीकी सेवा करे वचनकरिके गुणगान श्रीकृष्णहीको करे कियाकरि श्रीकृष्णहीकी सेवा करे याभांति श्रीकृष्णहीमें सर्वातम-भाव रहे तथा एसे भगवदीय होय इनको संग करे 141 11 १२ 11 अपने आचार्यजीके चरणकमलके शरण रहे । ६ । मनमें दृढ विश्वास राख् यह जाने जो श्रीआचार्यजीके चरणकमलकी कृपातें सकल कार्य निश्रय सिद्ध होयंगे यह विश्वास राखे । ७। लोकिक वैदिक (पुष्टिमार्गतें विरुद्ध होय) ताको त्याग करे। ८। ओर श्रीआचार्यजीके दर्शनमें तथा श्रीकृष्णके दर्शनमें उत्साह राखे यह दर्शनकी क्षणक्षणमें अपेक्षा राखे। १। यह नव भांतिक गुण हृदयमें होय तो सर्व रोग दृरि होय एसे गुणसहित भगवदीय होय तिनहीको संग करे तब समस्त दोप दृरि होय प्रभु कृपा करे ॥ १३॥

मूलं-इदानीमागतः कालः सर्वबुद्धिविनाज्ञाकः। करे पतिति दुःसंगो मीलिताक्षस्य चापि हि॥१४॥ श्रव्यार्थः — अव सवनकी बुद्धिकों विशेष नाश करिवेवारों काल आयोहें और नेत्र मुंदिकें रहिवेवारेकोहू निश्रय दुःसंग हस्तमें आय जातहे।। १४॥ टीका—उपर दोष चालीस कहे ताक दूरिकरणार्थ गुण ९ नव कहे परंतु यह काल सर्वबुद्धिकों नाशक आयोहें सत्माणिकाहू बुद्धिकों नाश भयोहें तो अज्ञानीकी बुद्धिकों नाश होय या में कहा कहेनो १ एक तो काल वाधक हे दूसरों दुःसंग विनाचाहें स्वतःसिद्ध (आपुतें) आयमिलतहें मानों करमें धरचोहें ताकरिकें धर्मकों लेश हें सोहू चल्यों जातहें तहां भगवद्धमें बिहेवेकी कहा वातहे १ दिनदिन घटत जातहें तातें कालदोष और दुःसंग वोहोत वाधकहे।। १४॥ मूलं — किं कार्य किमकार्य वा यतः स्फुरित नेव हि। प्रभुणा स्वबलं तावदुपसंहतमेव हि॥ १५॥

शब्दार्थः — कहा करनो अथवा कहा करिवेयोग्य हे कहा नांहीहे यह स्फुरायमान नांही होत हे काहेतें जो प्रथमतें प्रभुनेंही आपनो वल समेट्यो हे।। १५।। टीका—यह कालदोप कछ कार्य करियें सो भगवत्संवंधी होय तामें उलटीही स्फुरणा होतहे एकक्षणमें कछ विचारे तो दूसरे क्षणमें कछ स्फुरे याभांति भले कार्यमें अनेक प्रतिवंध पडतहे केवल प्रभुको प्रतापवल मनमें आवत हे जो श्रीकृष्ण सर्वोपर सर्वकार्य सिद्धकर्ता हे इनको प्रताप दशोदिशामें प्रकट हे वेद, पुराण, श्रीभागवत, गीता, इत्यादिक सर्वशास्त्रमें प्रसिद्ध हे एसे श्रीकृष्ण हमारे प्रसिद्ध पति हे सो हमकों कहा हर हे? याभांति प्रभुको प्रतापवलह हदयमें आवत हे परंतु प्रभुनें एसो अपनो वल हे तिनको उपसंहार कियो हे तासों विश्वास छटि जात हे लोकिक सुख दुःखकों पावतह।। १५॥

मूलं-साधनानि न सिद्धयाति कालदोपाहुरातमनः। प्रतिबंधश्च कालादिकृतः प्रत्यहमेधते॥ १६॥ शब्दार्थ:—कालदोपसों दुष्ट हे आत्मा जिनको एसेको साधन सिद्ध नांही होतहे ओर कालादिकृत प्रतिवंध प्रतिदिन बढतहे।। १६॥ टीका—जा साधनतें मनमें दुर्वासना न उठे भगवत्कार्य होय सो साधन करो या भांति कोई कहे तहां कहतहें जो साधन सिद्ध नांही होत हे तो फल तो महादुर्छभ हे काहेतें जो कालादि प्रतिवंध दिनदिन प्रति बढत जातहे।। १६॥

मूलं-उद्वेगः प्रतिबंधो वा भोगश्चापि प्रजायते। प्रतिबंधसेवनं तेः प्रत्याशा का फलस्य हि ॥१७॥

शब्दार्थः — उद्वेग अथवा प्रतिवंध ओर [शरीरादिकनको] भोग उत्पन्न होतहे यह तीन (सेवामें) प्रतिवंधकहे ताके सेवन करिकें फलकी आशा कहाहे ? अथवा यह तीन प्रतिवंधकके सेवनतें कुत्सित फलकी हो आशा हे ॥ १७॥ टीका — श्रीआचार्यजीमहाप्रभु सेवाफलमें निरूपण कियेहे "उद्वेगः प्रतिवंधों वा भोगों वा स्यात्तु वाधकः" (उद्वेगः, प्रतिवंध, ओर भोग यह वाधकहे) याभांति कहेहें तामें प्रथम मनकों उद्वेग होय तव मन सेवामें न लगे पाछें प्रतिवंध होय तो पाछें श्रीरादिकके भोगको मन होय भोगतें विषयावेश होयजाय तव प्रभु अप्रसन्न होय याभांति प्रतिवंधतें जव भगवत्सेवा न होय तव प्रष्टिमार्गीय फलकी आशा काहेकों करिये? यामार्गमें तो भगवत्सेवाहीं फलहें सोई न भई तो आगें कहा फल होयगों? ॥ १७॥

मुलं तथापि श्रीमदाचार्यचरणाश्रयणान्मम ।

निवर्त्तते निराशं सन्न मनः फललिध्वतः ॥१८॥

शब्दार्थः-तोह् श्रीमदाचार्यजीके चरणारविंदके आश्रयसौं भेरो मन फलकी प्राप्तितें निराश सते निवृत्त नांही होतहे ॥१८॥ टीका-या मार्गमें सेवाही फलहे सो यह महा कालदोपहे तातें निश्रय में येवा विना फलमें निराश हो तोहू एक मरोंसो मेरे मनमें हे जो मेनें श्रीवस्त्रभाचार्यजीके चरणकमलको आश्रय अपने मनमें कियोहे तासों [भगवत्सेवाकारे रहितहों तोहू]श्रीमहाप्रभुजीके चरणकमलके आश्रयतें सर्वोपिर यह पुष्टिमार्गीय फल निश्रयही सिद्ध होयगो यह विश्वासहे ॥ १८॥

इतिश्रीहरिरायजीकृतं सप्तविंशतितमंशिक्षापत्रंश्रीगो-पेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम्॥ २७॥

शिक्षापत्र २८.

अव अष्टाविंशतितम शिक्षापत्रमें अपनी दीनताके आविर्भावपूर्वक श्रीमगवानकी प्रार्थनाको प्रकार निरूपण करतहें । उपर कहे जो सर्व साधनकरि रहित तथा सेवाकरि रहितहों तोहू श्रीआचार्यजीमहाप्रभु-जीके चरणाश्रयतें फल होयगो सो फल कोन भांति होयगो सो आगें कहतहें जो आश्रयतें दैन्य स्फुरे सो फलरूप हे सो दीनता आगें वर्णन करतहें—

मूलं-कदा नंदात्मजः स्वेषु कृपादृष्टिं करिष्यति। प्रतीक्षयैवासमदादिमनः श्रांतं सहेद्रियेः॥ १॥

शब्दार्थः-श्रीनंदरायजीके पुत्र अपने भक्तनकी उपर कव कृपादृष्टि करेंगे? यह प्रतीक्षा [राह देखनी ता]करिकेंही अस्मदादिकनको मन, इंद्रियनसहित श्रांत [शिथिल] होयगयोहे ॥ १॥ टीका-अव श्रीह-रिरायजी विज्ञित करतहें जो नंदात्मज श्रीकृष्णहे यह कहिकें श्रीनंद-रायजीके पुत्र कहे वसुदेवजीके नांही काहेतें जो यह पुष्टिमार्गमें नंदकुमारही सेव्यहे श्रीशुकदेवजी नंदमहोत्सवके अध्यायमें कहें "नंदस्त्वात्मज उत्पन्न जाताहादो महामनाः " (श्री नंदरायजी आत्मातें उत्पन्न एसे पुत्र भये तत्र भयोहे आनंद जिनकों ओर वहे मनवारे जातकर्म करावनलगे) यह वाक्यतें नंदरायकी आत्मातें प्रकटे एसे श्रीकृष्ण मावात्मक पुष्टिपुरुपोत्तम मोकों अपने स्वकीय निजभक्त जानि अपनी कृपादृष्टि कव करेंगे? यह प्रतीक्षा करत करत अस्मदादिकनको मन इंद्रियनसहित शिथिल होयगयो सो श्रीगुसाईजी विज्ञप्तिमें कहेहें "यादृशी तादृशी नाथ! त्वत्पदा-ज्जैकिकंकरी। त्वद्धकं कथमप्याशु कुरु हुग्गोचरं मम " (हे नाथ! में जेसी हों तेसी एक आपके चरणारिवंदकीही दासी हों तासों केसेंहू आपको मुखारविंद शीघ्र मेरे दृष्टिगोचर करो)॥ १॥

मूलं करणावारिधिः स्वीयनिधिः सर्वाधिकः प्रभुः। उपेक्षते कुतः स्वीयानिति चितातुरं मनः ॥ २॥

शब्दार्थः -दयाके समुद्र, अपने निधिरूप, सर्वतें अधिक, प्रमु अपने निजमक्तनकी क्यों उपेक्षा करतहें ? एमें चिंतातुर मनहे ॥ २॥ टीका - हे श्रीकृष्ण ! तुम केसेंहो करुणाके निधिहों और सगरे प्राणि-मात्रके सर्व जगतके प्रमुहो ताहूमें स्वीय जो तुझारे भक्तहें तिनके तो सर्वस्व निधिहों एसे प्रमु स्वीय अपने भक्तनकी उपेक्षा क्यों करतहों ? यह चिंताकरिकें मनतें आतुर भयोहं सो श्रीग्रसांईजी विज्ञिप्तमें कहेंहें "हा नाथ ! जीविताधीश! राजीवदललोचन!। यथोचितं विधेहीति प्रार्थनं तावकस्य में "(हा नाथ! जीवितके अधीश! कमलदललोचन! जेसे योग्य होय तेसें करों यह तुझारों जो हूं इनकी प्रार्थनाहें) हे नाथ कमललोचन! में तुमसों प्रार्थना कहा कुई ? तुझारी कृपातें जीवतहों सो यह विप्रयोग उचित हे तातें में प्रार्थना कहा करूं ? तुम सर्वज्ञ हो सब जानतहो ॥ २॥

मूलं-निजानंदिनिमग्रस्य भवेद्यद्यपि विस्मृतिः। भक्तार्थमवतीर्णस्य कृपालोरुचिता न सा॥ ३॥

शब्दार्थः —अपने आनंदमें मम एसेकों यद्यपि विस्मृति होयें तथापि भक्तके अर्थ मकट भये एसे दयालुकों यह विस्मृति उचित नांहीहे ॥ ३ ॥ टीका —हे श्रीकृष्ण ! तुम अपने आनंदमें रात्रिदिन मम रहतहो तासों यद्यपि संसारादिक भावकी विस्मृतिहे तोहू अपने भक्तनके अर्थ तुम अवतार लियेहो तातें ओर तुम परमकृपालहो तातें तुद्यारे भक्त जो संसारमेंहे तिनकी विस्मृति नांही करोगे कृपा करि अंगीकारही करोगे सो । श्रीगुसाईजी विज्ञित्तमें कहेहें "त्वदंगीकृतयों जीवेष्विकारा यतः प्रभो ! । अतस्ते न विचाराईाः कृपां कुरु कृपा-निघे ! " (जीवनमें जासों तुद्यारी अंगीकृतिरूप अधिकारहे तासों हे प्रभो ! हे दयाके निधि ! यह जीव विचार करिवेयोग्य नांहीहे तासों कृपा करो) हे नाथ ! तुद्यारो अंगीकृत जीवहे तुद्यारे अधिकारयोग्यहे सो इहां लौकिकसंवंधतें तुमकों भूलेई अधिकारयोग्य नांही हे तोहें तुम कृपासमुद्रहों तासों हमपर कृपाही करो ॥ ३ ॥

मूलं-कं प्रार्थयेयुस्ते दीना विहाय निजनायकम् । तदेकशरणा नित्यं विमुक्ताः सर्वसाधनैः ॥ ४ ॥

शब्दार्थः-सर्वसाधनकरि रहित, नित्य येही एकहे शरण जिनकों एसे, दीन भक्त अपने पतिकों छोडिकें कोनकी प्रार्थना करे ? ॥ ४ ॥

१ अपने आनंदात्मक धाममें विराजत होय वा समय तो जीव स्मरणमें न आवे परंतु मक्तके अर्थ प्रकट भये तब तो भक्तको स्मरण राखनो चहिये सी स्मरण न रहे यह गोग्य नांही.

टीका-हे नाथ ! हम तुमतें कहा प्रार्थना करे ? हम दीनहें तुमकों हम अपने नायक (पित) जानतहें तुम विना ओर कोईकों हम नांही जानतहें ओर हम सर्वसाधनकिर रहितहें तातें नित्य तुद्धारे शरणहें यही भरोंसोहे । साधन होतो तो कछु प्रार्थना करते सो नांही हे तातें तुद्धारों आश्रयकिर तुद्धारे शरणहे । सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी विवे कधैर्याश्रयग्रंथमें कहेहें "अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हिरः" [अशक्य अथवा सुशक्यमें सर्वथा हिर शरणहे] यह वाक्यकों विचारी ओर उपाय हमकों नांही सूझतहे तातें तुद्धारे शरणहे ॥ ४ ॥

मूलं-मन्नाथ! नाथये नृनं भवामि विरहाकुलः। दर्शनं स्पर्शनं वापि देहि वेणुस्वरश्रुतिम्॥५॥

शब्दार्थः —हे मेरे नाथ ! में आपके विरहकरिकें आकुल भयोहं तासों निश्रय में प्रार्थना करूं हुं जो [सेवामें] दर्शन, स्पर्शन ओर वेणुस्तरकी श्रुतिकों हू देहो ॥ ५ ॥ टीका —हे श्रीकृष्ण ! तुम मेरे नाथही ओर में महाविरहकरिकें आकुल भयोहं यह संसारके कार्यमें तत्परहों ओर तुह्यारि सेवा भगवद्धमंकरि रहितहों तासों संसारामिपीडितहों सो श्रीगुसाईजी विज्ञप्तिमें कहेहें—"त्वहर्शनविहीनस्य त्वदीयस्य तु जीवितम् । व्यर्थमेव यथा नाथ ! दुर्भगाया नवं वयः " [तुह्यारे दर्शनकिर रहित तुह्यारे भक्तनको जीवित, हे नाथ ! विधवाकी नवीन अवस्थाकीनाई व्यर्थ हे] तुह्यारे दर्शन विना त्वदीय तुह्यारे भक्त जीवेहें सो व्यर्थ हे जेसे दुर्भगा (खोटे भाग्यवारी विधवा) को जोवन व्यर्थ हे तातें श्रीहरिरायजी कहतहें जो हमकों दर्शन देहो ओर श्रीअंगको स्पर्श करावो [अर्थात् सेवा करावो तामें दर्शन ओर चरणस्पर्श होय]ओर वेणुनादकिर वेणुद्धारा हमारे हदयमें सुधा धरो

१ विधवाको जोवन होय सो ओरको तथा अपनकोह दुःराहर होय तेसँ भग-चानके दर्शन निना मक्तको जीवित अपनेको तथा ओरको दुःराहर होयहँ.

त्तव हमकों सुख होय विरहामिकरि व्याकुल हे तातें केवल दर्शनहीतें -दुःख दूरि न होयगो दर्शन, स्पर्श ओर वेणुनादके सुरतें हृदयमेंतें दुःख दूरि होयगो तासों या भांति सुख देहो ॥ ५॥

मूलं-निजाचार्याशितानस्मान्यदि कृष्ण प्रहास्यसि। गमिष्यति हरे! नाथ! प्रतिज्ञेव तदा तव॥६॥

रान्दार्थः -अपने आचार्यजीके आश्रित एसं हमकों जो हे श्रीकृष्ण! तुम त्याग करोगे तो हे नाथ! हे हरे! तुह्यारीही प्रतिज्ञा जायगी।।६॥ टीका-अपने श्रीवलभाचार्यजीके आश्रित पुष्टिमार्गीय तदीयनकों हे नाय! खोटे जानि दोप देखिके छोडोगे तो तुह्यारी निश्रय प्रतिज्ञा भंग होयगी तातें कृपाकरों काहेतें जो तुम श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीतें प्रतिज्ञा करीहे जो जिनकों ब्रह्मसंबंध कराओगे तिनके सकल दोप दूरि होयंगे तिनकों में अंगीकार करतहों।सो सिद्धान्तरहस्यमें कह्योहे "ब्रह्मसंबन्धकरणान्सवेंपां देहजीवयोः। सर्वदोपनिचृत्तिर्हि दोपाः पंचिवधाः स्मृताः"॥ (ब्रह्मसंबंध कियेतें सवनके देह जीवके सर्वदोपकी निश्रय निचृत्ति होतहें सो दोप पांच प्रकारके हे) इत्यादि बचनतें तुम हमारे दोप देखोगे तो तुह्यारी प्रतिज्ञा जायगी तातें अपनी प्रतिज्ञाके छिये श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके आश्रित जानि हमपर कृपा करो॥ ६॥ स्मृतं—वयं तु सर्वथा दुष्टाः स्वधमीवसुरवा अपि।

मूलं-वयं तु सवेथा दुष्टाः स्वधमविमुखा अपि। त्वमस्मदीयान् मा धर्मान् गृहाण गुण्पूरितः॥७॥

शब्दार्थः -हम तो सर्वथा दुष्टहें ओर स्वधर्मतें विमुखहें तोहू तुम गुण किर प्रितहों सो हमारे धर्मकों मित यहण करो।। ७॥ टीका -हम सर्वथा दुष्टहें वालापनतें दुष्टही आचरण कियेहें अपने पुष्टिमार्गतें विमुखहें कवहू पुष्टिमार्गतें भावसहित सेवा नांही करीहें तातें अपने स्वधर्मतें विमुखहें ओर हे नाथ! तुम केसेहों सर्वगुणकरिके पूर्णहों

सो अस्मदीय (अपने दासजन) के धर्मकी चाहना नांही करोगे? कृपा करो अवगुणी हमसारिखेपर निश्चय प्रमेयवलतें कृपा करोगे सो विज्ञित्तमें श्रीगुसांईजी कहेहें "वालिष्ठा अपि महोपास्त्वत्कृपाग्रेऽतिदुं विलाः। तस्या ईश्वरधर्मत्वात दोपाणां जीवधर्मतः" (यद्यपि हमारे दोप वोहोत वालिष्ठहे तोह तुझारी कृपाके आगें दुर्वलहें काहेतें जो तुझारी कृपाहे सो ईश्वरधर्महे ओर दोप हे सो जीवधर्महे) सो ईश्वरधर्मके आगें जीवधर्म तुच्छ हे तातें कृपा करो ॥ ७॥

मूलं-कृपालो ! पालनीयानां ग्रणदोषविचारणा । न न कार्या स्वीयशरणविहितं वरणं यदि ॥ ८॥

शब्दार्थः —हे कृपायुक्त! आपके शरणसों भयो एसो जो वरणहे तो आपकों पालन करिवेयोग्य जो जीवहे इनके गुणदोपकी विचारणा नांही कर्त्तव्य हे।। ८।। टीका—हे नाथ! तुम कृपालुहो सो पालन करों हमारे गुणदोपको विचार तुम मित करों, काहेतें जो हम तुहारिहें श्रीआचार्यजीद्वारा हमारो धर्म तुमतें भयोहे तातें हमारो वरण भयोहेसी अपने कार्यके लिये सेवा, टहल, जो धर्म हे सो कार्य मोसों न विश्वायों और उलटो अपराध अनेक दोप वन्यों सो तुम मेरी और मित देखें आपुन वरण जानि कृपा करों सो श्रीग्रसाईजी विज्ञित्तमें कहेंहें "त्वदं-गिकृतयों जीवेण्वधिकारा यतः प्रभों। अतस्ते न विचाराहीः कृपों कुरु कृपानिधे!" (हे प्रभो! जीवमें तुह्यारी अंगीकृतिह्य अधिकारहे तासों (वे योग्य होय अथवा दोपकिर अयोग्य होय तोहू) वे विचार करिवेयोग्य नांहीहे ताते उनके दोप मित विचारों आए कृपाके निधि हो सो कृपा करों)।। ८।।

मूलं-अश्रांतोऽपि हरे! दोपगणनायां मम प्रभो!। श्रममेष्यसि'गोपीश! ततो विस्मर सर्वथा ॥९॥ राज्यार्थः—हे हरे! आप श्रमरहित हो तोहू हे प्रभो! मेरे दोपनकी गणनामें श्रम पावेंगे। तासों हे गोपीजनके ईश! सर्वथा वह दोपनकों विसरिजाओ ॥ ९॥ टीका—हे नाथं! तुम कोयवातमें हारो नांही तुमकों कबहू कोई कार्यमें श्रम न होय एक श्रणमें चाहो सो करो एसे सामर्थ्ययुक्त यद्यपि हो तोहु मेरे दोपकी गणना तुम करोगे तो तुमकों श्रमही होयगो। मेरे अपार दोपहें तातें हे गोपीश! (यह संवोधन किह यह जताये जो तुम गोपीके ईशहो विनासाधन गोपीजनपें कृपा करि तेसें हमारी उपर कृपा करो) सर्वथा हमारे दोपकों विसरिजाओं सो श्रीगुसांईजी विज्ञासमें कहेंहें "अपराधेऽपि गणना नैव कार्या अजाधिप!। सहजेश्वर्यभावेन स्वस्य श्रद्धतया च नः" (हे ब्रजके अधिप! विनःसाधनके फलात्मक! हमारे अपराधकी गणना करनी तुझें जित नांहीहें काहेतें जो तुझारों सहजेश्वर्यहें ताके आगें हमारे दोप श्रुद्रहें सो कहां) तानें कृपा करो ॥ ९॥

मूलं-दीनेषु ग्रणलीनेषु (हीनेषु) तावकीनेषु मत्प्रभो। प्राधीनेषु करुणा करणीयेव सर्वथा॥१०॥

राधीन, एसे जो तुझारे भक्तहे तिनकी उपर सर्वथा छुपाही करनी योग्य है।। १०॥ टीका-हे नाथ! में अत्यंत दीन हों, दुःखी हों, काहेतें जो मायाके छुणकरि संसारादिकमें लीनहों ओर पराधीन हों एसे दोपकरि दीनहों तोहू तुझारो हों तातें मेरे उपर सर्वथाही करुणा करियें। सो विज्ञिसमें श्रीग्रसाईजी कहेहें "कालकमीधीनतां यत्करोपि मिय संदर!।, तंदप्यनुचित्तं यस्मात्वदीयोऽस्म्युररीकृतः" (हे संदर! मोपें काल-कर्मके आधीनपनो जो आप करतहो सोहू योग्य नाहीहे, काहेतें जो

में आपकों हों एसें अंगीकार कियोहे) हे सुंदर श्रीकृष्ण ! में काल-कर्मके आधीनहों तोहू तुझारोहों तातें अपनो जानि कृपा करो।।१०॥ मूलं-निःसाधना गतधना मनोदीनाः सुदुःखिताः। निजाचार्याश्रिताः शोकलोभमोहभयाकुलाः॥११॥ भवन्ति ते कृपापात्रं महोदार ! दयानिधे ! । ं प्रयच्छ करुणां तेभ्यो दत्तं पात्रेऽक्षयं भवेत् ॥१२॥ . शब्दार्थ:-निःसाधन, गयोहे धन जिनको एसे, ताकरि मनमें दीन, ं अत्यंत-दु:खी, अपने श्रीआचार्यजीके आश्रित, शोक, लोभ, मोह,भ्य किरिकें व्याकुल, ॥ ११ ॥ एसे जो हें सो आपकी कृपाके पात्रहें तासी . हे बड़े उदार ! दयाके निधिरूप ! इनकों करुणा देहो काहेतें जो पत्रिमें दियो' सो अक्षय होय ॥ १२ ॥ टीका-में निःसाधनहों मेरेमें के हि ' साधन नांहीहे भावरूपी धनहू गयोहे ताकरि अति दीनहों वोहीत' दुःची हों ओर अपने श्रीआचार्यजीके आश्रितहों ओर शोक, लोग, ' मोह, भय, यह मायाके गुण करिकें व्याकुलहों ॥ ११ ॥ उपर कहें एसे होय तो प्रभुके कृपापात्र होय तार्ते श्रीहरिरायजी कहतहें जो मेंहू एसोहं तुहारे ऋपापात्रहों तुम महोदारहो दयाके निधिहो तार्ते दया करो पात्रमें दान दियो सो अक्षय होतहे सो में दयाको, पात्रही तातं दया करो ॥ १२ ॥

मूल-संसारदावदग्धानां जीमृतजलकांक्षिणाम् । न नीलजलदानंतजलदानं विना सुख्म् ॥ १३॥ शब्दार्थः-संसाररूपी दावानलतं दग्ध एसे ओर मेघके जलकी इंब्छावारेनकों स्थाममेघके अनंत जलके दान विना सुख न होय ॥ १३॥ टीका-अब लोकिक दृष्टांत कहतहें। वनमें दावानलतें वनके

सगरे जीव आदि ज़रते होय'तिनकों शीतल करिवेको एक मेघजल

वरखे येही उपायहे और कोई उपाय नांहीहे। यद्यपि जलतें समुद्र, नदी, अनेक भरेहें परंतु वनमें दावानलकों मेघ जलदान करि नियुत्त करें तब होय, तेसही यह मायासंबंधी देहसंबंधी अहंताममता-रूप यह दावानलमें जरतहें तिनको नीलमेघरूप श्रीगोवर्धननाथजी अपने आनंदरूप अनंत जलको दान करें (बडीक्रपाकरे) तबही यह पुष्टिमार्गीयवैष्णवकों सुख होय ओर कोड उपाय नांही ॥ १३॥ मूलं-ये मयांगीकृताः सर्वे त्वत्सेवाये गृहस्थिताः। त एव भावनाज्ञाय भवंति करवे किमु॥ १४॥

शब्दार्थः — आपकी सेवाके लिये गृहमें रहे एसे जो मेने अंगीकृत कियेहे यहही भावको नाक्ष करिवेकों तत्पर होतहे सो अब में कहा कुरू १ ॥१४॥ टीका—जो हमने सेवक कियेहें तिनकी प्रार्थना प्रमुसों किर अंगीकार कराये एसे अंगीकृत सेवक वोहोत कियेहे। सो काहतें जो मोसों गृहस्थाश्रममें भलीभांति सेवा नांही वान आवतहें 'तासों अपने गृहमें स्थितहे तिन सवनकों सेवक किर सेवारीति वताई हे सो मेरे सेवक तुहारी भली सेवा करेंगे तो मोकों सुख होयगो यह जानि अपनी सहायके लिये अपने गृहस्थित अंगीकृत किये हैं सो वे गृहस्य भगवानकी सेवामें भावनाक्ष होय एसो उलटो कृत्य करतहें सो में कहा कुरू १॥१४॥

मूलं-बहिर्मुखाः प्रकुर्वति स्वसंबंधं बहिर्मुखम् ।

सहायताश्रमादेव न हातुमहमुत्सहे ॥ १५ ॥ शब्दार्थः – विहर्भुखहे अपने संबंधतें मोकों विहर्भुख करतहें अथवा विहर्भुख अपने संबंधकों बहिर्मुख करतहें परंतु यह सहायता करेंगे एसं अमसोंही में 'इनकों छोडिवेकों उत्साह नाही करतहों ॥ १५ ॥ रीका – जो जीव स्वभावतें विहर्मु- खहे सो अपने संबंधतें सगरे जीवको, बहिर्मुख करतहे सो मेनें अमसों, अपनी सहायता करेंगे एसें जान्यो तासो अंगीकृत किये सो वे उलटे चलतहे भगवत्सेवा नांही करतहे तोहूं उनकों छोडिवेको उत्साह नांही करतहों ॥ १५॥

मूलं-सहायभ्रममुत्पाद्य वंचयंति यथा जनम्। मार्गस्थितं तथा नाथ! वंचितोऽहं गृहस्थितैः॥ १६॥

शब्दार्थः — जेसं ठगपुरुप मार्गमं रहे मनुष्यकों सहायको अम उत्पन्न करिकें ठगतहे तेसें हे नाथ! में गृहस्थित जनसों ठगायो हों ॥१६॥ टीका—मेनें अमकरिकें अपनी सहायताके अर्थ सेवक किये तामें उलटो ठग्यो गयोहूं हे नाथ! मार्गस्थित जनकों जेसे कोई ठगे तेसें गृहस्थ वैष्णवनें मोकों ठग्यो॥ १६॥

मूलं-यथांधकूपपतितं मंडुका दुःस्वरैर्जनम् । व्यथयंति तथा महां दुर्वचोभिगृहस्थिताः ॥ १७॥,

शब्दार्थः—जेसं अंधक्पमं गिरे जनकों मंडक दुष्टस्वरसों व्यथा करतहें तेसे मोकों गृहस्थित दुर्वचनसों व्यथा करतहें ॥१७॥ टीका— लोकिक दृष्टांत कहतहे—जेसे अंधक्पमें परचो होय ताकों मेंडक दुष्ट-स्वरतें वोले सो भय उपजावे तेसें गृहस्थित अनेकलोकके दुर्वचन सुनिकें मोकों महाभय होतहे गृहमें स्थित एसे मनुष्यके अनेक भातिके वचन सुनिके मेरे मनमें व्यथा होतहे ॥ १७॥

मूलं-कियत्पर्यतमेवं हि महपेक्षां क्रिष्यसि।

त्यक्तो वा दोपसाहित्यादिमुखोऽहं दयालुना।१८। शब्दार्थः-कितनेक दिनपर्यंत एसेंही मेरी, उपेक्षा करोगे ? किंवा दोपसहित में हों तासी विमुखहों सो दुयालुनें त्याग कियो ? ॥१८॥ टीका-तातें हे नाथ! एसो दुःखी में हों सो मेरी उपेक्षा करोंगे के मोकों दोपसहित जानिकें त्याग करोंगे? परंतु में यह मनमें जानतहों जो तुम दयाल हो तातें त्याग तो कबहू न करोंगे सो श्रीग्रसाईजी विज्ञित्तमें कहेंहें "चित्तेन दुष्टो वचसापि दुष्टः कायेन दुष्टः कियया च दुष्टः। ज्ञानेन दुष्टो भजनेन दुष्टो ममापराधः कितधा विचार्यः" (चित्तहू दुष्टहे तुह्यारेमें नांही लागत, वाणी हू मिथ्यामापणतें दुष्टहे, कायाहू तुह्यारे सेवा नांही करत तातें दुष्टहे, कियाहू लोकिक करि-यतहे, ज्ञानहू दुष्टहे, भजनहू निष्कपटतासों नांही होतहे तातें हे नाथ! हमारो दोप (अपराध) कहांताँई विचारोंगे? तातें कृपा करों।। १८।।

मूलं-त्यक्तः कुत्र गमिष्यामि न मेऽस्ति शरणं काचित्। नावमारोप्यदीनं स्वं मध्येधारं न मज्जयं ॥१९॥

शब्दार्थः — आप त्याग करो तो में कहां जाउंगो ? मोकों काहू जगे शरण नांहीहे। दीन अपने जनकों नावपर वेटायके धाराके मध्यमें मित डुवावो। १९॥ टीका — हे नाथ! तुम ईश्वरहो कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं सर्वसामर्थ्ययुक्तहो सो यह जानो मेरे शरणलायक यह नांहीहे यह विचा-रिकें कदाचित त्याग करो तो हम कहां जाय? हमारे तुमविना ओर कहं ठिकानो नांहीहे तुह्यारी शरणविना रंचकहू काहूकों नांही जानत। तातें तुम त्याग करोगे तब मेरी कहा दशा होयगी? जेसें नावमें वेठाय मध्य-धाराके वीचमें नाव छोडदेई तो उह कहा करे ? तहां खेबटही सहाय होय तो पार लगे ओर उपाय नांहीहे तेसेंही हम तुह्यारे पुष्टिमार्गरूपी नावमें वेठेहे अब तुह्यारे मनमें आवे तेसी करो।। १९।।

मूलं-निजाचार्यकुले जन्म किमर्थं विहितं मम। विहितं चेन्मयि सदा दोपपीने कृपां कुरु॥२०॥ शब्दार्थः -अपने आचार्यकुलमें मेरो जन्म काहंकों कियो ? जव कियो तब सदा दोपसों पुष्ट एसो जो में ताकी उपर कृपा करो ॥२०॥ टीका - भलें तुम मेरो त्याग करोगे तो तुमसों हमारी कहा कल्ल चलतहे ? परंतु यह में कहतहों जो निज (हमारे) श्रीआचार्यजी श्रीवल्लभाचार्य-जीके कुलमें हमारो जन्म क्यों दियो ? तुम प्रथम नांही जानत हते ? अब छोडतहो में तो सदा दोपकरिकें भयों हों तार्ते कृपाही करो॥२०॥, मूलं-असंगः सर्वथा दूयेऽसत्संगसहितोऽप्यहम् ।

यथाऽरणये परित्यक्तः कादिशाको मृगादनैः ॥२१॥

श्राचार्थः—में असत्पुरुपनके संगसहितहों सो इनसों सर्वथां असंग [संगदोप न लगे तेसं दूरि] रहतहों तोह खेद पावतहों जेसे वनमें परित्यक्त ओर दिङ्म्ढ (माथो फिरगयो तासों दिशा भूल गयो) पुरुप मृगादन जो सिंहादिक ताकरि भय पावे तेसे में असत्संगसों भय पावतहों ॥ २१ ॥ टीका—हे नाथ ! असत्संग मोकों दशोदिशातें ' धेरेहे यह मोकों वडो दुःखहे। रंचकहू कुसंगतें बुद्धि विगेरे तो सर्व ओरतें मोकों दुःसंग वेष्टितहे तातें सुंदरबुद्धिको नाश भयोहे ओर सत्संगतें सर्वधर्मको तोप होय सो सत्संग मोतें वोहोत दूरिहे तातें में अकेलोहूं दुःसंगके मध्य वेष्टितहों तिनसों डरपतहों सो मेरी कहा दशाहे जेसें अरण्य वनमें अकेलो छोडि देई सो सिंहकी गरज दशोदिशा सुनि कोन दिशाकों जाय तेसिंह मोकों भईहे सो कोन दिशाकों जाऊं सो उपाय दीसत नांही ॥ २१ ॥

मूलं–जातपक्षाः खगाः स्वीयजननीं चत्यजीते हिं। यथा तथा करालेऽस्मिन् कालेऽहं भगवजनैः॥२२॥

१ जातपक्षान् रागान् स्वीयजननी त्यजति ध्रुवम् । एसो कहुं पाठहे ताके अनुसार अर्थ जेसं पांरा उत्पन्न भई एसे पक्षीको भाता निश्चय छोडतहे तेस मोको थोरो भाव भयो और यह करालकालमें भगवटीय जनने छोडटियो ।

शब्दार्थः — जेसें पांख उत्पन्न भये एसे पक्षी अपनी माताकों छोडि देतहे (फिर माताकिर रहित होतहे) तेसें में भगवानके जन जो: भक्त ताकिर रहित होय गयोहूं ।। २२ ।। टीका—मेरी कहा अवस्थाहे जेसें खग जो पक्षीहे ताके वचाकों जब पांख होय तब उह वचा अपनी जननी जो माता ताकों ताजिकें अनेक वनमें उडिजातहें, तेंसेंहि हमारे पास भगवदीय कथा वार्ता करते सो यह करालकालमें मोकों छोडिगये सो में कहा करूं? ।। २२ ।।

मूलं-चिंतापारावारे पतितस्यात्रेव मग्रस्य।

एतज्ञलवडवाग्निः शरणं श्रीवहाभाचार्याः ॥ २३ ॥

शन्दार्थः—चिंतारूपं समुद्रमें गियों ओर यामेंही इन्यो एसो जो में ताकों वहजलके शोपणमें वहवानलरूप श्रीवलमार्यार्थजी शरणहें ।। २३ ॥ दीका—भगवदीयके संगविना मेरे हदयमें एसी चिंताहे जाको पार नांही। चिंतारूपसमुद्रमें ममहों तहां दृष्टांत कहतहें जेसे कोड महागंभीर पानीके समुद्रमें मम भयो होय ताकों एक वहवा-मिही सहायभूतहे एकश्रणमें सगरो पानी शोप लेय ओर कोड नांही तेसेंही मे यह संसाररूप भवसागरके चिंतारूपजलमें मम पयोंहों नामें एक श्रीवलमार्चार्यजीही शरणहे यह उपायहे श्रीमहाप्रभुजी अलोकिक अमिरूपहे सो एकश्रणमें सगरी चिंता संसारदुःख सव शोपलेयंगे यहः उपायहे ॥ २३॥

मूलं-हा कृष्ण! हा नंदसूनो! हा यशोदाप्रियार्भक!। हा गोपिकाहृदाधार!धारयस्व करेण माम् ॥२४॥

शब्दार्थः-हा श्रीकृष्णं! हा श्रीनंदरायजीके पुत्र! हा श्रीयशोदाजीके श्रियपुत्रं! हा श्रीगोपीजनके हृदयके आधार! श्रीहरत करि [उपर्काकों कहे एसे समुद्रमें ममहों तातें] मोकों पकरि लेउ। २४॥ टीका-उपर कहे याप्रकार श्रीहरिरायजी दीनता करत हते सो दीनता.

करत करत विषयोगात्मक अग्नि हृदयमें प्रकट भयो सो अत्यंतिवरहसों देहानुसंधान भूलिकें वोले हा कृष्ण ! यह फलात्मक नाम श्रुतिरूपकें भावतेंहे १. हा नंदसुनु ! श्रीनंदरायजीके पुत्र जेसें श्रीनंदरायजीने हम पाले तेसें तुमहू पालों यह दूसरों नाम कुमारिकाके भावतेहें २. हा श्रीयशोदाजीके प्राणिपय पुत्र ! यह श्रीयमुनाजीके भावतेहें ३. पालें कहे हा गोपीजनके प्राणआधार ! यह मुख्य श्रीस्वामिनीजीके भावतेहें ४. यह चारो नाम लेय कहे जो एसे प्रभु विषयोगसमुद्रमें हम परेहें तिनको अपने करतें उद्धार करो ॥ २४ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतमष्टाविंश्वातितमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतत्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम्।२८।

शिक्षापत्र २९.

अव एकोनित्रंश शिक्षापत्रमें बुद्धिको नाश करिवेवारो यह काल आयोहे तासों सत्संग, श्रीकृष्णस्मरण ओर शरणागतिरूप साधनकरि बुद्धि स्थिर राखनी. एसें न करे तो सर्वकृति व्यर्थहे, तासोंही श्रीआ-चार्यजी [बुद्धिप्रेरक श्रीकृष्णके चरणकमल प्रसन्न होत्र] एसें प्रार्थना करि गायत्रीको अर्थ वतायोहे। सो श्रीकृष्णस्मरण ओर शरणागतिसीं प्रमुही बुद्धि स्थिर राखेंगे यह निरूपणहे। उपर कहे ताप्रकार दैन्यतें विषयोग प्रकट होय तव भगवद्धर्म सिद्ध होय सो बुद्धि कोनप्रकार स्थिर रहे सो आगें कहतहें-

मूलं-बुद्धिनाशककालोऽयं सर्वेषां समुपागतः। अतो हि सर्वथा गोप्यं बुद्धिरत्नं सुबुद्धिभिः॥१॥ शब्दार्थः—सवनकी बुद्धिको नाश करिवेवारो काल यह आयोहे तासों बुद्धिवारेनकों अपने बुद्धिक्प रत्न सर्वथा छुपाय राखनों।।१।। टीका—यह वर्तमान कलिकालमें सवकी बुद्धिको नाश भयोहे काहेतें जो यह कलियुगमें अनेक धर्म भये हे तासों विचारे जो यह धर्म न भयो तो कहा विगरतहे ओर धर्म लेउंगो एसें बुद्धि धर्मतें अष्ट होय-गई तातें जा बुद्धितें सुधर्म होतहे वा तो कालने हिर लीनीहे ताकरि सुंदर धर्मको (स्वरूप नांही समुझिसके तासों) नाश भयो, कुबुद्धितें विपरीत आचरण करन लागे तातें कहतहे जो तुम सावधान रहियो यह काल सर्वबुद्धि हरनकों आयो हे तातें सुबुद्धि जो वैष्णव हे सो अपनी बुद्धिक्प रत्नकों बंटीमें धरि यत्नसों राखियो काहुसों न जताईयो काहेतें जो रत्न यत्निवना रहे तो चोर लेजाय तेसें बुद्धिक्प रत्न यत्नकिर राखेंगे तिनहींको रहेगो॥१॥

मूलं-सत्संगकृष्णस्मरणशरणागतिसाधनैः। तदभावे कृतिः सर्वा यतो वैयर्थ्यमेति हि॥२॥'

शब्दार्थ: -सत्संग, श्रीकृष्णको स्मरण, ओर शरणागतिरूप साधन करि बुद्धिकी रक्षा करनी जो ऐसें रक्षा न करे तो सर्व कृति व्यर्थ होयजायगी ॥ २ ॥ टीका-अब श्रीहरिरायजी बुद्धिरक्षणको उपाय कहतहें। सदा पुष्टिमार्गीय वैष्णवके सत्संगर्मे रहे ओर अपने मनमें ध्यान करि श्रीकृष्णके स्वरूपको स्मरण करे ओर श्रीकृष्णके शरणकी भावना सदा मनमें राखे। श्रीकृष्णाश्रयमें अष्टाक्षर कहेहें सो शरणकी भावना करे काहेतें जो भावविना किया करे सो सब व्यर्थ हे जेसें राखमें होमे ताको कहा फल ? तेसेंही भाव विना जो करे सो सब व्यर्थ हे ॥ २ ॥

मूलं-अत एवोक्तमाचार्येः स्वकीयकरुणात्मिभः। बुद्धिप्रेरककृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदत् ॥ ३॥

शब्दार्थः—तासोंही स्वकीयजनकी उपर दयाछ श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें जो बुद्धिके प्रेरक श्रीकृष्णके चरणकमल प्रसन्न होउ ॥३॥ टीका—तहां कोई कहे जो यह बुद्धिरत्नके जतनको प्रकार तुमही कहतहों के कहूं सुनेहे? तहां कहतहे जो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी श्रीमुखतें कहतहें जो "बुद्धिप्रेरककृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु" बुद्धिके प्रेरक श्रीकृष्णके चरणारविंदकी प्रसन्नतातें सुंदर बुद्धि होतहे तातें मन, वचन, कम, करि श्रीकृष्णके शरण जो कोई रहेगो तिनकी सुंदर बुद्धि होयगी ओरकी नांही ॥ ३॥

मूलं-उपंकारोऽपि गायत्र्या ध्यानहेतुरयं मतः। गीताथां हरिणाऽप्युक्तमर्जनं प्रति मोदतः॥ ४॥ 'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयांति ते'। बुद्धिस्यूर्यं हरिस्यूर्यं हरिति न संशयः॥ ५॥

शब्दार्थः - बुद्धिप्रेरक श्रीकृष्णके पादपद्मकी प्रसन्नताकी प्रार्थनारूप यह उपकारहु गायत्रीके ध्यानको कारणरूपहे गीताजीमें श्रीकृष्णनें अर्जुनप्रति आनंदसों कह्योहे ॥ ४॥ जो यह बुद्धियोग में देतहों जाकरि यह मोकों प्राप्त होयहे बुद्धिकी स्थिरता होय तब हृदयमें हिरकी स्थिरता होय यामें संशय नांही ॥ ५॥ टीका-गायत्री नाह्यणके वालककों देतहें ताके तृतीयपादमें बुद्धिके प्रेरणरूप अर्थ हे सो भगवान सुंदरबुद्धि करे यह इनको उपकारहे। काहेतें जो गायत्रीके उपदेशतें वेदके कर्मकी योग्यता होय तेसेंही बुद्धिप्रेरक श्रीकृष्णकी

१ उपक्रमोऽपि गायत्र्या एसो पाठ काह् पुस्तकमें हे ताके अनुसार अर्थ-बुद्धि-'प्रेरक श्रीकृष्णके पार्पभक्षी प्रसन्नताकी प्रायंनाको प्रारंभहे सोह गायत्रीके ध्यानको कारणहे.

कृपातं वैष्णवकी बुद्धि निर्मल होय सोहू प्रभुको उपकार है। काहतें जो बुद्धि निर्मल होय तो श्रीटाकुरजीको ध्यान होय सो गीताजीमें श्रीमगवान अर्जुन प्रति कहेहें ॥ ४॥ जो दूसरे अध्यायमें बुद्धि-स्थिरको प्रकार कहेहें ताप्रकार बुद्धि स्थिर होय तो भगवान हृदयमें स्थिर होय ओर बुद्धिको स्थिरता जाय तो हिर हृदयतें जात रहे निश्रय यामें संशय नांही। तातें गीताजीमें एक सगरो अध्याय बुद्धियोगको भगवान कहेहें काहेतें जो सुंदर बुद्धि होय तवही सगरे धर्म, जप, तप, दान, व्रत, मर्यादामार्गके साधन, कर्ममार्गके साधन, ज्ञानमार्गके साधन, योगमार्गके साधन, पुष्टिमार्गके साधन, सब बने सुंदर बुद्धि विना कछ कार्य सिद्ध न होय॥ ५॥

मूलं-तन्नाश एव गीतायां सर्वनाशो निरूपितः। अतो बुद्धिः सुसंरक्ष्या भावभावनकारणम् ॥६॥

शब्दार्थः — बुद्धिको नाश होय तो सवनको नाश गीताजीमें निरूपण कियोहे, तासों सर्वभावकी उत्पत्तिके कारणरूप बुद्धिकी आछी रीतिसों रक्षा करनी ॥६॥ टीका — बुद्धि जाभांति नाश होय ओर बुद्धिनाशतें आत्माको नाश होय सो भगवान गीताजीमें द्वितीय अध्यायमें कहेंहें "ध्यायतो विपयान पुंसः संगस्तेपूपजायते । संगात संजायते कामः कामात् कोधोऽभिजायते ॥१॥ कोधाद्भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिनिभ्रमः ॥ स्मृतिमंशाद्धुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणभ्यति ॥ २ ॥ या यचनतें भगवान् कहतहें हे अर्जुन ! जीव विपयमें प्रवृत्त होतहे सो विपयके ध्यानतें दुःसंग (संसारीको संग) होतहे तव अनेक भांतिके विपयकी कामना प्रकट होय तामें कछ विगरे अधवा विद्र आवे तव कोध होय कोधतें मोह होय मोहकरि स्मृतिविभ्रम होय जव अज्ञान होय अज्ञानतें छोकिक संसारिकों अपने जाने तिनके पालनार्थ

खोटी किया करे यागांति स्मृतिके भ्रमतें बुद्धिकों नाश होय, बुद्धिकें नाशतें आत्माको नाश होय, बुद्धि हे सो भगवद्भावके भावनमें कारण हे तातें बुद्धिकी रक्षा करे सो प्रकार आगे श्लोकमें कहतहें ॥ ६॥ मूलं-प्रसादभक्षणोर्नित्यं सेवनाकरणेरिप।

सत्संगेन सदा कृष्णकथाश्रवणकीर्त्तनेः॥७॥

शब्दार्थः - महाप्रसादके भक्षणकरि, नित्यभगवत्सेवा करि, सत्संग ओर सदा श्रीकृष्णकी कथाके श्रवण कीर्तन करि बुद्धिकी रक्षा करनी ॥७॥ टीका - उपर कहे जो बुद्धिकी रक्षाकरे तो सर्वकार्य सिद्ध होय सो बुद्धिकी रक्षा कोन भांति करनी सो कहतहें असमर्पित वस्तुमें अपनो मन चलायमान न करे सदा महाप्रसाद भक्षण करे और श्रीकृष्णकी सेवा नित्यकरे और भगवदीयको सत्संग करे दुःसंगको त्याग करे और श्रीकृष्णकी कथाको श्रवण करे श्रीकृष्णकी लीला तथा नामको कीर्तन करे तो बुद्धि निर्मल रहे तव प्रभु हृदयमें प्धारे ॥७॥

इति श्रीहरिरायजीकृतमेकोनित्रशत्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम्।२९।

शिक्षापत्र ३०.

अव त्रिंशत्तम शिक्षापत्रमें जेसें कर्मफलिसिद्धिमें देशादि पद साधनहें तेसें पुष्टिमार्गीय फलिसिद्धिमें हूं देशादि पद साधनहें और तिनको साधन सत्संगहे यह निरूपणहे। उपर बुद्धिकी रक्षाको प्रकार कहे परंतु काल दोपह बडोहे सो न लागे तब बुद्धि सुंदर रहे सो प्रकार कहतहें— मूलं—स्मत्तें च्यः सर्वदा कृष्णो विस्मत्तें जगत् पुनः! प्रपंचस्मरणे कृष्णस्मृतिनैव भवेदिति॥ १॥

प्रयतेत ततो जीवस्तदभावाय सर्वथा कुष्णार्थताभावनेन गृहादेविस्मृतिभवेत्॥ २॥

श्रव्दार्थः-सर्वदा श्रीकृष्ण समरण करिवेयोग्यहे ओर जगत् विस्मर-णकरिवेयोग्यहे प्रपंचको स्मरण होय तहांताँई श्रीकृष्णकी स्मृति नांही होय तासों ।। १ ।। प्रपंचकी विस्मृतिके अर्थ जीव सर्वथा यतन करे तातें श्रीकृष्णके अर्थ सर्व कियाकी भावना करिकें गृहादिककी विस्मृति होय ॥ २ ॥ टीका-सदासर्वदा श्रीकृष्णहीको स्मरणकर्त्तव्य हे सो अप्टमस्कंधमें शुकदेवजी कहेहें 'ते सभाग्या मनुष्येपु कृतार्था चृप निश्चितम् । स्मरंति स्मारयंति ये हरेर्नाम कलौ युगे " (जो किंखुगमें हरिको नाम स्मरण करेहें ओर स्मरण करावेंहें सो हे राजन्! मनुष्यनमें भाग्यसिहत ओर कृतार्थ निश्चयहें)यह वचनतें या कालमें श्रीकृष्णको स्मरण करे सो वडभागीहे ओर यह जगतमें संसारकी विस्मृति कर्तव्य हे काहेतें जो जहांताँई जगतमें देहसंबंधी अनेक पदार्थ कुटुंब, घर इत्यादिकमें मन लागीरह्योहे तहांताँई श्रीऋष्णके चरणमें न लगे तार्ते जगतकी विस्मृति राखे ओर प्रपंचको यह जाने जो सर्वके श्रीकृष्णही कारणहे तातें प्रपंच देखि श्रीकृष्णको माहातम्य विचारे जो प्रयंचके कर्ता ओर संहारकर्ता प्रभुहोहे याभाति प्रयंचके कारण श्रीकृष्णहीको समरण कर्त्तव्य है।। १।। श्रीकृष्णमें भाव होय यह प्रयत्न सर्वथा करे ओर श्रीकृष्णके चरणारविंद्में भावनाके अर्थ गृहादिककी अहंता ममताकी विस्मृति करे एसो यत्न करे श्रीकृष्णमें भाववृद्धि करे , ताको ग्रहणकरे ओर या भावमें वाधक होय ताको त्याग करे सगरी किया श्रीकृष्णहीके अर्थ करे ताकरि गृहादिककी विस्मृति होय ॥ २ ॥

मूलं-अथवा वाधकत्वेन त्यागभावनया पुनः। अखण्डाद्वेतभावेन कामाद्यावेशतो हरो ॥ ३॥

प्रापंचिकपदार्थेषु लीलासृष्टित्वभावनात्।

श्वन्दार्थ:-अथवा (गृहादिकनमें) वाधकपर्नेतं त्यागकी भावना करि फिर अखंड (शुद्ध) 'अद्वैतकी भावना करिके, हरिमें 'कामादिकके आवेशतें, ॥३॥ ओर प्रपंचके सगरे पदार्थनमें लीला सृष्टिपनेकी भावनातें गृहादिककी विस्मृति होय ॥ टीका ॥ श्रीकृष्णकी सेवामें स्त्रीपुत्रादिक तथा देश वाधक होय तो ताको त्याग करिवेकी मनर्म भावना करे ओर श्रीकृष्णकों अखंड अद्वैत [सवठोर सर्वोपर श्रीकृष्णही विराजतहें याभांति] जानि सवठोर श्रीकृष्णहीकी भावना करे और कामादिकको आवेश प्रभुमें करे जेसें लोकिक संसारी कामादिकको आवेश गृह कुटुंचादिकनमें किर तामें अप्रमहर मचत रहेहें तेसेंहि वैष्णव श्रीठाकुरजीकी सेवामें मच्यो रहे, जो अन यह वागा चिहियें, यह सामग्री यह उत्सव आवतहे यामें यह चिहियें, याभांति मन श्रीकृष्णहीमें लगावे ॥ ३॥ यह प्रपंचके पदार्थमें लीलासृष्टिकी भावना करे तामें मुख्य विचार यहहे जो श्रीऋष्णकी सेवामें जो पदार्थ विनियोग होय सो स्वरूपात्मक जाने जो श्रीकृष्णही लीलासंबंधीहे और जो पदार्थ सेवामें उपयुक्त न होय सो मायासंबंधी आसुरीहे याभांति विचार मनमें राखे ॥

मूलं-कृष्णसन्निहितो देशः कालः सत्संगहेतुकः॥४॥ द्रव्यं सर्वस्वमेवात्र कत्तीऽभिमतिवार्जितः। मंत्राः श्रीकृष्णनामानि ग्रणलीलासमन्विताः॥५॥

१ यह सर्वे जगत् भगवद्वपहे एसो भाव होय सो शुद्धादेत भाव जाननो.

२ श्रीभागवतमें कह्योहे जो काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य और सख्य सद्ग अक्षमें राखत हे सो तन्ममताकों प्राप्त होत है.

३ यह जगत् प्रस्को कीढामांड हे तासों सगरे पदार्थ लीला संबंधीहै.

मूलं-कर्माणि कृष्णसेवैव सर्वसाधनसंग्रहः। एतच्छद्कस्य भक्तो हि सत्संगः साधनं मतम्॥६॥

शब्दार्थ:-जहां श्रीकृष्ण विराजन होय सो देश १, सत्संगको कारणरूप सो काल २,॥ ४॥ अपनो सर्वस्व सोही द्रव्य ३, जहां कर्ता अभिमानरहित ४, श्रीकृष्णके नाम सो गुणलीलायुक्त मंत्र ५, ॥ ५॥ सर्वसाधनके संग्रहरूप श्रीऋष्णकी सेवा सोही कर्म ६, भक्तिमार्गमें (देश, काल, द्रव्य, कर्ता, मंत्र ओर कर्म) यह पट्पदार्थके साधन-रूप सत्संगहे ॥ ६ ॥ टीका-जहां श्रीकृष्ण विराजतहे सो उत्तमतें उत्तम देश जाननो, ओर भगवदीयको संग होय सोहि काल परम उत्तम जाननो । सो प्रथमस्कंधमें शीनक कहेहें " तुलयाम लवेनापि न स्वर्ग नापुनर्भवम् । भगवत्संगिसंगस्य मत्यीनां किमुताशिपः " (भगवानके संगिभक्तके संगके एक लव वरावरि न स्वर्गकों के नही मोक्षकों तुलना करतहें तहां मनुष्यनकी आशिप जो राज्यादिक सो कहार्ते इनकी वरावरिमें होय ?) यावाक्यर्ते स्वर्ग तथा मोक्षपर्यंत सुखहू सरसंगके समान नांहीहे। तातें सत्संग होय सो काल उत्तम जाननों 11 थ 11 ओर द्रव्यादिकमें सगरो पदार्थ घर आदि सब आयगयो सो सर्वस्व जाननो ओर मेंही सर्व वस्तुको कर्ताहूं यह अभि-मानकरि रहित होय द्रव्यमें ममत्व ओर सवकार्यमें अपनेकों कर्ता जाने यह दोउ वाधकहे तार्ते ममन्व अहंकार छोडे ओर सगरे मंत्रमें श्रीकृष्णको नामहे सोहि सर्वोपरि महामत्रं जाने (जेर्से " श्रीकृष्णः शरणं मम " ओर प्रभुके अनेक गुणहे अनेक लीलाहे ओरनके गुणगानते श्रीकृष्णहीको गुणगान मुख्यहे तिनकी भावना करे सो महामंत्रहे । सो अष्टमस्कंधमें शुकाचार्य कहेहे "मंत्रतस्तंत्रत-श्छिद्रं देशकालाईवस्तुतः। सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्त्तनं तव "

(मंत्रसों, तंत्रसों, देश, काल ओर द्रव्यसों जो अपूर्ण रह्यो होय सां सर्व तुह्यारे नामको कीर्त्तन पूर्ण करतहे) याभांति श्रीकृष्णको नाम लियो सो सवमंत्र करिचुक्यो सो श्रीगुसाईजी कहेहें "हरे त्वन्नामिन-र्व्यक्तिं याह श्रुतिरहं सदा । गृणामि यद्यदा नाथ ! तत्त्रथेवास्तु नान्यथा" (हे हरे! आपके नामको अर्थ जो वेद कहतहे इनकों ही में जासों सदा उचारुंहूं तासों हे नाथ! सो तेसेंही होउ अन्यथा मतिहाउ, श्रीकृष्णको नाम सर्ववेदश्वतिको सारहे सो श्रीकृष्णकी कृपाहीर्ते लियाँ जाय अन्यथा नांही, तार्ते मंत्रही श्रीकृष्णको नामहे ॥ ५॥ श्रीकृष्ण-की सेवाहे सोहि उत्तमोत्तम कर्महे जहां श्रीकृष्णकी सेवा करि तहीं सर्व साधन करिचूक्यो सो अष्टमस्कंधमें ब्रह्मा कहेहे "यथाहि स्कंधन शाखानां तरोर्मूलावसेचनम् । एवमाराधनं विष्णोः सर्वेपामात्मनश्र हि (जेसें चुक्षकी जडमें जल सींचे तो सब डार पात हरे होय तेसेंही श्रीकृष्णकी सेवार्ते सैर्वलोक संतुष्ट होय) तार्ते सगरे कर्ममें मुख्य सर्व साधनके संग्रहरूप श्रीऋष्णकी सेवाहीहे यह पद् पदार्थ हृदयमें धरे तो सप्तम धर्मी श्रीकृष्ण सदा हृदयमें रहे कबहू बाहिर न जाय श्रीकृष्ण, श्रीजी, सातो स्वरूप, वस्रभक्कल जहां विराजे सो सर्वोपरि उत्तम-देश जाने १, जा घडि सत्संग होय सोहि सुंद्रकाल जाने २, द्रव्यादिक प्रभुमें विनियोग होय सोहि उत्तम जाने ३, कर्त्ताको अभिमान त्याग करे ४, श्रीकृष्णको नाम सर्वोपरि जाने श्रीकृष्णकी लीला सोई सवोंपरि जाने श्रीकृष्णकी लीला सोहि सवोंपरि गुणजाने

[?] हरिको अर्थ सर्वदुः खहर्ताहे सो श्रीत कहेहे ताखों में नाम लियोक हं सो तेसी हि नामको अर्थ होउ अर्थाद सर्व दुःख दूरि करो. २ वृक्षके मूलमें जल नांही सींचे और डारपातमें बोहोत जल सींचे तो व्यर्थ श्रम होय। काहेतें जो डारपातकों ह प्राप्त ने होय उलटो विगार होय तेसें प्रभुकों छोडि ओरनको आराधन करे सो कर्छ फल होय और हु फल न मिले.

भ, समस्तकर्ममें श्रीकृष्णकी सेवा सोई सर्वोपिर कर्म जाने ६, यह पद् पदार्थ सर्वोपिरहे सो जवामिले तव पुष्टिमार्गीय भगवदीयको संग होय येहि साधनहे ओर दूसरो साधन नांही तातें सर्संग भयो तव सर्व साधन करिचूक्यो ॥ ६॥

मूलं-कृष्णसानिध्यदेशे तु यतस्तिष्ठांति साधवः। कालः प्रसंगहेतुस्तु मिलितेस्तैरुदेति हि॥७॥

शब्दार्थः - जासों श्रीकृष्णकी सिनिधिके देशमें साधु पुरुप रहतहे तासों सत्पुरुपनके मिलिवेतें सत्संगके कारणरूप काल उदितहोतहे।।७।। टीका-पुष्टिमार्गीय भगवदीय श्रीकृष्णके सान्निध्यदेशमें रहतहें जहां श्रीकृष्ण विराजतहें तहां भगवदीयहू दर्शनसेवार्थ रहतहे तहां कालको सामर्थ्य नांही चलतहे तातें जहां श्रीगोवर्द्धननाथजी, सातो स्वरूप, श्रीवल्लभकुलको मंदिर होय तहां भगवदीय मिले तब सर्वकार्य सिद्ध होय उपर देशकी तथा कालकी उत्तमता कही सोय होय ॥ ७॥

मूलं-सर्वस्योपयोगोऽपि सिद्धचेत्सद्बुद्धिदातृभिः। अभिमानानवृत्तिस्तु तदाश्रयवताभिह्॥ ८॥

शब्दार्थः—सुंदर बुद्धिके देवेवारे भगवदीयनतें सर्वस्वको उपयोगहू सिद्ध होय तातें द्रव्यकी उत्तमता भई ओर इनके आश्रयवारेनकों अभिमानकी निवृत्ति ईहां होय सो कर्त्ताकी उत्तमता भई ॥ ८ ॥ धीका—एसे प्रभु ओर भगवदीय जहां विराजतहे तहां सर्व पदार्थको उपयोग सिद्ध होतहे सर्व ताहशीयनके संगतें सुंदर बुद्धि होतहे प्रभुकों आश्रय सिद्ध होय तव अज्ञानकरि अभिमान भयो हे सो निवृत्त होतहे तथा भगवदीयको आश्रय करे तो सब सिद्ध होय ॥ ८॥

मूलं-कृष्णनामस्वरूपादिज्ञानं तु तत एव हि। भगवत्सेवनं वापि पुरुषार्थस्तदेव हि॥९॥

शब्दार्थः -श्रीकृष्णके नाम तथा स्वरूपादिकको ज्ञानहू तासोंही होय यह मंत्र सिद्ध भयो ओर पुरुपार्थरूप श्रीकृष्णकी सेवाहू तवहीं होय यह उत्तम कर्म सिद्ध भयो एसें भिक्तमार्गमें देश, काल, द्रव्य, कर्ता, मंत्र, कर्म, यह पद्पदार्थकी सिद्धिके उपाय तीन श्लोकसों कहें ॥९॥ टीका-श्रीकृष्णके नामको ओर श्रीकृष्णके स्वरूपको ज्ञान होय तब श्रीकृष्णकी सेवाकों परमपुरुपार्थरूप फलरूप सवोंपिर जाने सो जव प्रभु कृपा करे तवहीं जान्यों जाय ताहीतें सिद्धांतमुक्तावलीमें कहतहें "कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता" श्रीकृष्णकी सेवा सदा करे फलरूप जानि मन लगायकें करे तव श्रीकृष्ण प्रसन्न होय अपने स्वरूपानंदको अनुभव करावे तव मानसी सिद्ध होय तातें परम पुरुपार्थरूप जानि भगवत्सेवा करनी ॥ ९॥

मूलं-यदा तथाविधाः संतो हृइयंते सेवनोद्यताः। अतः सत्संग एवास्मिन् मार्गे सर्वस्य साधनम्॥१०॥

गव्दार्थः —जव तेसें सत्पुरुप सेवनमें तत्पर देखिवेमें आवे तव उपर लिखे पट्पदार्थ सिद्ध होय तासों यह पुष्टिमार्गमें तो सत्संगहीं सर्वको साधनहे ॥ १०॥ टीका—उपर कहे सो सब श्रीकृष्णकी सेवामें उद्यत (तत्पर) एसें भगवदीय मिले तब सर्व सिद्ध होय प्रभु कृपाकरे अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो हमारे यह पुष्टिमार्गमें तो सत्संगहीं सबोंपरि निश्चय साधन हे ताहीतें नवरत्न ग्रंथमें श्रीआचार्यजीमहाप्र-भुजी कहेहें, "निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा ताहकों जैनेः " (सर्वथा निवेदन तो ताहकीय जनसों मिलिकें स्मर्तव्य हे) तातें भगवदीयको संग करनो ॥ १०॥

मूलं-तदभावे सर्वथैव न किंचिदिह सिद्ध्याते। तस्मात्प्रयत्नः कर्त्तव्यः सत्संगाय सुवुद्धिभिः॥११॥

शब्दार्थ:-सत्संगको अभाव होय तो सर्वथा यहमार्गमें कछ सिद्ध न होय तासों सुंदरबुद्धिवारेनकू सत्संगके अर्थ प्रयत्न कर्तव्यहे ॥११॥ टीका-उपर कहे एसे भगवदीयको भावसहित संग भयेते सर्व सिद्ध होय एसे तदीयके संगविना किंचितहू सिद्धं नांही होय तातें सर्वथा प्रयत्नकरिकें भगवदीयको सत्संग कर्त्तव्यहे। सत्संग करे सोहि वैष्णव सुबुद्धिह सो एकादशस्कंधर्मे भगवान् कहेहें "न रोधयित मां योगो न सांख्यं धर्म उद्भव !। न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥१॥ व्रतानि यज्ञाक्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः। यथावरुधे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम् "(मोकों योग वशनांही करतहे न सांख्य धर्म, हे उद्धव! न स्वाध्याय, तप, दान, न कृपारामादिक, न दक्षिणा, ॥ १ ॥ व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, नियम, यम, यह कोउ वश्य नांही करतहे जेसो. सर्वसंगकी निवृत्ति करिवेवारो सत्संग मोकों वश्य करतहे) या-भांति अनेक साधनकरि भगवान् नांही वश्य होतहें जेसें सत्संगकरि वश्यहे तार्ते सत्संगको यत्न सर्वथा पुष्टिमार्गीयको कर्त्तव्यहे ॥ ११ ॥ मूलं-अत एवोक्तमाचार्येहिरिस्थाने तदीयकैः।

"अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति"॥१२॥

शब्दार्थः—तासोंही श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी भक्तिवर्द्धिनीग्रंथमें कहें हिरके स्थानमें भगवदीयनके संग समीपमें अथवा दूरमें जेसे चित्त दोपयुक्त न होय तेसे रहेनो ॥ १२ ॥ टीका—हमारे श्रीआचार्य-जीमहाप्रभु भक्तिवर्द्धिनीमें कहें "अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परेः। अद्रे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति" तासों हरिस्थानमें भगवद्धभेपर तदीयनकी साथ समीपमें अथवा दूरमें चित्त दोपयुक्त न

होय तेसे रहेनो यहवाक्यसों हरिस्थान जहां श्रीठाकुरजी विराजत होय तहां तदीय भगवदीयसों मिलिकें सेवा करे जामें चित्तमें कोई दोंप न होय याभांति रहे, वोहोत निकटमें चित्तको दोप होय तो नेक दूरि रहे जामें दर्शन सेवा नित्य वने चित्तमें दोप न होय याभांति भगव दीयसों मिलिके हरिस्थानमें रहे ॥ १२ ॥

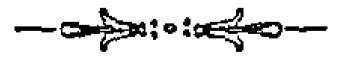
मूलं-चित्तदोषे कथं सेवाचेतस्तत्प्रवणं भवेत्। अतो विचारः कर्त्तव्यः सर्वथेकत्र वासकृत्॥१३॥

रान्दार्थः —िचतमें दोप होय तव तत्प्रवणिचत्तरूप सेवा केसें होय तासों सर्वथा एकस्थलमें (हिरिस्थानमें भगवदीय होय तहां) वास होय एसो विचार कर्तव्यहे ॥ १३ ॥ टीका—जव चित्तमें अनेक भांतिकें दोप उत्पन्न होय तव सेवा काहेकी सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी सिद्धांतमुक्तावलिमें कहेहें "चेतस्तत्प्रवणं सेवा तिसद्ध्ये तनुवित्तजा" (प्रभुमें एकाप्र चित्त होय सो सेवा मानसी ताकी सिद्धिके अर्थ तनुजा तथा वित्तजा सेवाहे) तनुजा वित्तजा सेवा मनलगायकें करें तब मानसी सिद्ध होय, जेसें नदीको प्रवाह रात्रिदिन धारा अहर्निश एकरस चलतहे तेसेंही वैष्णवको चित्त अहर्निश एकरस भगवत्सेवामें लाग्यो रहे तब मानसी सेवा सिद्ध होय तनुजा वित्तजा करतमें जव चित्त दुष्ट होय तव आगें मानसी फलरूप कहांतें सिद्ध होयगी तातें श्रीआचार्यजीके वचनामृतको विचार करे ॥ १३ ॥

मूलं-बुद्ध्या विचार्य मत्प्रोक्तं निधाय हृदि सर्वथा। स्वार्थसंपत्तये कार्यो वास एकत्र तत्परेः॥ १४॥

शब्दार्थ:-मेर्ने कह्यो सो बुद्धितें विचारिकें सर्वथा हृदयमें स्थापन करि स्वार्थकी प्राप्तिके अर्थमें तत्पर (भगवदीय) के संग एकत्र वास करनो ।।१८॥ टीका-एकांतमें बेठिकें अपनी बुद्धितें विचारकरे तामें विचार न होय तो भगवदीयके संग विचार करे सो श्रीआचार्यजी-महाप्रभुजी भक्तिवर्द्धिनीमें कहेहें "वाधसंभावनायां तु नैकांते वास इष्यते । हिरस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः" (बाधकी संभावना होय तो एकांतमें वास नांही करनो हिर तो सबनतें रक्षा करेंगे संशय नांही) यह वाक्यसों श्रीमहाप्रभुजीके वचनामृतकों विचार हदयमें सर्वथाही कर्त्तव्यहे । तहां कोई कहे जो अनेक सुखदुःख आवे तहां कोन प्रकार करे तहां श्रीमहाप्रभुजी कहेहें जो हिर भगवाच सर्वथा अपने भक्तनकी रक्षा करेंगे तातें यह चिंता सर्वथा न करे एकांतमें वेठिकें अपनी सुंदरबुद्धितें अपने चित्तमें विचार नित्य करे सेवादर्शनके समय सेवादर्शन करे ओर अनोसरमें एकांतमें भगवदीयसों मिलिकें विप्रयोगसो ठीलासंबंधी विचार करे या भांति वैष्णव रहे तो सगरे कार्य सिद्ध होय ॥ १८॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं त्रिशत्ममं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीका-समेतं समाप्तम् ॥ ३०॥



शिक्षापत्र ३१.

अव एकत्रिंशत् शिक्षापत्रमें साक्षात् तथा परंपरासों वरण दोय-प्रकारकोहे तामें लीलास्थभक्तनमें साक्षात् ओर आधुनिक भक्तनमें (श्रीआचार्यजीद्वारा) परंपरा वरणहे। लीलास्थभक्तनमेंह श्रुतिरूपामें साक्षात् ओर अभिकुमार (ऋषिरूपा)में परंपरा [श्रीमर्यादापुरुपोत्तम- द्वारा] वरणहे सो आत्मीयपनेसों ओर दासपनेसों दोयप्रकारकोहे तामें अवतारदशामें आत्मीयपनेसों ओर अनवतारदशामें दासपनेसों वरणहे दासपनेमें मर्यादा ओर पुष्टि दोय भेदहे तामें मर्यादारीतिसों वरणमें साधननिष्ठातें फलहे ओर पुष्टिमें अनुग्रहतें फल हे. पुष्टिमें मर्यादापुष्टि ओर पुष्टिपुष्टि यह दोय भेद हे। अपने तो श्रीआचार्यजीके अनुग्रहते मर्यादासहित पुष्टिमें अंगीकृत भयेहें तासी श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीकी आज्ञारूप मर्यादाहे सो अपनकों हितकारिणीहे अपने प्रभु पृष्टिपुरुपो-त्तमहे सो यहलोक ओर परलोक संवंधी सगरी (भक्तनकी) चिंता करतहें तासों निश्चित रहेनो यह मार्गमें श्रीभगवानकी आर्ति करि सेवा, गुणगान, कथाश्रवणादिक कियेर्ते मुख्यफल प्राप्त होय और आर्तिविना न्युनफल होय तासों आर्ति सदा राखनी सो आर्ति केर्से सिद्ध होय ? ताके लिये साधन वतायेहे यह निरूपणहे। उपर कहे जो हरिस्थानमें भगवदीयके संग स्थित होय सेवा करे ओर एकांतर्मे वेठिके चित्तमें विचार करे तहां अपने मनमें साधनकी भावना न करे यह मार्ग निःसाधन फलात्मकहे सो आर्गे कहतहें-

मूलं-निःसाधनफले मार्गे वलं नैवोपयुज्यते। साधनानामतो नायमात्मेत्येपोदिताश्रुतिः॥१॥

शब्दार्थः निःसाधनके फलरूप यहमार्गमें साधनको वल उपयोगि नांहीहे तासों श्रुतिमें कह्यों हे जो यह आत्मा प्रवचन आदितें प्राप्त नांही होत हे, जिनको प्रभु वरण करतहें तिनतें लभ्य हे।। १॥ टीका-यहपृष्टिमार्ग साधनसाध्य नांही हे कृपा साध्यहे अपनो वलकि कोटानकोटि साधन करे ताकिर सिद्धि नांहीहे तासों श्रुतिमें साधनको निपेध कहेहें "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य इ०"यह परमात्मा प्रवचनसों, बुद्धिसों, और बहुत सुनेतें प्राप्त नहीं होयहे, किंतु परमात्मा जाको वरण करेहे सो प्राप्त करसकेहे याते प्रभुके वरण विना ओर साधनके वरुते प्रभुप्राप्ति यहमार्गमें नांहीहे ॥ १॥

मूलं-किंतु सर्वस्य मूलं हिं हरेर्वरणमुच्यते। यथेव वृणुते कृष्णस्तथा तिष्ठति वैजनः॥२॥

शब्दार्थ: — किंतु हरिको वरणहे सो सर्वको मूल कह्योहे श्रीकृष्ण जेसो वरण करतहें तेसो जन रहतहे ॥ २ ॥ टीका — पुष्टिमार्गमें यह मिद्धांतहे जो सर्वको मूल पुष्टिमार्गको फल सो हरिके वरणतें होतहे जीवके साधनसाध्य नांही हे जेसो जा जीवको भगवान वरण करे तेसो वह जीव पुष्टिमार्गमें स्थित होतहे तातें जीवके साधनसाध्य नांही हे तामें भगवान दोय प्रकारको वरण करतहें सो आगें कहतहें ॥ २ ॥

मूलं-वरणं तु द्विधा साक्षात्पारंपर्याविभेदतः । लीलास्थितेषु वै साक्षादन्येष्वस्ति परंपरा ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—साक्षात् ओर परंपरा यह भेदसों दोय प्रकारको वरण है। लीलास्थितभक्तनमें साक्षात् वरण है ओर अन्यमें परंपराहे॥ ३॥ टीका-वरण दोय प्रकारकोहे एक साक्षात् एक परंपरा यह दोय भांतिके भेदहे श्रीकृष्णकी लीलास्थितमृष्टिमें साक्षात्हे अन्यमें परंपराहे॥ ३॥

मूलं-आचार्यद्वारकं तत्र वरणं न हरेः स्वतः। लीलास्थेष्वपि भक्तेषु वृतेद्वेविध्यमीक्ष्यते॥ ४॥ साक्षाच्छुतिषु हरिणा वरण वहनिसृतुषु। परंपराप्रकारेण मर्यादाप्रस्पोत्तमात्॥ ५॥

े. शब्दार्थः-श्रीआचार्यजीद्वारा हरिको वरण हे सो स्वतः नांहीहे पर्-परासोंहे लीलास्थित भक्तनमेंह्र वरणके दोयप्रकार देखिकेमें आवतहे ॥१॥श्रुतिरूपामें हरिनें साक्षात् वरण कियोहे और अभिकुमार [ऋषि-रूपा] में परंपराकरि मर्यादापुरुषात्तम (श्रीरामचंद्रजी) द्वारा वरण हे ॥ ५॥ टीका-श्रीआचार्यजीद्वारा जाजीवको वरणहे सो स्वतः नांहीहे श्रीकृष्णकी लीलामृष्टिके मक्तनको वरणह् दोयप्रकारकोहे साक्षात् हु हे ओर परंपराहू हे ॥ ४॥ श्रीकृष्णावतारमें श्रुतिरूपाको वरणहे सो साक्षात् भगवान् आपुने कियोहे ओर अभिसूनु जो सोरह हजार अभिकुमार तिनको वरण परंपरा मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचंद्रजीद्वाराहे यामांति लीलामृष्टिमें हू साक्षात् और परंपरा वरण हे ॥ ५॥

मूलं-अन्यथाप्यत्र भेदोऽस्ति दासतात्मीयतादिभिः। आत्मीयत्वेनावतारे दासत्वेनान्यदा द्यतिः॥ ६॥

शब्दार्थः -दूसरी रीतिसोंही वरणमें दासता ओर आत्मीयतासीं भेदहे। अवतारदशामें आत्मीयतासीं वरणहे ओर अनवतारदशामें दासतासों वरणहे।। ६॥ टीका-साक्षात ओर परंपरा यह दोय भेदि विना वरणके दूसरे दोय भेदहे एक आत्मीय ओर एक दासभाव अवतारदशामें भगवानको संवंधी होय तब वरण होय सो आत्मीय ओर अवतारदशामें दासभाव होय॥ ६॥

मूलं-दासत्वेऽप्यस्ति भेदो हि मर्यादापृष्टिभेदतः । अतो न जीवस्वातंत्र्यं दासत्वाद्धि निसर्गतः॥ ७॥

शब्दार्थः नदासपनेमेंह मर्यादा तथा पुष्टि यह भेदसों दोय भेदहें तासों स्वभावतेंही जीवकों दासत्वहें तातें स्वतंत्रता नांहीहे।।७।। टीका न दासभावमें दोय रीतिहे एक मर्यादा ओर एक पुष्टि यह दोय भेदहे दासत्वधर्म जीवमें स्वभावतेंहें तातें जीव स्वतंत्र नांहीहे दासत्वधर्मतें

१ श्रुतिनकों साक्षात् श्रीकृष्णसो वर प्राप्त मयोहे सो कथा वृहद्वामनपुराणमें प्रसिद्धे। २ अप्रिकृमारनकों श्रीरामचंद्रजीसों वर प्राप्त मयोहे सो कथा रामायणमें प्रसिद्ध है।

मांगे सर्व सिद्ध करेंगे आर्त्तके वंधु (दीनवंधु) श्रीगोकुलेश्वर (श्रीकृष्ण)अपने जनकी उपेक्षान करेंगे तहां कोईकहे जो प्रभु स्वतं-त्रहें कर्त्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ हें सो जव इनकी विपरीत इच्छा होय तव प्रार्थना करे के न करे तहां कहतहें ॥ १२॥

मूलं-हरीच्छा विपरीताऽपि दासदुःखावलोकनात्। अनुकंपानिधानत्वाद्धरेविपरिवर्त्तते॥ १३॥

राव्दार्थः –हरिकी इच्छा विपरीत होय तोहू दासके दुः खको देखिकेतें तथा हरि कृपानिधानहे तार्ते विपरीत होतहे अर्थात् विपरीत इच्छा होय सो अनुकूल होतहे।। १३॥ टीका –हरिकी इच्छा विपरीत देखिकों आवे सो अज्ञानकरि विपरीत देखतहे जेसें नारदजीकों व्याहकी इच्छा भई तब भगवान न करनदिये तब नारदंजी वोहोत दुःख पाये तब भगवानों कृपाकरि समझाय दुःख दूरिकियो तेसें जीव लौकिक चाहना राखे सो भगवान न करनदे तब अज्ञान करि दुःख माने अथवा प्रभुकी विपरीत (दुःख देवेकी) इच्छा होय तोहू दुःखं, सहन करे जेसें प्रहादकों हिरण्यकिशपुने वोहोत दुःख दीयो सो प्रहाद प्रभुकी इच्छामानि सहे पाछें प्रभु देदियकों मारि दुःख दृरि कियो तेसेंही प्रभु विपरीत ईच्छा परीक्षार्थ करे तो सहन करे तब प्रभु सर्वके आत्माहे सो विनाकहे आपुहीतें जानतहें सो दासको दुःख देखिकें आप हदयमें दयायुक्तहें सो जाभांति दासको सुख होयगो सोई आप करेंगे।। १३॥ प्रमुत्त होतहें जाभांति दासको सुख होयगो सोई आप करेंगे।। १३॥

मूलं-आर्त्तिमात्रमतः स्थाप्यं प्रार्थना न विधीयताम्। कृपालुरेव भविता निजार्त्तजनश्मदः ॥ १४॥ साधनको वल न त्यावे निःसाधन होय यह जाने जो प्रभु कृषा करेंगे तवही मेरो कार्य होयगो या भांति सवठोर सर्वकार्यमें प्रभुको अनुप्र हही देखे अपने तो अनुप्रहरूप श्रीआचार्यजीने पुष्टिमें मर्यादासहित अंगीकृत कियहे सो आगें कहतहें ॥ ९॥ श्रीग्रसांईजी सर्वोत्तममें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके नाम कहेंहें "अंगीकृतों समर्यादः (अंगीकारमें मर्यादासहित) यह वाक्यतें पुष्टिमार्गीय समस्त जीव नको अंगीकार आपने स्वतः मर्यादासों कियोहे तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी जो उक्तिहे ता प्रमाण स्थिति करे तामें हितहे ॥ १०॥ स्थुले—पुष्टिप्रभुत्वादसमाकं लोकिकी पारलोकिकी ।

मूलं-पुष्टिप्रभुत्वाद्स्माकं लोकिकी पारलोकिकी। सर्वा चिता हरेरेव निश्चिन्तत्वं विभाव्यताम् ॥११॥

शब्दार्थः-अपनी यहलोकसंबंधी तथा परलोकसंबंधी सगरी चिंता पुष्टिप्रभुपनेतें हरिकोंही हे तासों निश्चितपनो विचारनो ॥ ११॥ टीका-हमारे प्रभु पुष्टहे तातें पुष्टिमार्गीय वैष्णवनकी लौकिक वैदिक चिंता हरेंगे यह मनमें निश्चय जानि निश्चितताकी भावना राखे चिंता भगवद्वावमें वाधकहे ॥ ११॥

मूलं–अत एवोक्तमाचार्येर्निजेच्छातः करिष्यति । नोपेक्षते निजानार्त्तवंधः श्रीगोकुलेश्वरः॥१२॥

गव्दार्थः—तासोंही श्रीआचार्यमहाप्रभुजीनें नवरत्नग्रंथमें कह्योहें जो अपनी तथा अपने भक्तनकी इच्छातें प्रभु करेंगे तासों दिनवंधें श्रीगोकुलेश्वर अपने भक्तनकी उपेक्षा नांही करतहें ॥ १२ ॥ टीका— उपर कहे ताभांति निश्चित होय प्रभुकी इच्छा जानें सो नवरत्नग्रं- यमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभु कहेहें "सवेंश्वरश्च सर्वोत्मा निजेच्छातः करिप्यति "प्रभु श्रीकृष्ण केसेहें सर्वके आत्माहें ओर सर्वके ईश्वर सर्वोपिहें सर्वके अंतःकरणकी जानतहें अपनी निज इच्छातें विना- स्थित रहे ताकों यह पुष्टिमार्गको फल निश्चय होय तहां कोई कहे जो वेदशास्त्रमें अनेक साधन कहेहें ताकिर फल कहेहें ओर तुम साधनतें फल नांही कहे प्रभुकी कृपातें कहे सो कहा? तहां कहतहे ॥ १५॥ यह पुष्टिमार्गकी कियाको भाव न जानि केवल साधनजानि सेवा करे तो श्रीकृष्णकी सायुज्यरूप मुक्ति होय अनेक साधन कियेतें फल मुक्ति होय तातें यह पुष्टिमार्गको मुख्य फलसंवंध कवहू न होय यह निश्चय जाननो ॥ १६॥

मूलं-तदार्तिप्राप्तिरेतेषां तद्रूपाचार्यसेवनात्। तत्कृपातस्तद्वदितंवचोद्यंदिवचारणात्॥१७॥ निवेदनातुसंधानात् सदा सत्संगसंभवात्। अन्यथा न भवदेवं स्वकृतानंतसाधनेः॥१८॥

शन्दार्थः - उपर कही आर्तिकी पाप्ति विपयोग अमिरूप श्रीआचार्यजीके सेवनतें, इनकी कृपातें, इनके वचनामृतके समूहके
विचारतें, 11 १७ 11 निवेदनके अनुसंघानतें, और सदा सत्संग होय
तव होय अन्यथा अपनें किये अनंत साधन करि नांही होय 11 १८ 11
टीका - विपयोगात्मक यह पुष्टिमार्गीय आर्तिकी प्राप्तिके अर्थ विपयोगामिरूप श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणकमलकी (अत्यंत श्रीतिसों)
सेवा करियें जब श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके वचनामृत सुवोधिनीजी
निवंध आदि छोटे वहे ग्रंथको विचार अहर्निश करियें तव श्रीआचार्यजीकी कृपातें आर्त्ति होय 11 १७ 11 निवेदनको अनुसंधान
अष्टप्रहर राखे सदा पुष्टिमार्गीय भगवदीयके संग नित्य नियमपूर्वक
निवेदनको विचार करे तव आर्ति होय ताहीतें नवरत्नमें श्रीआचार्यजी
कहेहें "निवेदनं, तु ,स्मर्त्तव्यं ,सर्वथा ताहहों जेनेः " (ताहशीय
वैष्णवनके संग सर्वथा निवेदनको स्मरण कर्त्तव्य हे,) ताकरि आर्ति

श्रुव्हार्थः—तासों आर्तिमात्र राखनी प्रार्थना नांही करनी अपने आर्त्तजनकों सुख देवेवारे प्रभु कृपाछुही होयंगे ।। १४ ।। टीका-यह पुष्टिमार्गमें आर्तिमात्र कर्त्तव्य हे जो मोसों प्रभुकी सेवा टहल नांही वनत मनुष्यजन्म सगरो योंही वीति गयो या मांति आर्ति करें ओर लोंकिक अलोकिक कछुफलकी प्रार्थना न करें काहेतें जो श्रीकृष्ण नो परम कृपाछु हें तातें अपने जनकी आर्ति देखिकें कृपा करेहें सो निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहेहें "किश्यमानान जनाव हृष्ट्रा कृपायुक्तो यदा भवेत्। तदा सर्व सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं वहिं" यहवचनतें विरह आर्तिक्ष केशसंयुक्त अपने जनकों देखिकें प्रभु कृपायुक्त होतहें सो सर्वप्राणिमात्रके हृदयमें सदा आनंदरूप भगवान हों सो प्रकट होय अपने दासकों सुख देतहें तातें आर्ति यह पुष्टिमार्गमें मुख्यहें सो आर्ति कोनप्रकार करें सो आगें कहतहें ॥ १४ ॥

मूलं-आत्येंव कियते यत्तु सेवाग्रणकथादिकम्। तदेवास्मत्प्रभूक्तेऽस्मिन् मार्गे प्रविद्याति ध्रुवम्॥१५॥ अन्यथा कियमाणं तु कृष्णसायुज्यसाधकम्। न मुख्यफलसंबंधस्ततो भवति निश्चितम्॥१६॥

शब्दार्थः - आर्तितं ही जो सेवागुणकथादिक होतहे सोही अपने प्रभुने कह्या यह पृष्टिमार्गमें निश्चय प्रविष्ट होतहे ॥ १५ ॥ अन्यथा कियो सोतो श्रीकृष्णके सायुज्य साधिवेवारोहे तासों मुख्यफलको संग्रंध नांही होतहे यह निश्चयहे ॥ १६ ॥ टीका-आर्तिकरि भगवः तसेवा करे, वाणीतं गुणगान करे, संयोगमें संयोगके पद, अनोसरमें विश्रयोगके पद गान करे, श्रवणतें श्रीमुवोधिनी आदि कथा सुने, मनंकरिकें श्रीकृष्णकी लीलाको स्मरणकरे, याभांति पृष्टिमार्गमें विष्णव

मूलं-म्लेच्छानामिव गायत्री ततःश्रवणतः किमु। तत्सधर्मास्तत्रवर्णा अनुभावतिरोहिताः॥ २१॥

शब्दार्थः — जेसें म्लेन्छके मुखमें गायत्री होय इनके श्रवणतें कहा फल होय काहेतें जो इनके मुखकी गायत्रीमें अनुभाव (देवीप्रभाव) रिहत उन म्लेन्छकेवरोवर अक्षर होतजातहें ॥ २१ ॥ टीका—जेसें म्लेन्छके मुखतें गायत्री सुनेतें कछ फल नांही होतहे उलटो वाधकहें काहेतें जो उह आसुरको दुष्ट धर्महे वा दुष्टके संगतें गायत्रीके वर्ण जो अक्षरहे तामें आध्यात्मिक ओर आधिदेविक दोउको तिरोधान हो-यजाय केवल आधिभौतिक रहे तेसेंहि अवैष्णवके मुखतें सुनिकें कथा वार्ता फलरूप न होय उलटो वाधक होय जेसें गंगाजल सुंदरहें परंतु नीचज्ञाति (चमार चांडालादिक)के पात्रमें होय तो उह जलके संगतें प्रायश्वित करनों पडे जो छुवे तो नहानो पडे याभांति पात्रभेदहे ॥ २१॥

मूलं-अतः फलं न श्रवणाद्दोषः प्रत्युत जायते। सावधानतमेः स्थेयमीटक्श्रवणकीर्त्तनात्॥२२॥

शब्दार्थः—तासों (अवैष्णवके मुखतें) कथावार्तादिक श्रवणतें फल नांहीहे उलटो दोप होतहे तातें एसेंके मुखतें श्रवण ओर कीर्तनतें वोहोत सावधान होयकें रहनो ॥ २२ ॥ टीका—एसो दुष्ट वहिर्मुख अन्यमार्गीय होय ताके मुखतें भगवद्धम सुनेतें कछ फल न होय प्रत्युत दोप होयवेसुं प्रायश्चित करनो पडे तातें पुष्टिमार्गीय वेष्णव सब तुम सावधान रहियो जों पुष्टिमार्गमें स्थित होय मार्गके अनुसार किया करत होय याभांति सुंदर पात्र देखिकें ताकें मुखतें श्रवण कीर्त्तन करें तो भिक्तमार्गमें प्रवेश होय यह पुष्टिमार्गी महादुर्छभ हे अब पुष्टिमार्गीय भगवदीयके लक्षण कहतहें ॥ २२॥

होय ओर प्रकार कोटानकोटि साधन करे परंतु आर्ति सिद्ध न होय जब आर्ति न भई तब फलकी आशा काहेकों करे ॥ १८॥

मूलं-ये भावं वर्द्धयंत्येव हृदं वचनवर्षणैः। संगोऽपि तेषां कर्त्तव्यो नान्येषाभिति निश्चयः॥१९॥

शब्दार्थः —जो भगवदीय वचनकी वृष्टि करिकें दृढ भावकी वृद्धि करे इनको संगह करनो ओरनको संग न करनो यह निश्चयहे॥१९॥ टीका—उपर कहे ताप्रकार भावकी वृद्धि करे श्रीआचार्यजीके श्रीसवीं धिनीजी निवंधादिक छोटेवडे श्रंथहे तिनहीकों मन लगायकें सुनावे वचनकी वर्षा करे तिनको संग करे लोकिक वैदिकमें मन न लगावे. आपुही श्रंथको पाठ करे तो आर्ति सिद्ध होय यह निश्चयहे ॥१९॥

मूलं-तद्दुर्छभत्वे वाधिर्यं मूकत्वं वा वरं मतम्। वाचःप्रभूणां वदने दुर्जनानां भवंति न ॥ २०॥

शब्दार्थः - एसे भगवदीय दुर्छम होय तव विधरपनो ओर मूक्पनो उत्तमहे काहेतें जो दुर्जनके मुखमें प्रभुके गुणगानकी वाणी नांही होय ॥ २०॥ टीका - उपर कहे एसे भगवदीयनको संग होनो तो या कालमें वोहोत दुर्छभहे तातें ओर साधन न वने तो मूक होय रहे तथा वहेरो होय रहे लोकिकमें न काहूकी सुने न काहूकों कुछ कहे यह या कालमें श्रेष्ठ मतहे अपने प्रभुके मुखतें निकसे एसे वचनामृत दुर्जनके मुखमें होय नांही तातें वाके मुखकी वाणी सुनिवेमें फल नांही तातें दुष्टजनको संगहू न करे उनकी वाणीह न सुने दुर्जन (वहिर्मुख) भगवद्यार्ता भगवत्वया करे सो भगवदीय अन्यमार्गीयके मुखतें सर्वथा न सुने उह कोन भांति वाधक हे सो कहतहें ॥ २०॥

कियो ताकरि यहलोक ओर परलोकके सर्वकार्यमें हम निश्चितहें इलादि वचनकों विचारि श्रीमहाप्रभुजीके शरण होय अष्टाक्षरकी भावना करे तो निश्चय सगरे कार्य होय ॥ २४॥

मूलं-तथा विधेयं कृपया यथा गोवर्द्धनेश्वरः। दर्शयत्यचिरादेव निजं रूपं तदाश्रितेः॥ २५॥

राव्दार्थः — इनके आश्रित भक्तनकों तेसें कर्त्तव्यहे जेसें श्रीगोवर्द्धन-नाथजी कृपाकरिकें शीब्रहीं दर्शन देय ।। २५ ।। टीका — यह सगरो भगवद्धमें उपर कहें सो कब होय ? जब श्रीगोवर्द्धननाथजी कृपा करें तब होय अपने आश्रित जानि अपने निजयर प्रसन्न होयकें स्वरूपको दान करें तबही सर्वकार्य सिद्ध होय सो यहमार्ग साधनसाध्य नांहीहें कृपासाध्य हे जेसें गिरिराजके संबंधतें पुर्लिदीपर कृपा करि तेसें श्रीआचार्यजी — महाप्रभुजीके संबंधतें श्रीजी कृपा करें तब सर्व सिद्ध होय ।। २५ ॥

> इतिश्रीहरिरायजीकृतमेकत्रिशत्तमं शिक्षा-पत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभापा-टीकासमेतं समाप्तम् ॥ ३१॥

शिक्षापत्र ३२.

अव द्वात्रिंशशिक्षापत्रमें कामादिदोपविशिष्टके हृदयमें भगवान् कवहू प्रवेश नांही करतहें ओर दीनतादियुक्तके हृदयमें क्षणमात्रमें प्रभु अवेश करतहें सो निरूपणहे। उपर कहे जो श्रीजीकी कृपा होय तब मूलं-निर्पेक्षाः कृष्णजना निजाचार्यपदाश्रिताः । श्रीभागवततत्त्वज्ञा दुर्लभा एव भूतले ॥ २३ ॥ अतः शरणमात्रं हि कर्त्तव्यमखिलं ततः। यदुक्तं तातचरणेरिति वाक्याद्मविष्यति ॥ २४ ॥

शब्दार्थः-निरपेक्ष, अपने श्रीआचार्यजीके चरणारविंदके आश्रय-वारे, ओर श्रीभागवतके तत्त्वकों जानिवेवारे एसे जन भूतलमें दुर्लभ हीहे ॥ २३ ॥ तासों शरणमात्रही कर्त्तव्यहे तातें (श्रीगुसाईजी विज्ञ-क्षिमें कहेहें जो तातचरण श्रीमहाप्रभुजीने कह्योहे जो श्रीकृष्ण मेरे आश्रयस्थानहें ताकरि हम निश्चितहें) यह वाक्यसों सर्व होयगो॥२४॥ टीका-पुष्टिमार्गीय भगवदीय केसी होय जाकों कछ अपेक्षा नांही होय हदयमें पूर्णकाम होय लोकिक वैदिक कछुहू चाहना नहीय चतुष्टय मुक्तिपर्यंत चाहना न होय एसो निरपेक्ष होय ओर एक श्री कृष्णको दास होय अन्यदेव तथा प्रभुके अन्यअवतार तिनसवनमेते एक श्रीकृष्णमें अनन्य भाव होय ओर अपने श्रीआचार्यजीमहाप्रसु-जिके चरणकमलको आश्रय मनमें दृढ होय ओर श्रीभागवतको तिव जो श्रीसुवोधिनीजी निवंधको ज्ञान होय एसे भगवदीय मिले तिन-हीको संग कर्त्तव्यहे याकालमें एसे भगवदीय मिलने परम दुर्छभ हैं तार्ते एसे भगवदीय न मिले तो अन्यको संग मित करियो।। २३।।जो एस भगवदीय न मिले तो शरणमंत्र अष्टाक्षर महामंत्र (श्रीकृष्ण: शर्ण मम) याको जप करे शरणकी भावना करे ताहीकरि सकल कार्य सिद्ध होयगो सो शरणमंत्रहू श्रीआचार्यजीद्वारा शरण आवे तब सिद्ध होय सो श्रीगुसाँईजी विज्ञिप्तिमें कहेहें "यदुक्तं तातचरणैः श्रीकृष्णः शरणं मम। तत एवास्ति नेश्चित्यमेहिके पारलीकिके" श्रीगुसाईजी कह तहें जो हमारे तातचरण श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीनें उक्तनाममंत्र प्रकट

न रहें, ओर धनके उपायमें परायणहे अपनो धर्म (वैष्णवता) भनके लिये जतावतहे धनके लिये अनेक वार्त्ता करे अष्टप्रहर धनहीं में मन राखे तिनके हृदयमें भगवान न रहे ॥ १॥

मूलं-दयाविराहिते रूक्षे नित्यं संतोषवर्जिते। शोकाकुले भयकांते विषयध्यानतत्परे॥२॥

शब्दार्थ:-दयाकरिकें रहित, स्नेहरहित, नित्य संतोप जामें नांहीहे शोककरि आकुल, भयकरि आक्रांत ओर विषयके ध्यानमें तत्पर एसे हृदयमें प्रभु न पधारें ॥ २ ॥ टीका-दयाकरि रहितहे अनेक जीवनके हिंसकहे काहूकों दुःख देखिकें प्रसन्न रहतहे रंचक दया मनमें नांही हे तिनके हृदयमें प्रभु न रहें, स्नेहकरि जे रहितहे भग-बदीय चैष्णवर्मे जिनको रंचकहू स्नेह नांहीहे कितनी भगवद्वात्ती सुने परंतु रंचकहू भगवद्रस हृदयमें द्रवीभूत न होय एसे रूखेके हृदयमें भगवान् न रहें, नित्य संतोपकरिकें रहितहे अप्टपहर, हाय हाय यह कार्य न भयो आज तो कछ न कमायो अव केर्से काम चलेगो या भांति सदा संतोपकरि रहितहे तिनके हदयमें भगवान् स्थित न होय, सदा शोककरि व्याकुल रहे स्त्री पुत्रादिकके शोक अथवा गृहादिकमें शोक जो केसें निर्वाह होयगो याभांति वालपनेतें बुद्धपर्यंत शोकहीं करि ज्याकुल रहे, सदा भयकरि हृदयमें कंपायमान रहे जो राजडर, कालंडर, चोरादिकको डर, ज्ञातिसंबंधी देहसंबंधीको डर, इत्यादिक लौकिक भयको हदयमें आवेश रहे ताके हदयमें भगवान कवह न रहें, विषयादिकके साधनमें तत्पर रहे देहसों विषय नांही सिद्ध होय तव मनमें अनेक विचार करे कोउ मोकों वैष्णव जाने तो आछो खानपान होय, आछो कपडा पहरिवेको मिले एसो विचार करे परस्रीके मिलवेको विचार करे वह प्राप्त न होय तो दुःख् पावे एसँ

सर्वकार्य सिद्ध होय सो पंचपर्वा अविद्याको नाक्ष होय विद्या सिद्ध होय तब श्रीकृष्ण भगवान हृदयमें विराजे सो अविद्या पंचश्लोककरि कहतहें अरे विद्याहू पंचश्लोककरि कहतहें एसे यहिशक्षापत्रमें दशश्लोक हे अब प्रथम अविद्याको प्रकार कहतहें काहेतें जो अविद्या जाय तब विद्या हृदयमें आवे जेसे श्रीकृष्णावतारमें श्रीकृष्णनें भक्तनकी अविद्या दृरिकरि तब हृदयमें निःप्रपंच विद्या स्थित भई सो श्रीसुवी धिनीजीमें वर्णनहे ताके अनुसार श्रीहरिरायजी वर्णन करतहें—

मूलं-कामाविष्टे कोधयुते संसारासिकसंयुते। लोभाभिभूते सततं धनार्जनपरायणे॥ १॥

रावदार्थः — कामकरि आविष्ट, क्रोधयुक्त, संसारमें आसक्तिसंयुक्ति लोभकरि व्यास, निरंतर धन संचयकरिवेमें तत्पर, एसे हृदयमें कवह हिर प्रवेश नांही करतहें एसें पंचश्लोकमें अन्वयहे ॥१॥ टीका—अविध्येक इतने दोप जाके हृदयमें होय तांक हृदयमें भगवान कवह स्थित न होय कामादिक विपयमें आवेश होय सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी संन्यासनिर्णयमें कहेंहें "विपयाकांतदेहानां नावेशः सर्वथा हरें।" (विपयकरि व्यास देहवारे नके हृदयमें सर्वथा हरिको आवेश नांहीहोयहें) हृत्यादि वचनतें कामकूं दुष्ट जाननों कामावेश न होय और हृदयमें कोध भरवा रहे सो तो चांडालको स्वरूपहें जहां चांडालक्त्य कोध हृदयमें स्थारमें देहसंवंधि कुदंव, घर इनहींके भरणपोपणमें अष्टपहर आसक्त है तिनके हृदयमें भगवान नांही आवे और लोभकरि भरे हे हृज्या दिकके लिये विश्वासघात चोरिकरतहे हृज्यहींकों सर्वस्वयदार्थ जान्योहें अष्टपहर कोडिजोरिवेमें मनहे देहसंवंधीं लोभहे एसेंके हृदयमें भगवान

सीनाँई आसक्त होय ताके हिदयमें भगवान न रहें ॥ ४॥ टीकालौकिककार्यमें सन्मुख रहे अष्टमहर मिथ्याक्रिया, मिथ्याच्यान, मिथ्यामापण, एसें लौकिकमें मम रहे ताके हृदयमें भगवान न रहे, श्रीकृष्णके जन भगवदीयतें विमुख रहे भगवदीयकी निंदा करे भगवदीयकों दुःख देय एसेंके हृदयमें भगवान न रहें, श्रीकृष्णकी लीला
आनंदमय निदोंपहें जेसें भगवान श्रीकृष्ण आप निदोंप आनंदमयहें
तेसी लीलाहे तामें दोपदृष्टि जो प्रभु कामादिदोपकरि परस्रीके वश्यहें
याभांति दोपदृष्टिवारेके हृदयमें भगवान न रहे, ओर कर्मजड जो
कर्ममार्गमें तत्पर प्रभुकी सेवा छोडि कर्महीकों मुख्य जानि श्राद्धादिक संध्यादिकमें तत्पर रहे भगवद्धमेंमें प्रीति नांही एसेके हृदयमें
भगवान न रहे. ॥ ४॥

मूलं-आचार्यविमुखे नित्यमसदादविभापते। एतादृशे तु हृदये हरिनीविशते कचित्॥५॥

शब्दार्थः -श्रीआचार्यजीतं विमुख ओर नित्य खोटे बादकरि मृपित एसे हृदयमें कबहू हरि नांही प्रवेश करतहें।। ५।। टीका-पुष्टिमार्गकें सर्वोपिर श्रीआचार्यजी श्रीवरुभाचार्यजीहें तिनके चरणकमलतें विमुख एसेंके हृदयमें श्रीकृष्ण न रहे, सुंदर भगवत्कथा मगवद्रात्ती इत्यादिकके विदूषकहे खोटे वाद करे लौकिकवार्तामें प्रसन्न होय एसेंके हृदयमें भगवान् न रहें, यहजपर द्वाविंश अविद्याके दोप वरणे हें सो जाके हृदयमें रहे ताके हृदयमें श्रीकृष्ण कबहू न आवे भगवदावेश कबहू न होय तातें विष्णवकों यह द्वाविंशदोपतें रहित रहेनो यहदोपतें डरपत रहेनो अब जागुणतें विष्णवके हृदयमें श्रीकृष्ण विराजे सो कहतहें ॥ ५॥ विपयके ध्यानमें तत्पर रहे ताके हदयमें भगवान् न रहें ॥ २ ॥

मूलं-अहंकारयुते ऋरे द्वष्टपक्षेकपोषके। ज्ञानमार्गस्थिते सर्वसाम्यचितनभाविते ॥३॥

श्वाच्यार्थः-अहंकारयुक्त, ऋर, दुष्टके पक्षकोंही मुख्य पोपण करे, ज्ञानमार्गमें रहे, ओर सर्वदेवसमान प्रभुकों जानि एसो चिंतन करे तिनके हदयमें भगवान् न पधारें ॥ ३ ॥ टीका-अहंकारयुक्त रहे जो मो समान दूसरो कोउ नांहीहे में वहूत समुझतहों मेरेमें वडी वैष्ण-वताहे में सेवास्मरण वहुत करतहों में अनेक मनोरथ करतहों में सगरे कुंदुंचको पालन करतहों मेरे सगरे आज्ञाकारीहे इत्यादि मनमें अहं कार राखे ताके हृदयमें भगवान् न रहे, कूर हृदय होय परायो बुरोहि विचारे मनमें येही विचार रहे जो मेरो दाव परेगो नो दुःख देंहुंगो याभांति कूर दृष्टि रहे टेडो रहे वांकोही वोल्योकरे एसे कूर्क हृदयमें भगवान् न रहे, कोई दुष्ट कार्य (चोरी, अन्याय, काहूको वुरी) करे ताको पक्षपात करे ताके हृदयमें भगवान् न रहें, ज्ञानमार्गमें स्थित होय तार्मे स्वामिसेवकभाव नांहीहे सर्वगुण युक्त भगवानके स्वरूपकी ज्ञान नांहीहे भगवानकों निराकार जानतहे ताके हृदयमें, भगवान न रहे भगवानकों बह्या, महादेव, गणेश, इंद्र, इत्यादिक देवतासमान चिंतन करे तासों सबनको समान आश्रय करे सबनसों फलकी चाहनी करे याभांति अन्याश्रयं करे ताके हृदयमें भगवान् न रहे ॥ ३ ॥

मृतं-लीकिके सन्मुखे कृष्णजनवेमुख्यसंयुते । कृष्णलीलादोपदृष्टी तथा कर्म जडेऽपि च ॥४॥

शब्दार्थ:-लोकिकमें सन्मुख, श्रीकृष्णके जन (वेष्णव) सीं विमुखतायुक्त, श्रीकृष्णकी लीलामें दोपदृष्टि होय तथा कर्ममें जडकी-

मुलं-व्रजस्तिचरणांभोजरेणप्राप्त्यभिलाषुके। गुणगानपरे कृष्णनामार्थपरिभाषुके॥७॥

शब्दार्थ:--अपने अजभक्तनके चरणारविंदके रजकी प्राप्तिमें इच्छायुक्त, गुणगानमें तत्पर, (श्रीकृष्ण) यहनामको अर्थ (फलात्मक) हे ताके यथार्थ भावयुक्त एसे हदयमें प्रभु क्षणमें पधारे ॥ ७॥ टीका---वर्जभक्तनके चरणकमलकी रेणुकी प्राप्तिमें निशदिन अभिलापा रहे जो मोकों व्रजभक्तनके चरणकमलकी रज कव प्राप्त होयगी येही मनोरथ मनमें रहे जेसे उद्धवजी अमरगीतके अध्यायमें कहेहें "आसामहो चरणरेणुजुपामहं स्यां वृंदावने किमपि गुल्मल्तोपधीनाम्। या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकंदपदवीं श्वितिभिविमृग्याम्॥ वंदे नंदन्नजिल्लीणां पादरेणुमभीक्षणशः । यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् " (यह व्रजभक्तनके चरणार विंदकी रजको सेवन करिवेवारे जो श्रीवृंदावनमें गुल्म, लता ओर औपधि (तामस, राजस, ओर सालिक) हे तामें में कछ होउं, जो व्रजभक्त काहूतें त्याग न होय एसे अपने जन [संवंधीवर्ग] ओर वेदमार्गकों छोडिकें श्रुतिनकें खोजिबे-योग्य श्रीकृष्णकी पदवीकों भजत भये (सो आप श्रुतिरूपाहे तासाँही: भजतहे) ॥ श्रीनंदरायजीके व्रजकी स्त्रीयनके चरणारविंदकी रजकों में वारंवार वंदन करतहों जिनको भगवत्कयाको उद्गीत (परवश्यतासाँ भयो एसो गान) तीनलोककों पवित्र करतहें) इत्यादिक वचनके भाव विचारे ताके हृदयमें श्रीकृष्ण विराजे, श्रीकृष्णकी छीलासंबंधी गुणगान करे सो डादशस्कंधमें शुकदेवजी कहेहें "कलेदोंपनिधे राजनिस्त होको" महान्युणः। कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तवंधः परं व्रजेत् " [हे राजन्

१ मनमक्तनेके चरणकमलकी रजकी अभिलापा लिखि सो सन्यामनिर्णयमें इष्टिमार्गके गुरु कॅडिप्यक्रपि और बनमक्तरें एसे लिज्योहे याही अभिप्रापसों हे.

मूलं-दीने शुद्धे निःप्रपंचे लीलाचितनतत्परे । स्वाचार्यशरणे नित्यं सर्वकामविवार्जिते ॥ ६ ॥

शब्दार्थ:-दीन, शुद्ध, प्रपंचराहत, श्रीकृष्णकी लीलाके चिंतनमें तत्पर, स्वाचार्यके दृढ आश्रययुक्त, ओर नित्य सर्वकामकरि वर्जित एसे हृदयमें भगवान् तत्क्षण प्रवेश करतहें ॥ ६ ॥ टीका-दीन होय कोड कछ कहे निंदाकरे तोहू सहिलेय सो श्रीग्रसाईजी विज्ञितिमें कहेंहें "आचार्यचरणैरुक्तं दैन्यं त्वत्तोषसाधनम्" (श्रीआचार्यजी महाप्रशुजी श्रीसुवोधिनीजीमें कहेहें जो प्रभु प्रसन्न करिवेको साधन एक दैन्य-हीहे) तार्ते दीन होय ताके हृदयमें भगवान विराजें, ओर शुद्ध-हृदय होय मनमें कपट छल न होय शुद्धभावतें प्रभुको भजन स्मरण करे ताके हृदयमें भगवान् विराजे, लौकिक प्रपंचादिकतें रहित होय काहू देहसंबंधीमें मन न लगावे एक प्रभुमें मन लगावे कछ प्रपंचर्मे आसक्ति न करे ताके हृदयमें प्रभु विराजे, श्रीकृष्णकी लीला आनंद-रूप वाललीला, दानलीला, रासलीला, इत्यादि अनेक लीलाहे तिनके चिंतन्में तत्पर रहे सो निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहेहें "गुणेष्वाविष्टिचतानां सर्वदा मुरवैरिणः" भगवानके गुण चित्तमें प्रविष्ट होय तब हृदयमें अनेक दोप सुर दैत्यरूपहे तिनसब अपने वैरीको नाम सुनि निवृत्त होय तातें लीलामें जिनको चित्त तत्पर रहे तिनकें हृदयमें प्रभु विराजतहें, अपने पुष्टिमार्गके आचार्य श्रीवल्लभाचार्य-जीके चरणको आश्रय अहर्निश चित्तमें रहेसो श्रीसवीत्तमजीमें नामह "अञ्चेपभक्तसंप्रार्थ्यचरणाञ्जरजोधनः"याभांति श्रीआचार्यके चरण-कमलकी रज अपनो सर्वस्व धन जिनने जान्योहे तिनको श्रीकृष्णाध-रामृतास्वादसिद्धिहे तिनके हृदयमें श्रीकृष्ण विराजें, ओर लोकिक वैदिक देहसंबंधी सर्वकामकरि वर्जितहे प्रभावना कहं मनकी आसक्ति नांहीहे एसे अनन्य वेष्णवके हृदयमें प्रभु विराजतहे. ॥ ६ ॥ स्मरणं, श्रीकृष्णंहीकी कथाको श्रवण, श्रीकृष्णंकोही गुणगान. मन वचनं कर्मकरि पुष्टिमांर्गके धर्ममें अनन्य होय सो हारितस्मृतिमें र्कहेहे "अनन्यशरणा ये तु तथैवानन्यसाधनाः । अनन्यभोगभोगा ये तेत् सर्वेऽधिकारिणः॥ नान्यं देवं नमस्क्वर्यात्रान्यं देवं निरीक्षयत्। नान्यप्रसादमद्याच नान्यदायतनं व्रजेत्" (अनन्य आश्रयवारे. तेसेंही अनन्य साधन करिवेवारे ओर अन्यदेवको प्रसाद नांही लेयवे-वारे एसे भक्त [भक्तिमार्गमें] अधिकारीहे ॥ अन्यदेवकों नमस्कार न करे, अन्यदेवको नांही देखे, अन्यको प्रसाद नांही ले. अन्य-देवके स्थानमें नांही जाय) एसे अनन्य होय ताके हृदयमें श्रीकृष्ण विराजें, तथा अनन्य पुष्टिमार्गीय जे बैष्णवहे तिनमें पूर्ण निष्ठाकरि उनभगवदीयनको संग करे उनकी सेवा करे सो भगवदीय गायेहें "एक भरोंसो व्रजभक्तनको दूजो नंदिकशोरको " ओर भक्ति-वर्द्धिनीम श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहेहें "अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः " (तासों भगवत्परायण भगवदीयनके संग हरिस्थानमें (भगवन्मंदिरमें अथवा मंदिरकी पास, रहेनो) प्रभुके स्थानमें तदीयके संग तत्पर रहे ताके हृदयमें प्रभु विराजें, ओर भगवद्धर्ममें रति होय यहपुष्टिमार्गके धर्ममें प्रीति होय ओर साधना-दिमें मन न लगावे सो नवरत्नग्रंथमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहेहें "पुष्टिमार्गिस्थतो यस्मात्साक्षिणो भवताखिलाः। सेवाकृतिगुरोराज्ञा वाधनं वा हरीच्छया" याभांति गुरुकी आज्ञाप्रमाण प्रष्टिमार्गमें स्थितहोय सेवा करे ओर प्रभुकी ईच्छातें गुरुकी आज्ञाको वाध होय तामें तथा संसारादिकमें साक्षिवत् रहे जैसें जलमें कमल रहे याभांति भगवद्धर्ममें रित होय ताके हदयमें प्रभु विराजें, ओर लोकिकतें विरक्त होय सर्व प्रभुकों समर्पण करिदेय सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी

दोपके निधिरूप कुलियुगको एक वडो गुणहे जो श्रीकृष्णके कीर्तन सोंही मुक्त वंध होयंके परपुरुप (श्रीकृष्ण) को प्राप्त होय] इत्यादि वचनतें गुणगान करें ताकें हदयमें प्रभुं विरांजे, कीर्तन ने आवे तो श्रीकृष्ण यह नामकों अर्थ विचारिकें अनुभव करे सो पष्टस्कंध श्रीभा-गवतमें कहेहें "अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्। संकीतितमधं पुंसां दहेदेधो यथानलः ॥ नामोचारणमाहातम्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः। अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत" (विष्णुदूत यमदूतकों कहतहे जो अज्ञानतें अथवा ज्ञानतें उत्तम श्लोक [भगवान्] को नाम आछी रीतिसों [आर्तियुक्त होयकें] जो लियो सो अभिकाष्ठकों दहे तेसे. पुरुपके पापकों दहतहे। यमराजा अपने दूतनकों कहतहे जो हे पुत्र! हरिके नामके उचारको माहातम्य देखो जाकरिकेही अजामिलहू मृत्युके पाशतें मुक्तभयो) ओर अष्टमस्कंधमें कहेहें "ते सद्भाग्या मनुप्येषु कृतार्था नृप! निश्चितम्। स्मरंति स्मार्यंतीह हरेर्नाम कली युगे" (हे राजन् जो यह किल्युगर्मे हरिके नामको आप स्मर्ण करतहे ओर दूसरेकों स्मरण करावतहे सो मनुष्यनमें सुंदर भाग्यवारे ओर कृतार्थ (पूर्ण) निश्चयहे इत्यादि वचनते श्रीकृष्णके नामके अनुभवतें ही भगवान् हृदयमें विराजतहें ॥ ७॥

मुलं-अनन्येऽनन्यसेवैकनिष्ठातत्परतां गते। भगवद्धमीनरते विरक्ते ग्रणसंगिनि॥ ८॥

शब्दार्थः-अनन्य भावयुक्त, अनन्य भक्तकी सेवाकी मुख्य निष्ठामें तत्परताकों प्राप्त भये, भगवद्धर्ममें प्रीतियुक्त, विरक्त और भगवद्रुणके संगयुक्त (एसे हृदयमें प्रभु पधारे)॥८॥ टीका-एक श्रीकृष्णहीमें अनन्य भाव होय श्रीकृष्णहीकी सेवा करे, श्रीकृष्णको

विषयादिकके संगर्ते, बुद्धि चलायमान न होय एसे पुष्टिमार्गमें दृढ होय तार्के हृदयमें प्रभु पधारें, ओर श्रीकृष्णकी नानाप्रकारकी लीलारसमें अति चंचल (क्षणक्षणमें लीलारसमें मन्न) होय सो सिद्धांतमुक्तावलिमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहेहें "चेतस्तत्प्रवणं सेवा" यह मानसीसेवा जो चित्त एकाय [नदीके प्रवाहकी नांई] अहर्निश प्रभुकी लीलामें रहे याभांति जाको चित्त प्रभुकी लीलामें चंचल होय ताके हृदयमें प्रभु पधारे, ओर श्रीकृष्णके दर्शनकेलिये मन वारंवार व्याकुल होय सो श्रीभागवतएकादशस्कंधमें जनकराजा कहेहें "दुर्छभो मानुपो देहो देहिनां क्षणभंगुरः। तत्रापि दुर्छभं मन्ये चैकुंठिपयदर्शनम्" (जीवकों क्षणभंगुर मनुष्यदेह दुर्छभहे तामेंहूं भगवानके भिय [भक्त] को दर्शन दुर्छभ जानूहं) एसँ मनुष्यके देहकों दुर्छभ ओर क्षणभंगुर जानि तामेंहू भगवद्भक्तको दर्शन दुर्छभ जानि भगवानके दर्शनमें व्याकुल होय सो भाव कुंभनदासजीकों ह जो एक दर्शनके अंतरायमें गाये "किते दिन व्हेज गये विनुदेखे" एसी आर्ति दर्शनमें होय ताके हृदयमें प्रभु पधारे ॥ ९ ॥

मूलं-मनोरथशताकांते सर्वीदासीन्यसंयुते। एतादृशे तु हृद्ये हरिराविशते क्षणात्॥ १०॥

शब्दार्थः-श्रीकृष्णकी सेवामें अनेक मनोरययुक्त ओर लोकिक-वैदिकमें औदासीन्ययुक्त (लोकिकवेदिकमें आसक्तिरहित) एसे हृदयमें तो क्षणमें प्रभु पधारें 11 १० 11 टीका-जेसें ब्रजभक्त श्रीटाकुरजीको सुखदानार्थ नानाप्रकारके मनोरय करते वागा, वस्त्र, आभूपण, सामग्री [तन-मन-धनसों] प्रभुकों समर्पते सर्वात्मभाव प्रभुमें हतो तेसेंहि पुष्टिमार्गमें श्रीवह्नभक्तल श्रीकृष्णको सर्वस्व विनियोग करावतहें तातें सिद्धांतरहस्यमं कहेहं "तस्मादादों सर्वकायं सर्ववस्तुसमर्पणम्" याभांति जो वेष्णव पहिलेंही सर्वकायमं भगवानकों सर्ववस्तु 'समर्पि विरक्त होयरहे ताके हृदयमं प्रभु विराजें, ओर भगवानके गुणको संग करे, इनके गुणको गान करे, इनको स्मरण करे तिनके हृदयमें प्रभु विराजें ॥ ८॥

मूलं-कृष्णातिभावसंयुक्ते सरसेऽन्यरसातिगे। अचंचले कृष्णलीलाचंचले दर्शनाकुले॥९॥

शब्दार्थः-श्रीकृष्णकी आर्ति तथा भाव करिके युक्त, भक्तिके रस सहित, अन्यधर्मके रसकों उछंघित, भगवद्धर्ममें स्थिर, श्रीकृष्णकी लीलाकरि चंचल (विकल जेसो) ओर श्रीऋष्णके दर्शनमें आकुल एसे हृदयमें प्रभु क्षणमें पधारें ॥ ९ ॥ टीका-श्रीकृष्णमें आर्तिभयेतें प्रभु कृपा करे सो निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभु कहेहें "क्रिश्य-मानान् जनान् दृष्टा ऋपायुक्तो यदा भवेत्। तदा सर्वं सदानंदं हदिस्यं निर्गतं वहिः" यह वचनतें भगवान् भक्तनकों आर्त्तिक्केशयुक्त देखिकें कृपायुक्त होय सर्वके आनंददाता हृदयतें वाहिर प्रकट होय दर्शन देय अपनो अनुभव करावें तातें आर्तितो यह पुष्टिमार्गको फलहे जहां आर्ति तहां प्रभु पधारं, श्रीऋष्णमें भाव निवेदनतें होय जेसें लौकिकमें स्रीकी च्याह होय तब पतिमें भाव होय जो यह मेरो पति हे तेसेंही श्रीआचार्य-जीडारा निवेदन भयो तब श्रीकृष्णमें भाव होय श्रीकृष्णहीको सर्वस्य जाने यह भाव होय तब भगवान् हृदयमें पधारें, भगवत्स्वरूपरसमें सरस होय ओर अन्यमार्गीय रस तथा विषयादिक रसकरि रहित होय एक पुष्टिमार्गमें श्रीऋष्णाधरामृतास्वादरसकों चाहे एसे वैष्णवके हदयमें अर्थ पधारें, अंचर्ट [गंभीरबुद्धि] होय, अन्य मार्गीयके संगतें, दुष्टके संगतें,

ओर इनके निवंध, श्रीसुवोधिनी, ओर पोडराग्रंथको अवलोकन करनो तथा दुःसंगतें दूरि रहेनो ताकरिकें सगरे दोप निवृत्त होय यह निरूपणहे। ऊपर विद्या अविद्याके प्रकार कहे सो व्रजभक्तनकों हू प्रभुनेही अविद्याकी निवृत्ति करि विद्या सिद्धिकये तब भये, भक्तनको सामर्थ्य नांहीहे प्रभुहीं सामर्थ्य दियो तब रासपंचाध्यायीमें सगरे प्रतिवंधकों तोडिकें प्रभुपास आये अनुभव भयो तेसेंही इहां पुष्टिमार्गमें जब प्रभु कृपा करे तबही फल होय सो आगें कहतहे—

मूलं-अस्मिन् मार्गे प्रभोरिच्छामात्रं सर्वत्र कारणम्। सेव चावरणं यावत् प्रतिकूला फले निजे ॥१॥

राज्दार्थः —यह पुष्टिमार्गमें सर्वकार्यमें मात्र प्रभुकी इच्छा कारणहें सोही जवताँई अपने फलमें प्रतिकृत होय सो आवरणहे ॥१॥टीका—हमारे श्रीवरूमाचार्यजीके पुष्टिमार्गमें श्रीकृष्णकी इच्छाही सर्वकार्यमें कारणहे सो इच्छा जवताँई प्रतिकृत्वहें अपनो फल देयवेमें विलंबकी इच्छाहें तवताँई आवरणहें तातें बाह्मण, क्षत्रिय, वेश्य, शृद्ध कोउ वर्ण होय तथा हीनजाति म्लेच्छ, चांडाल, मलाह, इत्यादिक होय सर्व धर्मकरि रहित होय तिनकों फल देवेकी इच्छा होय तो एसेहू यह पुष्टिमार्गमें शरण आवे ओर फलकों निश्चय पावे ओर जाकों फलदेवेमें प्रतिकृत इच्छाहें सो यह पुष्टिमार्गके धर्मकरि रहित होय तिनकों फल नाही होय तातें प्रभुकी इच्छाही मुख्यहें सो वार्तामें प्रसिद्धहें जो अलीखां ओर अलीखांकी वेटी भगवानकी इच्छातें चाचाहरिवंशजी द्वारा श्रीग्रसाईजीकी शरण आये तातें या मार्गमें श्रीकृष्णकी इच्छा परमकारणहे ॥ ३॥

मूलं-तदावरणनाश्रस्त देन्यादेव हरों कृतात्। स दिनेषु निजामिच्छामनुकूलां करोति हि ॥२॥ वैष्णवकों तन, मन, धन, किर प्रभुहींकी सेवामें अनेक मनोर्थ होय जो द्रव्यादिक न होय तो मनहींतें (मानसी सेवामें) नानाप्रकारके मनोरथ करे ताके हृदयमें प्रभु विराजे, ओर ठौिकिक वैदिक देहसंवंधी कार्यमें सवठोर अपने मनकों उदास राखे ठौिकिकमें साक्षिवत रहें, संसारके सुखदुःखतें मन उदासीन रहे तो प्रभु हृदयमें रहें, अव श्रीहरिरायजी कहतहें जो यह द्राविंशगुण विद्यारूप जावैष्णवके हृदयमें आवे ताके हृदयमें श्रीकृष्ण पधारें स्वरूपानंदको अनुभव करावें जेसें व्रजभक्तनकी पंचपकी अविद्या दृरिभई विद्या सिद्ध भई तव श्रीकृष्ण हृदयमें विराजें तेसे वैष्णव द्राविंशदोप छोडि द्राविंशगुणकों धारण करे तो श्रीकृष्ण निश्चय ताहीक्षण हृदयमें पधारें।। १०।।

इति श्रीहरिरायजीकृतं दात्रिंश्तमं शिक्षापत्रं श्री-गोपेश्वरजीकृतत्रजभाषाटीकासमतं समाप्तम् ॥३२॥

शिक्षापत्र ३३.

अंव त्रयिह्मं शांतिक्छ होय ताको नाश हिरमें दैन्यते होय काहेतें च्छाहीहे सोही प्रतिक्छ होय ताको नाश हिरमें दैन्यते होय काहेतें जो दीनजन उपर हिर अपनी इच्छा अनुक्छ करतहे जब इच्छा अनुक्छ भई तब दासकों कहा दुर्छभहे ? तातें छोकमेंहू दीनके उपर सबनकों दया होतहे यह जानिके देन्य राखनों सोही साधन हे अभिमान और मद देन्यके विरोधी हे ताको त्याग करनों यह न बने तो अपने श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीको दृढ आश्रय राखनो अन्य कोन रक्षा करिनेमें समर्थहे) ओर पुरूरवानें कहाहे "पुंश्रत्यान्य पहतं चित्तं कोऽन्यो मोचियतुं क्षमः। आत्मारामेश्वरमृते भगवंतमधोन्सजम्" (पुंश्रली [व्यिभचारिणी] स्त्रीने हरिलिये एसे चित्तकों आत्माराम [योगी] के ईश्वर अधोक्षज भगवान विना ओर अन्य कोन छुडायनेमें समर्थहे) ओर व्यासजी कहेहें "घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मिववर्जिते। वासुदेवपरा मर्स्वास्ते कृतार्था न संशयः" (सर्वधर्म-करिरहित घोर कलियुग प्राप्त भयो तामें भगवत्परायण मनुष्य कृतार्थहे संशय नांही । यामांति पिंगला पुरूरवादि ओर द्रौपदी, गर्जेंद्र, जो आर्तिकरी शरण आये तिन सवनको उद्धार प्रभु किये ताते एक प्रभुके आश्रयतें ओर दैन्यतेंही प्रभुकी कृपा होतहे॥ ३॥

मूलं-अतो दैन्यं हि मार्गेऽस्मिन् प्रमं साधनं मतम्। अभिमानो मदश्चापि सततं तद्विरोधिनौ॥४॥ तौ विज्ञाय प्रयत्नेन परित्याज्यो फलार्थिभिः। दौष्ट्यं समस्तेंद्रियाणां साधनेरेव नाश्येत्॥५॥

शब्दार्थः—तासों यह पुष्टिमार्गमें दैन्यही परमसाधन मान्योहे अभिमान ओर मद यह दोनोहू निरंतर दैन्यके विरोधिहे ॥४॥ इनक़् जानिकें पुष्टिमार्गीय फलके अर्थवारेकें यत्नकरिकें त्याग करिवेयोग्यहे ओर समग्र इंद्रियनकी दुष्टतांकों साधनकरिकेंही नाश करे ॥,५॥ टीका—पुष्टिमार्गमें परम साधन एक दैन्यहे दैन्यभावनाकरणार्थ सर्व समर्पणहे तातें जाकों दीनता सिद्ध भई तिनकों यह पुष्टिमार्गको फल सिद्धही भयो तातें विज्ञप्तिमें श्रीग्रसांईजी कहेहें "याहशी ताहशी नाथ! त्वत्पादाञ्जेकिकिकरी। त्वद्धकं कथमप्याशु कुक हग्गोचरं मम" (जेसी तेसी तुम्हारे चरणकमलकी किंकरी (दासी) हों तातें अपनी जानि कृपा करि मेरे नेत्रकों आपके मुखको विगहीं दर्शन करावो) ओर शब्दार्थः - यह आवरणको नाश हरिमें दैन्य कियेतेंही होय काहेतें जो वह भगवान दीनमें अपनी इच्छा (प्रतिकृत होय तोहू फिर) अनुकृत करतहें ।। २ ।। टीका - हरिसों जब दीनता होय तब आंवरणको नाश होय भगवानको संबंधी भयो तासों भगवत्सेवामें अंगीकार भयो दीन ताकरि दासभावहू भयो तब प्रभुकी इच्छा आपुहीतें अनुकृत होय जो अब तो यह जीव मेरोही भयो तासों छोड़्यो न जाय जब प्रभु अनु कृत भये तब सब सिद्ध होय सो आगें कहतहें ।। २ ।।

मूलं-तदानुकूल्ये दासानां किं फलं दुर्छमं मतम्। कृपा च जायते दीने लोकसिद्धनिदर्शनात्॥३॥

शब्दार्थः—भगवानकी इच्छा अनुक्ल भई तब दासनकों कहा फल दुर्लभहे (कछुह नांही) काहेतें जो दीनपें छपा होयहे एसें लोकमें दिखेहे (तासों दीनहोय तो प्रभुकी छपा होय) 11311 टीका—जब प्रभुकी इच्छा अनुक्ल भई तब सगरो फल सिद्ध भयो यामें संदेह नांहीहे तातें श्रीष्ठष्णकी छपाको कारण एक दैन्यहे सो लौकिकमें कहें प्रसिद्ध देखियतहे जो केसोहू वेरी होय केसोहू काम विगाडे परंतु आयकें शरण पडे जो में तो तुम्हारोहों अब चाहोसो करो तब उहपर कृपाहीं करे मायों न जाय तेसें अनेकजन्मतें जीव भूल्यो हे सो श्रीआचार्यजीद्वारा प्रभुको सर्व समर्पणकरिकें दीन होय एक श्रीकृष्णकी दासहूं तब प्रभु प्रसन्न होय छपाही करे तातें दीन होय एक श्रीकृष्णकी शरणभावना राखे सो श्रीभागवतएकादशस्त्रंधमें पिंगलाको वाक्यहे "संसारकृषे पतितं विपयमेर्मुपितेक्षणम्। श्रस्तं कालाहिनात्मानं कोऽन्य-स्नातुमधीश्वरः" (संसारक्ष कृपमें गियों ओर विपयकरिकें मृंद गयेहें नेत्र जिनके एसे ओर कालक्ष्प सर्पने निगत्ये एसे आत्माकों और

१ प्रज्ञवासिनके लिये पुस्तकमें आवरणको अर्थ नांही लिख्योहे वर्ण (ब्राह्मणादिक) लियेहे सो अर्थ मूलसों विरद्धहे.

श्रीआचार्यजीके दृढ आश्रयवारेनके दोप तो अग्निस्वरूपसों (श्रीआचार्यजी अग्निस्वरूपहे तासों) संवंधमात्रतें श्रणमात्रमें भस्म होयजात है ॥ ६ ॥ दीका—दृढ आश्रय राखनो अन्याश्रयतें फलको नाज्ञ होय सो दामोदरदान संभरवारेकी वार्तामें प्रसिद्धहे जो वाकी स्त्रीने रंचकहू अन्याश्रय कियो तातें पुत्र म्लेच्छ भयो एसो वाधकहे सो श्रीग्रसांहजी कहेहें "अहं कुरंगीहरमंगिसंगिनांगीकृतोऽस्मि यत्। अन्यसंवंधगंधोऽपि कंधराभव वाधते" अन्यसंवंधको गंधह होयतो गरो कटे प्रभुसों अन्याश्रय सह्यो न जाय श्रीनंदरायजी अंविकापूजनकों गये तहां सुदर्शन-सर्प नंदरायजीकों निगलगयो फिर प्रभुकी शरणजाय प्रार्थना करी तव छटे तातें अन्याश्रय महावाधकहे तातें श्रीआचार्यजीके आश्रितनकृं अग्निक संवंधतें काष्ठभीनांई अग्निरूप श्रीआचार्यजीके संवंधतें सगरे दोप एकश्रणमें भस्म होयजाय ॥ ६ ॥

मूलं-अतःस्वाचार्यमात्रेकश्रणेस्तत्पराश्रितैः ॥ ७॥ तद्ग्रंथार्थावबोधार्थाविहितातिप्रयत्नकैः। दुःसंगवर्जितैः संगसंप्राप्त्याशायुतेरिप ॥ ८॥ स्थेयं सेवापरेरन्याश्रयत्यागविचक्षणेः। कामलोभादिदोषेकपरित्यागेच्छमि सदा॥९॥

शब्दार्थः—तासों अपने श्रीआचार्यजीकेही आश्रयवारे, इनके परायण भगवदीयके आश्रित ॥७॥ इनके ग्रंथ श्रीस्रवोधिनीजी, निवंध आदि) के अर्थ जानिवेके लिये प्रयत्न करिवेवारे, दुःसंगतें रहित, सत्संगकी प्राप्तिकी आशायुक्त ॥८॥ सेवामें चतुर, अन्याश्रयके त्यागमें चतुर, कामलोभादि मुख्यदोपके त्यागकी इच्छावारे, एसें होय सदा रहेनो ॥९॥ टीका-श्रीआचार्यजीके चरणकमलको हट आश्रय करें श्रीआचार्यजीके चरणकमलके आश्रित भगवदीयहोय तिनको आश्रय

श्रीआचार्यजीमहार्पमु कहेहें 'दैन्यं त्वत्तोपसाधनम्" याभांति दैन्य सर्वोपरि साधनहें अभिमान ओर मद यह दोउ प्रष्टिमार्गके फलमें विरो-धीहे ताहीर्ते श्रीआचार्यजीमहाप्रभु विवेकधैर्याश्रयमें कहेहें 'अभिमानश्र संत्याज्यः स्वाम्यधीनत्वभावनात् । " स्वामीके आधीनहूं एसी भाव-नातें अभिमान सगरो छोडनो) जो स्वतंत्र होय सोई अभिमान करे दासकों नांही कर्त्तव्यहे स्वामीकी आज्ञा मांगि सगरो कार्य कर्त्तव्य हे सो अभिमानतें दासपनो जातरहे तातें अभिमान वडो वाधकहें तेसेंही मदह वाधकहे पुष्टिमार्गके फलमें विरोधीहे ॥ ४ ॥ लौकि सुख़तें सगरे अलैकिक साधनको नाश होतहे तासों इंद्रिय दुष्टहोतहें तिनकों अछोकिकमें लगावे तव दुष्टता मिटे सो निरोधलक्षणमें श्री-आचार्यजीमहाप्रभुजी कहेहें 'संसारावेशद्रष्टानामिद्रियाणां हिताय वै कृष्णस्य सर्ववस्तृनि भूम्न ईशस्य योजयेत् "(संसारके आवेशकरि दुष्ट सव इंद्रियनके हितके लिये अपने स्वामी श्रीकृष्णकी सर्ववस्तुहें सो उनमें रूगावे) तासों इंद्रियनकी दुष्टता निवृत्त होय सगरी इंद्रिय-नकी आसक्ति लैकिकपें होय सो दुष्टता जानियें प्रभुमें आसक्तिसी वह दुष्टता मिटे ॥ ५॥

मूलं-अथवाश्रयमात्रेण नाश्यिष्यति मत्प्रभु । निजाचार्याश्रितानां तु दोषा वन्हिस्वरूपतः॥६॥ संबंधमात्रतो भस्मीभवंति क्षणमात्रतः।

शब्दार्थः-उपर कहे जो इंद्रिनकी दुष्टता साधनकरि निवृत्त करे परंतु तेसें न होयसके तो अपने स्वामीको आश्रय दृढ करनो ता आ-श्रयमात्रतें अपने स्वामी सर्वदोपकों नाश करेंगे काहेतें जो अपने,

[े] १ इंद्रियनको धर्महे मो छुटायो न छुटे तासों सर्व इंद्रियनकी लेकिकमेते आसकि। छुदाय भगवानमें आसकि फरावनी.

रहिवेतें श्रीठाकुरजीको आवेश हृदयमें न होय हृदयमेंतें पधारे ओर लोभकिर संसारासिक होय पापपुण्यको विचार न रहे केवल अपने स्वार्थकेही वश्य होय एसे लोभी तथा कामीके हृदयमें प्रभु न आवे तातें काम तथा लोभको सदा त्याग करे तब फलरूप दैन्य सिद्ध होय॥ ९॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं त्रयस्त्रिशत्तमं शिक्षापत्रं श्री-गोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥३३॥

शिक्षापत्र ३४.

अव चतुम्लिंश शिक्षापत्रमें श्रीकृष्ण सदा सेव्यहें येही फलहे तामें मुखारिवेंदकी भक्तितें प्रभु आपतेंही प्राप्त होय ओर चरणारिवेंदकी भक्तितें धर्मद्वारा धर्मविशिष्टप्रभु प्राप्त होय चरणात्मकभक्तितें सायुज्यफल होय ओर मुखारिवेंदकी भक्तितें श्रीभगवानके अधरामृत सेवनरूप फल होय यागांति पुष्टिभक्तिकी अवस्था ओर साधनको निरूपण तथा सर्वात्मभावको निरूपणहे जेसे मंत्रशास्त्रमें मंत्रके वीज विना कछु कार्य सिद्ध न होय तेसे यह पुष्टिमार्गमें दैन्य विना कछु सिद्ध न होय पुष्टिमार्गकी प्राप्ति तो श्रीमदाचार्यजीके चरणारविंदकी कृपातें होय तासों इनकोही आश्रय करनो यह निरूपणहे। उपर प्रथके वोधतें, सत्संगतें ओर सेवातें देन्य सिद्ध होय एसो निरूपण कियो सो सेवाके दोय प्रकारहे एक मुखारिवेंदकी भक्ति सो

१ चरणारविंदकी भक्ति करनी सो दासको धर्महे तासों यह धर्महपभक्ति है.

करे ी। भा पुष्टिमांगीय ग्रंथ श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी, श्रीगुसाईजी आदिकेश्रीसुवोधिनीजी, निवंध, विद्यन्मंडन, टिप्पणीजी श्रीसर्वेत्त मजी आदि ग्रंथहे इनके भावको वोधभयेतें आश्रय सिद्ध होय सो सर्वौ त्तमस्तोत्रमें श्रीगुसाईजी कहेहे 'कृष्णाधरामृतास्वादासाद्धरत्र न संशयः श्रीकृष्णके अधरामृतको पान निश्चय करतहें यामें संशय नांही तार्ते सर्वोत्तमआदि सगरे ग्रंथको पाठ अवश्य कर्तन्य हे ताकरि सर्व सुवीध होय दैन्य होय ओर आश्रय सिद्ध होय, अव दुःसंगको त्याग क्र्नो सत्संगकी प्राप्तिको यत्न करनों तातें श्रीभागवतप्रथमस्कंधमें शौनक कहेहें "तुलयाम लवेनापि न स्वर्ग नापुनर्भवम् । भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः" (भगवानके संगि भक्तनके लवमात्रके संग-तुल्य न स्वर्गकों के न मोक्षकों हम तुलना करेहें तो मनुष्यनको सुख तो कहा) याभांति सत्संगतुल्य ओर सुख नांहीहे तातें सत्संग करे तो सर्व सिद्ध होय ॥ ८॥ श्रीकृष्णकी सेवामें स्थित रहे क्यों जो यह पुष्टिमार्गमें परमफलरूप भगवत्सेवाही हे सेवासमान ओर कुछ नांही हे सो श्रीभागवतनवमस्कंधमें श्रीभगवान् दुर्वासामित कहेहें "मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम्। नेच्छंति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालः विष्ठुतम् " [मेरी सेवार्ते साक्षात्कार भये एसे सालोक्यादि चतुर्विध मोक्षकोंहू मेरे भक्त नांही इच्छत हैं काहेतें जो सेवाकरि पूर्ण है ती कालकरि जिनको नाशहोय ताकी इच्छा नांही राखे वामें कहा केहेनो 🗓 एसें भगवदीय सेवामें पूर्ण हे जो चतुर्विध मुक्तिपर्यंत नांही चाहतहें याभांति श्रीकृष्णकी सेवामें स्थित होय, ओर अन्याश्रय न करे देवताआदिको (द्रव्यादिकके लिये) रंचकहू आश्रय होय तो फलको नाश होय तार्ते अन्याश्रय छोडिवेमें विचक्षण रहेनो ओर कामादि विषयको तथा लोभको त्याग करे काहेतें जो कामादिविषयमें तत्पर

प्राप्तिहे यामें संशय नांही तहां कोई संदेह करे जो उपर मुखारविंदकी भिक्त कही फिर धर्मसेवात्मक चरणारविंदकी भिक्त कही दोऊतें प्रभुकी प्राप्ति वताये तब दोऊ एकहीं भई तब श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी प्रगट होय मुखारविंदकी भिक्तमें अधिकता कहा वताये ? याप्रकार कोई संदेह करे तहां आगें कहतहें ॥ २ ॥

मूलं-तत्र सायुज्यसंबंधो न लोभामृतसेवनम्। मुखारविंदभक्तो तु साक्षात् तत्सेवनं मतम्॥३॥

शब्दार्थः—चरणारविंदकी भिक्तमें सायुज्य संबंधहें छोभात्मक अधरामृत (भगवत्प्रसाद)को सेवन नांही ओर मुखारविंदकी भिक्तिमितो साक्षात् इनको सेवनहे ॥३॥ टीका-मुखारविंदकी भिक्ति (पृष्टि-सिक्त) में ओर चरणारविंदकी भिक्त (भर्यादाभिक्ति) में फलमें वहूत भेदहे सो कहतहें चरणात्मक मर्यादाभिक्तिकरिकें सायुज्यमुक्तिकी प्राप्तिहे तामें छोभामृतको भेवन नांहीहे ओर मुखारविंदकी भिक्तिहे सो तो प्रमुकी साक्षात्सेवारूपहे तहां साक्षात् प्रमुके स्वरूपानंदको अनुभवहे तातें मुखारविंदक्य पृष्टिभिक्ति सर्वोपिरहे ओर धर्मक्य चरणात्मक मर्या-दाभिक्तिहे एसें दोक्रमें वडो तारतम्यहे तातें न्यारी न्यारी कहीहे ॥३॥

मुरुं-एताह्यफिका भक्तिभवेत्केवलपुष्टितः। तत्रापि मुखरूपारमदाचार्यानुत्रहात् पुनः॥४॥

शब्दार्थः -लोभात्मक अधरामृतके सेवनरूप फल सिद्ध करिवेवारी भिक्त, केवल पुष्टितं होय तामेंहू फिर [श्रीकृष्णके] मुखारविंदरूप अपने श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके अनुग्रहतें होय ॥ १ ॥ टीका-जामें अधरामृतकी प्राप्तिहे एसी भिक्ततो मुखारविंदरूप पुष्टिभक्तिहे सो मुखा-रिवंदरूप श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीहे तातें मुखारविंदकी भिक्त हमारे -श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके अनुग्रहतें सिद्धहोय कहितें जो मुखारविंदकी

स्वींपरिहे ओर एक चरणकमलकी भक्तिहे सो दोउ भक्तिको प्रकार कहतहैं:-

मूलं-श्रीकृष्णः सर्वदा सेव्यः फलं प्राप्यं स्वतस्तु सः। स्वारविद्मक्त्येव साक्षात्सेवैकरूपया ॥ १॥

शब्दार्थः—साक्षात सेवारूप मुखारविंदकी भिक्तिहे तार्तेही स्वतः (आपतें) प्राप्यफल यह श्रीकृष्णहे सो सर्वदा सेव्यहे ॥१॥ टीका—अव श्रीहरिरायजी कहतहें जो यह पुष्टिमार्गमें तो सदा सर्वदा श्रीकृष्णही सेव्यहे सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी चतुःश्लोकी ग्रंथमें कहेंहें "सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो त्रजाधिपः । स्वस्यायमेव धमोहि नान्यः कापि कदाचन" (सर्वदा सर्वभावकिर त्रजके अधिपति श्रीकृष्णहीकी सेवा कर्त्तव्यहे हमारो यह धमेहे ओर नांही) ओर हमारे पुष्टिमार्गमें जो कोई स्थितहे तिनकोहू येही धमेहे श्रीकृष्णकी सेवाही कर्त्तव्यहे ओर कोई कालमें दूसरो साधन नांही कर्त्तव्यहे ताहिकरिकें पुष्टिमार्गके फलकी प्राप्ति स्वतः [आपुद्दीतें] सिद्ध होय काहेतें जो मुखारविंदकी भिक्तहे सो साक्षात स्वरूपसेवातें सिद्धहोतहे जामें दर्शन, स्पर्श, सर्वाग्यखको अनुभवहे तातें स्वरूपसेवानें साक्षात्कारहे यह मुखारविंदः भिक्त कही सो सर्वेपरिहे ॥ १॥

मूलं-चरणात्मकभक्त्या तु धर्मसेवात्मरूपया। धर्मद्वारा तदिशिष्टः प्रभुः प्राप्यो न संशयः ॥२॥

श्वदार्थः-धर्मसेवास्वरूप चरणात्मकभक्ति धर्मविशिष्ट प्रभुपाप्त होय यामें संशय नांही ॥ २॥ टीका—चरणात्मकभक्ति धर्मसेवारूपहें जेसे आगें बह्मा, शिव, नारद, सनकादिक, सब करिआयेहें ताहीभांति मर्यादासंयुक्त धर्मवत् करनी यह धर्मद्वारा भक्तिहे ताकरि प्रभुकी मूलं-यथा मर्यादया भक्तों ब्रह्मभावस्तु साधनम्। तथा सर्वात्मभावोऽत्र साधनत्वेन बुद्धयताम्॥७॥

शब्दार्थः - जेसें मर्यादा भिक्तमें ब्रह्मभावहें सो साधनहें तेसें यह पुष्टिमार्गीय भिक्तमें सर्वात्मभावहें सो साधनपनेतें जाननों ॥७॥ टीका - जेसें मर्यादाभिक्तमें ब्रह्मभावहें सोहि साधनहें सगरों ब्रह्मांड ब्रह्ममयहे अपनकोंहू ब्रह्म मानतहें यह ब्रह्म सबठोरहे याभांति ब्रह्मभाव (अक्षरब्रह्मको ज्ञान) मर्यादाभिक्तको साधनहें तेसेंही यह पुष्टिमार्गमें सर्वात्मभावहे सोहि साधनहें जेसें ब्रजभक्तनकों सर्वात्मभावहे तेसो सर्वात्मभाव इहां साधनहें यह बुद्धिमें निश्चय जाननों ॥ ७॥

मूलं-बस्तुतस्तु फलं चैव फलं स्यात्तत्प्रवेशतः। तत्स्वरूपं तु सर्वेषां देहांतःकरणात्मनाम् ॥८॥ येन भावेन भगवत्यात्मभावो हि जायते। यस्माद्भावात्स्वदेहादि सकलंस्यात्तदर्थकम्॥९॥

राव्दार्थः न्वस्तुतं तो यह सर्वात्मभाव फल्रूपहोहे काहेतें जो सर्वातमभावको भीतर प्रवेश होय तव फल सिद्ध होयं ताको स्वरूप तो देह
अंतःकरण, आत्मा, सर्वके जो भावकरि भगवानमें आत्मभाव निश्चयः
होय जाभावसों अपने देहादिक समग्र भगवदर्थ होय।।८॥९॥ टीका—
मर्यादामार्गमें जेसें वस्तुतासों अक्षरब्रह्मरूप फल्रहे जामें प्रवेश होयः
फिर मायाके गुणमें न आवे तेसें पुष्टिमार्गीयकों प्रभुकी लीलारूप
फल्में प्रवेशहे तहां स्वरूपात्मकरसको अनुभवहे नेत्रतें दर्शन, अंतःकरणसों प्रभुकी लीलाको अनुभव, सर्व इंद्रिय मन प्राण सर्वकी प्रभुमें
तत्परता, जेसें वह्यसंवंधके गद्यार्थमें कहेहें याप्रकार गुख्यफलको

१ फलस्यान्त प्रवेशतः एमो पाठ काह पुस्तकमें हे ताकेअनुसार अर्थ-फलके अंतः-प्रवेशतें वस्तुतासों सर्वात्ममायहि फलक्ष होय.

भक्ति श्रीस्वामिनीजीकीहे सो श्रीस्वामिनीजीके विप्रयोगभावात्मक पुष्टिभक्ति श्रीवलभाचार्यजीनेही प्रकट करीहे तातें श्रीआचार्यजी जब अनुग्रह कारे यह मुखारविंदकी भक्तिको दान करे तब सिद्ध होय ॥४॥ मूलं-अत एतद्धिकामद्भिः श्रीमदाचार्यसंश्रयः।

प्रथमं सर्वथा कार्यस्ततएवाखिलं भवेत्॥ ५॥

शन्दार्थः-तासों यह (मुखारविंदकी) भक्तिवारेनको प्रथम श्रीमदाचार्यजीको आश्रय सर्वथा कर्त्तव्यहे ताकरिकेही समग्र सिद्धहोय ॥ ५ ॥ टीका-एसी यह मुखारविंदकी भक्तिको साधन एक श्रीआचार्यजीको आश्रयहीहे तातें प्रथम सर्वथा यही कार्य कर्त्तव्यहे जो श्रीआचार्यजीके शरण आय नामनिवेदनकिर पाछें अपने मनमें हु श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय करे एसे वैष्णवकों अखिल कार्य सिद्धहोय यामें संशय नांही तातें मुखारविंदकी भक्तिमें एक श्रीआचार्यजीको आश्रयही साधनहे ओर कोई नांही ॥ ५॥

मूलं-अतः परं तु तद्भक्तेरवस्थासाधनादिकम्। निरूप्यते स्वतोषाय तत्कृपातो हृदि स्थितम्॥६॥

श्वदार्थः —उपर जो दोयभक्तिको निरूपण कियो तापाछ यह भित्तिकी अवस्था ओर साधनादिक इनकी कृपात हृदयमें स्थितहे सो अपने तथा अपने भगवदीयनके संतोपके छिये निरूपण करतहों।।६॥ टीका—उपर चरणात्मकभक्ति तथा मुखारविदरूपभक्तिको निरूपण कियो तामें पुष्टिमक्तिमें केवल श्रीआचार्यजीको आश्रय वतायो तापाछ इनके साधनादिक कर्त्तव्यहे सो अपने मनमें संतोपार्थ तथा अपने तदीय (पुष्टिमार्गीय) के संतोपार्थ जो हमकों श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी दान दियेहें ओर इनकी कृपातें जो हृदयमें स्थिर रह्योहे सो निरूपण करतहों।। ६॥

आछो नांही प्रभु हमकों देखि सुख पावे तो आछो तासों आछीभांति रहेनों याही भावतें व्रजभक्तननेंहू अपने देहकी रक्षाकरीहे तामें अपनो सुख नांही विचारचोहे या भांति देहादिककी रक्षा प्रभुसेवार्थ विचारिके करे ॥ १० ॥ कछ लोकिकवैदिक फल सिद्ध होयगा तथा प्रभुकी सेवार्ते कृतार्थ होउँगो यह स्वार्थबुद्धितं भगवत्सेवा न करे काहेर्ते जो भगवान विनाविचारेही निजेच्छातें सर्वकार्य सिद्ध करेंगे सो श्री-आचार्यजीमहाप्रभुजी नवरत्नग्रंथमें कहेहें "सर्वेश्वरश्च सर्वातमा निजे-च्छातः करिष्यति " [प्रभु सर्वके ईश्वरहें सर्वके आत्माहें [तासों सर्वजानतहें सो] अपनी इच्छाहीतें दासके सकलमनोरथ सिद्ध करेंगे] तार्ते प्रभुकी सेवार्मे अपनी स्वार्थबुद्धि न करे ओर गौणभावतें किया-वतहू न करे भावसंयुक्त प्रीतिसों करे काहेतें जो भगवानकों एकप्रीति-हीतें धरे सो प्रिय लागतहें जेसें पद्मनाभदासजीके छोला प्रीतिहीतें अरोगे तातें सेवा प्रीतिसों करे ॥ ११ ॥

मूलं-न फलकांक्षणं यत्र लाैकिकानां यथा धने। तदभावे यथा लोका दुःखेनासुंस्त्यजीत हि॥१२॥

शब्दार्थः - जहां फलकी इच्छा नांहीहे जेसें लोकिकनकों धनमें प्रीतिहे सो धनको नाश होय तो जेसें दुःखकरिकें प्राणकों छोडतहें तेसें प्रभुकी सेवामें प्रीति राखे ओर सेवाके अभावमें प्राणत्यागसमान दुःख होय ॥ १२ ॥ टीका-प्रभुकी सेवाकरि कछुहू फलकी आकांक्षा न करे काहेतें जो फलकी कामना राखे तो पुष्टिमार्गीय मुख्यफलको नाश होय तासों कामना भावमें वाधकहे यह जानि फलकांक्षा न करे लोकिकमें धन मुख्यहे धनके लिये सुखदुःख सहतहे प्राणत्याग करतहे एसी धनमें प्रीतिहे तेसी ही सेवामें राखे ॥ १२ ॥ अनुभव पुष्टिमार्गीय भक्तनको होय याप्रकार मर्यादा ओर पुष्टिकें न्यारे न्यारे फल कहे तामें पुष्टिभक्ति सर्वोपरिहे ॥८॥ उपरकहे ताभांति भाव जो भगवानमें वढे सो उपाय करते रहेनो सो प्रभुमें भाव भयो कव जानियें ? जब देहादि, इंद्रिय, मन, सब प्रभुके अर्थ लगे, तन, मन, धन तीन्यो प्रभुमें लगे तब देहादिक सबनकी किया भगवद्र्य होय सो तनुजा वित्तजा दोड प्रकारकी सेवार्ते सिद्ध होय ॥ ९ ॥

मूलं-न देहाद्यर्थिसद्वर्थं भगवान्त्यपेक्षते। यतो देहादिरक्षापि प्रमुलीलीपयोगतः॥ १०॥ न स्वार्थबुद्धवा स्वार्थोऽपि भगवानेव यत्र हि। येन भावेनानिमित्ता प्रीतिर्भवति वे हरी॥ ११॥

राखेहें जासों देहादिक अर्थकी सिद्धिके लिये भगवानकी अपेक्षा नांही राखेहें जासों देहादिककी रक्षाहू प्रभुकी लीलामें उपयुक्त होयके है स्वार्थ बुद्धितें नांहीहें जहां स्वार्थ हू भगवानहीं जाभावकरिके निश्रय निष्कारण प्रीति होयहें ॥ १०॥ ११॥ टीका—यह भगवत्सेवाह देहा दिककी सिद्धिके अर्थ तथा देहसंबंधि कुदुंच, द्रव्यादिककी काभनाके अर्थ न करे अपनो भोगसुख कछहू न विचारे केवल भगवानकीही अपेक्षा राखे जो प्रभु कोनप्रकार सुख पावेंगे ? मितक अपराधित प्रभुकों दुःख होय, याभांति प्रभुको सुख विचारे तथा भगवानके दर्शनकी, स्वरूपानंदके अनुभवकी अपेक्षा राखे, देहादिकको भोगसुख न विचारे महापसादले तामहू यह भाव राखे जो प्रभुकी सेवामें सामध्य होय इंद्रियादिक शिथिल न होयजाय जेसे श्रीस्ताहिजी परदेश पधारते तब विप्रयोगकिर कुश होते ओर तब परदेशतें श्रीजीद्धार पधारते तब वहुत प्रीतिसहित सुंदर महाप्रसाद लेते सो यहभावतें जो श्रीमोवर्द्धिनायजी हमकों कुश देखेंगे तो उनके मनमें दुःख होयगो सो

मूलं-तदेवात्र हि संसेव्यं येन देन्यं प्रसिद्धवति। यदैन्यनाशकं तदि विरोधि सकलं मतम् ॥१५॥

शब्दार्थः – जातें दैन्य सिद्धि होय हे तासीं यह मार्ग आछीरीतिसों ही यहण करिवेयोग्य हे ओर जो दैन्यकों नाश करिवेवारोहे सो सब विरोधी जाननों ॥ १५ ॥टीका – दैन्यिवना फल सिद्धि न होय जासाधनतें दैन्य होय सोहि करे दैन्यको नाश करे सो सर्व पुष्टिमार्गमें विरोधी जाननो केसोह साधन होय परंतु दैन्यको नाश करे एसो होय सो सर्वया नांही करनो यह कहिकें यह जताये जो पुष्टिमार्गिवना अन्यमार्गकी जितनी किया साधनहे सो जब पुष्टिमार्गके फलतें विरोधीहे यह निश्रय मनमें जानि अन्यमार्गकी किया नांही कर्त्तव्यहे ॥ १५ ॥

मूलं-एतन्मार्गागिकृतौ हि हरिहेन्यं विवर्दयेत्। मदादिजनकंदुष्टनाशयत्यपि(नाशियत्वापि)लोकिकम्

राब्दार्थः —यह मार्गमें अंगीकार होय तो हिर निश्चय देन्यवृद्धि करेहें मदादिककी उत्पत्ति करिवेवारों दुष्टजो छोकिकहे तिनकोंहू नाश करतहे अथवा मदादिकको उत्पन्न करनहार जो दुष्ट छोकिक तिनकों नाशकिरकेंहू यह मार्गको अंगीकार होय तो हिर निश्चय देन्यवृद्धि करतहे ॥१६॥ टीका — एतन्यार्गीय जो भक्त यहपुष्टिमार्गमें श्रीआचार्यजी द्वारा शरण आयेहें तिनभक्तनकों देन्य बढावत हें ओर मद अभिमान विभनें मनसों होय सो दुष्ट छोकिक बढायवेवारोहें फलमें प्रतिबंधकहे ताको नाशही करतहे सो रासपंचाध्यार्थीमें प्रसिद्धहे जो भगवान वेणुनाद करि ब्रजभक्तनकों बुलाय रास किये तब ब्रजभक्तनकों मद भयो तब भगवान अंतर्धान भये पाछे जब अत्यंत देन्य भयो तब भगवान अंतर्धान भये पाछे जब अत्यंत देन्य भयो तब भगवान अंतर्धान भये पाछे जब अत्यंत देन्य भयो तब भगवान अंतर्धान भये पाछे जब अत्यंत देन्य भयो तब भगवान अंतर्धान भये पाछे जब अत्यंत देन्य भयो तब भगवान अंतर्धान भये पाछे जब अत्यंत देन्य भयो तब भगवान अंतर्धान भये पाछे जब अत्यंत देन्य भयो तब भगवान अंतर्धान भये पाछे जब अत्यंत देन्य भयो तब भगवान अंतर्धान भये पाछे जब अत्यंत देन्य भयो तब भगवान अंतर्धान भये पाछे जब अत्यंत देन्य भयो तब भक्ते तेसही यह पुष्टिमार्गमें भगवान देन्य सिद्ध करतहें मदको नाश करतहें अपने जनकों देन्य बढावतहे मदकों दिर करतहें मदको नाश करतहें अपने जनकों देन्य बढावतहे मदकों दिर करतहें

मूलं-सर्वत्यागस्तु सहजो यत्र लौकिकवेदयोः। नैरपेक्ष्यं स भावस्तु सर्वभावो निगद्यते॥ १३॥

ग्रव्दार्थः—जामं लौकिकवैदिकको सर्वत्याग सहज होय आरे निरपेक्षता होय सो भाव तो सर्वभाव कह्यो जाय ॥ १३॥ टीका—श्रीभगवानमं सहज प्रीति करि सर्वत्याग सहजहीमं करि लौकिकवैदिक कछ न चाहे सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी चतुःश्लोकीमं कहेहें "यि श्रीगोकुलाधीशो छतः सर्वात्मना हिंदे । ततः किमपरं ब्रहि लौकिके विदेकरिए" (जो सर्वात्मभावतें श्रीगोकुलाधीश हृदयमें धारण किये तातें [अधिक] दूसरो लौकिक तया वैदिक करिकेंद्र कहाहे सो कहों) याभांति सर्वके आत्मा श्रीकृष्णहे तिनहीकों हृदयमें धारण करे सेवा करे ओर लौकिक वैदिक कछ न चाहे निरपेक्ष होय रहे सर्वात्मभाव करि एक प्रभुहीमें मन राखें ॥ १३॥

मूलं-तथात्र देन्यमेवेकं मार्गे न श्रवणादिकम्। देन्यनेव च संतुष्टः प्रादुर्भृतः फलं ददी॥ १४॥

शब्दार्थः—[जेसं सर्वातमभाव राखनो] तेसं यह मार्गमें दैन्यही एक [मुख्य] हे श्रवणादिक (साधनवल) मुख्य नांहीहे दैन्यकरिकेंही [ब्रजभक्तनकों] प्रसन्न भये प्रभु प्रकट होय फलदिये॥ १४॥ टीका—यह पुष्टिमार्गमें एक दैन्यही साधन हे तासों अभिमान मिटे तब दोप निवृत्त होय जहां दैन्य सिद्ध भयो तहां श्रीठाकुरजी प्रकट होय दर्शन देय जेसे रासपंचाध्यायीमें ब्रजभक्तन गुणगान करि निःसाधन भये दीन होय रुदन किये तब प्रभु तत्काल पधारे तातें जहांताँई श्रवणा-दिक साधनको वल मनमें होय तहांताँई दैन्य न आवे जब साधनको वल मिटे तब दैन्य आवे तब प्रभु संतुष्ट होय प्रकट होय स्वरूपा-नंदको अनुभव करावे ॥ १४४॥

मत्वा यत्र कुत्र यदा कदा "(आप अपने मानिकें दंडदेय एसें होय तो हमकों प्रियहीहे काहेंते जो जहांतहां जवतव आप हमकों अपने मानिके दंड देयंगे) श्रीगुसांईजी कहतहें जो हमकों अपने जानि दंडदे तामें हमसुसीहें जहांतहां जब चूक परे सुखेन दंड देय इत्यादिक बचनतें प्रमु पिताकीनाई अपने जनकों दंड देय तब दुःख होय ताकृं अनुग्रह जानि श्रीमहाप्रभुजीको आश्रय न छोडे ॥ १८॥

मूलं-दंडदानं स्वकीयेषु परकीयेह्यपेक्षणम् । आर्त्तिरेवात्र सततं भाव्या कृष्णपरोक्षतः॥१९॥

शब्दार्थः-प्रभु अपने जनकूं दंड देतहें ओर परकीय (ओरनेक आश्रित) जीव होय तापें उपेक्षा करतहें (जेसें छोकिकमेंहू अपनो होय ताकी रक्षा करतहें) तातें इहां श्रीकृष्ण परोक्षहें तासों निरंतर आर्तिही कर्त्तव्यहे ॥ १९ ॥ टीका-जाकों प्रभु अपनो करतहे तिनकोंही दंड देतहे ओर जो संसारासक्त प्रवाही सृष्टिहे तिनकी उपेक्षा करतहें दंड नांही देतहें छोकिक देयकें छोकिकमेंही आसक्ति करावतहें रासपंचाध्यायीमें आर्तिक िये प्रभु अंतर्धान भये तेसें इहां पुष्टिमार्गमें टेरा प्रभुमें आर्ति वढ़ायवेके अर्थहे तहां स्वरूपानंदको अनुभव नांही करावतहें ' आर्ति देखे तो करावें तातें पुष्टिमार्गीय वैष्णवनकों आर्ति अवश्य करनी ॥ १९॥

मूलं-अत्र भक्तात्तिष्टध्येव मुदितो हि हरिर्भवेत्। संगो भाववतामेव भाववदिर्यतो भवेत्॥२०॥

१ जहांतांइ सानुभाव न होच तहांतांइ परोक्षही जानने तथा अनींसरमेंह परोक्ष जानने

जहांजहां लोकिकमें आसिक हे सो सवठोरतें छुडाय दैन्य सिद्ध करत हे पाछें कृपा करतहें ॥ १६॥

मूलं-स्वांगीकृतेहिं निर्वाहः प्रभुणेव विधीयते। जीवाःस्वभावदुष्टा हि प्रचलेयुः कथं तथा॥१७॥ अतो दंडप्रदानेन पितेवाचरित प्रभुः। दंडोऽप्यनुग्रहत्वेन मंत्रव्यस्तु तदाश्रितेः॥१८॥

शब्दार्थ:-जिनको प्रभुने अंगीकार कियो हे तिनको निर्वाह प्रभु-हीतें होतहे जीव स्वभावतें दुष्टहें सो तेसें केसें चले ॥१७॥ तासों पिताकी नाई दंडप्रदान करिके प्रभु हित करेहे तार्ते इनके आश्रयवारेनकी दंडहोय तोहू अनुग्रहरूप माननों ॥१८॥ अपने अंगोक्टत जीवनको निवाह प्रभु आपुहीं करेहें परंतु जीव यह नांही जानतहें काहेतें जी स्वभावकरि दुष्टहें सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी वालवोधमें लिखेंहें "जीवाः स्वभावतो दुष्टाः" [जीव स्वभावतें दुष्टहें] श्रीठाकुरजी अपर्ने अंगीकृत जीवनकों निर्वाह आगेतें करत आयेहें, करतहें ओर करेंगे जीवकों तो एक अणमें दुसंग छगे तो नाश करिदेई मन एक अणमें ओरको ओर होयजाय सो प्रभुनिर्वाह करे तब होय ॥ १७ ॥ जेर्से अज्ञानी वारककी रक्षा मातापिता करतहें अभिजलादिकतें वचावतहें ' तेसें अंगोकृत भक्तनतें भूलपरे तो (जामें अपनो अनिष्ट होय सो जीव नांही जानत परंतु प्रभु दंड देतहे जो फिर वह काम न करे जेसे श्रीनंदरायजी अविकापूजनकों गये तेसेंही जीवस्वभावते कछ अपराध वने तो) प्रभु दंडदेतहें तासों दुःखमें भगवदीय अपने मनमें अनुग्रह माने प्रभुको आश्रय न छोड़े सो श्रीग्रसाईजी विइप्तिमें कहेर्हे "दंड:स्वकीयतां मत्वेत्येवं चोदिष्टमेव नः । अस्मासु स्वीयतां

सूलं-लोकिकाभिनिवेशात्तु मनोनिष्कासनं सदा। अलोकिकस्तु तद्भावस्तनापि च विनश्यति॥२३॥

शब्दार्थः — लोकिक आवेशसों तो सदा मनकूं निकासनों अलोकिक भाव तो लोकिकावेशतेंहु मिटिजात हे ॥ २३ ॥ टीका — जहां जहां लोकिकमें मन लागिरह्योहे सो सगरो दुःसंग जाननों तातें लोकिका-भिनिवेश जहां जहां होय ओर जाके संगतें होय सो सर्व त्याग करनों जहां जावस्तुमें लोकिकाभिनिवेश होय तहां भगवद्भाव जात रहे तातें सव लोकिकतें भगवद्भावकी रक्षा क्षणक्षणमें कियो करें तव भाव रहे।। २३॥

मूलं-वैराग्यपरितोषों च हृदि भाव्यो निरंतरम् । तदभ्यासात्तु मनसः कदाचित्रिर्गतिस्ततः॥२४॥

शब्दार्थः — बैराग्य ओर संतोप निरंतर हृदयमें राखे इनके अभ्या-सतें तो लोकिकाभिनिवेशतें कोयदिन मन निकसेगो ॥२४॥ टीका— द्धः संगदोपके नाशके अर्थ बैराग्य ओर संतोप यह दोय निरंतर हृदयमें धारण करने सर्व लोकिक विषय देहसंबंधिपदार्थमें बैराग्य राखे ओर सहजमें जो आय प्राप्त होय ताहीमें मनकों संतोप करिरहे यह अभ्यास जब राखे तब दुःसंगतें बचे ॥ २४॥

मूलं-कामाभावाय वैराग्यं चित्यं चेतिस सर्वथा। परितोपस्त्वलोभाय भक्तो तावेव वाधको ॥२५॥

शब्दार्थः-कामके अभावके अर्थ चित्तमें निश्चय वेराग्यको चिंतन करनो ओर संतोपतो लोभके अभावके अर्थ राखनो काहेतें जो भक्तिमें यह दोयही वाधकहे ॥ २५॥ टीका-मनमें दृढ वेराग्य होय तो ता-करिकें कामादिकविषयको अभाव (नाश) होतहे ओर संतोपतें लोमको शंब्दार्थः —यहं पुष्टिमार्गमें प्रभु भक्तनकी आर्तियुक्त दृष्टिकरि-केंही प्रसन्न होय हैं तासों भाववारे भगवदीयनकोही संगं करनी जासों भावकी वृद्धि होय ॥ २०॥ टीका—ज्योंज्यों भक्त आर्तिक्षेश करतहे त्योंत्यों भगवान् उहभक्तकों देखिकें प्रसन्न होतहें तातें सत्संग भगवदीयको होय तो वेगिही भावकी वृद्धि होय तातें सत्संगको यत्न करनों ॥ २०॥

मूलं-व्याघ्रस्याग्रेयथा देही तथा दुःसंगतो विभेत्। दुःसंग एव भावस्य नाज्ञकः सर्वथा मतः॥२१॥

शब्दार्थः-जेसें वाघकी पास देही भय पावतहे तेसें दुःसंगते भय पावे काहेतें जो दुःसंगही सर्वथा भावको नाश करिवेवारो मान्योहे ॥ २१ ॥टीका-जेसें वाघके आगें शरीरको नाशही होय तेसेंही दुःसंग भगवद्भावको नाशक हे तातें जेसें वाघसों डरिपकें चले तेसें अपने भगवद्भावहकी रक्षा करे तब भाव रहे ॥ २१ ॥

मूलं-दुःसंगतइच्युताः सर्वे श्रुता हि भरताद्यः । दुःसंगान्नजदोपाभ्यामभूद्रीष्मो वहिर्मुखः॥२२॥

शब्दार्थः -दुःसंगतेंही भरतादिक गिरेहें सो अपन सुनेहें दुःसंग ओर अन्नदोपतें भीष्म वहिर्मुख भये (अर्थात् श्रीठाक्टरजीके संग लडिवेकों तत्पर भये)॥ २२ ॥ टीका—अनेक जीव दुःसंगकरिके भगवद्मितें गिरेहें सो श्रीभागवतमें वर्णनहें जो भरतकों मृगके दुःसंगतें तीन जन्मको अंतराय भयो ओर भीष्मिपतामह वहे भगवदीय हते सो दुर्योधन दुष्टको अन्न खायो तादोपतें श्रीभगवानके संग लडिवेक ठाडे भये तातें यह दुःसंगदोपतें जीव निश्रय श्रीभगवानतें वहिर्मुख होयजाय तातें एसे भगवदीय गिरेहें तो आधुनिक जीवनकी कित नीक वातहे ॥ २२ ॥

सेवा ओर कथादिक सर्वकार्यमें दैन्य वीजहे जेसे मंत्रशासमें बीजयुक्त मंत्र फल देयवेवारो होयहें तेसे यह पुष्टिमार्गमें सेवादिक सब दैन्ययुक्त होयतो फल देयवेवारे होयहें दैन्यको अभाव होय तो सेवा-दिक सब पुष्टि (भगवदनुष्रह) को सिद्ध करिवेवारे होय नहीं॥२०॥ ॥ २८॥ टीका-यहपुष्टिमार्गको सर्वस्व दैन्यभावहे ताको नाशक कोर्घहे तातें वाको त्याग निश्चय करनो ओर सर्वकार्यविपे दैन्य राखनो सो दैन्यको उपाय कहतहें श्रीकृष्णकी तनुजा वित्तजासेवा प्रीतिकरिकें करनी ओर श्रीकृष्णकी कथा (श्रीस्त्रवोधिनीजी आदिग्रंथ) सुन्योकरे यह सेवाकथाको नियम नित्यप्रति राखे तो हदयमें दैन्य रहे॥ २०॥ जेसें मंत्रको मूल वीजहे मंत्रशास्त्रमें कहेंहें जो वीजसहित मंत्रतें अखिलसिद्धि होय तेसेंहि सेवामें दैन्यभावहे सो पुष्टिमार्गको साधनहे दैन्यभावसहित सेवा करे तो पुष्टिमार्गको अखिल फल सिद्ध होय ॥ २८॥

मूलं-तस्माद्रक्षेत्प्रयत्नेन दैन्यं भक्तियुतो नरः । दैन्येनगोपिकाः सिद्धाः कोंडिन्योऽपिपरोक्षतः ॥२९॥

शब्दार्थः – तासों भित्तयुक्त नर (जीव) प्रयत्नकरिके दिन्यकीं राखे काहेतें जो गोपीजनह दैन्यकरिकें सिद्धमयेहें ओर कींडिन्यऋषिह परोक्षसों सिद्ध भयेहे ॥२९॥ टीका – वैष्णव यत्नकरिकें अपने दैन्यकी रक्षा करे यह पुष्टिमार्गीय भगवदीयकों उचितहे तहां दृष्टांन कहतहें जो दैन्यकरि गोपीजनकों सिद्धि भई प्रभु मिले ओर दैन्यकरि कींडिन्च बाह्यण अनंत ! अनंत ! रटत रहे तासों इनकों सिद्धि भई तासों श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी संन्यासिनर्ण्यग्रंथमें कहेहें "कींडिन्यो

[ं] १ श्रीमगवद्गीताजीमें, काम; क्रोध, ओर लोभ यह तीन नरकके द्वार गिनेहें वामें क्रोध वीचमें गिन्योहे.

नाश होतहे यह दोय दोप भक्तिमार्गमें भगवद्भावके वाधकहे तातें काम ओर लोभके त्यागार्थ वैराग्य ओर संतोप राखनो ॥ २५॥ मूलं-कामेनेंद्रियवैमुख्यं लोभे पाखंडसंभवः॥

क्रोधस्तु मध्यपातित्वानमहावाधक ईष्यते ॥२६॥

राद्दार्थः —कामकरिकें इंद्रियनकी विमुखता होय लोभमें पाखंडकों संभव होय [अर्थात् जाकुं लोभ होय सो द्रव्यादिकके लिये अनेक पाखंड करे] ओर कोध तो (काम, कोध, लोभ, यह तीन) वीच रहिवेवारोहे तासों महा वाधकहें ॥ २६ ॥ टीका — काम प्रकट भयेतें विपयादिक कियेतें सगरी इंद्रिय श्रीभगवानतें तथा भगवद्धमेंतें वहिर्मुख होयजाय इंद्रियनको विपयावेदा होतहे ओर लोभ हृदयमें होय तो ता किर पाखंड प्रकट होतहे सो संन्यासिन्णियमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहेहें "स्वयं च विपयाकांतः पापण्डी स्यातु कालतः" (आप विपयाकांत ओर पाखंडी, कालतें होय) इत्यादि वचनतें काम ओर लोभ वाधक हे तामें मध्यपाती कोध हे कामादिक न मिले तव कोध होय तेसेंही लोभको अर्थ सिद्ध न होय तव कोध उपजे तातें कोध प्रकट होयवेको कारण काम ओर लोभहे कोधकरि पीछें मोहहोय इत्यादिक दोप प्रकट होय तव अष्टप्रहर लोकिकावेदा, लोकिकको ध्यान, हृदयमें रहे तातें दैन्यको नादा होय ॥ २६ ॥

मूलं-यतो मागीयसर्वस्वदैन्यभावविनाश्वकः।

ेदेन्यं सर्वेषु कार्येषु कृष्णसेवाकथादिषु॥ २७॥ वीजं यथा मंत्रशास्त्रे तद्यक्तमस्विलं भवेत्।

तदभावे न सेवादि सकलं प्रष्टिसाधकम्॥२८॥

शब्दार्थः-जासाँ [क्रोध] पुष्टिमार्गके. सर्वस्वरूप दैन्यको नाश करिवेवारोहे (तासाँ महावाधकहे एसँ पूर्वश्लोकमें संबंधहें) श्रीकृष्णकी लीलाके भावमें मम होय सो सवठोर साक्षात लीलासहित स्वरूपको निरंतर दर्शन होतहे संयोगतें अधिक विप्रयोगमें सुखहे तातें युगपत जो एक कालमें सर्व लीलाको अनुभव करे मनहीकरि व्रजभक्तनको भाव विचारे प्रभु गोचारनको पधारते तव व्रजभक्त विप्रयोगकी भावना करते सो विचारे और पाछें संध्यासमय प्रभु वनतें पधारते तव व्रजभक्त जो भाव करते सो भाव विचारे याभांति विप्रयोगमें दोड लीलाके भावको अनुभव होयहे ॥ ३१॥

मूलं-एवं विज्ञाय मनसा प्रष्टिमार्ग विभावयेत् । प्राप्तिः श्रीवल्लभाचार्यचरणाञ्जप्रसादतः ॥ ३२ ॥ अतः स एव सततं सर्वभावेन सर्वथा। सुधिभिः कृष्णरसिकः श्ररणीिकयतां सदा॥३३॥

शव्हार्थः – एसं जानिकं मनतं पुष्टिमार्गकी भावना करे तो श्रीवछभाचार्यजीके चरणारिवंदके प्रसादतें (फलकी) प्राप्त होय ('प्राप्तं" एसो पाठ होय तो एसं मनतें, जानिकें श्रीवछभाचार्यजीके चरणारिवंदके प्रसादतें प्राप्त भयो जो पुष्टिमार्ग ताकी भावना करे)।। ३२।। टीका – तासों निरंतर सर्वभावकरिकें निश्चय श्रीकृष्णके रसक जानिवेवारे अथवा श्रीकृष्णही जो रस तामें मन्न जो बुद्धिमानहे तिनकों सदा श्रीवछभाचार्यजीही शरण (आश्रयस्थान) हे।। ३३।। टीका – उपर वित्रयोगआर्तिको प्रकार कह्यो ताको अनुभव जा मांति होय सो कहतहें जो पुष्टिमार्गीय वैष्णव अपने मनमें भावना करे काहूसीं कहे नांही याभांति भावना करतकरत श्रीवछभाचार्यजीके चरणक्मलके प्रसादतें पुष्टिमार्गिके फलकी प्राप्ति निश्चय होय सो सवोंत्तममें नाम श्रीगुसांइजी कहेहें "अञ्चेपभक्तसंप्रार्थ्वरणाब्जरजोधनः" (समग्र मक्तनकों आछीभांतिसों मेविवेयोग्यहे चरणारविंदके

गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः साधनं च तत्। भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते " [कोंडिण्यऋषि ओर गोपीजन भक्तिमार्गके गुरुहें ओर साधन विननें कियो सोहीहे भावनातें भाव सिद्ध होयहें ओर साधन नांहीहे) तातें पुष्टिमार्गके गुरु गोपीजन ओर मर्यादामार्गके गुरु कोंडिन्य बाह्मणहें इनके प्रकारसों भावविचारि दैन्यही भक्तिके भावमें कारणहे एसं जाननों ॥ २९॥

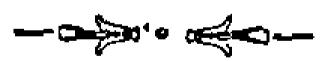
मूलं-फलमत्र हरेभीवो विरहात्मा सदा मतः। रसात्मकत्वात्तदूषे सर्वलीलासमन्वितः॥ ३०॥ स्वरूपे तस्य सततं साक्षात्कारो विशेषतः। युगपत् सर्वलीलानाममनुभूतिः प्रजायते॥३१॥

राव्दार्थः निरहात्मकरूपमें रसात्मकपनोहें तासों सर्वछीछासहित जो प्रभुको सदा विरहात्मकभाव सो इहां फळरूप मान्योहे ॥३०॥ यह (विरहात्मक) भावके स्वरूपमें निरंतर विशेष साक्षात्कार होयहें काहेतें जो एककाछाविच्छन्न सर्वछीछाको अनुभव होयहे "साक्षात्कार" एसो पाठ होय तो यह (विरहात्मक) भावके साक्षात्कार स्वरूपमें निरंतर विशेषसों एककाछाविच्छन्न सर्वछीछाको अनुभव होय हे॥३१॥ टीका—यहपुष्टिमार्गमें हिरमें भाव रहे सोहि फळरूपहे तातें विरहात्मक मन होय आवे काहेतें जो संयोगके अनुभवमें अंतःकरणगामी प्रभु नांहीहे वाहिरकी सव इंद्रियसों देहको विनियोगहे ओर विप्रयोगमें अंतःकरणमें सव सिद्ध होतहें तातें विप्रयोग भाव हदयमें राखे यह पुष्टिमार्गमें येही सिद्धिहे काहेतें जो संयोगमें तो जहांछों दर्शन होय तहांछोंहि सुखहे ओर विप्रयोगमें रसात्मक पुरुपोत्तमको सर्वछीछा संयुक्त अनुभव सर्वछोर होतहें तातें विप्रयोग भाव सर्वोपरिहे जामें सवछोर प्रभुको साक्षात्कारहे सो आगें कहतहें ॥ ३०॥ विप्रयोगमें अनिवनरिहें सो आछी किया और वचनकरि साध्यहें ज्ञानशन्य (अज्ञानी) तथा विपरीतज्ञानवानहें सो आध्यादिमक अनिधकारीहें सोहू यथार्थ तत्ववोधतें शुद्ध होतहें ओर प्रीति रहित जो महादुष्टहें सो कोड उपायसों साध्य न होय जेसें जन्मतें नपुंसक होय सो क़ाहू औपधनसों पुरुप न होय तेसें जामें प्रीति नांहीहें सो आसुरी जाननों वाके संगतें आसुरावेश होय तातें मिक्तमार्गमें रहिवेवारों उनको त्याग करे यह निरूपणहें । उपर विषयोगभाव सर्वोपरि कहे ताको साधनहू कृपाहे परंतु दुःसंगादि अनेक प्रतिवंध हे तिनतें वचे तव सिद्ध होय तासों जो दोप पुष्टिमार्गमें वाधकहें सो कहतहें.

-मूलं-तदीयानां महद्दुःखं विजातीयेन संगमः। संभाषणं सजातीयेरसंगो भाषणं च न। तदेतदुभयं जातं मभेवाद्य स्वभाग्यतः॥१॥

राव्दार्थः न्वहिर्मुख्तों संग तथा भाषण ओर भगवदीयको संग नांही तथा भाषणहू नांही यह भगवदीयनकूं वड़ो दुःखहे सो दोड़ अपने भाग्यतें मोकूं अब प्राप्त भयेहे ॥ १ ॥ टीका-अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो यहपुष्टिमार्गीयवैष्णवकों एक यह वड़ो दुःखहे जो विजा-तीय (अन्यमार्गीय) को संग होय सो ओरकी में कहा कहां मोकों विजातीयको संग भयोहे तातें मेरे मनमें महादुःखहे जेसे ब्रजभक्तनकों श्रीकृष्णकी कथावार्त्तामें प्रतिबंध करिवेवारे संग दुःखदायीहें सगरे भक्त मिले तब सुखतें मिलिकें लीलावार्ता करि परमञानंद पावे तहां कोड़ लौकिकजन आवे तब यहवार्त्ता करत होय तहां एकहू अन्यमा-ग्रीय तथा वहिर्मुख आवे ताकरि दुःख होय सो मोकोंतो दशोदिशार्ते रजरूप धन जिनके] याभांति पुर्षिमार्गीयं भगंवद्भक्त श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीके चरणकमलकी रजकों अपनो [सर्वस्व] धन जानेहें तिनकों श्रीकृष्णाधरामृतफलकी सिद्धि होतहे तातें श्रीआचार्यजीके चरणकमलके प्रसादतें पुष्टिमार्गीय भगवदीयकों फल होय ॥ ३२ ॥ उपर कहे ताप्रकार निरंतर सर्वभावकरि सर्वथा श्रीआचार्यजीके चरणकमलको आश्रय राखे ओर विषयोगकी भावना निरंतर सर्वभावकरि सर्वथा कर्त्तव्यहे अपने मनसों कपट छलको त्याग करिं हृदयमें श्रीकृष्णचंद्रके शरण होय तथा श्रुद्ध भगवदीय श्रीकृष्णरसमें रिसक होय तथा श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके चरणकमलके शरण होय दिन्यभावकरि निःसाधन होय रहे तिनकों पुष्टिमार्गीय फलकी प्राप्ति निश्चय होय ॥ ३३ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं चतुस्त्रिश्चातमं शिक्षा-पत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीका-समेतं समाप्तम् ॥ ३४ ॥



शिक्षापत्र ३५.

अव पंचित्रंशत शिक्षापत्रमें भगवदीयनकों विजातियनको संग ओर सजातियनको असंग होय सो महादुःखदायकहे सो दोउ मोक्षं प्राप्तहे जो श्रीभगवानको द्वेप करिवेवारोहे सो तक्षकतुल्यहे जेसें बाह्यणके पुत्रने भेज्यो एसो तक्षकनाग महाभगवदीय परीक्षितकृं डस्यो तेसें भगवद्देपी दुष्टकर्मकरिवेवारो दुर्वचनतें भगवदीयनकृं दुःख देतहे तामें भगवद्देपी जो दुष्टकर्मकरिवेवारोहे सो आधिमौतिक वडी पीडा होत हे एसो दुःसंग मोकों मिल्यो हे जो रंचक मेरे मनमें धिरज नांही होतहे तातें आपतें धीरज नांही रहतहे ॥ ३॥

मूलं-इदानीं तु जनाः प्रायो दुःसंगपदवीं गताः। शुद्धं मनः कलुषितुं क्षणेनातिविचक्षणाः॥ ४॥

शब्दार्थः-वोहोतकरिकें अव तो मनुष्य दुःसंगकी पदवीकों प्राप्त भयेहे सो शुद्ध मनकों एकक्षण [संग] तें मलीन करिवेमें आतिविचक्षण चित्र हि ॥४॥ टीका-अपनो हित नांहीदीसतहे हिततो भगवदीयके संगर्ते होय ओर अप्टमहर दुःसंगर्ते अहित होय सो मोर्को अप्ट-प्रहर दुःसंगहे तार्ते मोकों अपनो हित नांही दीसतहे सो श्रीभागवतमें कह्योहे ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी तथा श्रीगुसाईजी कहेहें जो दुःसंगतें वैष्णवजन निश्रय दुःखपावे सो दुःमंग मोकों आयमिल्योहे तासों दुःख पावतहो तहां कोई कहे जो तुम दुःख क्यों पावतहो ? अज्ञानी होय सो दुःसंगर्ते दुःख पावे तुम तो अनेक शास्त्र जानतहो तातें दु:संग तुहारो कहा करे! यामांति कोई कहे तहां कहतहें जो शुद्ध मन सुंदर बुद्धि होय ताह्को चित्त दुष्टपापीके संगतें एकक्षणमें अप्ट होयजाय एसो दुःसंग वाधकहे सो श्रीगुसाईजी विज्ञितिमें कहेहें " अहं क़रंगीद्दरमंगिसंगिनांगीकृतोऽस्मि यत् । अन्यसंबंधगंधोऽपि कंधरामेववाधते (जासों में व्रजभक्तनके संगि जो श्रीकृष्ण तिनको अंगीकृतहों तासों अन्याश्रयको गंधहे सोहू ग्रीवाकों वाध करतहे) यामांति रंचकहू अन्यसंबंध होय तो गरो कटे सो चोराशी बैप्णवकी वार्तामें प्रसिद्धहे जो संभरवारे दामोदरदासकी स्त्रीनें रंचक अन्याश्रय कियो तो पुत्र म्लेच्छ भयो तातें दृष्टके संगतें बुद्धि अष्ट होतहे सो दुःसंग मोर्को मिल्योहे तासों में दुःख पावतहों तहां कोई कहे जो एसे दुःसंगको वेगिही त्याग करिदेउ तब सुंदर बुद्धि रहेगी यामांति.

विजातीयको संग भयो हे ताकरि में वहुत दुःखीहों संभापण तो सजा-तीय वैष्णवसों चहिये सोतो प्राप्त नांही है अन्यमार्गीयके संग अष्टप्रहर संभापण करनोपरतहे यह मोकों परमदुःखहे सो दुःख दूरि नांही करि-सकतहों यहदोय मेरे भाग्यमें आय प्राप्तभये हे एकतो भगवदीयको संग चहियें सो तो मिलत नांही ओर दूसरे अन्यमार्गीय (विजातीय) को संग न चहियें सो अष्टप्रहर रहतहे यह दोय मोकों प्राप्तहें सो पुष्टिमार्गमें विरोधीहे सो दोय मेरे भाग्यतें आय प्राप्त भयेहें । १॥ मूलं—दुःखांतरं तु ज्ञानेन भकत्या वापि निवर्त्तते।

लोकिकं विषयप्राप्तया न हि दुःसंगजं कचित् ॥२॥

शब्दार्थः -दूसरो दुःख होय सो तो ज्ञानकरिकें अथवा भक्तिकरिकें निवृत्त होतहे छौिकक (शब्दादिक विषय नांही मिलवेतें भयो एसो) दुःख विषयकी प्राप्ति होय तातें निवृत्त होतहे परंतु दुःसंगतें उत्पन्न भयो दुःखकोउ वखत निवृत्त नांही होतहे ॥ २ ॥ टीका--दूसरो दुःखतो ज्ञान अथवा भक्तितें निवृत्त होतहे छौिकक विषयादिककी प्राप्तिको दुःखहे सो वडोहे जो काहूतें निवृत्त नांही होतहे सो श्रीभागवतमें कह्यों जो विषयतें विषयिको संगहे सो महावाधकहे काहेतें जो उनके संगतें अष्टमहर विषयमें ध्यान रहे विषयावेश होय तासों एसे विषयके संगी वहिर्भुखको संग मोकों भयोहे ताकरि महादुःखहे ॥ २ ॥

मूलं-दुष्टानां दुर्वचोबाणोभिन्नं ममिण महपुः।

न कापि रुभते स्वास्थ्यं समाहितमपि स्वतः॥३॥ शब्दार्थः-दुष्टजनके दुर्वचनरूप वाणकरिकें मर्ममें भिद्यो एसो मेरो श-रीर आपतें समाहित भयोहे तोहू कहूं स्वस्थताकों नांही प्राप्त होतहे॥३॥ टीका-दुष्टके दुर्वचनरूपी वाण मेरे शरीरके मर्मकों वेधतहें ताकरिकें मूलं-भगवद्देषितां यातः स तु तक्षक एव हि। यथा विप्रार्भकवनःप्रेरितः क्रोधमूच्छितः ॥ ६॥ अद्शत्स समागत्य महाभक्तं परीक्षितम्। तथा दुर्जनवानयेकप्रेरितो ह्यतितामसः॥ ७॥ अवज्ञया दुर्वचनेरिधक्षेपेण मामयम्। दुष्कर्माभौतिको दुष्टः स साध्यः सत्त्रियोक्तिभिः॥८॥

शब्दार्थः-श्रीभगवानके द्वीपपनेकों प्राप्तभयो सो तो तक्षकहीहे जेसे बाह्मणके वालक (शृंगीऋषि) ने भेज्यो ओर क्रोधकरिकें मूर्च्छित (ज्ञानरहित) भयो एसो तक्षक आयके महाभक्त परीक्षित राजाकों डस्यो तेसें दुर्जनके वचनतेंही भेज्यो एसो आति तमोगुणी यह दुएकर्म करिवेवारो निंदा, दुर्वचन, ओर तिरस्कार करिकें मोक् डसतहे सो दुष्ट जाननों वह आछी किया ओर वचन करिकें साध्यहे।। ६॥७॥८॥ टीका-उपर व्यावृत्तिमें दुःसंगदोप होय सो कहे अब कालदोप कहतहें भगवद्देपी जो हे तार्ते धर्मकी रक्षा करे यह काल भगवद्धर्ममें महावाधकहे जेसे बाह्मणके वालकर्ने कोधकरिके परीक्षित राजाकों शाप दियो यहकार्य कालदोपतें भयो ॥ ६ ॥ राजा परीक्षित सद्धक्त भगवद्धर्ममें चतुर जिनकी रक्षा श्रीभगवाननें गर्भमें कीनीहे तिनकों किकालके दोपतें दुर्वुद्धि उत्पन्न मई सो " त्राह्मणं प्रत्यभूद्रह्मन् ! मत्सरो मन्युरेवच" हे शौनक! (शमीकऋपिने आदरसन्मान न किये तें) यह ब्राह्मणप्रति मत्सर (इनकी एसी वडाई कहा ? जो में राजा आयोहं ताको कच्छ सन्मान न कियो एसी दोपबुद्धि) तथा कोध भयो) तब दुईदि भई तातें मृतसर्प लेयकें शमीकऋषिके कंटमें डारिदियो यह चात इनके पुत्र गृंगीऋपिनें सुनी तन कोधकरिकें

कहे तहां कहतहें ॥ ४ ॥

मूलं-गृहस्थितस्य व्याद्यत्तियुतस्य न हि तादृशाम्। संगो वार्यितुं शक्यो व्यादृत्तेर्विनिरोधतः। अव्यादृत्तो न विश्वासदार्ढ्यं येन तथा कृतिः॥५॥

शब्दार्थ:-गृहस्थाश्रममें रह्यो ऐसे पुरुपकों जो व्यावृत्तियुक्त [लौकिकजन]को संग व्याचृत्ति मिटिजाय तासों नांही मिटिसक तहे ओर अव्यावृत्तिमें विश्वासकी दहता नांहीहे जासे एसी कृति होत हे ॥५॥टीका-गृहस्थके व्यावृत्तिविना केसे चले परदेशमें संग भनुष्य चहिये इनको त्याग करों तो पाछें मनुष्यविना तो न चलेजो राखियें सो इनहुतें अधिक वाहिर्मुख आवे तातें गृहस्यहें सो व्यावृत्तिके लिये राख्यो चाहियें जब अब्याद्यति होय तब दुःसंग छूटे तहां कोई कहे जो तुम वडे हो सर्वसामर्थ्ययुक्तहो न्यावृत्ति छोडि देउ तब दुःसंग छ्टिजायगो याभांति कहे तहां कहतहें जो खोटे मनुष्यको साग करि अपने घरमें वेठे रहे तो कहां दुःसंग आवे परंतु व्याचृत्ति चाहियें तासों दुःसंग न छूटे तब मनुष्य चहियें जहां परदेशमें जईयें तहीं नित्य नूतन मनुष्यको मिलाप होय तिनको समाधान कियो चाहिये तव दुःसंग केसें छुटें ? तातें दुःसंग छोडिवेमें व्यावृत्ति विरोधीहे व्यावृत्ति न करनी अव्यावृत्त रहेनों सो तो सवोंपरि उत्तमहे सो श्री-आचार्यजी महाप्रभुजी भक्तिवर्दिनीमें कहेहें "अव्यावृत्तो भजेत्क्रणौ पूज्या श्रवणादिभिः" (अव्यावृत्त होयकें पूजाकरिकें श्रवणादिकतें श्रीकृष्णकों भने] याभांति अन्यावृत्त होय तव हढ विश्वास [धीरज] चिह्यें सो धीरज छिटिजातहे जो ज्याद्यति विना गृहस्थाश्रमको केसे निर्वाह होय ? यह हढविश्वाम विना अन्यावृत्त न भयोजाय तार्ते कहां करियें ॥ ५॥

शुंद्ध होतहे ॥ ९ ॥ टीका-अध्यात्मिक दुष्ट ज्ञानकरिके शून्य होय संगरों कार्य अज्ञानतें करे वाको जब कोई झानवान वडो भगवदीय मिले वोहोत दिनलों सत्संग होय, वोहोत कप्टकरि सत्प्राणी भगवदीय अनेक भांति समुझायके वोध करे, तब अध्यात्मिक दुष्ट बहुतदिनमें शुद्ध होय ॥ ९ ॥

मूलं-प्रीतिश्चन्यो महादुष्टः स न साध्यः कथंचन। यथा नपुंसको नैव ह्योषधेः पुरुषो भवेत् ॥ १० ॥ यथा त्रिद्रोषग्रस्तो न कथंचिद्रिप जीवति। प्रीतिश्चन्यो नीरसश्च न तथा श्रवणादिभिः॥११॥

शब्दार्थ:-प्रीतिकरि शून्यहे सो महादुष्ट कोई उपायसों साध्य नांही जेसें नपुंसक होय सो औपधनतें पुरुप नांही होय जेसें त्रिदो-पत्रस्त होय सो कोई रीतिसूं जीवे नांही तेसे प्रीति शून्य नीरस अवणादिकते सिद्ध नांही होय ॥ १०॥ ११॥ टीका-प्रीतिकरिके शून्यहे सो महादुष्ट आधिदैविक दुष्ट असाध्य जाननो कोटिकल्पलों सत्संग होय परंतु केसेहू ज्ञान वाके हृदयमें नलगे केवल प्रवाही आसुरीको मन श्रीभगवानमें ओर भगवद्धर्ममें कवहू न लगे ताको लौकिक दृष्टांत कहतहे जेसें नपुंसक होय वाको कोटि औपध देई परंतु कोईपकार वह पुरुप न होय वामें पुरुपार्थ न होय तेसेंही आधिदेविक महादृष्टकों भगवत्संवंधि ज्ञान न लगे ॥१०॥जेसे त्रि(कफ, वात, पित्त)दोपग्रस्यो रोगी न जीवे ताकों कछुहू औपध न लगे तेसें प्रीतिशून्य नीरस (भक्ति-रस रहित)महादुष्टहे सो कितनीहू भगवत्कथाको श्रवण करे परंतु रंचक हृदयमें भगवानमें मन न होय सो प्रवाही आसुरी जीवकी नांई जाननो सो पुष्टिपवाहमर्यादाग्रंथमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहेंहें " चर्षणी शब्दवाच्यास्ते ते सर्वे सर्ववर्षसु । क्षणात्सर्वत्यमायाति

(तक्षक सर्प सातवे दिन खायगो एसो) शाप दियो यह सर्वकार्य कालदोपतें भयो नांहीतो महाभक्त परीक्षितकों एसी दुईद्धि क्यों आई ?ओर वालकर्ने एसो शाप क्यों दियो ? परंतु सब कालदोपते भयो तेसेंहि दुर्जनके वचन सर्परूपहीहे सो तामसके आवेशमें अन्यथा वोले सो कालदोप जाननों ॥७॥ अव श्रीहरिरायजी कहतहें जो गह किलकालमें जीव दुष्टभयेहें तामें तीन प्रकारके दुष्टहें आधिमौतिक १ आध्यात्मिक २ ओर आधिदैविक ३ तामें आधिमौतिक और आध्यात्मिक तो काहू समय भगवद्धर्ममें आवे परंतु आधिदैविक ्दुष्टतो कबहू भगवद्धर्ममें न आवे एसे आधिदैविक दुष्टको कबहू संग न करियें सो तीन्यों दृष्ट केसें जाने जाय ताके लिये तीन्योंके न्यारे न्यारे लक्षण कहतहें अनेक दुर्वचन कहे, अज्ञान करि अवज्ञा करे, दुर्वचनसों अपने मनको विक्षेप करे, ओरके मनको विक्षेप करे और शरीरतें दुष्ट कर्म करे, पापाचरण करे, सो भौतिक दुष्ट जाननो एसें दुष्टकों आछे भगवदीयको जब संग होय तब भगवत्सेवादिक सब करे, कठिन चोलिनोह् छुटिजाय, मनको विक्षेपह् छुटिजाय, भगवदीयके संगतें भौतिक दुष्टकों भक्ति वेगि होय ॥ ८॥

मूलं-आध्यात्मिको ज्ञानग्रन्यो ह्यन्यथाज्ञानवानिष्। कष्टसाध्यःकदाचित्स तत्ववोधेन ग्रुद्धगति॥९॥

शब्दार्थः-ज्ञानशृन्य ओर अन्यथा [विपरीत] ज्ञानयुक्त आध्या त्मिक दुष्ट जाननों सोह् कष्टसाध्यहे सो कोउदिन तत्ववोधकरिके

१ गर्भमें परीक्षित् राजाकी प्रभुनें रक्षा कीनी और अब वयों नांही कीनी १ एसी दांका होय ताको समाधान यहहे जो परीक्षितदारा कितनोक कार्य करावनो हतो सी करायो किर श्रीमागवतप्रश्चित लोकमें करावनी हती तामूं शापके निमित्ततें श्रीगंगाजीके तट्यें पेटायो तब छकदेवजी आय श्रीमागवतकी कथा कही और मामास शांत कीयो हतो ताको सत्यताह बाह्मणद्वारा शाप दिवाय रासी.

दक्षिणा, त्रत, यज्ञ, छंद तीर्थ, नियम, यम, कोड वश नांही करत हे जेसो सर्वसंगकों मिटायवेवारो सत्मंग मोकों वश करत हे तेसो कोड वश नांहीकरतहे सत्संगतें यातुधान, दैत्य, ख़ग, मृग, गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, वृत्रासुर प्रह्लादादिक वोहोत्त मेरे चरणार-विंदकों प्राप्त भये हें) इत्यादिक वचनतें सत्संग सवतें वडो हे तातें ताहशीयके संगविना निख दुःसंगतें आसुरभाव होतहे ॥ १२ ॥

मूलं-दुष्कर्मा कर्मदुष्टः स्यात् ज्ञानदुष्टोऽन्यथादृज्ञिः। प्रीतिग्रन्यो भक्तिदुष्टस्तत्तन्मार्गगतस्त्यजेत्॥१३॥

शब्दार्थः-दुष्टकर्मवारो कर्मदुष्ट होय, विपरीत दृष्टिवारो ज्ञानदुष्ट होय, ओर प्रीतिशून्य भक्तिदुष्ट होय, तासों भक्तिमार्गमें रहिवेवारो इनकों तजे. अथवा जो जो मार्गमें एसे तीन दुष्ट होय सो सो मार्गमें रहिवेवारो इनकों तजे॥१३॥धिका-अवश्रीहिररायजी कहतहें दुष्कर्मा होय सो कर्मदुष्ट भौतिकदुष्ट जाननो ओर अन्यथा (विपरीत) ज्ञान-वान ज्ञानदुष्ट आप्यात्मिकदुष्ट जाननों सो सत्संग भयेतें भगवद्धभेमें आवे ओर जो प्रीतिशून्य आधिदेविक दुष्टहें सो आसुरी जाननो एसे-को तो यह भक्तिमार्गीय सर्वथा त्याग करे तव भगवद्धर्म रहे यह निश्रय हे एसे आसुरके रंचकहू संबंधतें चुद्धिको नाश होय जाय अन्याश्रय होय सो पुष्टिमार्गमें महावाधकहे ॥ १३॥

> इति श्रीहरिरायजीकृतं पंचित्रिंशत्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजमापा-टीकासमेतं समाप्तम् ॥ ३५॥

रुचिस्तेपां न कुत्रचित "चिर्णो जीव सर्वमार्गमें क्षणमें आवे परंतु इनके कहुंहू रुचि न लगे] एसें प्रवाही आसुरीजीवकीनांई जन्मजन्ममें संसारासिकमें पर्यो रहे याकों भगवत्प्राप्ति न होयं सो कृष्णदासंजी गायेहें "गुणप्रताप देखियत अपने चख अश्मसार ज्यों भेदे न तोय" जेसें अश्मसार (काले पत्थर)कों लेकें हजार वर्षलों जलमें डारिराखे परंतु जल उहपत्थरकों न भेदे जब निकारे तब सुिकजाय तेसें प्रीतिश्चन्य आधिदैविक महादुष्ट यहपुष्टिमार्गको प्रताप देखिके गुणहू सुने परंतु कबहू भगवद्धर्मको हदयमें रचकहू लेश न आवे एसे प्रीतिश्चन्य नीरस (भक्तिरसकरि रहित) वहिर्मुखहे ॥ ११॥

मूलं-प्रायः स आसुरो जीवो यस्मिन् प्रीतेरसंभवः। तादृशैनित्यसंगेन भवेदासुरभाववान्॥ १२॥

शब्दार्थः — जामें प्रीतिको असंभव होय सो वोहोतकरिकें आसुर जीव जाननो एसें आसुर जीवनकें साथ नित्य संगतें आसुर भाव-वारे होय ॥ १२ ॥ टीका—उपर कहे एसे प्रीतिश्चन्य महा दुष्ट होय ताकों आसुर जीव जाननों उह जीवमें प्रीतिकी संभावनाहू नांहीहें तातें एसेको संग छोडनो भगवदीयके संग विना नित्य आसुरभाव होतहे जब नित्य ताहशीयको संग होय तब यह आसुरभाव निवृत्त होय सो श्रीभागवतएकादशस्कंथमें श्रीकृष्ण उद्धवप्रति कहेंहें "न रोधयित मां योगो न सांख्यंधर्म उद्धव। न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रतानि यज्ञाश्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः ॥ यथावरुंधे मत्संगः सर्वसंगापहोहिमाम् ॥ २ ॥ सत्संगेन हि देतेया यातुथानाः खंगा मृगाः । गंधवीप्सरसा नागाः सिद्धाश्वारणगुद्धकाः ॥ बह्वो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्टकायाधवादयः" मिक्तें सोग वश नांही करतहे, सांख्य वश नांही करतहे, हे उद्धव, धर्म'

त्तामें स्वस्थ होयंकें रहे नहीतो सर्वथा पाछो फिरे तेसें चिंतातुर चित्तमें सकलगुण करिकें पूर्ण प्रभु केर्से प्रवेश करे ? ॥ १॥ २॥ टीका-अव श्रीहरिरायजी सगरे पुष्टिमार्गीयकों शिक्षा करतहें जो हे सगरे पुष्टि-मार्गीय बैष्णव ! तुमको लौकिक चिंता नांही कर्त्तव्य हे काहेतें जो जाको चित्त चिंताकरिकें व्याकुल होय ताके हृदयमें सकल गुणयुक्त अभु केर्से आय वर्से ? चिंता सकल दोपनकीमाता हे जहां चिंता आई तहाँ सकल दोप आये अब हदयमें दोप आये तब सकलगुणयुक्तप्रभु कोन प्रकार आवे ! ताहीतें श्रीआचार्यजीमहाप्रभु नवरत्नग्रंथमें कहेंहें "चिंता कापि न कार्या निवेदितात्मिभः कदापि" (निवेदितात्म जीवनकों कोईसमयह कछ चिंता नांही कर्त्तव्यहे) अपनों सगरो पदार्थ भगवानकों निवेदन कियो पार्छे चिंता क्यों करतहे ? सर्वथा चिंता न करे सर्वकरणसमर्थ भगवान् धनी माथेपेंहें तातें लौकिक चिंता कछुहू नांही कर्त्तव्यहे ॥१॥ अव लौकिक दृष्टांत कहतहें जेसें लोकिकमें गृहको धनी गृहकों शुद्ध करि संमार्जन करि सगरो कृडा वाहिर निकारि आछो शुद्ध गृह करि तामें रहतहे तेसें श्रीकृष्ण जा वैष्णवको हृदयरूप घर शुद्ध देखतह चिंताको दोप जाके हृदयमें नांहीहे उहवैष्णवके हदयमें प्रभु पधारेहें काहेतें जो चिंता लोकिकहे सो श्रीकृष्णके चरणकी विस्मारकहे चिंता भई तव लीकिकावेश हद-यमें भरचो रहे तब हृदयमें प्रभु केसें पधारे! तातें श्रीआचार्यजीहारा निवेदन किये पाछ सगरी चिंता, काम, कोध, मद, मत्सर, यह हद-यमें कूडा (मेल) हे तिनकों निकासिकें अपनो हृदय शुद्ध करि शांत चित्त करि एक श्रीकृष्णहीको आश्रय करि रहे तव प्रभु वह चैष्णवको हृदय शुद्ध देखिक प्रसन्न होय वामें पधारे छपा करिकें अपने स्वरूपानंदको अनुभव करावे ॥ २ ॥

शिक्षापत्र ३६.

अव पट्त्रिंश शिक्षापत्रमें भक्तिमार्गीय वैष्णवनकों चिंता नांही कर्तव्यहे जेसे बुहारी काढिके शुद्ध घर कियो होय तामें गृहपति रहे तेसेंही चिंतादिक करिकें रहित चित्तमें प्रभुपधारे जो चित्तमें चिंतादिक होय तो प्रभुको आवेश न होय तासों नवरत्नग्रंथमेंहू श्रीआचार्यजी-महाप्रभुजी चिंता नांहीकरनी एसे निरूपणिकयेहें धर्ममार्गके विचारमें हू किं कर्ता लिप्त होतहे संसर्गको इतनो वाध नांही हे यद्याप अवैष्णवनके संग नांही रहनो एसे श्रीआचार्यजीकी आज्ञा हे तोहू लोकको संकोच राखनो ओर इनकी निवृत्तिमें यत्न राखनो अपने मनको मोह करे एसी चिंता नांही करनी वह चिंतातें आयुष्य व्यथे जातरहे भगवचरणारविंदमें चित्त स्थापन करनो यह शरीर संवंधीकी अहंताममता छोडनी प्रतिवंधकी निवृत्तिके अर्थ हरिकी श्ररणभावनी राखनी हरिही सर्वसिद्ध करेंगे अपनकों तो श्रीआचार्यजीकी आज्ञा प्रमाण निवेदनको अनुसंधान मात्र करनो यह निरूपणहे उपर कहैं जो एसे दुःसंगको छोडे तव भगवद्धभरहे तेसेंही लोकिक चिंताहू छोडे तव प्रभु हृदयमें पधारे सो चिंता निवृत्तिको प्रकार अव कहतहे-मूलं-नेव चिंता प्रकर्तव्या लोकिकी भक्तिमार्गगैः। चित्ते चितातुरे कृष्णः कथमाविश्ते गुणैः ॥१॥ यथा यह यहपतिः शुद्धे संमार्जनादिभिः। स्वस्थिरितष्ठत्यन्यथा तु परावर्तित सर्वथा ॥२॥

शब्दार्थः-भक्तिमार्गीय वैष्णवनकों ठौकिकी चिंता नांही कर्तव्यहे काहेतें जेसे गृहको मालिक गृह लिंपिके झाडिकें शुद्ध राख्यो होय

तथापि लोकसंकोचः कर्त्तव्यस्त्वप्रदर्शनेः। मनः स्थाप्यं तन्निवृत्तो समये तन्निवर्त्तनम्॥६॥

शब्दार्थ:-तेसेंही दूसरे युगमें यह (कलियुग) पंचमपनेतें गिन्यो जातहे यद्यपि अपने श्रीआचार्यजीने कह्यो हे जो अवैष्णवनके संग नांही रहनो ॥५॥ टीका-तोहू आगें केर्से करिवैमें आछो होय एसो विचार करिवेवारेनकों लोकसंकोच करनो ओर इनकी निवृत्तिमें मन स्थापन करनो सो समय आवे जव निवृत्त करनो।।६॥टीका-युगांतर जो सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, कलियुग, यह चारो युग आवतह तामें अब यह वर्तमान किल्युगहे सो पंचम हे उत्तमतें उत्तम हे यह चारोयुगमें नांहीहे काहेतें जो यायुगमें श्रीवस्त्रभाचार्यजी पूर्णपुरुपोत्त-मको पाकट्यहे सो श्रीग्रसाँइजी सप्तश्लोकीमें कहेहें "मायावादकरींद्रदर्प-दलनेनास्यंद्राजोद्गत श्रीमद्भागवताख्यदुर्छभसुधावर्षेण वेदोक्तिभः। राधावसभसेवया तदुचितप्रेग्णोपदेशैरपि श्रीमद्रस्भनामधेयसदृशो भावीनभूतोऽस्त्यपि" (मायावादरूप मदोन्मत्तहस्तीके गर्वकों तोडिवेतें श्रीठाकुरजीके मुखचंद्रराजतें प्रकट भयो एसो जो श्रीमद्भागवतनामको दुर्हभसुधा [अमृत]कों वंप [बृष्टि] ताकरिकें, वेदंके वचनतें श्रीराधा-व्छम [श्रीकृष्ण]की सेवाकरिकें, ओर वह सेवामें योग्य एसें प्रेमसहित उपदेशनतेंहू श्रीवल्लभाचार्यजी वरावरि [कोउ] नांही होयगो, नांही

१ चंद्र तो एकहे ताको राजा केसं संभवे ! एसी ग्रंका होय ताको समाधान चह हैं जो श्रीठावरजीकी वाणीक्ष्य श्रीतक्ष्या मक्त अनेकहें सो चंद्रक्ष्यहें तिनके (मावात्मक) आपहें तासों चंद्रराज कहेंहें. २ प्रगलगीतमें इंद्र, शिव ओर झमा, इनकोंहू यह रसको तत्वज्ञान नांहीहे एसे निक्ष्यणहे तहां दुर्ह्यमताको स्पष्ट वर्णनहे. ३ पृष्टितें जेसे बीज उत्पन्न होयहे तेमेंही यह सुधाकी पृष्टि कर्णद्वारा इट्यमे प्रवेशकरे त्य मावक्ष्य अंकुर उत्पन्न होय, ४ वेद (श्रुति) प्रतिपादन करतहे मो " अस्व्यतां फलियें न परं विटामः" यह श्लोकमें ज्ञमकननें निक्षण कियों हे यह वचनके खनुसार प्रश्वकी सेना प्रगट करीहे.

मूलं-उक्तं च प्रभुभिस्तस्मान्नवरत्ने कृपालुभिः। अतोऽन्यविनियोगेऽपि चिताका स्वस्य सोऽपि चेत्।३।

शब्दार्थः—तासों कृपाछ श्रीमहाप्रभुजीनें नवरत्नग्रंथमें कह्योहे जो (पुत्र स्त्री आदिके लिये द्रव्यादिकको विनियोग होय तव) यह हूं अपनो हे तो अन्यविनियोग निमित्तहू चिंता कहाहे ?।। ३।। टीका—तहां कोई कहे जो अन्यविनियोग होतहे यह प्रभुकी सेवा टहल न वने तवतो चिंता करनी तहां श्रीहरिरायजी कहतहें जो हमारे श्रीवहर भाचार्यजी परमकृपाछ हें सो नवरत्नग्रंथमें निरूपण कियेहें जो अपनतें अन्यविनियोग होय तबहू कछु चिंता न करनी काहेतें जो येहू अपनोहे तातें चिंता छोडि एक प्रभुको हढ आश्रय हदयमें राखनो ३ मूलं—धर्ममार्गविचारे ऽपि कलो कर्तेव लिप्यते।

न संसर्गकृतो दोषस्तथा किल्युगे भवेत ॥ ४॥ शब्दार्थः—धर्ममार्गके विचारमें इक्लियुगमें कर्ताही लिस होयहें (ओरयुगमें जेसो संसर्गको दोपहें तेसो) कलियुगमें संसर्गको दोप नहीं हे॥४॥ टीका—धर्ममार्गकी रीति विचारे तो धर्मशास्त्रमें येही सबठोर कहें हैं जो कलियुगमें दोप करे सोही लिस होय संसर्गको दोप किल्युगमें सर्वधा न लगे तात संबंधीको दोप अपनकों न लगे एसी मर्यादाहे तासों संबंधी भक्तिकी रीति छोडि अन्याश्रय करे तोहू वाकी समजायके अन्याश्रय छुडावे, अपन चिंता न करे वेन माने तो असे जाने जो इनने कियोहे सो यही भक्तेंगे मोकों कहा वाधकहे १ एसें

विचारि आपु अपने धर्ममें सावधान रहे ॥४॥ मूलं—युगांतरे तथेवायं पंचमत्वेन गण्यते ।

यद्यप्युक्तं निजाचार्यैः स्थेयं नावेष्णवेः सह॥ ५॥

[·] १ अपने श्रीआचार्यजीद्वारा निवेदन कियोहे तब पुत्र सी गृह आदि सबको निवेदन भयोहे तातें वेह प्रमुक्ते भयेहे तासों इनके लिये विनियोग होय तामें चिंता कहा है-

मूलं-रूथा चिंता न कर्त्तव्या स्वमनोमोहकारणम्। यथा सच्छिद्रकलशाजलं स्रवित सर्वशः॥८॥ तथायुः सततं याति ज्ञायते न गृहस्थितेः। एवं हि गच्छत्यायुष्ये क्षणं नेव विलँवयेत्॥९॥ भगवचरणे चेतः स्थापनेऽतिविचक्षणः।

शब्दार्थः-अपने मनके मोहके कारणरूप बृथा चिंता न करनी काहेतें जो जेसें छिद्रयुक्त कलशसों चारों ओरतें जल स्रवतहे तेसें आयुष्य चल्यो जातहे सो गृहस्थाश्रमीकों जानिवमें नांही आवतहे एर्से आयुष्य चल्यो जातहे तामें श्रीभगवानके चरणारविंदमें चित्त स्थापन करिवेमें अतिचतुर एसो बैष्णव क्षणमात्र विलंब नांही करे।८। टीका-चथा चिंता सर्वथाही नांही कर्त्तव्यहे काहेतें मनको मोह होय मोहको कारण एक चुथा चिंताहीहे यह निश्चयही जाननो ताको दृष्टांत कहतहें जेसें कलशके पेंदेमें छिद्रभयेतें सगरो जल कलशतें वाहिर वहिजातहें तेसेंहि वृथा चितामें मनको मोह उपजतहे भगवद्धर्म नांही वनिआवत आपु परम उत्तम यह मनुष्य देहहे ताको सगरो आयुष्य वीतिजातहे सो एकादशस्कंधमें राजा जनकर्ने कह्योहे ''दुर्हभो मानुपो देहो देहिनां क्षणभंगुरः । तत्रापि दुर्छभं मन्ये वैकुंठिमियदर्शनम् " (या वचनसों यह मनुष्यदेहहे सो महादुर्छभहे ओर क्षणमें भंग होय एसो हे तामेंहू वैकुंठ (श्रीभगवान्) के प्रिय भक्तको दर्शन दुर्छभहे एसें में मानतहों) सो यह देह पायकें प्रभुको आश्रय करे तो उनकों फल सिद्ध होय परंतु जीव वृथा चिंता करिकें मोह करिकें संसारमें जातहे॥८॥ उपर कहे ताभांति यह मनुष्यदेहको आयुष्य क्षणक्षणमें छीजतहे यह विचार निरंतर करि जाने जो यह गृहस्थाश्रममें मोकों तो सगरे विहर्मुख दुःसंगी मिलेहें यह भगवद्धर्ममें सदा वाधही करेंगे याभांति

भंयोहे, ओरहें हूं नांही) ओर वधाईमें कहें दें "एसी भई न हेहे कवहूं. जेसी अव निधि आई " याभावतें एसो मनमें जाननो जो एसो कि छुप कवहू नांही भयो ओर न आगें होयगो तातें अव देवी मृष्टिके जीवके उद्धारार्थ श्रीआचार्यजीमहाप्रभु पधारिकें पुष्टिमार्ग प्रकट कियोहे तातें यह युग ओर युगतें न्यारोहीहे एसें जाननों ओर अपने श्रीआचार्यजी कहें हो अवैष्णवनके संग न रहेनो॥५॥ तोहू अवतांह छोकसंवंधि संकोच आयपडे वोहोत दुःख होतजाने तवतांह उनहींमें स्थित होय इनके दोप अर्थ वोहोत छेश न करें परंतु अपने मनकों स्वाधीन राखे समय आवे तव उनकों छोडि देई अपने पुष्टिमार्गकी रीतिसों सेवास्मरणमें मनकों छगावे ॥ ६॥ मूलं—तत्कालं तत्प्रयत्ने तु रोगस्येवोद्भवो भवेत् । अतः कार्य शनैरेव प्रतिबंधनिवर्त्तनम् ॥ ७॥ अतः कार्य शनैरेव प्रतिबंधनिवर्त्तनम् ॥ ७॥

शब्दार्थः — जेसें रोग उत्पन्न भयो तब (वाको शोधन करिकें मूलतें निकारिवेमें विलंब होय सो न करे ओर) तत्काल उनकों दवायवेको प्रयत्न करे तो वा समय तो दव जाय परंतु फिर वह रोग उत्पन्न होय तेसें जो प्रतिबंध आवे ताकों तत्काल निवृत्त करिवेको यत्न करे तो फिर वह प्रतिबंध आयनडे तासों धीरेधीरेही प्रतिबंधको निवर्त्तन करनो ॥७॥ टीका—कुटुंब लोकिकादिकको संकोच जेसो आयपडेतो वासमय उनहीमें मिलिकें रहे और इनके त्यागकी भावना राखे सो क्रमसों वाकों छोडे काहेतें जो तत्काल छोडिवेमें रोगकीसीनाँइ फेर उत्पन्न होय तासों शनैः [धीरेतें] निवृत्त करनी या भांति वैष्णवको रहनो ॥७॥

१ नांही मयो एसे वयाँ १ वजभक्त तो सर्वोपरिहे एसी शंका होय ताको समा-धान यहहे जो वजभक्तनकोह (गोवर्जनधारणिकामें अपनी रक्षा करिवेकी प्रार्थना करि सो) लोकिकावेशनें प्रेममें न्यूनता भईहे नांहीतो वासमय प्रभुकी रक्षा करिवेकी उपाय करते एमो प्रेमको स्वरूप आपने निरूपण कियोहे तासों नांही भयो एसं कथी और वजमक गुरु कोटिमेंहरें.

कियो एसो सर्व संबंधहू खोटो मान्योहे ॥ ११ ॥ तार्ते वा संबंधनें कियो एसो दुःख उत्तम वैष्णवकों नांही माननो ओर प्रतिवंधकी 'निश्चित्तके लिये हरिकों शरण करे ॥१२॥ टीका-हरिके चरणारविंदमें मन कव लगे ? जब अपने शरीरकों प्राकृत जानें यह देहके पोपणमें मन न होय तब तनुजा वित्तजा सेवा मन लगायके करे. तार्ते शरीर-को प्राक्टत जाने ओर जीवकों सदा नित्य प्रभुको दास जाने या देहको एक दिन नाश होयगो एसें जानें ॥ १० ॥ जीव ओर देहको संबंध काहू कालमें नांहीहे जीव तो अनादिकालतें कोटान् कोटिवार चोराशीलक्षयोनि भुगत्योहे तहां काहू शरीरसों संबंध नांहीहे काहेतें जो यह देह प्राकृत पंचतत्वकरिकें वन्योहे ओर पंचतत्वहू प्राकृतहे तो कारण प्राकृत होय ताको कार्यहू प्राकृत होय ओर जीव सदा एकरस अखंडहे ताकों अमि न जरावें, शस्त्र न छेद करे, एसो निस्पहे परंतु अविद्या जो लगीहे ताकरिकें अपनो शरीर जानतहे सो जीवकों अहंता ममता लगीहे याभांति सगरो संसार अहंता ममताकरि वंध्योहे सो यह लोकिकसंबंध सगरो झुठोहे परंतु अज्ञानकरि अहंता ममतात्मक अविद्याके वश होय अपनों मान्योंहे ॥ ११ ॥ तातें यह लोकिक संबंध मिथ्याहे इनमें मन न लगावे उत्तम भगवदीयहे सो यह लौकिक -संबंधकों उत्तम नांही जानतहे अहंता ममतारूप प्रतिबंधकी नियृत्यर्थ हरिकी शरण जातहें जहां जहां अहंता ममताहे सो सब प्रभुकों समर्पण करि हरिकों शरण करिलेतहें तब यह प्रतिबंध दूरि होतहें सो -नवमस्कंधमें भगवान् दुर्वासाप्रति कहेहें 'ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् 'वित्तमिमं परम् । हित्वा. मां शरणं याताः कयं ताँस्त्यक्तुमुत्सहे " -(जो भक्त, स्त्री, गृह, पुत्र, स्नेहीवर्ग, प्राण, द्रच्य, यह लोकको छोडिकें मोकों शरण आयेहें इनकों छोडिवेकों में केसें उत्साह करें।

१ सर्व मगवानको अपेण करे तब अपेनी अहंना ममना छूटि जाय.

प्रतिवंध होय तो तिनको तत्काल त्याग करे एकक्षणहू विलंब न करे काहेर्ते जो देह छूटनको प्रमाण नांहीहे सो श्रीभागवतसप्तमसंधर्मे प्रहादजी, वालक्सों कहेहें 'कौमारआचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह। दुर्हभं मानुपं जन्म तदप्यश्चवमर्थदम्" (यावचनसो प्रह्लादजी कहतर्ह जो हे वालक! यह भगवद्धर्मको कुमारअवस्थाहीतं आचरन कर्त्तव्यहे काहेतें जो मनुष्यदेह महादुर्लभहे ताको निश्चय नांहीहे जो कव नाश् होयगो ! क्षणमें नाश होय जाय तासों कुमार अवस्थाते भगवद्धमें कर्तन्यहे) यह विचारिकें प्रतिवंधरूप गृहकुदुंवको तत्कालही त्याग कर्तव्यहे एकक्षणहू विलंब न करे कहूं दुःसंगतें मन फिरजाय तो संसारासिक होयजाय तार्ते ताहीक्षण उनको शिघ्रही त्याग करे ॥१॥ उपर कहे एसे प्रतिवंधको छोडिकें श्रीभगवान् श्रीकृष्णके चरणारविंदमें अपने मनकों विचक्षण होयकें स्थापन करे श्रीभगवानके चरणारविंदकों स्मरण ज्ञानी तथा मर्यादामार्गीय भक्तह्र करतहे तार्ते विचक्षण होयर्के करे एसें कह्यो ताको अभिप्राय यहहे जो पुष्टिमार्गकी रीतिसों नित्य श्रीकृष्णकी सेवादिक करि सर्व इंद्रिय, देह, मन, सव श्रीभगवानके चरणारविंदमें लगावें।

मूलं-शरीरं प्राकृतं ति ह्यानित्यं सर्वथा मतम्॥१०॥ तत्संवंधोऽप्यविद्यातस्ततोहंममतात्मकः। संसारस्तकृतः सर्वसंवंधोऽपि मृपा मतः॥१०॥ तत्संवंधकृतं दुःखं निह मंतव्यमुत्तमेः। प्रतिवंधनिवृत्त्यर्थं हिरं शरणमात्रजेत्॥१२॥

शब्दार्थः-शरीर प्राकृतहे सोह सर्वथा अनित्य मान्योहे ॥१०॥ इनको संबंधह अविद्यासोंहे तासों अहंताममतात्मक संसारहे तिनने

भक्तको दुःख नांही सहिसकतहें तातें भक्तनकों दुःख पावत देखेंगे तव तत्कालही दुःख निवृत्त करेगें सो विवेकधैर्याश्रयमें श्रीआचार्यजी-महाप्रभुजी कहेंहें "अशक्ये हरिरेवास्ति सर्वमाश्रयतो भवेत्" तथा "अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः" (अपनर्ते न होयसके तामें हरिही (रक्षक) हैं काहेतें जो आश्रयतें सर्व सिद्ध, होय) तेसें (अज्ञाक्यमें तथा सुज्ञाक्यमें सर्वथा हरिज्ञरणहें) याभांति हरिकी शरणभावना दृढ राखे तो प्रभु सर्व ओरते रक्षाही करे प्रहादजीने हरिकी शरण भावना राखी ओर दुःख सह्यो तो भगवान प्रतिवंध दूरि किये भक्तकी रक्षा करी तातें सर्व छोडिकें हरिशरणकी भावना दृढ राख सो गीताजीमें भगवान् अर्जुनप्रति कहेहें "सर्वधर्मान् परि-त्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः " (सर्वधर्मकों छोडिकें एक मोकों शरण जा में तोक़ं सर्वपापतें छोडाउंगो शोक मति करे) याभांति भगवानके शरण जाय अभुको आश्रय करे ताकी प्रभु रक्षा करे ओर भक्तिवर्द्धिनीमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहेहें ('वाधसंभावनायां तु नैकांते वास इष्यते । हरिस्तु. सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः ") वाधकी संभावना होय (जो एकांतमें रहिवेमें कछ वाधक आवे एसी शंका होय) तो एकांतमें वास नांही योग्यहे (गृहमें रहिवेमें वाधक आयवेकी शंका होय तहां कहतहें हिर सर्व ओरतें रक्षा करेंगे संशय नांही) तातें सर्व प्रकार हरिकोही आश्रय करे।। १३॥

मूलं-यावच्छिक्ति प्रकर्त्तच्यो ह्युपायस्तिविवर्त्तने ! प्रतिकुले च तत्त्यागपर्यतं विहितं पुनः ॥ १४ ॥

शब्दार्थः-प्रतिवंधकी निवृत्ति निमित्त अपनी शक्तिप्रमाण उपाय करनो ओर [स्त्री पुत्रादिक] प्रतिकृल होय तो इनको त्याग करनो ओर एकादशस्त्रंधमें कहेहें "कायेन वाचा मनसेंद्रियेवी बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात्। करोमि यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पये तत् " [कायातें, वाणीतें, मनतें, इंद्रियनतें, अथवा बुद्धितें, आत्मातें अथवा इनकों लागिरहों एसे स्वभावतें जो जो में करतहों सो सर्व परएसे नारायणके लिये (अर्थात् पूर्णपुरुपोत्तमके लिये करतहें) एसें प्रभुकों सर्व अर्पण करें फेरि एकादशस्त्रंधमें कह्योहे "इष्टं दत्तं जपस्तातं क्रतं यच्चात्मनः प्रियम्। दारान् गृहान् सुतान् प्राणान् यत्परस्मै निवेदनम्" [जो इष्ट कियो, दान दियो, जप कियो, तप कियो, वत कियो ओर अपनकों प्रियं हे, स्त्री, गृह, पुत्र, प्राण, जो हे सो पर [प्रभु] कों निवेदन करनों] इत्यादिक वचनके अनुसार पुष्टिमार्गमें श्रीआचार्यजी द्वारा प्रभुकों समर्पण करे एक प्रभुहीको आश्रय करे ॥ १२॥

मूलं-भक्तदुःखासहिष्णुस्तं तदेव हि निवर्त्तयेत्। अशक्ये हरिरेवास्तीत्येवमेव प्रभोर्वचः॥१३॥

राब्दार्थः — [जब प्रभुको आश्रय करे तव] भक्तके दुःखकों सहन नांही करिसके एसे प्रभु वाहीसमय वा प्रतिवंधकों निश्चय निवृत्त करें काहेतें जो अपनसों कछ न वने तहां हरिही रक्षकहे एसोही श्रीमहा प्रभुजीको वचनामृतहे ॥ १३॥ टीका—उपर कहे जो प्रतिवंधकी निवृत्तिके अर्थ सर्व पदार्थ स्त्री पुत्रादिक प्रभुमें निवेदन करे हरिकेशरण जाय परंतु तामें सगरे छुटुंबी दुःख देय, ज्ञातिको दुःख होय, तथा अकेलो होय, रोगादि दुःख होय, द्रव्यादिककी हानि होय, नेत्रादिक अंगको भंग होय, तथा राजादि दंड देय, तथा खानपानादिकको संकोच होय, ओर अकेलो होय सो सहायता कोन करे ? याभांति संदेह होय तहां श्रीहरिरायजी कहतहें जो यह भगवद्भक्त सब छोडिकें हरिके शरण जाय तहां कोई दुःख आवे ताकों सहे तब श्रीटाकुरजी

मूलं-स्वयं किमर्थं कर्त्तव्या पितरीव शिरःस्थिते। न त्यक्ष्यति कृपापूर्णः सेवकं सर्वदा श्रितम्॥ १६॥

शब्दार्थः - पिताकीनाँई श्रीठाकुरजी अपनी उपर विराजेहें सो अपने क्यों चिंता करनी ? काहेतें जो कृपा करिकें पूर्ण एसें प्रभु आश्रितसेवकनकों नांही छोडेंगे ॥१६॥ टीका - पुष्टिमार्गीय वैष्णवकों चिंता क्यों करनी काहेतें जो श्रीआचार्यजी तथा श्रीकृष्ण धनी माथे-पर विराजेहें तिनकों काहेकी चिंताहे जेसें याळोकिकमें वाळकके माथे पिता वेठ्यो होय वा वाळकको कहा चिंता हे ? यह छोकिक हे ओर श्रीकृष्ण तो ईश्वरके ईश्वरहें सर्वसामर्थ्ययुक्तहें एसे प्रभु [पुष्टिमार्गमें] वैष्णवनके माथे विराजतहें जिनकी कृपादृष्टि सदा एकरस भक्तन-परहे एसो वैष्णव कोई अर्थकी चिंता न करे एक प्रभुको ही हढ़ आश्रय करे ॥१६॥

मूलं-आचार्यशरणं तस्य चिंतालेशोऽपि नैव हि। तस्माच्छीवहःभाचार्यचरणाव्जद्वयाश्रितैः॥१७॥ न कापि चिंता कर्त्तव्या कृष्णसेवां विना पुनः। निवेदनानुसंधानचिंतामात्रं विधीयताम्॥१८॥

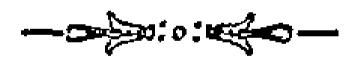
शब्दार्थः-जिनकों दृढ श्रीआचार्यजीको शरण सिद्ध भयो है तिनकों चिंताको लेशह नांहीहे तासों श्रीआचार्यजीके दोयचरणार-विंदको जो आश्रितहें ॥ १७॥ तिनकों श्रीकृष्णकी सेवाविना काह चिंता न करनी केवल निवेदनके अनुसंधानकी मात्र चिंता करनी ॥ १८॥ टीका-जो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके शरणहे नाममंत्र (अष्टाक्षर महामंत्र) पायोहे तिनकों चिंताको लेशह नांही कर्त्तव्यहे सो श्रीगुसाईजी विज्ञित्तमें कहेंहें "यदुक्तं तातचरणेः 'श्रीकृष्णंश्वरणं मम' एसें श्रीआचार्यजी निवंधमें कहेहें "उदासीने स्वयं कुर्यात्प्रतिकृत्ते गृहं स्थजेत् " [स्रीपुत्रादिक उदासीन रहेते होय तो आपु सेवादिक सव करे ओर प्रतिकृत्त होय [अर्थात् सेवामें विरुद्ध पडे तो गृहकों छोडे] ॥ १४ ॥ टीका—याभांति वैष्णव प्रतिवंधकी निवृत्तिपूर्वक हरिशरणके उपायमें रहें प्रतिवंधके त्यागमें मन राखे जो कोई कुटुंबी, स्त्री, पुत्र, माता, पितादि, प्रतिकृत्त होय तो तिनको त्याग करे जो अनुकृत्त न होय तो अकेलो सेवा करे पाछें उनको महाप्रसाद ओर प्रसादिवस दे पोपण करे जो केवल प्रतिवंधक्त होय भगवद्धमें द्वेप राखे तो उनको त्याग करे कोहेतें जो भगवान आत्मसंवंधी जन्मजन्मके प्रभुहें ओर यहदेहसंवंधी स्त्री पुत्रादिकहे उनकों जहांतों देहहे तहां लें संवंधहें देहको मरण भयो तव स्त्रीपुत्रादिककों संवंध निवृत्त भयो ताहीतें देहसंवंधीके लिये आत्मसंवंध न छोडनो ॥ १४ ॥

मूलं-सर्वथा स्वस्य चाशक्तौ हरिरेव हि रक्षकः। स्वकीयचितां कुरुतं कर्त्ता स च करिष्यति॥१५॥

शब्दार्थः -अपनी सर्वया अशक्तिमें हरिही रक्षकहें सो अपने भक्तः निर्मा करतहें सो करेंगे ॥ १५॥ रीका - जो सर्वया जीव अशक् होय तो ताके रक्षक हरि [सर्वदुःख हर्ता] हीहें सो अपने निजभक्तः नकी चिंता आगेतें करत आयेहें अब करतहें ओर आगें करेंगे तीन्यों कालमें कबहू भक्तनकों नांही भूलतहें सो संन्यासिनर्णयमें श्रीआ चार्यजीमहाप्रभुजी कहेहें "अन्यया मातरो बालान स्तन्येः पुपुषः कचित्" माता अपने बालक पुत्रकों स्तन अतिपीतिसों न व्यावे एसो माता कबहू न करे क्षणक्षणमें बालककी रक्षाही करतहें तेसेंही . भगवान् भक्तनकी चिंता कबहू न करे एसें न होय जामांति भक्तनको हित होय सोहि सर्व करतहें यह निश्चय जाननों ॥ १५॥

न करिष्यति " [श्रीकृष्ण अपने जनकों लौकिकवैदिकमें स्थित न करे जो अज्ञानकिर कोई लौकिक वैदिकमें स्थित होय तो प्रभु वह कार्य सिद्ध न करे तब वैष्णव तत्काल याविषय चिंता छोडिकें प्रभुको गुण माने जो यामें कछ मेरो अनिष्ट होयगो तासों प्रभु सिद्ध नांही किये परंतु मनमें चिंता न करे यह मेरो विगयों अब में कहा करूं एसें चिंता न करे जो प्रभुको गुणही माने शीघही प्रभुको चिंतन करे जो मेरे उपर प्रभु प्रसन्नहींहे जेसें संतदासजी श्रीआचार्यजीके सेवक हते सो प्रथम बहुत संपन्न हते सो सब द्रव्य गयो फिर २० टकाकी पुंजीतें अढाई पईसामें निर्वाह करि प्रसन्न रहेते पार्छे नारायण-दासनें १०० मोहोर पठाई सो न राखि प्रभुकी इच्छाके अनुसार चले यामांति वैष्णव प्रभुको गुणही माने ॥ १९ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं षट्त्रिंश्तमं शिक्षापत्रं श्री-गोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमतं समाप्तम् ॥ ३६॥



शिक्षापत्र ३७.

अव सप्तित्रंशत् शिक्षापत्रमें अहर्निश अपनी निःसाधनताकी भावना करनी यह निरूपणहे। उपर कहे ताप्रमाण चिंता न करनी ओर जब निःसाधन होय तब फलप्राप्ति होय सो निःसाधनताकी भावनाको प्रकार निरूपण करतहें—

मूलं-न गुद्धभावो नेवास्ति सर्वभावो न दीनता । नाज्ञापरत्वं विश्वासो न चास्ति परमादरः ॥ १ ॥ तत एवास्ति नैश्चित्यमैहिके पारलोकिके" जो तातचरण (श्रीआचार्य-जीमहाप्रभुजीने) "श्रीकृष्णःशरणं मम" कह्योहे तासोही यहलोकके तथा परलोकके फलादिकमें निश्चितताहे) इत्यादि वचनकरि पुष्टिमा-गींय वैष्णवनकों चिंता नांही कर्त्तव्यहे ॥ १७॥ उपर कहे जो चिंता कोई प्रकारकी नांही कर्त्तव्यहे तहां कोई कहे जो चिंता कछू नांही करनी एसे कह्यो तब जीव भगवद्धर्मकी चिंताहू न करेंगो ओर भगव-द्धर्महू न करेंगो क्यों जो प्रथम जीवनकों भगवद्धर्ममें मनहू नांहीहे ओर तुम चिंताहू नांहीकरन कहे तासों भगवद्धर्म नांहीकरे उनकी कहागति ? याभांति संदेह होय तहां कहत हे जो श्रीऋष्णकी सेवाकी चिंता तो अवश्य कर्त्तव्यहे ओर लौकिक वैदिक फलकी तथा अपने उद्धारकी चिंता नांही कर्त्तव्यहे श्रीकृष्णकी सेवाविना तो यहपुष्टिमार्ग सर्वोपरिहे ताके फलकी प्राप्ति न होय तासों यहचिंता अवश्य कर्तव्यहे तार्ते श्रीकृष्णकी सेवा करे निवेदनको अनुसंधान अहर्निश राखे जी में कितने कालसों प्रभुको भूल्यो हतो, अब श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीकी कृपातें संबंध भयोहे, में दासहों, मोकों अब कहा कर्तव्यहे. में सर्वे समर्पन कियेहे, यामें अपनी सत्ता सर्वथा नांही हे सर्व प्रभुको हे, या भांति निवेदनको अनुसंधान राखे ॥ १८॥

मूलं-लोके स्वास्थ्यं तथा वेदइति श्रीमत्प्रभोर्वचः। स्मृत्वाशीघं हृदिस्था सा निवत्त्यो सेवनार्थिभिः॥१९

शब्दार्थः -श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी नवरत्नमें कहेहें जो "हिर छोकमें तथा वेदमें स्वस्थता न करेंगे" यहवाक्यको स्मरणकरिकें, प्रभुकीसेवाकें अर्थवारे वेष्णवनकों इदयमें रही एसी जो चिंता सो शीघ्र निष्टत्त-. करनी ॥ १९ ॥ टीका-अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो हमारे प्रभु -श्रीवर्छभाचार्यजी नवरत्नग्रंथमें कहेहें "छोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु

मूलं-न सत्संगो नेव सेवा न निवेदनंसंस्मृतिः। नाश्रयो न विवेको हि धेर्यं न श्रणस्थितिः॥२॥

शब्दार्थ:-सत्संग नांहीहे, सेवा नांहीहे, निवेदनकी सुंदर स्पृति नांहीहे, आश्रय नांहीहे, विवेक नांहीहे, धैर्य तथा शरणमें स्थिति (हट आश्रय) नांहीहे ॥ २ ॥टीका-ओर साधन न होय परंतु सत्संग होय तो ताकरि पुष्टिमार्गके फलको अनुभव होय सो मोको पुष्टिमार्गको सत्संगहू नांहीहे ७ सत्संगतें अष्टप्रहर भगवत्सेवामें मन लागे तो फलं-रूप मानसी सेवा सिद्ध होय सो मेरेमें तो तनुजा वित्तजाहू नांही वनतहे नहां मानसी तो परम दुर्छभहे. यह मार्गमें तो सेवाही मुख्यहे जेर्से ब्राह्मण गायत्री न पढे तो ब्रह्मत्व जाय तेर्मेही वैष्णव सेवा न करे तो बैष्णवता जाय सो मेरेमें सेवाहू नांहीहे ८ ओर निवेदनको अनु-संधान यह पुष्टिमार्गमें सर्वथा चहिये सो नवरत्नमें श्रीआचार्यजीमहा-प्रभुजी कहेहे "निवेदनं तु स्मर्त्वां सर्वथा ताहशैर्जनैः" (निवेदन तो तादृशीय भगवदीयजनके संग निश्चय स्मरणकरिवेयोग्यहे)सो मोकों न तादृशीयको संगहे ओर न निवेदनकी स्मृतिहे ९ एक प्रभुको आश्रय मनमें राखे यह परम साधनहे सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी विवेकधैर्याश्रयमें कहेहें "अशक्ये हरिरेवास्ति सर्वमाश्रयतो भवेत " (अञ्चयमें हरिहि सर्वहे तासों सर्व आश्रयतें सिद्ध होय) याभांति एक श्रीकृष्णहुको आश्रय नांहीहे १० विवेक चहियें सो श्रीआचार्यजीमहा-प्रभुजी विवेकधेर्याश्रयप्रंथमें कहेहें "विवेकस्तु हरिः सर्वनिजेच्छातः करिष्यति " [हरि' (भगवान) अपनी तथा अपने भक्तनकी इच्छासूं

१ महाभारतमें कह्योहे "हराम्यधं हि स्मर्तृणां (हरामि दुःरां स्मर्तृणां) इवि-भागान् ऋतुप्यहम् । वर्णोऽपि मे हरिचेष्टस्तस्माद्धिरहं स्मृतं" (स्मरणकरिवेचारेको पाप ओर दुःपा में हर्छं यज्ञनमें हिप्यके भाग लेउंहं ओर रंगह हरणो मोकों प्रिय हे तासों में हिर कहाउंहं तासों हिरिनामकोही यह माहात्म्यहे जी भचनके दुःपा निवृत्त करेंगे यह समझनों सो विवेकको मृलहे.

शब्दार्थ:-शुद्ध भाव नांहीहे, सर्वात्मभाव नांहीहे, दीनता नांहीहे, श्रीआचार्यजीमें तत्परता नांहीहे, यह पुष्टिमार्गमें विश्वास नांहीहे, ओर प्रभुमें आदर नांहीहे, (एसे साधनरहितमें इसो प्रभु कहा करेंगे एसी भावना करे) ॥१॥ टीका-अव श्रीहरिरायजी कहतहें याभांति निःसाधन जीव होय तो प्रभु निश्चय फलदान करे सो मेरेमें निःसाधनता नांहीहे प्रथमतो शुद्ध भाव होय तव प्रभु कृपा करे सो शुद्ध भाव नांहीहे मनमें कपट,छल, ईष्यी, इत्यादिक भरिरह्योहे तार्ते श्रीकृष्णमें शुद्ध भाव-नांहीहे, ओर सर्वभावहू प्रभुमें नांहीहे जो महाप्रभुजी चतुःश्लोकीमें कहेहें "सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः " (सर्वदा सर्वभाव-करि व्रजके अधिप [श्रीकृष्ण] भजन करिवेयोग्यहे एसे व्रजके अधिपति [श्रीकृष्ण]हे तिनको भजन [सेवा] सदाहि सर्वभावकरिके कर्त्तव्यहे सो मोर्सो नांही वनतः देहसों करतहों तो इंद्रिय मन, नांही लगत. मनमें विचार होतहे परंतु देहतें नांही बनतहे, मन्, वचन, कर्म, सर्वभावसं नांही होतहे. भलो ओर कछू न वने तो दीनता करे तार्ते प्रभु पसन्न होय सो श्रीगुसाईजी विज्ञिप्तिमें कहेहें "आचार्यचरणेरुक्तं देन्यंत्वत्तोपसाधनम्" (हमारे आचार्यजीमहाप्रभुजी श्रीसवोधिनीजी आदिमें कहेहें जो प्रभु प्रसन्न करिवेको साधन एक देन्यहीहे] सो देन्य मेरेमें नांहीहे, ओर जापकार श्रीआचार्यजीमहा-प्रभुजीकी आज्ञा शास्त्रमें हे सो वने तोहू प्रभु प्रसन्न होय सो पुष्टि-मार्गकी रीतिहे ता अनुसार आज्ञा पालनहू मोमें नांहीहे, ओर या पुष्टिमार्गमें चातकपक्षिकीनांई विश्वास राखे सो सर्वोपरहे विश्वास विना . कछ सिद्धि नांहीहे सो मोमें विश्वासह नांहीहे ओर प्रभुमें आदर नांहीहे आदर (परमप्रीति) होय तो प्रभु विना ओरठोर. मन न न लगे सो प्रभुमें आदरह नांही है।। १॥

दुःखहानी तथा पापे भये कामाद्यपूरणे ॥ भक्तद्रोहे भन्यभावे भक्तश्रातिकमे कृते। अशक्ये,वा सुशक्ये वा सर्वार्थे शरणं हरिः। " [यहलोकमें, परलोकमें, सर्वथा हरि शरणहें. दुःखकी हानिमें तथा पापमें, भयमें, कामादिक पूर्ण न होय तामें, भक्त द्रोह करे अथवा भक्तको द्रोह होयजाय तामें, भक्तिके अभावमें, भक्त आतिक्रम करे अथवा भक्तनको आतिक्रम होयजाय तामें, अशक्यमें तथा सुशक्यमें. सर्वअर्थमें हरि शरणहें) याभांति शरणभावना राखेतो श्रीकृष्णाश्रयमें कहेहें " शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम्" (शरणमें रहिवेवारे जीवनके उद्धारिनिमित्त अथवा उद्धार करिवेवारे श्रीऋष्णकों में विज्ञिष्ठ करूं हूं) तातें श्रीकृष्णके शरण जाय रहे तो प्रभु उद्घार करे सो श्रीगीताजीमें भगवान् अर्जुनप्रति कहेहें 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः " [सर्व-धर्मको छोडिकें मोकों मुख्य जानि शरणहो में तोकों सर्वपापनतें छुडाउँगो शोक मति करे 1 याभांति प्रभुके शरण होय तो प्रभु कृपा करे सो में शरणमें हू स्थित नांही हों १३ ॥ २ ॥

मूलं-न माहात्म्यपरिस्फ्रात्तिः स्नेहस्तु न हि कुत्रचित्। आसक्तिव्यसनादीनां कथाऽपि खळु दुर्छमा ॥३॥

शब्दार्थः — माहात्म्यकी चार्योओरतें स्फूर्ति नांहीहे, काहूस्थलमें स्नेह नांहीहे, आसक्ति ओर व्यसनादिककी तो कथाहू निश्रय दुर्छभहें ॥३॥ टीका—श्रीकृष्णके माहात्म्यकी स्फूर्ति हृदयमें होय तोहू प्रीति होय जो प्रभुके प्रमेय वलतें गाय, गोपी, एसे निःसाधनको फलसिद्धि भईहे. अजामिलकों पुत्रभावके नामतें तायाँहे. अविद्यारूप पृतनाकों एकक्षणमें मारि भक्तनकी अविद्या दूरिकीनीहे. या पुष्टिमार्गमें स्त्री-शद्भादिकनको उद्धार श्रीमहाप्रभुजी कियेहे, रंचक कृपार्हिटतें भक्तन-

सर्व करेंगे यह समझनो सो विवेक] मनमें विचार होय जो प्रभुही सर्व करतंहें जीवको कियो कुछ नांही होत हे यह विवेक वैष्णवको चिह्यें सो नांही हे ११ वैष्णवकों दुःखसुखमें धैर्य चाहियें सो श्रीआ-चार्यजीमहाप्रभुजी विवेकधैर्याश्रयमें कहेहे "त्रिदु:खसहनं धैर्यमामृतेः सर्वतः सदा । तक्रवद्देहवद्भाव्यं जडवद्गीपभार्यवत् " (मृत्युसमान संकट आयजाय अथवा मृत्यु होयजाय तहांताँई सर्वओरतें सदा आध्यात्मि-कादिक त्रिविध (तीन प्रकारके) दुःखकों सहनकरनो सो धैर्य. तर्क (छाछ) कीनाँई,जडभरतकीनाँई,ओर ब्रजभंक्तनकीनाँई, अथवा गोपँकी स्त्रीकी वार्ता श्रीगोक्तलोत्सवजीकृत टीकामें हे वा गोपस्त्रीकीनाँई देह-वारेकों भावना कर्त्तव्यहे अथवा देहकीनाँई भावना कर्त्तव्यहे] याभांति आध्यात्मिकादि तीनोप्रकारके दुःखकों वैष्णव सहनकरे तब धैर्य देखि प्रभु प्रसन्न होय, प्रह्लादजीकीनाँई टेक चहियें सो मेरेमें धैर्यहू नांही है १२ ओर हरिके शरणमें स्थिति होय सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी विवेकधैर्याश्रयमें कहेहें "एहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः ।

१ छाछ मथनको सहन करतहे तब मनखन [सारक्षप] निकसतहे केर छाछमें ममत्व नांही रहतहे तेसे देह विद्यमान होय तथतांई कार्य करिलेनो ओर देह तथा देहसंबंधीमें ममत्व नांही राखनो. २ जहभरतकों भद्रकालीकी पास मारिवेकों लेगये तोह सहे तब इनके तेजसों भद्रकालीकी मृतिं भिन्नहोयके भीतरसों देवी निकसी सो जहभरतकों मारिवेवारेनकों मारहारे. ३ वजभक्तननें लोकिक वैदिक तजी तामें दुःख आये सो सहे. ४ "हत्वा चुपं पतिमवेक्ष्य भुजंगदृष्टं देशांतरे विधिवशाहणिकास्मि जाता। पुत्रं पतिं समिधिगम्य चितां प्रविधा शोचामि गोपगृहिणी कथमद्य तक्षम् " (राजाकों मारिक पतिपास गई तहां पतिकों सपं हस्यो देखिक देशांतरमें गई तहां प्रारम्थयोगम् वेदया भई तहां पतिकों सपं हस्यो देखिक देशांतरमें गई तहां प्रारम्थयोगम् वेदया भई तहां पतिकों स्प हस्यो देखिक देशांतरमें गई तहां परित्रों तिहांतें इहां अब गोपकी स्त्री मई सो छाछको शोक कहा कहा, ५ देहमें अहंता ममतासों पंचनहोतहे ओर जब यह छुटे और इनसंबंधी दुःख सहे तब उत्तम फलमिले.

भवरनो ज्यां निह प्रवेश विधि हरनो " एसो शुद्धमार्ग तामें प्रवेश होय एसो एकहू साधन मोमें नांहीहे तार्ते यह अपने मनमें जानतहों जो यह सर्वोपरि भक्तिमार्गमें दोपरूपको प्रवेश नांहीहे १८ ओर लोक धर्ममें हू स्थिति नांही हे तातें यह अपने मनमें जानतहों जो यह अलोकिक भक्तिमार्गहे तामें स्थिति न भई तो लोकिकमें तो स्थिति होय सो में लोकिक गृहादिकमेंहू स्थित नांहीहों १९ देशादि श्रद्धताको आश्रय नांही कितनेक जीव शुद्धदेश [तीर्थ] को सेवन करतहें, काशी, प्रयाग, वजदेशको आश्रय करत हें सो एसे देशको आश्रय नांहीहे २० बैदिक धर्म कालदोपते सिद्ध नांहीहे, कर्म-मार्गतेंहू स्वर्गादिकफल शास्त्रमें कहेहें सो कालदोपतें वैदिकधर्म सिद्ध नांहीहे सो संन्यासनिर्णयमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहेहें " सुतरां कलिदोपाणां प्रवलत्वात्" (अव कलिदोपकी प्रवलतासों एसें स्थितिहे) ओर श्रीऋणाश्रयमें कहेहें " नानावादिवनष्टेषु सर्वकर्म-त्रतादिषु । पापंडेकप्रयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम " (सर्वकर्म ओर व्रतादिक नानाप्रकारके वादकरिकें नष्ट भये ओर पापंडकोही मुख्य प्रयत्न जामें हे तामें श्रीकृष्णही मेरी गतिहें) यामांति कलिकाल णायके मयादामार्गके साधन सब नष्ट भये तासों में बैदिककार्यमेंहू नाहीहों ॥ ४॥

. मूलं-न च व्यावृत्तिराहित्यं व्यावृत्तो न हरो मनः। न त्यागश्चापि सेवार्थं स्वतंत्रस्य तु का कथा॥५॥

शब्दार्थः न्व्यावृत्तिरहितपनो नांहीहे, व्यावृत्तिमेंहू हरिमें मन नांहीहे, ओर सेवाके लिये त्यागहू नांहीहे, तो मनकों अपने वश करिकें स्वतंत्र होयवेकी तो वार्ता कहा ? ॥५॥ टीका-में अञ्यावृत्तहू नांहीहों सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी भक्तिवर्द्धिनीमें कहेंहें "अव्या- को सर्वकार्य सिद्ध होतहे सो मोकों कहा डरहे? या भाति माहातम्यकीहैं. स्फूर्ति नांहीहे ॥१४॥ चित्तमें स्नेह होय यह प्रभु प्रसन्न करिवेको वडो साधनहे काहेते जो प्रथम प्रभुमें खेह होय पाछें आसक्ति होय, व्यसन होय तव अनुभव होय सो श्रीकृष्णके चरणकमलमें प्रेमहू नांहीहे तो आसक्ति व्यसनादिककी तो कथा कहनकों दुर्लभ हे सो प्रेम, आसक्ति, व्यसन, कव होय सो त्रिविधनामावलीमें कहेहें ''वाललीलानामपाठात्. श्रीकृष्णे प्रेम जायते। आसक्तिः पौढलीलाया नामपाठाद्भविष्यति॥ व्यसनं कृष्णचरणे राजलीलाभिधानतः। तस्मान्नामत्रयं जाप्यं भक्ति प्राप्तीच्छुभिः सदा " [बाललीलाके नामके पाठतें श्रीकृष्णमें प्रेम होयहे, प्रौढळीळाके नामके पाठतें आसक्ति होयगी, राजळीळाके नामसी श्रीकृष्णके चरणारविंदमें व्यसन होय तासों भक्तिकी प्राप्तिकी इच्छी' वारेनकों सदा तीन्यो नाम जपकरिवेयोग्यहें,] तासों तीन्यो नामकें पाठ मन लगायकें करे तब निश्चय पुष्टिभक्ति सिद्ध होय, ओर भक्ति वर्द्धिनीमें कहेहें "ततः प्रेम तथासक्तिर्व्यसनं च यदा भवेत्" (तासौं प्रेम, तथा आसक्ति, ओर व्यसन जब होय सो शास्त्रमें बीज कह्योहे) सो मोमें सेहहू नांहीहे १५ ताकरिकें श्रीकृष्णके चरणमें आसिकि नांहीहे १६ ओर व्यसनादिककी कथाहू दुर्छभहे १७॥३॥

मूलं–भक्तिमार्गप्रवेशो न धर्ममार्गे न च स्थितिः। देशादिशुद्धभावो न कालदोपान्न वैदिकम् ॥४॥

शब्दार्थः-भक्तिमार्गमें प्रवेश नांहीहे, ओर धर्ममार्गमें स्थिति नांही, देशादि शुद्धभाव नांही, कालदोपते वैदिक नांही, ॥ ४ ॥ टीका-यह पुष्टिमार्ग सर्वोपरहे तामें मेरो प्रवेशह नांहीहे काहेतें जो श्रीवस्त्रभाचार्यजीके भक्तिमार्गमें बसादिक शिवादिकको प्रवेश नांहीहे सो गोपालदास वस्त्रभाख्यानमें गायेहें ' एवो मार्ग श्रीवस्त

संयम [निरोध] नांही अभक्तनमें उदासीनता नांही, गृहादिकनमें अनासक्ति नांही॥५॥टीका-श्रीकृष्णकेविरहकी स्फ्रतिंह नांहीहे काहेतें जो श्रीऋष्णके विरहकी स्फूर्ति सर्व वैदिक लौकिक कार्यकी विस्मारकहे सो काहेतें विरहतें दैन्य होय जेसें रासपंचाध्यायीमें प्रभु अंतर्धान भये तब मुख्यभक्तको विरह भयो तब दैन्यते कह्यो 'हा नाथ!रमण! पेष्ट! कासि कासि महाभुज! दास्यास्ते कृपणायामे सखे दर्शय सन्निधिम" [हा नाथ!रमण!प्रिय! कहांहो?कहांहो?हे बडे भुजावारे!हे सखे! आपकी दासी में हों तिनकों सिन्निध वताओ अर्थात् दर्शन देओ] तथा सब व्रजभक्त रुदन करन लागे एसो दैन्य भयो तब प्रभु प्रकटे तातें यह पुष्टिमार्गमें केवल विप्रयोगही फलरूपहे एसे फलरूप विप-योगकी स्फूर्तिहू नांहीहे २६ ओर वाणीको तथा नेत्रनको संयमहू नांहीहे सो श्रीभागवतमें कहेहें " वहीयिते ते नयने नराणां लिंगानि विष्णोनं निरीक्षतो ये। जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत! न चोपगायत्युरु गायगाथाः "[जो नेत्र भगवानके चिह्नकों नांही दर्शन करतहे सो नेत्र मोरकी चंद्रिकावत् (अर्थात् कछु आपकों उपयोगके नांही) ओर जो जिह्वा उरुगाय (वोहोतने गाये एसे भगवान्) की कथाको गान नांही करतहे सो जिह्ना दुष्ट दादुरकी नॉई (व्यर्थ) रिटवेवारीहे] यह दोय महा वाधकहे काहेतें जो वाणीको निरोध न होय तो मुखरता दोप होय ओर नेत्रनसों दोप देखनों यामें हृदय दोपरूप होतहे तातें वाणी ओर नेत्रको अवश्य निग्रह चाहियें सो नांहीहे २७ ओर भगवानके जो भक्त नांही तिनमें उदासीनता चहियें तथा भगवदीयमें स्नेह चहियें काहेतें जो इनके संगतें यह पुष्टिमार्गको फल सिद्ध होतहे यह निश्चय सिद्धांतहे सो भगवदीयसों स्नेह नांही ओर अभक्तमें उदासीनता नांहीहे तासों यह मार्गमें आवेश केमे होयगों?

वृत्तो भजेतऋष्णं पूजा श्रवणादिभिः " (अन्यावृत्त होयके पूजा (सेवा) ओर् श्रवणादिक करिकें श्रीकृष्णकों भजे] याभांति अन्या-वृत्त होय भगवद्धर्भ [सेवा] करे कथा सुने सो अव्यावृत्तहू नांही २२ व्याद्यति करतमें हू हिरमें चित्त चिहें ये सोहू श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी भक्तिवर्द्धिनीमें कहेहें "व्यावृत्तोऽपि हरी चित्तं श्रवणादी यतेत् सदा" [व्यावृत्तियुक्तहू स्थापे ओर सदा हरिमें चित्तकों श्रवणादिकमें यत्न करें] याप्रकार न्यावृत्ति करतमेंहू भगवानमें मन नांहीहे जेसे संतदासजी कोडी वेचर्ते काहूर्ते वोलतें नांही, २३ ओर भगवत्सेवार्थ देह, इंद्रिय, मनतें लोकिक वैदिकको त्याग नांहीहे जो त्याग न होय तो सेवा न वने सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी सेवाफलमें कहेहें ''उद्वेगः प्रतिवंधो वा भोगो वा स्यानु वाधकः " [उद्धेग प्रतिवंधं ओर भोग यह वाध-कहे] जो वाधकहे ताको त्याग करनो सोहू सेवाफलमें कहेहें "वाध-कानां परित्यागो भोगेऽप्येकं तथा परम् " [वाधकनको परित्याग करनो भोगमेंहू लोकिकको त्याग करनो] उद्देग प्रतिबंध, भोग, [विपयार्थ आछो खानपान] ताको त्यागहू सेवार्थ नांहीहे २४ स्वतंत्र नांहीहों देह इंद्रियनके वश्यहों काहेतें जो विषयादिक भोगको त्याग नांहीहे ताकों स्वतंत्रकी कथा कहा ? या भांति मन सवटोरतं (लोकिक वैदिकर्ते) स्वतंत्र होय के प्रभु शरण नांहीहे ॥२५॥५॥ मूलं-न कृष्णविरहस्फ्रितिः संयमो न च वाग्हशोः। नौदासीन्यमभक्तेषु नानासिक्यिहादिषु ॥ ६ ॥ शब्दार्थ:-श्रीकृष्णके विरहकी स्फूर्ति नांही, वाणी ओर मनको

१ प्रतिबंध दोयप्रकारकोहे साधारण और भगवत्कृत ताम साधारण प्रतिबंधको स्पाग अपनतं होयसके सो करनो.

२ भोग दोपप्रकारको हे लौकिक और अलीकिक तामें लीकिकमोगको त्याग करनो और अलीकिकतो मुख्यफलहपहे.

,जवाव देहोगे इतनो सुनतही छीतस्वामी कहे जो मेरे भाये तो तुमही मलेच्छहो जा आजुपाछें तेरो मुख न देखूंगो ऐसें कहिकें वरसोंदीहू छोडि चले आये, यामांति अपने स्वधर्मकी रक्षा करे, काम, कोध, मद, मत्सर तासों रक्षा करे सो में तो कोई प्रकार स्वधर्मको परिग्रह नांही करतहों ३१ ओर यह पुष्टिमार्गतें अन्य धर्म जितनेहें सो सगरे पुष्टि-मार्गीय वैष्णवको वाधकहे सो में अन्य धर्मतें निवृत्त नांहीहों ३२ ऐसें वत्तीस दोप संयुक्त में हों सो हे मेरे स्वामी श्रीकृष्ण ! तुम मेरे स्वामी हो सो कहा करोगे ? त्याग करोगे के अंगीकार करोगे ? सो मोर्को नांही जानि परतहें ॥७॥ अव श्रीहरिरायजी कहतहें जो उपर दोप कहे सो वत्तीसहीहे एसें मित जानियों में दोपको निधानहीं अपार दोपहे गिनत गिनत जिनको पार न होय इतने दोपहें ओर सुंदर गुणकरि रहितहों एकहू गुण मोर्मे नांहीहे सो प्रभु कहा करेंगे? या-भांति निःसाधनताकी भावना नित्यही कर्त्तव्यहे काहेर्ते जो निःसाधन होय तापर दया करी तिनके हृदयमें प्रभु पधारि अनुभव करावें ॥८॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं सप्तित्रंशत्तमं शिक्षा-पत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषा-टीकासमेतं समाप्तम्॥ ३७॥

शिक्षापत्र ३८.

अष्टित्रंशत शिक्षापत्रमें व्यापिवैक्कंटमें भगवान पूर्णानंदहें ओर रमावैकुंटमें विभूतिरूपहे, जेसें व्यूहरचनामें स्थित पुरुप कोड़कों प्राप्त नाही होयहें तेसें व्यूहमध्यमें स्थित पुरुपोत्तम अभक्तनकों गम्य नाहीहें, २८ ओर गृहादिक कार्यमें मनकरि आसक्त होय यह महा वाधकहे सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी ठोरठोर दूपण कहेहें ओर श्रीभागवतमें हू सवठोर प्रसिद्धहे जो गृहादिक लोकिक कार्यमें आसक्तहें तिनकों भगवानके धर्म दुर्छभहे तासों गृहादिकनमें अनासिक चहियें (अर्थात् आसक्ति न चहियें) सो नांहीहे में गृहादिकनमें आसकहों २९ ॥६॥

मूलं—नाहंकारादिराहित्यं न स्वधर्मपरिग्रहः। नान्यधर्मानेवृत्तिश्च किंकरिष्यति मत्प्रभुः॥७॥ मिय दोषनिधाने तु सर्वसद्ग्रणवर्षिते। निःसाधनत्वमेवं हि स्वस्य नित्यं विभावयेत्॥८॥

श्वदार्थः - अहंकारादिकनसों रहितण्नों नांही, अपने धर्म जो मिक्तमार्ग ताको सवओरतें ग्रहण नांही ओर अन्यधर्मकी निवृत्ति नांही उपर कहे सगरे दोपको निधान (भंडार) रूप ओर सर्व सहुणकरि वर्जित में हों तार्षे मेरे प्रभु (स्वामी श्रीकृष्ण) कहा करेंगे एसे नित्य अपनी निःसाधनताकी भावना करनी ॥ ७ ॥ ८ ॥ टीका - अहंकार भिक्त मार्गमें वाधकहे सो विवेकधेर्याश्रयमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहें अभिमानश्रसंत्याज्यः स्वाम्यधीनत्वभावनात् " [स्वामीके आधी नताकी भावनासों अहंकार आछीरीतसों छोडनो] स्वतंत्र होय सो अहंकार करे दासको धर्म नांही तासों दास होयके अहंकार करे तो दासधिम जात रहे तातें दासकों तो अपने स्वामी श्रीकृष्णके अधीनत्वकी भावना कर्त्तव्यहे सो में अहंकारकरि रहित नांही हों ३० ओर पुष्टिमार्गीय वेष्णवकों अपने धर्मको परिग्रह चिहें हढता चिहें जेसे छीतस्वामीसों वीरवलने कि तुम पदमें श्रीग्रसाँईजीकों श्रीटाकुरजीको रूपकरिके गावतहो सो देशाधिपति पूछेगो तो कहा

,जवाव देहोगे इतनो सुनतही छीतस्वामी कहे जो मेरे भाये तो तुमही म्लेच्छहो जा आजुपाछँ तेरो मुख न देखूंगो ऐसे कहिके वरसोंदीहू छोडि चले आये, यामांति अपने स्वधर्मकी रक्षा करे, काम, कोध, मद. मत्सर तासों रक्षा करे सो में तो कोई प्रकार स्वधर्मको परित्रह नांही करतहों ३१ ओर यह पुष्टिमार्गतें अन्य धर्म जितनेहें सो सगरे पुष्टि-मार्गीय वैष्णवको वाधकहे सो में अन्य धर्मतें निवृत्त नांहीहों ३२ ऐसे वत्तीस दोप संयुक्त में हों सो हे मेरे स्वामी श्रीकृष्ण ! तुम मेरे स्वामी हो सो कहा करोगे ? त्याग करोगे के अंगीकार करोगे ? सो मोकों नांही जानि परतहें ॥७॥ अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो उपर दोप कहे सो वत्तीसहीहे एसें मित जानियों में दोपको निधानहीं अपार दोपहे गिनत गिनत जिनको पार न होय इतने दोपहें ओर सुंदर गुणकरि रहितहों एकहू गुण मोमें नांहीहे सो प्रभु कहा करेंगे? या-भांति निःसाधनताकी भावना नित्यही कर्त्तव्यहे काहेतें जो निःसाधन होय तापर दया करी तिनके हदयमें प्रभु पधारि अनुभव करावें ॥८॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं सप्तित्रंशत्तमं शिक्षा-पत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभापा-टीकासमेतं समाप्तम्॥ ३७॥

शिक्षापत्र ३८.

अष्टित्रंशत शिक्षापत्रमें व्यापिवेकुंटमें भगवान पूर्णानंदहें और रमावेकुंटमें विभूतिरूपहे, जेसें व्यूहरचनामें स्थित पुरुप कोइकों शप्त नांही होयहें तेसें व्यूहमध्यमें स्थित पुरुपोत्तम अभक्तनकों गम्य नांहीहें, भावात्मक प्रभुतो सदाही रसात्मक लीला करेहें अन्यकार्य नांहीं करेहें, ओर भूभारहरणादिक तो अंशको कार्यहे. धर्मिमात्र अपनी मर्यादा रहित अजमेंहे ओर सर्वधर्मविशिष्ट मर्यादासहित मथुराजीमेंहे, परमा-नंदरूप वाळलीलादिभेदसों उच्छृंखललीला व्रजमें करी सो सर्वलीलामें रसरूपपनों गृहभावसों वर्णितहें एसें मूललीलायुक्त मूलरूप श्रीकृष्णमें निरंतर चित्त स्थापन करनों सोहि अपने मार्गकी सेवाहे इनकी सिद्धिके लिये तनुजा, वित्तजा, सेवा करनी, ओर तादृशीयभक्तनके संग निवेदनको अनुसंधान करनों, यह पुष्टिमार्गप्रवर्त्तक श्रीआचार्यजीमें सुद्दढ स्नेह राखनों, ओर इनके मार्गमें दंढ विश्वास राखनों तासों सर्वे सिद्ध होयगो. उपर कहे जो अपनें दोपकी भावना करि निःसाधन होयरहे दैन्य करे तो आगें उह वैष्णवकों कहा कर्तव्यहे ? सो वर्णनहे तामें यह वजमें भावात्मक रसात्मक पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सदा भक्तनके संग लीला करतहे एसे श्रीकृष्ण सर्वोपरिहे तिनको अनुभव होय तव सर्व फल सिद्ध भयो यह निरूपणहै.

मूलं - कृष्णे रसात्मके नित्यं गोंपिकामंडलस्थिते।
यमुनापुलिनांतस्थवृंदावनविराजिते॥१॥
नित्यगानरसाविष्टे विशिष्टेऽक्षरतः क्षरात्।
भावकगम्ये सर्वत्र प्रसिद्धे पुरुषोत्तमे॥२॥
यस्यावतारः पुरुषः आद्यो ब्रह्मांडविष्रहः।
तस्यांशा एव ये भूमो मत्स्याद्या इति बुध्यताम्॥३॥
शब्दार्थः - श्रीकृष्ण केसेंहे रसात्मक, नित्य गोपिकानके मंडलमें
विराजित, श्रीयमुनाजीके पुलिनके समीपमें श्रीवृंदावनमें विराजित

⁻ १ वजमें बाललीलामें सब मक्तनको कह्यो करतहें तहां आप पूर्णपुरुपोत्तमहें मयोश नाही रासीह सो आगे निरूपणहे.

॥ १॥ नित्यं गानरसमें आविष्ट, क्षर ओर अक्षरते श्रेष्ठ, (भक्तनकों) भावगम्य, सर्वत्र प्रसिद्ध, पुरुपोत्तम स्वरूपहें ॥ २ ॥ जिनको आद्य अवतार ब्रह्मांडस्वरूप पुरुपहे (जिनकों विराद्पुरुप कहतहें) भूमिपें मत्स्यादिक अवतारहें सो उहपुरुपकेही अंशहें एसे "उपर दोयश्लोकसों निरूपण किये ऐसें" श्रीकृष्णमें बुद्धि राखनी॥३॥टीका-यह श्रीवल्मा-चार्यजीके प्रिमार्गमें रसात्मक श्रीकृष्ण सेव्यहें सो कोनप्रकार व्रजर्मे विराजतहें सो कहतहें जो गोपीजन ('व्रजभक्त)के मंडलमें स्थितहें श्रीकृष्ण रसात्मकहें सो याभांति नित्य श्रीस्वामिनीजीके संग रासादिळीळा करतहें सो लीला कोनसी ठोर करतहें सो कहतहें श्रीयमुनाजीके पुलिनके मध्य श्रीवृंदावनमें विराजतहें. "कृष्णो रसात्मको नित्यं गोपिकामंडले स्थितः । यमुनापुलिनांतस्थ-वृंदावनिवराजितः॥ १॥ नित्यगानरसाविष्टो विशिष्टोऽक्षरतःक्षरात्। भावैकाम्पैः सर्वत्र प्रसिद्धः पुरुपोत्तमः ॥ २ ॥ " ऐसं दोयश्लोकर्मे पाठभेदहे ताके अनुसार अर्थ:-श्रीकृष्ण रसात्मक हैं, नित्य गोपिकानके मंडलमें विराजितहें, श्रीयमुनाजीके पुलिन (तट) के समीप श्रीवृंदावनमें शोभितहें ॥ १ ॥ नित्यगानरसकरि आविष्टहें, क्षर तथा अक्षरतें श्रेष्ठहें (भक्तनके) भावकरिकेंही गम्पेहं ओर सर्वत्र प्रसिद्ध श्रीपुरुपोत्तमहं जेसं श्रीकृष्ण रसात्मकहं तेसं श्रीयमुनाजी रसात्मकहें तेसेंहि श्रीयमुनाजीके पुलिन रसात्मकहें पुलिनके मध्य श्रीवृंदावनह रसात्मकहें तहां भक्तनसहित श्रीकृष्ण विराजेहें सो श्रीआचार्यजी-महाप्रभुजी श्रीयमुनाष्टकमें कहतहें 'तरस्थनवकाननप्रकरमोदपुष्पांचना' सुरासुरसुपूजितस्मरिपतुः श्रियं विश्वतीम् " तिटमं रहे एसे नवीन वनके प्रकट सुगंधयुक्त पुष्पके मकरंदस् सुरं ओर असुरंने पृजित एसें

१ शुद्धभाववारे सो सुर. २ मानादिक करिवेनारे सा असुर.

वैकुंठवासी विष्णुहे सो (पूर्णानंद हरिकी) विभूतिहे जिनकी वैष्णवी रमा[लक्ष्मी] शक्तिहे सो वैकुंठमें पालन करिवेवारी हे एसे जाननों ॥५॥ टीका-अक्षरधामहे सो व्यापिवैकुंठहे भीतर प्रभ विराजतहें सो लोका-लोकपर्वतर्ते परे जहां अर्जुनकों लेजाय दर्शन कराये सो सबनको मूलहे इनकी व्यापिवैकुंठ संज्ञा (नाम) हे सो व्यापिवैकुंठ सबमे च्यापकहे ताकी भीतर प्रभु विराजतहे जेसे भूमिपर पुष्टिमार्गकी रीतिसों प्रभु विराजें छीलाको अनुभव होय सो ब्यापिवैकुंठ सवर्मेहे तोहू न्यारो अनुभव होतहे तामें प्रभुके दर्शन [भीतर] होतहे तेसेई अक्षर सवर्षे व्यापकहे ओर सवर्ते न्यारोहे ताकी भीतर (भक्तनकी) प्रभुको अनुभव होतहे. जेसें ॐकार सवतें न्यारोहे ओर सव वेदको मूलहे तथा सवमें रह्योहे तेसें न्यापिवैकुंठहे. ताहीतें ज्ञानीकी दृष्टि व्यापि वैकुंठताँई पोहोंचतहे सो सबठोर व्यापक मानतहें तार्ते इनकी दासभाव छुटिजातहे ओर भक्तनक़ं सवठोर व्यापकहे तिनको तथा न्यारोहें तिनकोहू अनुभवहे तासूं व्यापककों जानिकें न्यारो अनुभव होय तहां मानतहे अपनकों दास जानतहें. एसे अक्षरधाम वैकुंठमें ब्रह्मानंदरूप लक्ष्मीहे तार्ते अक्षरब्रह्मके उपासनावारे ब्रह्मानंदरूपलक्ष्मी-जीमें सुक्त होतहें इनकों पूर्णानंद हरिको पृथक् अनुभव नांही होतहे इनकों त्रह्मानंदही मोक्षहे ॥४॥ ओर एक रमावैकुंठहे जहां सनका-दिकर्ने जयविजयकों शाप दियो यह वैकुंठ अक्षरधामकी विभातिहै तहांके वासी विष्णु हे सो पूर्णानंदहरिकी विभृतिहे तहांकी लक्ष्मी पालिका शक्तिहे पुरुपोत्तमकी द्वादश शक्ति हे तामें यह पालिका शक्तिहे यापकार जहां जेसें प्रभु विराजतहें तहां तेसेंही लक्ष्मी विरा-जतहें श्रीकृष्णावतार सवको मूलभृतहे सो प्रकार आगें कहतहें ॥५॥

१ थी, पुष्टि, गिर्, कांति, तुष्टि, कीर्ति, इला, ऊक्को, विद्या, अविद्या, शक्ति, न्माया यह द्वादराशक्ति जाननी.

मूलं-मूलभूतस्यावतारे मूर्तिव्युहोभिधीयते। प्रद्यम्भो वासुदेवश्चानिरुद्धोऽनंत एव च ॥ ६ ॥ व्युहं विरच्य यस्तत्र स्थाप्यते प्राप्यते न सः। तथेतरावृतःकृष्णो नावतारेऽवगम्यते ॥ ७ ॥

शब्दार्थ:-मूलभूत (श्रीकृष्ण) के अवतारमें अथवा अवताररूप मृतिव्यह कहियतहे प्रद्यम्, वासुदेव, अनिरुद्ध, ओर संकर्पण ॥६॥ यह व्यूहकों रचिकें जो इनमें स्थापन क्यों जातहे सो नांही प्राप्तहोयहें तेसें यह न्यूह करिकें आवर्त्त श्रीकृष्ण अवतारमें नांही गम्य होतहें ॥७॥ टीका-अव वसुदेवदेवकीजीके इहां प्रकटहें सो कहतहें सर्व अवतारनको मृलभूत यहहे सो मृत्ति तो एकहे ओर चतुर्व्यृह पकट मयेहें तासों चतुर्भुज प्रकटेहें सो व्यूहके नाम कहतहें. प्रद्युम्न, चासुदेव, अनिरुद्ध, ओर संकर्पण, तामें श्लोकमें चकारहे तासों यह जाननों जो श्वेतकेश ओर श्यामकेश इनहीं सहित पटप्रकारको स्वरूप पंकट भये सो दुष्टनके नाश्करणार्थ मोक्षदानार्थ 'वंशबुद्धवर्थ, ओर भक्तनकी रक्षाकरणार्थ. इत्यादिक अनेक कारणहे इन चार्यो व्युहनके भीतर पुरुपोत्तमहें तिनकों जन्म (अवतार) नांही सो श्रीभागवतमें कहेहें " जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपरिपत्स्वदोंभि-रस्यन्नधर्मम्। स्थिरचरवृजिनवः सस्मितश्रीमुसेन वजपुरवनितानां चर्द्यम् कामदेवम् " [जिनके निवासरूप तथा जनहे निवासको स्थानक जिनको; देवकीजीके इहांहे जन्मको वाद (नाम कथन) मात्र, जिनकोः यदुकुलके सब बडे यादव हैं सभा जिनकी अपने श्रीहस्तन-

१ व्यूहके भीतर आप विराजनहें. २ मंकर्पणहप, ३ वा रुवेहप, ४ प्रमुख्य. ५ अनिरुद्धप, यह चारो व्यूहके चार कार्य मुख्य और अनेकहे.

सों अधर्मको नाश करिवेवारे, स्थावर जंगमके दुःखको मिटायवेवारे व्रज तथा पुर्की स्त्रीयनेकों हास्ययुक्त मुखार बिंदतें कामदेवकों बढाय-वेवारे श्रीकृष्ण सवतें अधिक विराजेहें] इत्यादिक वचनसाँ देवकी-जीके उदरतें जन्म कथनमात्रहे जेसें पूर्विदशातें चंद्र सूर्य प्रकटे या प्रकार जाननों ॥६॥ या प्रकार चतुर्व्यहकों रचिकें आपु श्रीकृष्ण भीतर स्थापित विराजतर्हे. तहां कोई कहे जो एसें श्रीऋष्णसहित चतुर्व्यूहर्हे तव चतुर्व्यहको पूजन करियें इतनें श्रीकृष्णको भयो याप्रकार कोई संदेह करें तहां कहतहें जो यद्यपि व्यूह करिकें आवृत श्रीकृष्णहें तोहू इन चार्यों व्यूहअवतारनकी उपासना पूजनते श्रीकृष्ण अवगाहे न जाय काहेर्ते जो पूर्णपुरुपोत्तम श्रीऋष्ण सर्वमें हें ओर सवर्ते न्यारे हैं तार्ते व्यूहहे सो पुरुपोत्तमके आज्ञाकारीहें जितनी प्रभुकी आज्ञाहे तितनों कार्य करिकें फेरि अपने धाममें पधारेंगे ओर श्रीकृष्णती नित्य लीलाविनोद करतहें तातें व्यूहकी उपासनाकरि स्वर्गलोक तथा सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य, सालोक्य यह चार प्रकारकी मुक्ति मिले मुख्यफल भक्तिरसकी प्राप्ति नांही. तार्ते सर्वोपरि श्रीकृष्णहीहे तिनः हीकी न्यारी भक्ति करे मिलिभक्तिमें फलकों न्यूनता प्राप्त होतहे या प्रकार जीव सत्संग विना श्रीकृष्णके माहातम्यकों जानत नांही सो कहतहे ॥ ७ ॥

मूलं—अत एव जना भ्राताः प्राकृतं तं वदंति हि। अंशकार्यं मूलरूपे कल्पयंत्यज्ञतां गताः ॥ ८॥

[े] शिष्टंदायनकेष्ट्रस जो स्थायर हते तिनकोह वेणुदारा मुधासंबंध भयो तब जडत्वकी दुःख मिट्यो. २ ग्राम्य ओर नगरकी स्त्रीको समान अनुभव न होय परंतु इहां तो ग्राम्यको विशेष अनुभव भयो. ३ पूर्वदिशाते चंद्र तथा मूर्य प्रकटतहें तामें दिशाको कछ संबंध नांही, मार्गहे तेसेहि श्रीदेवकीजीते प्रभुको प्राकट्यहे.

शब्दार्थ:-तासोंही मनुष्य आंत होयगयेहँ सो श्रीऋष्णको प्राकृत कहतहें अज्ञताकों प्राप्तभये एसे जीव अंशको कार्य फलक्पमें कल्पतहें ॥ ८॥ रीका-अंश जो चतुर्ब्यूहहे सो अनेक लीला जगतमें करतहें मथुरातें भाजिकें फेरि कहूं सोच करतहें काहूकी टहल करतहें मिलिकें अनेक प्रकारके विचार करतहें यह लीला देखिकें कितनेक जीव जो अज्ञानी हे सो मृढ मोहके वसते प्राकृतकीनाँई श्रीकृष्णकों जानत हे अवतारदशामें कोईएक भगवदीय प्रभुकों जानत हते ओर कोई न जानतो सो अब कलिके जीवकी कहाहै ? काहेतें जो अंशावतारके लीलाको कार्य देखी सबकोई यह कहतो जो श्रीऋष्णनें यह कार्य कियो एसें अज्ञानसों मिथ्या कल्पना करि मूलक्प श्रीकृष्णको नाम कहतर्हे ताहीतें सवनको नाश भयो एक उद्धवजी भक्त हते सो शापतें छुटे तार्ते श्रीकृष्णकी भक्ति होनी अति दुईभहे श्रीकृष्णकों केवल आनंदमय रसात्मकलीलाकर्ता जाने ओरटोर जेसो कार्य तेसी ब्यूहकी लीला जाने यह भाव हह रहे तब श्रीकृष्णमें भाव उपजे सो श्रीऋष्ण केसे हें सो आगें वर्णन करतहें ॥ ८ ॥ मूलं-कृष्णस्त केवलं लीलां करोति रसकपिणीम्। भूभारहरणं चके कलाभ्यामेव सर्वथा ॥ ९॥

श्वदार्थः -श्रीकृष्ण तो केवल रसरूप लीला ही करतहें ओर भूभारहरण सर्वथा कलाकरिकेंही कियोहे।। ९।। टीका-श्रीकृष्ण तो सदा सर्वदा व्रजभक्तनके संग रसरूप लीला करतहें सो कहिवेमें नांही आवतहे जो निजजन श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके अंतरंग भक्तहें तिनकों मनमें अनुभव करिवेयोग्यहें तातें (मानादि विहारादि)

२६

१ 'कलाभ्यां 'यह दिवचनतं श्रीवमुदेवजीके यहां रामकृष्ण दोय केशव स्वरूप श्रकट भयेहें सो जानने.

रसरूप लीला कहें याभांति श्रीकृष्ण तो सदा सर्वदा श्रीवृंदावनमें विरा-जतहें ओर पृथ्वीपर दैत्य, राक्षसके पाप होतहें सो भूभारहरणार्थ श्री-कृष्ण कलावतार घरिकें दुष्टनकों मारि देवतानकी रक्षा करतहें याभांति व्रजमें नित्य एकरस लीलाहे कला करि सृष्टिहूको कार्य करतहें ॥९॥ मूलं-प्रमानंददानं तु स्वरूपेणेति निश्चयः । व्यक्तस्थ एव स्वतं प्रस्थो ता कपाप्रस्थ ॥ १०॥

व्रजस्थ एव सततं पुरस्थो वा कृपापरः॥ १०॥ तत्रापि रूपभेदेन कीडिति स्म तथा रसः। धर्मिमात्रं स्वमर्यादारहितं केवलं व्रजे॥ ११॥

शब्दार्थ:-व्रजमें विराजतहे सो निरंतर परमानंदको दान करतहे ओर मथुराजीमें विराजतहें सो कृपायुक्त होय तब फलस्वरूप करिकें परमानंदको दान करतहें यह निश्चयहे ॥ १० ॥ तामेंहू रसरूप प्रभु रूपभेदकरिकें कीडा करतहें अपनी मर्यादारहित केवल धर्मिमात्र रूप व्रजमेंहे ॥ ११॥ टीका-परमानंदको दान तो सदा व्रजमें लीलाकती श्रीकृष्णहीतें होय ओर मधुपुरी तथा द्वारिकामें स्थित स्वरूपनकी कृपा वहोत होय तव कहूं परमानंदको दान होय, नांही तो उन स्वरूपते मोक्षको फल होय काहेतें जो वजमें स्थित हैं सो निरंतर आनंदरूप लीला करतहें ओर पुरीमें स्थितहें सो व्यूहसहित हें तातें जो जीव मथुरास्य श्रीकृष्णको आश्रय करतहें तिनकों सदा आनंद नांहीहे उन पुरीके स्वरूपद्वारा तेसो फलहे यहस्वरूप मर्यादासहितहे तासा मर्योदामार्गीय रसदान करतहें सो श्रीभगवान् गीताजीमें अर्जुन-प्रति कहें "ये यथा मां प्रपद्यंते ताँस्तथैव भजाम्यहम् " (जीव जाभा-वसों जास्वरूपको आश्रय करे तिनकों तेसो फल सिद्ध होय प्रभुह ताही भावसों ताजीवको भजतह) तेसोही फल प्राप्त होतह ॥१०॥ याभांति श्रीकृष्ण अनेक स्वरूप धरि जगतमें ठोरठोर कीडा करतहें जहां जेसी

स्थलहे तहां तेसोही स्वरूप हे तहां तेसोही रसहे व्रजमें केवल मर्यादा-रहित धर्मिरूप लोकवेदातीत रसात्मक स्वरूप सदा विहार कर-तहें ॥ ११॥

मूलं-सर्वधर्माविशिष्टं तु समर्यादं पुरे मतम्। उच्छ्रंखलातु या लीला केवलेन ब्रजे कृता॥१२॥ परमानंदरूपा सा वाललीलादिभेदतः। सर्वत्र रसलीलात्वं गृहभावेन वर्णितम्॥ १३॥

शब्दार्थः—सर्वधर्मयुक्त मर्यादासहित स्वरूप तो मधुपुरी तथा श्रीहारकाम मान्योहे ओर जो उच्छ्रंखल (मर्यादारहित) लीलाहे सो
केवल (रसात्मक) स्वरूप करिकें ब्रजमें करीहे॥१२॥ सो वाललीलादिकके मेदसों परम आनंदरूपहे सर्वत्र गृहमान करिकें रसलीलापनों
वर्णन कियोहे॥१३॥ टीका—सर्वधर्मसहित मर्यादायुक्त स्वरूप श्रीमथुराजी तथा द्वारिकामें विराजतहें ओर उच्छिलतरसरूप पृष्टिपुरुपोत्तम व्रजमें [उच्छ्रंखल लीलायुक्त] हें तातें मधुपुरी द्वारकाके स्वरूपमें
तथा व्रजके स्वरूपमें भेदहे तेसी फलमेंहू भेदहे तासों व्रजस्थस्वरूपकी
भावना कर्त्तव्यहे॥१२॥ व्रजमें श्रीयद्योदोत्संगलालित श्रीकृष्ण परमानंदरूपहे, वाललीला, पौगंडलीला, किशोरलीला, यह सगरीलीला
सवटोर रसरूपहीहे सो श्रीगुसाँईजी गृहभावसों ग्रंथमें वर्णन कियेहें
ताभावसों सगरी लीला जाननी. सो यह गृहभाव वर्णनमें न आवे
अंतरंग भक्तको मनमें अनुभव करिवेयोग्यहें एसो रसात्मक स्वरूप
व्रजमें विराजतहें॥ १३॥

मूलं-कामरूपतया कृष्णे वयो न हि नियामकं। एताहरो मूलरूपे मूललीलासमन्विते॥ १४॥

चित्तं निरंतरं स्थाप्यं सैव सेवा स्वमार्गगा। तिसद्यर्थंशरीरेण वित्तेनापि विधीयताम्॥१५॥

श्राच्दार्थः-श्रीकृष्णमें कामरूपपनेतें अवस्था नियामक नांहीहे. एसे मूललीलायुक्त मूलरूपमें चित्त निरंतर स्थापन करनों सोही अपने मार्गकी सेवाहे ताकी सिद्धिके अर्थ श्रारितें ओर धनतेंहू (सेवा) करनी ॥१४॥१५॥ टीका-व्रजमें श्रीकृष्ण कोटिकामरूप व्रजभ क्तनकों सुखदानार्थ प्रकटेहें तासों "साक्षान्मन्मथमन्मथः" एसें रास-पंचाध्यायीमें कामदेवके कामदेव कहेहें तहां अवस्थाको नियम नांहीहे जन्मतेंही आनंद रसदान कियेसी श्रीभागवतमें कहेहें "जयाति जन-निवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपरिषद्धेदोंभिरस्यन्नधर्मस्। स्थिरचर-वृजिनन्नः सुस्मितश्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्द्धयन् कामदेवम् (मनुष्यनके निवासरूप, श्रीदेवकीजीते जन्मको हे वादमात्र जिनको, (अर्थात् श्रीदेवकीजीतें जन्म लियोहे यह कथनमात्रहे) उत्तम याद्व जिनके सभारूपहे, अपने हस्तनसों अधर्मकों मिटायवेवारे स्थावर जंगमके दुःखको निवृत्त करिवेवारे, हास्ययुक्तमुखारविंदसो व्रजके तथा मधुपुरी द्वारिकाके स्त्रीयनकों कामदेवकी दृद्धि करिवेवारे प्रभ सर्वेते अधिकतासों विराजतहें) याभांति व्रजकी वनिताकों कामकी वृद्धि करतहें ओर श्रीगुसाईजी पलनामें कहेहें "मानिनीमानहरणं "श्रीयशौ-दाजीके आगें पलनामें झलतहें ओर श्रीस्वामिनीको मानह मनावतहें [मानहरतहें] याभांति वाललीलाहीमें एककालाविछन समस्तरीला करतहें यह विरुद्धधर्माश्रय स्वरूप व्रजमेंहे एसे मूलरूप श्रीकृष्ण मूललीला सहित व्रजमेंहे जेसे मूलरूप श्रीकृष्ण सदा एकरस व्रजमें लीला करतहें तेसेंही मूलकप लीलाहू सदा एकरसहे यह कहिकें यह जताये जो जेसे श्रीकृष्ण नित्यहें तेसे श्रीकृष्णकी लीलहै.

निल्यहे ॥ १४ ॥ उपर कहे एसे श्रीकृष्ण सर्वके मूलक्ष्य रसात्मकहें इनकों निरंतर अपने चित्तमें स्थापन करनें सोहिं रसात्मक सेवा अपने मार्गमेंहे तार्ते चित्तमें निरंतर एसो प्रभुको लीलासहित अनुभव करें सो मानसी सेवा जाननी. ताकी सिद्धिके अर्थ शरीरसों तथा वित्तसों सेवा नित्य नियमपूर्वक कर्तव्यहे सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी सिद्धांत-मुक्तावलिमें कहेहें "कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता। चेतस्तत्प्रवणं सेवा तिसद्धचे तनुवित्तजा" (श्रीकृष्णकी सेवा सदा करनी सो मानसी उत्तम मानी हे चित्त प्रभुमें लीन करनो सो सेवा जाननी ताकी सिद्धिके अर्थ तनुजा वित्तजा करनी) यह वचनसों श्रीकृष्णकी तनुजा वित्तजा सेवा नित्य नियमपूर्वक करे तव मानसी सिद्ध दोय यह पुष्टिमार्गकी रीतिहें ॥ १५ ॥

मूलं-निवेदनानुसंधानं विधयं ताहरोः सह। सत्संग एव कर्त्तव्यो विश्वासः स्थाप्यतां दृढः॥१६॥

शब्दार्थः निवेदनको अनुसंघान ताहशीय भगवदीयनके संग करनो, सत्संगही करनो, हढ विश्वास स्थापन करनो ॥१६॥ टीका— एसँ श्रीकृष्णमं भाव प्रकट होय ताके अर्थ पुष्टिमार्गीय ताहशीय वैष्णवसों मिलिके निवेदनको अनुसंघान करे तातें सत्संगह नित्य-नियमसों करे ओर भगवदीयनके वचनको अपने मनमें चातकपक्षिवत् हढ विश्वास राखे तत्र एसे(श्रीकृष्णके स्वरूपानंदको)अनुभव होय॥१६॥

मूलं-कृष्णः कृपापराधीनो दीनानामनुपेक्षकः। स्वकीयानामन्यभावात्करिष्यत्यवनं स्वतः॥१७॥

शब्दार्थ:-श्रीकृष्ण कृपातें पराधीनहें सो दीनजनकी उपेक्षा नांही करतहें सो अपने जननके अनन्यभावतें स्वतः (आपुतेंही) रक्षा करेंगे शश्या टीका-श्रीकृष्ण केसेहें जो कृपा करिकें अपने दासके आधी-

नहें सो भगवदीय गायेहें " भक्तविरहकातर करुणामय डोलत पार्छे लागे " एसे श्रीकृष्ण प्रसिद्धहें, अर्जुनको रथ हांक्यो, पांडवनके आज्ञाकारी भये, ओर व्रजभक्तनसों तो एकक्षणहू जूदे नांही रहत हैं. यामांति श्रीकृष्ण कृपा करिकें अपनें भक्तनके आधीन हैं, तार्ते यह पुष्टिमार्गमें श्रीआचार्यजीद्वारा शरण होय निःसाधन · होय दैन्यकरि रहे एसे भक्तनकी उपेक्षा कवहू श्रीकृष्ण नांही करत हैं. ओर जेसें संसारासक्त जीव लौकिक वैदिकमें महादुःख पावतहें तिनकी उपेक्षा प्रभु कियेहें (काहेतें जो संसारमें सुख और दुःख दोय फलहे सो पुण्यको फल सुख ओर पापको फल दुःखहे सो लोकमें तिनहीकी अपेक्षा राखतहें तातें इनकों लोकिक फल देतहें) तेर्से अपने स्वकीय (निजभक्तन) को अन्यथाभाव कोई कालमे कवहू श्रीकृष्ण नांही करतहें सदा भावकी रक्षाही करत आये हैं, रक्षा करतहें ओर रक्षा करेंगे. ओरद्वारा कबहू रक्षा न करावेंगे स्वतः (आपु) भक्तनकी रक्षा करतर्हे एसे कृपालु श्रीकृष्णहें ॥ १७ ॥

मूलं-धर्ममार्गप्रवृत्तिस्तु चित्तशुद्ध्या यथा हरो। मतिः स्यान्नेव पाषंडे तदर्थं सर्वथेष्यते॥१८॥

शब्दार्थः-धर्ममार्गकी प्रवृत्ति तो चित्तशुद्धितं जेसें हिरमें मित होय पाखंडमें (मित) नांही होय ताके अर्थ सर्वथाहे ॥ १८॥ टीका-धर्ममार्गमें प्रवृत्त भयेतें चित्तशुद्धि होतहे तातें हिरमें शुद्ध मित [भाव] होतहे पाखंडमें मित न होय ताके अर्थ सर्वथा धर्ममार्गमें प्रवृत्तिहे ॥ १८॥

मूलं-मार्गप्रवर्त्तकाचार्यचरणेषु निरंतरम् । विश्वासः सुदृद्धः कार्यस्ततः सर्वं फलिष्यति॥१९॥ विशेषो गोवर्द्धनदासपत्राज्ज्ञेयःकिमधिकम् । श्रव्हार्थः -यह पुष्टिमार्गके प्रवर्तक श्रीआचार्यजीके चरणकमलमें अतिहर विश्वास करनों तातें सब फलक्ष्य होयंगे विशेष गोवर्द्धन-दासके पत्रतें जानियो वहती कहा लिखें. ॥१९॥ टीका-पुष्टिमार्गकें पवर्त्तक श्रीवल्लभाचार्यजीहें तिनके दोयचरणकमलको हट आश्रय करनों जावैष्णवकों मनमें हट आश्रय होयगो तिनको सगरो फल निश्चय सिद्ध होयगो यामें संदेह नांहीहे तातें सवोंपिर सिद्धांत यहहे जो श्रीआचार्यजीके चरणकमलको हट विश्वास करनों. विशेष समाचार गोवर्द्धनदासके पत्रतें जानियो ॥ १९॥

इति श्रीहरिरायजीकृतमष्टत्रिंश्तमं शिक्षापत्रं श्री-गोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥३८॥

. शिक्षापत्र ३९.

—;→>>>00€€==:--

एकोनचत्वारिंशत् शिक्षापत्रमें, सत्संग करि निरंतर प्रभुमें चित्त स्थापन करनों, प्रथम जो नाम निवेदनके मंत्र खुनेहें तिनके अर्थकों अनुसंघान करनों बुद्धि निश्चल करिकें भगवत्सेवा करनी, वैष्णवनकों समाधान हे सोही भगवत्सेवाहे प्रभुमें प्रपत्ति वहें सोही करनों, प्रभु दुराराध्यहें सो सेवातेंही वश्य होयहें तासों भगवत्सेवा करिवेवारे जन भाग्यवान्हें यह निरूपणहें। ऊपर पुष्टिमार्गमें सेव्य श्रीकृष्ण रसात्मक स्वरूपको वर्णन कियो तिनकी सेवा करनीं, भगवदीयको संग करनीं, सो प्रकार आर्गे कहतहें—

मूलं-सत्संगेन प्रभौ चित्तं स्थापनीयं निरंतरम् । पूर्व श्रुतानामथानामनुसंधानमादरात् ॥१॥

शब्दार्थ:-सत्संग करिकें निरंतर प्रभुमें चित्त स्थापन करनों ओर पहिलें सुन जो नाम निवेदनमंत्र तिनके अर्थको अनुसंधान आदरसों करनो ॥१॥ टीका-अव श्रीहरिरायजी कहतह जो सत्संगकरि प्रभु जो श्रीकृष्ण तिनमें चित्त निरंतर स्थापन करें. सो नवरत्न ग्रंथमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहेहें "निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशै-र्जनैः" याभांति निवेदनको स्मरण ताहशीय भगवदीयके संग मिलिके करे तव चित्तमें भगवान् निरंतर निश्चय स्थित होय सो एकादशस्क-धर्मे श्रीकृष्ण आप श्रीमुखसों उद्भवजीकों कहेहें 'न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्भव !। न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा। व्रतानि यज्ञरछंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः । यथावरुधे सत्संगः सर्व-संगापहो हि माम्" यह वचनसों भगवान् कहतहें जो में इतनें साधनते नांही वस होतहों योग, तथा सांख्य न धर्म, न स्वाध्याय, तप त्याग, न इष्टापूर्त्त, न दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, छंद, तीर्थ, नियम, यम, इत्यादि अनेक साधन मोकों निरोध नांही करतहें जेसें सत्संग मोकों निरोध करतहे तातें सत्संग वडो पदार्थहे तासों प्रिष्टमार्गीय वैष्णवकों सत्संग निरंतर कर्त्तव्यहे. ओर पूर्व जो श्रीवछभकुलद्वारा अप्टाक्षर नाममंत्र सुन्योहें ताकों अर्थसहित अनुसंधान आदरपूर्वक करे जो श्रीकृष्णको नामहे सो सगरे वेदशास्त्रको सार परम रसात्मकहे एसे श्रीकृष्णके मैं शरणहों यह नाम श्रीआचार्यजीद्वारा प्राप्त भयोहे. याभांति भावना करि नाममें परम आदर राखे अष्टप्रहर लियो करे ॥ १ ॥

मूलं–भगवत्सेवनं सम्यग्विधयमिति निश्चयः। वैष्णवादिसमाधानं कृष्णसेवेव सर्वथा॥२॥

१ जो याके पेहेलें शिक्षापत्र पठायेहें इनके अर्थको अनुसंधान एसोहें अर्थ होयहें.

यतः प्रभोः प्रपत्तिहिं वर्दते कार्यकारणात् । सेवयेव हि संतुष्टः सुखसेव्यः प्रसुर्भवेत् ॥ ३॥

शब्दार्थ:-भगवानकी सेवा आछीभांतिसों करनी यह निश्चय राखनों वैष्णवादिकनको समाधानहे सो सर्वया श्रीऋष्णकी सेवाहीहे ॥२॥ जासीं (एसें श्रीकृष्णकी सेवाहे सो कारणहें ओर पंपत्तिकी युद्धि हे सो कार्यहे याभांति) कार्य कारणभावसों निश्चय प्रभुमें प्रपत्ति वढेहे तासों सेवासंतुष्ट प्रभु सुखसेव्य होय ॥ ३ ॥ टीका-सम्यक् प्रकार अत्यंत प्रीतिपूर्वक तथा जापकार पुष्टिमार्गकी रीतिहे तापकार भगवत्सेवा करे यह पुष्टिमार्गीय बैष्णवनको निश्रय सेवाही स्वधर्महे सो नवमस्कंधमें भगवान् कहेहें "मरसेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतु-प्रयम् । नेच्छंति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविष्छतम् " मेरी सेवार्ते साक्षात्कार भयो एसो भक्त सालोक्यादिक चारप्रकारकी मुक्तिकों नांही इच्छतहें काहेतें जो सेवातें पूर्णहे सो कालमें हुवे एसे स्वर्गादिकके राज्यादिककी इच्छा केसें करे ?) ओर तृतीयस्कंधमें कहेहें "अहो चकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी । लभे गतिं धात्यु-चितां ततोऽन्य कं वा दयाछ शरणं अजेम" (दृष्ट पूतनानें जिनकों मारिवेके लिये कालकृट [स्तनमें] प्यायो सोहू धात्रीकी योग्य गतिकों प्राप्त भई इन प्रभुसों अन्य एसो कीन दयाछहे जिनके शरण जईयें) ओर अष्टमस्कंधमें ब्रह्माजी कहतहें 'यथा हि स्कंधशाखानां तरोर्म्लावसेचनम्। एवमाराधनं विष्णोः सर्वेपामात्मनश्च हि" [जेसें

१ व्रजमक्तनकीनांई शरणागित बढे सो प्रपत्ति बढी जाननी. २ प्रभुकी सेवा ओर वैणावनके समाधानतें शरणागितकी यृद्धि होय तासों कार्यकारणभाव लिख्योहे. ३ जो स्तनपान करायवेवारी होय ताको धात्री कहेहे. ४ अपनेकों दुःखदेयवेक् आवे ताकूं सुखदे एसो कोन दयाछहे "अर्थात् प्रभु एसे द्याछहें ओर कोउ नांही."

वृक्षके मूलमें जलको सेचनहे सो छोटिवडी सव डारनकों तृप्तिकारकहे तेसें विष्णुकों आराधनहे सो सब देवनकों तथा आत्माकोह संतोपका-रकहे] इत्यादि वचनको भाव विचारि भगवत्सेवा सर्वापरि मुख्यधर्म जानि प्रीतिपूर्वक नित्य नियमसों करे ओर महाप्रसाद तथा प्रसादी वस्त्रमां वने तितनो बैप्णवको समाधान करे जेसे प्रीतिपूर्वक भगव-त्सेवा करे तेमें ही प्रीतिपूर्वक महाप्रमादीवस्तुनसों ताहशीय वैष्णवनको समाधान करे याप्रकार पुष्टिमार्गमें वैष्णव रहे तो प्रभु कृपा करे ॥२॥ प्रभुकी प्राप्तिके अर्थ दीनतासों प्रार्थना करे तो प्रभुकों दया आवे तव ऋपा करे, भक्तिकी वृद्धि होय, सो श्रीगुसाँईजी विज्ञप्तिमें कहेर्हे ''यहैन्यं त्वत्ऋपाहेतुर्न तदस्ति ममाण्वपि । तां कृपां कुरु राधेश ! यया तहेन्यमाप्तुयाम् । प्रियसंगमराहित्याद्वयर्थाः सर्वे मनोरथाः। निरपत्रपतासिद्धचै जीवामि सखि सांप्रतम् ॥ चित्तेन दुष्टो वचसापि दुष्टः कायेन दुष्टः क्रियया च दुष्टः। ज्ञानेन दुष्टो भजनेन दुष्टो ममापराधः कतिधा विचार्यः ॥ विज्ञप्तो वापराधे वा पापंडे वा मद्क्तयः । पर्यव-स्यंति कुत्रेति न जानेऽहं विमृदधीः ॥ वलिष्ठा अपि महोपास्त्वत्कृपा-श्रेतिदुर्नलाः । तस्या इश्वरधर्मत्वात् दोपाणां जीवधर्मतः ॥ त्वदृशेन-विहीनस्य त्वदीयस्य तु जीवितम्। व्यर्थमेव यथा नाथ! दुर्भगाया नवं वयः" [जादेन्यतें आपकी ऋपा होय सो देन्य मोकों अणुमात्रह नांहीहे तासों हे श्रीराधेश! एसी ऋपा करो जा ऋपाकरि ऐसी दैन्य प्राप्त होय ॥ पतिके संगम विना सर्व मनोरथ व्यर्थहे तासा हे सिख ! निर्हजापनेकी सिद्धिक अर्थ अव में जीवतहीं ॥ में चित्तमें दुष्टहों, वचनतेंह दुष्टहों, श्रारितें दुष्टहों, कियातें दुष्टहों, ज्ञानतें दुष्टहों, भजनतें दुष्टहों. (एमें सर्व प्रकारसों दुष्टहों तासों)

[?] जा दैन्यमाँ आपकी कृपा होतहे एमो दैन्य प्राप्त होय एसी कृपा करो.

मेरो अपराध केतेप्रकारको विचारनों ॥ में जो विज्ञप्तिमें कहत हों सो मेरी उक्ति, विज्ञिप्तमें के अपराधमें के पाखंडमें कायमें पर्यवसान होयँगी सो मेरी बुद्धि मूढ होयगईहे तासों में नांहीजानतहों ॥ ४॥ मेरे दोप वोहोत वलवानहे तोहू आपकी ऋपाके आगें अति दुर्वलहें काहेतें जो कृपाहे सो आप ईश्वरहें इनको धर्महे ओर दोपहे सो हम जीवहें ताको धर्महे सो ईश्वरधर्मके आगें जीवधर्म आतिदुर्वछहे।। आपके दर्शनरहित जो आपको जीवहे ताको जीवित हीनभाग्यवारी (विधवा) के नवीन अवस्थाकीनांई हेनाथ! व्यर्थहीहे] याभांति अनेकभावसाँ प्राप्तिके लिये दीनतासों प्रार्थना करे जो में महादुष्टहों, आप मेरे प्रभुहो, श्री आचार्यजीद्वारा संबंध भयोहे सो मोपर कृपा करो याभांति दैन्यते प्रभुकों द्या आवे भावकी वृद्धि होय काहेतें जो भावकी वृद्धिको कारण एक दैन्यहीहे तासों याभांति दीन होय श्रीकृष्णकी सेवा करे तव श्रीकृष्ण संतुष्ट होयजाय ता वैष्णवकों प्रभु सुखसेव्यहे कवह सेवामें प्रतिबंध न करे कबहू रोगादिक वाधा न करे जन्मभारे प्रभुकी सेवा निर्विन्नतासों होय सो श्रीग्रसाईजी कहेहें "सुखसेन्यों" एसे वैष्णवकों सुखसेव्यहीहें ॥ ३॥

मूलं-दुराराध्यस्य सेवैव वशीकरणसाधनम्। कृष्णसेवां प्रकुर्वतो भाग्यवंतो जना मताः॥४॥

शब्दार्थः -दुराराध्य प्रभुहें इनकों वश करिवेको साधन सेवाहीहे तासों श्रीकृष्णकी जो सेवा करतहें सो जन भाग्यवानहें ॥४॥ टीका-श्रीकृष्ण अत्यंत दुराराध्यहें ब्रह्मादिक शिवादिक कोटानकोटिवर्पताँई अनेक साधन करतहें तब समाधिमें कबहू झांखि होतहे ओर जीवतो अनेक दोपकरि भयोंहे तासों दुष्ट होयरह्योहे तिनकों तो दुराराध्यहीहें बहेबडे योगी अपनें हृदयमें कल्पना करतहें मुनिजन जन्मजन्ममें यत्न करतहें तिनकों प्रभु दुराराध्यहें तो जीवकी कहा वातहें ? तो हू जो दैवी जीव श्रीआचार्यजीद्वारा शरण आयेहें ओर प्रष्टिमार्गकी रीति अनुसार भगवत्सेवा करत हैं दीन होय येही साधन करतहें उह भक्त-नके वस होतहे तासों जो वैष्णव यह पुष्टिमार्गमें श्रीआचार्यजीद्वारा ञारण आय मार्गकी रीति अनुसार सेवा करतहें सो परमभाग्यवंतहें (वडभागीहें) उनहीको जन्म सफलहे सो सप्तमस्कंधमें प्रहादजी कहेहें " देवोऽसुरो मनुष्यो वायक्षोगंधर्व एव वा। भजन्मुकुंदचरणं स्वस्ति-मान्स्याद्यथा वयम् [प्रह्लादजी असुरनके बालकनकों कहतहें जो देव, असुर वा मनुष्य, यक्ष अथवा गंधर्व जो मोक्षदेवेवारे भगवानके चर-णारविंदकों भंजतहे सो जेसे अपने असुरहे तेसे होय तोहू कल्याणयुक्त होयहे] ओर पष्ठस्कंधमें पार्वतीको महादेवजी कहेहें "नारायणपराः सबै न कुतश्चन विभ्यति। स्वर्गापवर्गनरकेष्वपितुल्यार्थदर्शिनः"॥(नारायण-परायण सर्वकाहुसो नांही डरपतहे स्वर्ग, मोक्ष ओर नरकमें हू तुल्य अथे देखिववारेहे] एसे अनन्य भगवद्भक्तसमान ओर कोई नांहीहे ॥ ४ ॥ मूलं-तस्माद्दं मनः कृत्वा कृष्णएव हि सेव्यताम्। अत्रत्यं वृत्तमिखलं वदिष्यति विशेषतः। श्रीविञ्चलप्रमोर्दासः इयामदाससहस्थितः॥५॥ तत्रत्य वृत्तांतोऽखिलो विविच्य लेख्यः किमधिकम्॥

शब्दार्थः-तासों मन दृढ किहके श्रीकृष्णही सेवने इहांको स्व चृत्तांत श्यामदासके संग रह्यो एसो, श्रीविष्टलरायजीको दास विशेष-सो कहेगो ॥५॥उहांको सब चृत्तांत विस्तार करिके लिखनों विशेष कहा लिखे॥ टीका-सबांषर श्रीकृष्णकी सेवा दृढ मन करिके श्रीतिपूर्वक कर्त्तव्यहे सो श्रीभागवतसप्तमस्कंधमें प्रहादजी कहेहें

"न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च। प्रीयतेऽमलया भनया हरिरन्यद्विडंवनम् "(न दान, न तप, न यज्ञ, न पवित्रता, न व्रत. प्रभुकों प्रसन्न करेहें शुद्ध भक्तिकरि हरि प्रसन्न होयहें दूसरो तो सब विडंचनहे) ओर दशमस्कंधमें उद्धवजी कहेहें ॥ श्लोक ॥ " दान-व्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ॥ श्रेयोभिर्विविधेश्रान्येः कृष्णे भक्तिहि साध्यते (दान, व्रत, तप, होम,जप, स्वाध्याय, नियम, ओर दूसरे जुदेजुदे प्रकारके कल्याणमार्गनर्ते श्रीकृष्णमें भक्ति सिद्ध होतहे) एकादशस्कंधमें श्रीकृष्ण कहेहें ॥ श्लोक ॥ तत्सर्व भक्तियोगेन मद्भको लभर्तेजसा ।। स्वर्गापवर्ग मद्भाम कथंचिद्यदि वांच्छति ॥ [जो योगादिक साधनतें प्राप्त होयहें सो सर्व मेरो भक्त स्वर्ग ओर मोक्षरूप मेरो धाम (ब्यापि वैकुंठ) हे तिनकों जो कोयरीतसूं चाहे-सो विनाहीश्रम मेरे भक्तियोगते पावतह] याभांति श्रीकृष्णहीकी भक्ति सर्वोपरहे तातें निष्काम होय श्रीकृष्णकी सेवा मन लगायकें कर्त्तच्य ओर इहांके सब वृत्तांत विशेषकरि श्रीगोकुलनाथजीके प्रत्र - श्रीविङ्ठरायजीको दास तथा श्यामदास कहेगो सो जानिक उहांके जो समाचार होय सो अखिल विस्तारपूर्वक प्रतिउत्तर लिखोगे किमधिकम्॥ ५॥

इति श्रीहरिरायजीकृतमेकोनचत्वारिंशत्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतत्रजभापा-टीकासमेतं समाप्तम् ॥ ३९॥

१ भगवद्गक्त मोक्षादिककीह इच्छा न राखे परंतु कदाचित् इनकी इच्छा होय तो विनाहीश्रम मगवद्गकिते मिले.

शिक्षापत्र ४०.

अव चत्वारिंशत्तमिशिक्षापत्रमें सर्वसाधनरहित में भयोहीं एसें जतायवेकेलिये वोहोत दीनताके वाक्यमें ओर हमारे अधिकारीनें निंदित एक कार्य कियो तार्ते मनमें वोहोत खेद भयो परंतु फिर शांति भईहे (यह वृत्तांत, संग करनो सो विचारिकें करनो यह जता-येवके लिये लिख्यो हे) अव इनकी उपर मेरी छपाहू पूर्ववत हे तार्ते प्रेमजी उदास भयो हे सो तुम्हारे हू उहांसी इनकी उपर प्रशंसाकें जुदेजुदे पत्र लिखने यह निरूपणहे। उपर कहे जो यह पुष्टिमार्गमें श्रीकृष्णकी सेवा सर्वोपरहे साधन फल यही कर्त्तव्यहे सो मोसों कच्छ हू नांही वनसकेंहें यह निरूपणहे

मूलं-पत्रद्वारा प्रकरवे स्वदुःखिविनिवेदनम् । महत्तराख्ये चलिते दूरगेषु भवत्सु च ॥ १ ॥ जानामि निजमार्गस्य धर्मं किचित्कृपाबलात्। तदसिद्धिजहत्क्केशं को मे दूरी करिष्यति॥ २ ॥

शब्दार्थः—महत्तरनामको भगवदीय चल्यो ओर तुम दूर रहे तासीं [जो मोकों दुःख भयोहे सो] अपने दुःखकों विशेष वतायवी पत्रद्वारा करतहों ॥ १॥ कछुक (बडेनकी) कृपाके बलसों अपने मार्गके धर्मकों जानतहों सो मोकों यह धर्मकी असिद्धितें भयो जो हृदयको केश ताकों कोन दूरिकरेंगो ॥२॥ टीका—अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो में अपनों दुःख तुमकों पत्रद्वारा निवेदन करतहों काहेतें जो तुम सर्वलायकहो मेरे त्रियभाताहो तातें दुःखसुख तुम विना ओर दूसरे कोनसों कहों ? ओर तुम दूरहो जो पास हते तो

दुःखमें सहायही करते तेसें मोकों तुमारे संगतें दुःखही न होतो तातें यह पत्रद्वारा मेरो दुःख जानोगे, महत्तरहे आख्या [नाम] जिनको एसे भगवदीय मेरे पासतें अपने कार्यार्थ चले सोहू मोकों छोडिकें दूरिगये ओर तुमह इहांतें दूरिहो अव मिलनकी आशा मोकों नांहीहे तातें पत्रद्वारा अपनो दुःख लिखतहों सो वांचिक समाचार जानोगे ॥ १॥ श्रीआचार्यजी तथा श्रीग्रसाँईजीकी कृपाके वलतें निजमार्ग [यह पुष्टिमार्ग] को धर्म कच्छ जानतहों सो [भगवदीय दूरि गये ओर दुःसंग वोहोतहे तासों] सिद्धन भयो ताकरिकें मेरे हृदयमें अत्यंत दुःख [क्केंका] भयोहे सो कोन दृरि करेंगे सो मोकों जानि नांही परतहे काहेतें जो में सकलसाधनकरिकें रहितहोंं ओर अनेकं दोपतें भयोंहों तातें एसो मेरो दुःख कोन दृरि करेंगे॥ २॥

मूलं-प्रायः पाषंडिमुख्योऽहं हरिणा हृदि चितितः। कृपालुरप्युपेक्षां में कुरुते दीनवत्सलः॥ ३॥

शब्दार्थः न्वोहोत करिकें में पापंडिनमें मुख्यहाँ एसें हरिनें हृदयमें विचायों हों काहेतें जो (हरि) कृपाल ओर दीनवत्सलहें तोहू मेरी उपेक्षा करतहें ॥ ३॥ टीका — अव श्रीहरिरायजी दीनता होयवेके लक्षण अपने सेवक (पृष्टिमार्गीय वैष्णव) कों जतायवेके लिये आप निःसाधनपनो कहतहें जो में सगरे पापंडी में मुख्यहाँ सो अपने मुखसों में कहा कहो ? हरिहू मोकों पापंडी जानतहें काहेतें जो हरितो सर्वदुःखित्रां परम द्याल दीनवत्सलहें तोहू मेरी उपेक्षा कीनीहें तातें में जानतहों जो मोको महापापंडी जानिके मेरी उपेक्षा कीनीहें सो अव में जानतहों जो मोको महापापंडी जानिके मेरी उपेक्षा कीनीहें सो अव में कहा करूं ?याभांति दैन्य कर्त्तव्यहें सो विक्षिमें कहतहें "चित्तेन दुष्टो वचसापि दुष्टः कायेन दुष्टः कियया च दुष्टः। ज्ञानेन दुष्टो भजनेन दुष्टो ममापराधः कतिधा विचार्यः॥ १॥ जानामि मंदभाग्योऽहं यदयें दुष्टो ममापराधः कतिधा विचार्यः॥ १॥ जानामि मंदभाग्योऽहं यदयें

गोकुलेश्वरः।भक्तक्वेशासहिष्णुत्वस्वभावं कुरुतेऽन्यथा।।२।।श्रीगुसाईजी गोवर्धननाथजीसों कहतहें जो में चित्त करिकें दुष्टहों, वानी करिकें दुष्टहों, काया करिकें दुष्टहों, किया करिकें दुष्टहों, ज्ञान करिकें दुष्टहों, भजन करिकें दुष्टहों, एसें मेरो अपराध कहांताँई विचारोगे ॥ १ ॥ में जानतहों, जो मंदभाग्यवारोहों काहेतें जो गोकुलेश्वर तुह्यारे नामहे सो आर्गे गाय, गोप, गोपी, सगरे व्रजकी तुमनें रक्षाकरीहे भक्तको क्षेश होय सो आप नांही सहीसको एसो परम दयाल तुझारो स्वभावहे सो अन अन्यथा कियो (कठोर भये भक्तकों क्वेशहोय सो अन सहन लागे) सो तुम ईश्वरहो कर्नुं, अकर्नुं, अन्यथाकर्नुं, सर्व सामर्थ्ययुक्तहो तासों चाहो सो करो तुमकों कहा कहियें ? में ही मंदभाग्यवारोहों जो मेरे लिये आपकों यह अपनो दयालस्वभाव फेरी कठोर होनो पर्यो इतनो श्रम भयो अव भक्तनके केश सहनलागे याभांति दैन्य ही पुष्टिमार्गमें साधन हे सो भगवदीय दैन्य करि गाये हे हों पतितनको राजा, हों पतितनको ईश, हों पतितनको टीको, हों पतितनको नायक, इत्यादिक दैन्यके वचनतें जीवकों स्वरूप प्रकट किये सो जीव भगवानते न्यारे पडे तव दुष्ट भये ताहीते श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी वालवोधमें कहेहें "जीवाः स्वभावतो दुष्टाः"याभांति श्रीहरिरायजी श्रीगुसाँईजीके भाव अनुसार कहतहे जो में पापंडीमें मुख्यहो एसे मोको प्रभु अपने चित्तमें चिंतन करिके (यद्यपि श्रीकृष्ण द्यालहे दीनवत्सलहे तोह्) मेरी उपेक्षा कीयेहे तहां कोई कहे जो प्रभु (श्रीकृष्ण) भक्तकी उपेक्षा नांही करतहे यह शास्त्र, पुराण, श्रीभागवत, गीता, इत्यादिकमें प्रसिद्धहे तासों तुमने केसे जानि जो मेरी उपेक्षा कियेहे ? याभांति कोई कहे तहा कहतहे ॥ ३॥ मलं-उपिक्षितश्चेद्धरिणा स्वजनेरप्युपेक्ष्यते।

अतः क यामि शरणं वनस्य इव विस्मृतः ॥४॥

शब्दार्थ:-हरिने उपेक्षा किये तब स्वजन (वैष्णवन) नेंहू उपेक्षा किये तासों वनमें [ओर अपने जननें] विस्मृत कियो ओर आपु मार्गकों भूलि गयो एसो कोनके शरण जाउं ॥ ४॥ टीका-श्रीकृष्ण उपेक्षा किये एसें में यातें जान्यो जो मोकों पुष्टिमागीय तदीयनें छोडि दियो सो मेर्ने आर्गे बडेनके श्रीमुखद्वारा शास्त्रवार्ता सुनी हे जो भगवान् प्रसन्न भये कव जानियें ? जब भगवदीयको मिलापहोय-ओर भगवान् उदासीन भये कव जानियें ? जव भगवदीय छोडिजाय. सो भगवदीय छोडिगये तातें में जानतहों जो मेरी भगवान उपेक्षाकियेहें. अव में कहा करूं ? किनकी शरण जाउं ? यह मोकों हृदयमें वडी चिंता भईहे जो भगवान ओर भगवदीय दोउ मेरी उपेक्षा कियेहें अव में किनकी श्रण जाउं? जेसें कोड गंभीर वनमें भूले परे तब कितकी ओर जाय ? कहूं गेल सृझे नांही तव वडी चिंता होय तेसेंहि मोकों वहूत चिंता भई हे. तहां कोई कहे जो प्रभुने उपेक्षा करि छोडि गये तो यह दोप प्रभुहीको तुम जानतहों सो यह भक्तिमार्गकी रीति कहां हे ? प्रभु तो निर्दोपहें तुम प्रभुको दोप क्यों ठहराये ? या भांति कोई कहे तहां कहतहें ॥ ४॥

मूलं-प्रभोरिप न वे दोपो ग्रणलेशापि नो मिय । विस्मृत्य दोषिनचयं यं गृह्णीयाद्गुणग्रहः॥ ५॥

शब्दार्थ: —निश्चय करिकें प्रभुकोह दोप नांहीहे काहेतें जो (प्रभु यहणकरे एसो) मेरेमें गुणको छेशह नांहीहे परंतु प्रभु जिनकों प्रहण करेहें तिनके दोपके समृहकों विसरिकें गुणकोंही प्रहण करेहें काहेतें जो आप गुणंग्राही हे ॥ ५॥ टीका—अव श्रीहरिरायजी कहतहें जो

१ लौकिकमें हु जो गुणग्राही हैं सो सामने के दोपनकों नांही देखत हैं केवल गुण-कोंही ग्रहणकरत हैं और जो दोपनान्हें सो अपने दोपका नांही जानत हैं सामवारे में ही दोपारोपण करत हैं.

प्रभुको दोप तो रंचकहू नांहीहे यह सगरोदोप मेरोहें जो मोमें गुणको लेशहू नांही हे ओर दोप नखतें शिखापर्यंत भरे हे सो अपने दोप में विसरिगयोहों तासों मोकों महागुणवंत जानतहों यह अज्ञानता मेरेमें हीहे सो मेरोही दोपहे प्रभुतो सदा गुणसंयुक्तहें तासों दोपकों नांही देखतहें जिनको अंगीकार करतहें तिनको गुणही देखतहें मोकोंही अज्ञानकरि अम होतहे।। ५॥

मूलं-यथा निःश्वासरहितं किं करोति सुभेषजम् । तथा विगतभावं मां कथासेवादिकं पुनः ॥ ६ ॥

शब्दार्थः - जेसें श्वासरहित मनुष्यकों सुंदर औपध कहा करतहे ?
तेसें गयोहे भाव जिनकों एसें मोकों फिर कथासेवादिक कहा करे शदा
टीका - जेसें सुंदर भेपर्ज (ओखद) पुरुपकों देय ओर वा पुरुपके
थास तो नांहीहे तव वो सुंदर भेपजह बृथा हे कच्छु अपनो पराक्रम
न करे तेसेंहि मेरेमें भावनांहीहे तासों मोकों सेवाकथादिक भगवद्धर्म
कहा करे ? जेसें पुरुपको प्राण (थास) विना सुंदर भेपज (ओखद)
वृथा हे तेसेंहि भाव विना सेवाकथादिक कियावत हे तासों कहा फल
सिद्धिहे कच्छुहू नांही तातें मोकों दुःखहे ॥ ६॥

मुलं-प्रायः कथैव नेषास्ति यतस्तिष्ठति नो हृदि। न वानुभावं कुरुते निजंत्यागाभिधं मिय॥ ७॥

, शब्दार्थः न्वोहोत करिकें यह कथाहू नांहीहे जासों हदयमें स्थित नांही रहत हे, ओर संन्यासनिर्णयमें (विरह करिकें) त्याग नामको जो अपनो अनुभव कह्यो हे सोहू नांही करतहे ॥ ७॥ टीकान

र वजवामिनके लिखे पुस्तकनमें भेषजको अर्थ वेष लिख्योहे सो मृलसों विरुद्धहै तामों रहां नांही लिम्योहे. २ भावविना सेवाफलग्रंथमें लिख्यो मुख्यफल न होय तामों कच्छह नांही लिख्योहे परंतु गीणफल तो होय.

श्रीकृष्णकी कथा सेवादिकमें यह जीव नांही स्थितहे तय भाव हदयमें कहांते स्थिर होय ? भगवदीयद्वारा श्रवण करे तब हदयमें भाव सिद्ध होय सो श्रीभागवतमें द्वितीयस्कंधमें कहेहें 'प्रविष्टः कर्णरंध्रेण स्वानां भावसरोरुहम् । धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्" (अपर्ने मक्तनके कर्णके छिद्रतें भावरूपकमलप्रति प्रविष्ट श्रीकृष्ण "श्रह ऋतु जलको मल मिटावे तेसे हृदयको मल मिटायदेतहें) ओर शुकदेवजी कहेर्हे "तस्माद्गोविदमाहातम्यमानंदरससुंदरम् । शृणुयात्कीर्त्तयेत्रित्यं स कृतार्थों न संशयः" (तासों आनंदरसकरि सुंदर श्रीगोविंदको माहात्म्यहे तिनकों जो नित्य श्रवण करे कीर्त्तन करे सो कुतार्थहे तार्मे संशय नांही) इत्यादिक वचनमें कथाकीर्त्तनादिकको माहातम्य लिख्योहे एसी क्याके श्रवण विना हृदयमें भाव केसें स्थिर रहे ? ओर जहांताँई देहसंबंधी कार्यमेंतें मनको त्याग न होय तहांताँई श्रीकृष्णके स्वरूपको अनुभव कहांते होय ? काहेतें जो मनकरिकें भाव सिद्ध होतहे सो मनतो लौकिक संसारादिकमें विषयमें आविष्ट भयो तब अनुभव कहांतें होय ? सो संन्यासनिर्णयमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहेंहें " विषयाकांतदेहानां नावेशः सर्वया हरेः "जाको देह विषयादि-ककी कामना करि भयोहि ताके हृद्यमें भगवदावेश सर्वया न होय सो मेरे मनमें तो कच्छु लोकिक वैदिकको त्याग नांहीहे ताकरि अनुभव नांही॥ ७॥

मूलं-सेवा तु प्रतिबद्धा में भोगोहेगादिवाधकेः। गेहवित्तादिकासक्त्या कथं सामानसी भवेत्॥८॥

श्वदार्थः – भोग ओर उद्देगादिक प्रतिवंधकरिकें सेवा तो वंध होय गईहे तव गृहधनादिककी आसक्तिकरि मानसी सेवा केर्से सिद्ध होय ११८१का – तनुजा विचजा भगवत्सेवामें अनेक प्रतिवंधहें दारीर इंद्रियनके विषयकी कामना उठे तब सेवा करतमें उद्रेग होय जो कल सेवा करिचूकों पीछें खानपान करूं याभांति प्रथम विषयादिक मोगकी कामना होय तब मनमें उद्रेग होय सेवामें मन न लगे सो प्रभुकों वृरी लगे तब प्रतिवंध होय जामें सेवाही न विनआवे तब गृहादिक कार्यवित्त (द्रव्यादिक) में आसक्त होय तब मानसी सेवा कहांते सिद्ध होयगी सो सेवाफलमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहें "उद्रेगः प्रतिवंधों वा भोगो वा स्यातु वाधकः। (उद्रेग, प्रतिवंध, अथवा भोग, वाधक होय) यह वचनतें सेवामें उद्रेग तथा देहसं वंधी खानपान (विपय भोग संसारासिक) ओर प्रतिवंध यह सेवामें वाधकहे जब उद्रेग भयो तब तनुजा वित्तजा सेवा न भई ओर लोकिक संसारासिक भई तब मानसी सेवा वाकों केसें सिद्ध होयगी? तनुजा वित्तजा सेवाह सिद्ध नांहीहे तो मानसी तो परम दुर्हिभहे॥ ८॥

मूलं-तातपादेषु यातेषु दुर्भगस्य परोक्षताम् । सत्सु सर्वेषु यातेषु दृशोर्दूरमहं स्थितः ॥ ९ ॥

शब्दार्थः-तानपाद (श्रीकत्याणरायजी) दुर्भाग्यवारेकों परोक्षताकों प्राप्त भये ओर सव सत् पुरुप दूरिगयो दृष्टिकों एसें में रह्योहों अथवा में दृष्टिकों दूरिरह्योंहों।।९।।टीका-अव श्रीहरिरायजी कहतहें जो मेरी यह अवस्थाहें तातें श्रीआचार्यजी, श्रीगुसांईजी, श्रीगोक्तरनाथजी, तथा श्रीकत्याणरायजी ये हमारे पिताहि समानहे श्रीआचार्यजी मार्गप्रकटकर्ता हें, श्रीगुसांईजी यहमार्गके प्रकाशकर्ता हें, श्रीगोक्तरना थजीद्वारा नामनिवेदन भयोहे सो मेरे ग्रुरुचरण पिताहीहें ओर श्रीकत्याणरायजी हमारे तातचरण जगत्प्रसिद्धहें, यह तातचरण मोकों परोक्षहें में इनतें न्यारो पयोंहों सो यासमयमें या दुःखमें मेरी कोन

सहाय करेगो ? तार्ते में दुर्भागीहों ओर सत्पुरुप जो सर्वगुणयुक्त पुष्टिमार्गीय वैष्णव तिनहूर्ते में दूरिपयों हों तार्ते यह जानतहों जो दुर्भागीहों या दुःखमें मेरेपास सत्पुरुप कोई नांहीहे जो मेरो रंचकहू समाधान करे तार्ते में कहा करूं, दुःख पावतहों ॥ ९ ॥

मूलं-श्रीभागवतिचेता तु न विना संगतेः सताम्। मनसोऽत्यंतिविक्षेपान्न वा श्रणभावनम्॥ १०॥

शब्दार्थ:-सत्पुरुपकी संगति विना श्रीभागवतको विचार नांही होतहे मनके अत्यंत विक्षेपसों शरणकी भावना नांही होतहे।। १०॥ टीका-कोई कहेजो तुम वडे ज्ञानवानहों सो सत्संग नांहीहे तो कहा भयो श्रीभागवतको अवलोकन करो ताहि करिकें सकल चिंता छेश दूरि होयगो याभांति कोई कहे तहां कहतहें जो एकाय चित्त होय सत्पुरुपनको संग होय, नव श्रीभागवतकी खबरि पडे सो सत्संग नांहीहे ओर चिंताकरि हृदय दुःखित होय रह्योहे ताते श्रीभागवतको भाव मोकों कहांतें दीसेंगो ? काहेतें जो ताहशीय भगवदीय सत्पुरुप होय, वे श्रीभागवतको भाव कृपा करि कहे वतावे तव जान्योजाय ओर मेंतो अकेलो हों एसें व्ययचित्तसो श्रीभागवतरें केसे संतोप होयगो ? तहां कोई कहे जो हरिके शरणकी भावना करो सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी विवेकधैर्याश्रयमें कहेहें "अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वधा शरणं हरिः" (अशक्यमें तथा सुशक्यमें सर्वधा हरि शरण-हे) तथा गीताजीमें भगवान् अर्जनप्रति कहेहें "सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरण ब्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः " [सर्वधर्मकों छोडिक एक मोकों शरण हो में तोकों सर्वपापनतें छुडा-उंगो शोक मित करे] यामांति शरणकी भावनात सगरो कार्य सिद्ध

होय याभांति कोई कहे तहां श्रीहरिरायजी कहतहें जो मेरे मनमें अत्यंत विक्षेप होय रह्योहे ताकरिकें शरणकी भावना कहांतें होय।१०।

मूलं-वार्त्तातरकृतिप्रेम्णा नाष्टाक्षरमनोजपः। महत्वमत्या लोकानां प्रपत्त्या देन्यनाशनम्॥११॥

श्रुद्धार्थ:-(भगवद्वात्ती सिवाय) ओरवात्ती करिवेमें प्रेमहे ताकरि अप्राक्षरमहामंत्रको मनकरि जपनांही होयहे ओर महत्वबुद्धिकरिकें लोकनकी प्रपत्तितें दैन्यको नाश होयहे ॥ ११ ॥ टीका-कोई कहे जो ओर न वने तो अष्टाक्षरमहामंत्रको जप करो ताहीतें सगरो कार्य सिद्ध होयगो सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी नवरत्नग्रंथमें कहेहें "तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम । वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मितः" (तासों "श्रीऋष्णः शरणं मम " एसं निरंतर बोळतेही रहेर्नो इतनीही मेरी मतिहे) तातें अप्टाक्षरको जपही करो याभांति कोई कहे तहां कहतहें जो छौकिकवार्तांतरमें जहांतहां भेम होतहें तातें अष्टाक्षर जप कहांतें होय ? सो मेरो तो लौकिकवार्तामें अत्यंत प्रेमहे ताकरि अप्टाक्षरजपह नांही वानि आवतहे. तहां कोई कहे जो अप्टाक्षरको जप न वने तो प्रभुसों दैन्यभाव करो ताहिकरि प्रभु प्रसन्न होयंगे सो श्री-आचार्यजी कहेहें "दैन्यं त्वत्तोपसाधनम् " दैन्य होय तो भगविन् संतोप पावे याभांति कोई कहे तहां कहतहें जो लौकिकमें सब लोगनमें अपनी वडाईहे तामें यह अहंता ममताह़हे जो में वडोहीं, वहुत समुझतहों, मेरेमें वहुत धर्महे जाकरि दैन्यको नाशहे काहेतें जो लोगनमें वडाई हे यह महत्तामें उन्मत्त फ़ुल्यो फिरतहों ताकरि देन्यकी नाशहे तातें में कहा करूं ? ॥ ११ ॥

१ मय लोक वहे जानिक शरण आवतहैं तातें अपने मनमेंह बहाई आयजाय-जहां बहाई आई तहां देन्यको नाश भयो या अभिनायसों एमें लिखेहे.

मूलं-निवेदनातुसंधानं सिद्धित्यक्तस्य मे कथम् ?। केवलं श्रणं सर्वत्यागाभावाच दुर्छभम् ॥१२॥

शब्दार्थ:-सत्पुरुपर्ने जिनको त्याग कियो हे एसो जो में तिनकों निवेदनको अनुसंधान कहांते होय ? ओर सर्वत्याग नांहीहे तासों केवल शरणहू दुर्छभहे ॥ १२ ॥ टीका-कोई कहे जो निवेदनको अनुसंधान राखो ताहिकरि सर्व सिद्ध होगयो यामांति कोई कहें तहां श्रीहरिरायजी कहतहें जो सत्पुरुप जो पुष्टिमार्गीय भक्त भगवदीयहें तिननेंतो मोकों ताजिदियोहे अब निवेदनको अनुसंधान केसें करूं? काहेतें जो निवेदनको अनुसंधान भगवदीयसों मिलिकें कर्तव्यहे सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी नवरत्नग्रंथमें कहेहें "निवेदनं तु स्मर्त्वयं सर्वथा ताहरीर्जनैः "(निवेदनको स्मरण सर्वथा ताहरीयजननसी भिलिकें करें) इत्यादि चचनकरि निवेदननको अनुसंधान भगवदी-यविना अक्लें केसें होय ? तहां कोई कहे जो केवल प्रभु शरण करो जो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी श्रीकृष्णाश्रयमें श्रणमार्ग प्रकट करि श्रण सिद्ध कियेहें सोहि करो एसें कहे तहां कहतहें जो केवल शरण तो सब लौकिक वैदिकको मनमें त्याग होय तब सिद्ध होय सो मेरे मनमें तो लोकिक वैदिक कार्य लागिरह्योहे सर्व त्यागको अभावहे शरण कहांते होय ? तातें में कहा करूं शरण परम दुर्छभहें ॥ १२॥

मूलं-चांचल्याचेतसः कुत्र हृद्धः कृष्णपदाश्रयः। विवेकधेर्यं तदेत् मृखाधीशस्य मे कथम्॥१३॥

शब्दार्थः-चित्तकी चंचलतातें हह श्रीकृष्णके चरणारिवेदको आश्रय कहां ? ओर आश्रयके कारणरूप विवेक तथा धर्यहे सो मुर्साधीश जो में हों तिनकों केमें होय ॥११॥ टीका-अन श्रीहरि-गुर्साधीश जो में हों तिनकों केमें होय ॥११॥ टीका-अन श्रीहरि-रायजी कहतहें जो मेरो चित्त टोकिक देहसंबंधी कार्यमें अतिचंचल होय रह्योहे ताकरिकें श्रीकृष्णके पदकमलमें हढ आश्रय नांहीहें आश्रयकी कहा कहों विवेक ओर धेर्य आश्रयके साधनहें सोहू में मूर्खनको राजाहूं तिनकों कहांतें होय ? विवेक धेर्य ओर आश्रय तीन्यो चिह्यें सो विवेकधेर्याश्रयग्रंथमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहेंहें "विवेकधेर्यें सततं रक्षणीये तथाश्रयः" (विवेक ओर धेर्य निरंतर राखनें तथा आश्रय राखनो) यह वचननसों विवेक धेर्यकी अप्टमहर रक्षाकरे तव श्रीकृष्णको हढ आश्रय होय सो अज्ञानीकों विवेक धेर्य कहांतें सिद्ध होय ? ताकरिकें आश्रयहू नांहीहे ॥ १३॥

मूलं–भावो यदनुभावेन भवेन्निष्कासितस्ततः। क ता व्रजभुवः कृष्णचरणांबुरुहांकिताः॥१४॥

श्रव्दार्थ:-जिनके अनुभावतें भाव होय ता (व्रजदेश) तें में निका-सित हों अब श्रीकृष्णके चरणारविंदके चिन्ह (ध्वज, वज्र, अंकुश, पद्म, इत्यादिक) युक्तवह व्रजभूमि कहां ! ॥ १४ ॥ टीका-अव श्रीहरिरायजी कहतहें जो कच्छू न वने तो व्रजलीलाकी भावना करे ताकरि अनुभव होय सो भावको अनुभव तो व्रजसंबंधीं लीलासा-मग्री देखेर्ते होय तहांतें तो में निकासितहों वाहिर परदेशमें स्थितहीं इहां कहा देखिकें भाव उत्पन्न होय! याभांति अपनमें निःसाधनकी भावना करत करत दैन्य भयो तादैन्यकरि तीव्र विरह [विप्रयोग] प्रकट भयो सो देहानुसंधान भूलिगये व्रजकी लीला तन्मय होयके कहतहें जो वह ब्रजकी भूमि कहां हें ! जहां श्रीकृष्ण सगरी लीला ब्रज-भक्तनके संग करीहे एमी व्रजभूमि कहांहे! जहां ठोर ठोर श्रीकृष्णकें चरणारविंदहे जामें ध्वज, वज्र, अंकुश, स्वस्तिक, पद्म, अष्टकोण, यव-कर्धरेखा, कलश, यह नव चिन्ह दक्षिण चरणके तथा गोपद, जंबु, मत्स्य, धनुप, त्रिकोण, अर्धचंद्र, आकाशं, यह सातो वामचरणके मिलिकें पोडश चिन्हहें एसे चिन्हयुक्त ब्रजभूमि कहां हे ? ॥ १४ ॥

मूलं-क शैलः कृष्णदासाख्यः पुलिंदीमावपोपकः। क ते श्रीयमुनोदेशा लीलारसवितारकाः ॥१५॥

शब्दार्थः-पुलिंदीकों भावपोपक कृष्णदास (हरिदास) हे नाम जिनको एसो शेल [श्रीगिरिराज] कहां ? लिलारसकों विस्तारिवेवारे श्रीयमुनाजी करि उत्कृष्टभये एसे वह देश कहां ? ॥ १५ ॥ टीका-कृष्णदास इनको नामहे एसें शैल [श्रीगिरिराज] परम दयाल कहां हे ? जानें पुलिंदीसारिखीकों भावको स्थापनिकयो श्रीगिरिराजके संगतें पुलिंदीकों भाव उत्पन्न भयो एसें श्रीगिरिराजजी सर्वागतें प्रभुकी सेवा करतहें सर्व ऋतुमें प्रभुकों सुख देतहें गाय सुख पावतहें एसें भावके पोपक श्रीगिरिराजजी कहां हें ? ओर श्रीयमुनाजी कहां हे ? कुमारिका नके मनोरथ पूर्णकर्ता श्रीयमुनाजी जहां विराजतहें एसे देश कहां हें ? इनके आश्रयतें श्रीकृष्णकी लीलाको अनुभव होय सो कहां ? ॥ १५॥

मूलं-क्व ते वेणुर्वा येवी समाकृष्टा व्रजस्थिताः। व्रजनाथकरांभोजप्रोच्छिताः क्व गवां गणाः॥१६॥

शब्दार्थ:-जिनने व्रजमें रहे एमें व्रजभक्तनको आकर्षण कियो चह वेण्रवं कहां ? ओर श्रीकृष्णनें हस्तकमलकिर पोंछे एमें गायनके समृह कहां ? ॥१६॥ टीका-अव श्रीहरिरायजी कहतहें जो श्रीकृष्णनें वेणुनाद करि समस्त स्थावर जंगमकों सुधादान किये वह वेणुको रव कहां ? ओर व्रजके नाथ (श्रीकृष्ण) अपने करांवुजमों पोंछतहें, सगरी गायनकों सुख दई पालन करतहें एमी अनेक गायनके समृह कहां ? ॥ १६॥

१ क्जन, गीत, ओर ख, तीन प्रकारकी वेणुनावह सो वेणुगीवमें शिवदहे नामें खमों आकर्षण निरूपण कियोहे.

मूलं-अनंतलीलाधारास्ते दुमाः क्व विपिनस्थिताः। वेणुनादपरा वृक्षभुजारूदः क पक्षिणः ॥ १७॥

शब्दार्थः-अनंतलीलाके आधाररूप तथा अनंतलीलारूप मधु-धाराकों सवतर्हे एसे श्रीबंदावनमें रह्ये बुक्ष कहां ? ओर यह बुक्षनकी शाखापें वेठे वेणुनाद सुनिवेमें तत्पर (मुनिरूप) पक्षि कहां ॥१७॥ टीका-श्रीकृष्ण जहां भक्तनके संग अनंत लीला करतहें एसे श्रीवं-दावनके सुंदर दुमहे जामेंतें वेणुनाद सुनि मधुकी धारा स्रवतहे एसे चुक्ष कहां हे ? ओर वेणुनादके रसके पानकरणमें परायण पक्षि चुक्षादि-ककी शाखा भुजारूपहे तापर आरूढ होय वेठेहे अपनो चंचल ख-भाव त्याग करि मुनिकीनाँई वेठेहे सो वेणुगीतमें व्रजभक्तन कहेहे 'प्रायो वतांव ! विहगा मुनयो वनेऽस्मिन् ऋष्णेक्षणास्तद्दितं कलवेणु-गीतम्। आरुह्य ये द्रमभुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वंति मीलितदृशौ विगतान्यवाचः " [श्रीयशोदाजीकों त्रजभक्त कहतहें जो हे अंव ! यह बंदावनमें पक्षिहें सो बोहोतकरिकें मुनिहे जो पक्षि रुचिरहे प्रवाल जिनके एसे वृक्षकी भुजारूप शाखानके उपर वेठिके श्रीकृष्णमें हे दृष्टि जिनकी ओर इनर्ने केह्यो एसो अन्यक्त मधुर जो वेणुगीतहें ताकों नेत्रमृदि राखेहे ओर छोडि हे अन्यवार्ता जिनने एसे होयके सुनेहें] याभांति त्रजभक्त गावतहें ताहिभावमें श्रीहरिरायजी मन होय भावना करतहें ॥ १७॥

१ रुचिर प्रवालहें तिनकों सायवेकी इच्छा नांही होतहे एसे वेणुनार्थ्रवणमें आपक्तें. २ श्रीकृष्णने कह्यो एमो वेणुनार्द्र ओर वेर्ह प्रभुने कह्योहे तासों वेर्तुल्य वेणुनार्को जानेहे काहेते जो आपमुनिहे. ३ अन्यवाक्ती छोडिहे एसे लिख्योहे तासो वेणुनार्को अनुकृलवाक्ती करतहे एसे जाननो.

मूलं-व्रजस्थिताः । दिधानिर्मथनोन्नादाः कते श्रवणमंगलाः ॥ १८॥

श्बदार्थ:-व्रजमें रह्ये एसे व्रजस्त्रिके चरणारविंदके रेण कहां? ओर श्रवणमें मंगलरूप एसे वह दिधमंधनके अधिक नाद कहां ?१८॥ दांका-अव श्रीहरिरायजी कहतहें जो व्रमिक चरणांभोजकी रेणु वजर्मे स्थितहे सो मोकों कहां? जेसे उद्धवजीने अमरगीतमें कह्योहे 'आसामहो चरणरेणुजुपामहं स्यां बृंदावने किमपि गुल्मलतोपधीनाम्। या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपयं च हित्वा भेजुर्मुकुंदपदवीं श्रुतिभिविष्ट-ग्याम् " (ब्रजभक्तनकी चर्णरजकुं सेविवेवारे चृंदावनमें जो गुल्म, छता, ओर औपधी तामें कछहू में होउ काहेतें जो जजभक्त दुस्यज एसे अपने संबंधिजन ओर वेदमार्गकों छोडिकें 'श्रुतिनके ढूंढवेयोग्य जो मोक्षदाता प्रभुकी पदवी तिनको भजे) याभावमें मन होय श्रीहरि-रायजी व्रजभक्तनकी चरणरजकी विरहमावना करतहे और प्रातःकालमें द्धिमंथनको श्रव्द सुनें सो प्रममंगलरूपहे सो दशमस्कंधमें कहेहें "गोप्पः समुत्थाय निरूप्य दीपान वास्तृन्समभ्यच्यं दथीन्यमन्ययन् । भदीसदीपैभीणिभिविरेजु रज्ज्विकपंद्भुजकंकणस्रजः॥ चलनितंबस्तन-हारकुंडलिवव्यत्कपोलारुणकुंकुमाननाः॥ १॥ उद्गयतीनामरिवेद-लोचनं व्रजांगनानां दिवमस्पृश्ध्वितः॥ दक्षश्र निर्मयनशब्दिभाशितो निरम्यते येन दिशाममंगलम्॥ २॥ (गोपीजन (प्रातःकालमें) अठिके, दीप करिकें, वास्तुको अर्चन करिकें. दाधमंयन करन लागे ओर रज्ज (नेत) सो खेंचातह भुजमें कंकणकी माला जिनकी, और चलायमान जो नितंत्र स्तन, हार, तया कुंडल

१ प्रजमक श्रुतिहपाहे ताते श्रुतिम सम छोडिक भगवानके शरण जाप यह. अभित्राय हे एसे जाननी.

तिनकी कांतियुक्त कपोलमें अरुण कुंकुमयुक्तहे मुख जिनके एसें अजभक्त अत्यंत प्रकाशमानहें दीप जामें एसे मणिनतें बोहोत शोभायुक्त भये॥ १॥ कमलनेत्र (श्रीकृष्ण) कों उच्चस्वरसों गातें एसें अजांगनाको शब्द, दिधके निर्मथनके शब्दकरि मिश्रित [होयके] आकाशकों परसवेलग्यो जाकरि सबदिशाको अमंगल मिटिजातहे) याभावमें मन्न होयश्रीहरिरायजी दिधमंथनके शब्दकी विरहभावना करतहें॥ १८॥

मूलं-यमुनावालुकादेहसंबंधः क्व जलस्पृशिः । विहर्मुखत्वसातत्ये तदीयत्वं च मे कुतः॥ १९॥

शव्दार्थः -श्रीयमुनाजीकी वालुकासों देहको संवंध कहां ? श्रीयमुनाजीके जलको स्पर्श कहां ? ओर मोकों विहर्मुखताको निरंतर भावहे तव तदीयपनों कहांते होय ? ॥ १९ ॥ टीका-अव श्रीहरिरायजी कहतहें जो श्रीयमुनाजीकी वालुका कहांहे ? तथा श्रमजलके संवंधवारों परम लीलारस अमृतमय श्रीयमुनाजीको जल कहां ? वह जल ओर वालुकाके रंचक संवंधतें अलोकिक देह सिद्ध होय सो जल ओर वालुकाको मंबंध कहां ? सो श्रीगुसाँईजी श्रीयमुनाष्ट्रपदीमें कहेहें "तव तटगतवालुकाः कदाहं सकलिजांग गता मुदा करिष्ये " (आपके तटमें गई एसी वालुका आनंदसों सर्व अपने अंगमें शप्त में कब करूंगो ?) यह खोकके अनुसार श्रीहरिरायजी भावाविष्ट भयेहें याभांति विश्रयोग भावसों ब्रजकी लीलाको अनुभव करि फेरि देन्य करतहें जो में निरंतर वहिर्मुखही हों ताहीतें मोकों तदीयत्व कहां ? तदीयत्व होय तो तदीयको संग होय तव भावकी वृद्धि होय सो तदीयत्व नांहीहे ॥ १९ ॥

मूलं-प्रमानंदहरस्थे चित्रं किं दुःखसंतती। पोषकाभावतो नेव हृदः स्वाचार्यसंश्रयः ॥२०॥

शन्दार्थः-परमानंद (श्रीठाकुरजी) सों दूरि रहिवेबारेमें दुःखकी परंपरा चले तामें आश्चर्य कहा ? भावके पोपण करिवेबारेके अभावसों अपने श्रीआचार्यजीको यथार्थ आश्चय दृढ नांही हे ॥ २०॥ दीका-परमानंद श्रीगोवर्द्धननाथजी, सातोस्वरूप, श्रीविष्टलनाथजी, ओर अपनेउपर विराजते होय सो स्वरूप यह पुष्टिमार्गमें परमानंदरूप रसात्मक श्रीकृष्ण सेन्यहें एसें श्रीकृष्ण मोतें दृश्हिं ताकरिकें मेरे चित्तमें निरंतर दुःख रहत हे एक तो मोमें नाव नांही हे ओर दूसरो या भावको पोपणकर्ताह कोउ नांहीहे ताहीतें श्रीवलभाचार्यजीके चरणकमलको हृढ आश्चय मोमें नांही हे ता करिकें में निरंतर दुःख पावतहों ॥ २०॥

मूलं-विषयाभिनिवेशेन प्रेक्षा न विशाति प्रभौ। जातोऽस्मि सांप्रतं सर्वसाधनाऽभाववाहनम्॥२१॥

शन्दार्थः -विषयके अभिनिवेश करि ज्ञानदृष्टि प्रभुमें नांही प्रवेश करतहें अब सर्वसाधनके अभाववारों में भयोहों ॥२१॥ टीका-अब श्रीहरिरायजी कहतहें जो में विषयावेशकरि भयों हूं तासों मेरे हृद्यमें प्रभु वास नांही करतहें सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी संन्यासनिर्णय- प्रथमें कहेहें "विषयाकांतदेहानां नावेशः सर्वधा हरेः " (विषयकरि आकांत देहवारेनके हृद्यमें सर्वधा हरिको आवेश न होय) या भांति विषयको आवेश देखिक प्रभु हृद्यमें नांही स्थित होतहें. और मोकां विषयको आवेश हिरके दर्शनकी इन्छा नांही होतहे तो प्रभु हृद्यमें केसे आवेशे ? या भांति सर्वसाधनके अभाववारोहं ताते भाव कहांतें सिद्ध होय ? ॥ २१॥

मूलं-निःसाधनत्वं भावे तु विद्यमाने प्रयोजकम्। तदभावे केवलं मेदोषायेव न चान्यथा॥ २२॥

ग्रदार्थः—भाव विद्यमान होय तव तो निःसाधनपनों प्रयोजकहें 'परंतु भावको अभाव होय तव केवल दीपके लियेही मेरो निःसाधनपनों हे अन्यथा नांही ॥ २२ ॥ टीका—अव श्रीहरिरायजी कहतहें जो में भाविना निःसाधन होय वेठ्योहूं सगरे सत्कार्य, भगवद्धमंहू छोडि- दियोहे सो निःसाधनपनों अप्रयोजकहे तार्ते कच्छू कार्य सिद्ध नांही होय सो जगतमें प्रसिद्धहीहे जो संसारी भगवद्धमं नांही करतहे सो कहा निःसाधनहें ? तेसेंहि ओर संसारीकीनाँई में लोकिकासिक नें जो जगतमें कोच प्रभुकी सेवा स्मरण सत्कर्म नांही करतहे तार्ते कहा निःसाधनहें ? तासुं भगवानमें तदूप भाव भये विना सत्कार्य छोडि निःसाधन होय सो केवल दोपरूपहीहे अन्यथा नांहीहे ॥ २२ ॥

मूलं-शरीरेणाप्यशक्तस्य किया का वात्र सेत्स्यति। यथांधो विधरो मुको विहस्तः पंग्ररुन्मनाः ॥२३॥

शब्दार्थः — जेसें अंध होय, वाधर होय, मूक (गूंगो) होय, हाथ-विनाको होय, पंगु होय, वाबरो होय तेसें शरीरकरिह अशक्तहीतें इहां कोन किया मिद्र होयगी ॥ २३॥ टीका—शरीरमें सामर्थ्य न होयतो लोकिक अलोकिक कच्छ किया न वने तेसें भावविना सकल साधन जुठो हे ताको दृष्टांत कहत हे जेसें अंध हे सो कोन प्रकार

१ इटयमें भाव होय तो निःसाधनपनेतें दीनता होय जो में महा दुष्टहूं मोमें कन्द्र धर्म नांही मो मेरी कहा गिन होयगी १ एमी टीनता होय एसें निःसाधनपनें प्रयोजकहे. २ भाव नांही अरु साधन सब छोडिदिये तामें तो दोपही लगे यह अभिप्रायहें.

देखे, वेहरो कहा सुनें, ग्रंगो कहा वोले, हस्तिवना कहा किया करे, गांविना केसें चले, ओर वावरो होय सो कहा कार्य करे, तेसें जो भावरितिहे, लोकिकमें आसक्तहे, सो कोनपकार अत्यंत दुर्हम भावकों पावे, ओर भाविना पृष्टिमार्गीय फल सिद्धि नांहीहे सो मगवदीय गायेहें "भज सिख भावभाविक देव, कोटि साधन करो कोऊ तज न माने सेव ॥ १॥ धूमकेतु कुमार मांग्यो कोन मारग मीति । पुरुपतें त्रियभाव उपज्यो सवें उलटी रीति ॥ २॥ वसन भूषण पलटि पहरे भावसों संजोय । उलटि मुद्रा दई अंकन वसन सूर्यण पलटि पहरे भावसों संजोय । उलटि मुद्रा दई अंकन वसन सूर्य एलटि पहरे भावसों संजोय । उलटि मुद्रा दई अंकन वसन सूर्य होय ॥ ३॥ वेदविधिकों नेम नांही प्रेमकी पहिचान । अजवधू वदा किये मोहन सूर चतुर सुजान " याप्रकार भावहीतें सव सिद्धहे सो मोमें भावको लेखहू नांहीहे तार्ते कच्छ सिद्ध नांही ।२३।

मूलं-अकामः कामविक्षिप्तो हरिणोपेक्षितोऽधुना। विमृशामि सदा स्वांतेका गतिमें भविष्यति॥२४॥

शब्दार्थ:—भगवद्धर्मकी कामनाकरि रहितहाँ ओर लोकिककामनाकरि विक्षिप्तहों अव हरिने उपेक्षा कियोहं सो सदा अपने मनमें
विचाल्हें जो मेरी कहा गति होयगी ॥२४॥ टीका—भगवत्कामना
जो नानाप्रकारके सेवासंबंधी मनोरय ताकरि रहितहों मेरो मन प्रभुसेवामें एकक्षणह नांही लागतहे ओर लांकिककामना विषयादिक तथा
देहके भरणपोषणसंबंधी कामनाकरि प्रसितहों ताकरि हरि जो
बीक्षण सो मेरी उपेक्षा कियेहें मेरी सुध नांही लेतहें में महादोपको
समुद्रहों यातें भेरी त्याग कियेहें "आरं एक दोप मेरेमें सबांपरि

१ इंरपाभावको अभिन्नाय मृतमें नांहीहे तोऊ बोहान गुन्नकमें हे नामां जिल्ह्योहे और जितनो मृततें अधिक दीरो हे तिनमें " एमे निन्ह कियहें.

भारीहे तार्ते प्रभु मोकों छोडे सो संतजन जो भगवदीयहें सो सदा ईपीमाव करिकें रहितहें जेसें विभीपणकों रावणनें पदसों प्रहार कियो तोंहू विभीपण विनती किये भळी वात कही. ओर कृष्णदासनें श्रीगुसांईजीके दर्शन बंध किये परंतु श्रीगुसांईजी कृष्णदासकों भळोहि किये यारीतिसों भगवदीय रहे तो प्रभु प्रसन्न होय. सो में भगवदीयकी इपीमें अष्टप्रहर तत्परहों तातें मेरो त्याग प्रभु कियेहें " सो अब में कहां जाउँ ? ओर कहा करूं ? अब मेरी कोन गिर्हि होनहारहे यह बडो दुःख है ।। २४ ।।

मूलं-विरक्तवेषिणास्माकमधिकारकृता गुनः। कृतं युवितवरयेन कार्यमेकमनीदृशम्॥ २५॥ कस्याश्चित्सूरतिग्रामे विधवायाश्च संगमात्। दुष्टेन स्थापितो गर्भ पातितश्च तथोषधात्॥ २६॥

शब्दार्थ:-अपने अधिकारि विरक्तनें फिर स्त्रीके वश्य होयकें इनकों योग्यं नहीं एसो एक कार्य कियो ॥ २५ ॥ सूरतगाममें कोड विधवाके संगमतें दुएँनें गर्भ स्थापन कियो सो तेसें औपयतें गिरायो ॥२६॥ टीका-भगवद्धर्मसंबंधी दुःख तो मेरे हृदयमें वोहोतहें और एक ठौकिक दुःख आयके प्राप्त भयो हे सो कहतहों विरक्त

१ यह ष्ट्रतांत लिखवेको कारण यह दीखेहे जो धंग करनो सो बोहोत विचारिके करनों उपरतें धमें देखिके विनानिचारे सहसा भीतरको संबंध नांही राखनों, २ विरक्त होयके खीके वश्य मयो ताम् "फिर" एसे लिख्यो. ३ निरक्त होयके फिर खीके वश्य होनो मो योग्य मांही. ४ कोड दुष्टमें गर्भ स्थापन कियो ओर अधिकारिने तो औप गादिककी सहायता करिके गिरायो एसे मूलकोकके अनुसार अर्थ होयहे और बजातिक लिखे पुस्तकमें तो अधिकारिनेही गर्भ राज्यो एसे लिखोहे तातें वह कार्य तथा गर्भपातको कार्य खीके वश्य होय कियो सो अयोग्य कियो एसे ह अभिवाय दीखतहे.

वेपी हमारो अधिकारी जाकी जगतमें वहुत वडाईहे ओर में हू वाकों रूपापात्र जानिकें संग कियो अपनें पास राख्यो. अधिकारी स्त्रीके वश्य भयो यह कि खुगमें स्त्री मोहिनीहे काहुको धीरज, ज्ञान, विवेक राखत नांही तातें युवतीवश अधिकारी होतभयो सो अयोग्य कार्य कियो अथवा विरक्त होयके अधिकार लियो सो अयोग्य कार्य कियो ताकरिकें युवतीके वश भयो हृदयमें काम बढत भयो।।२५॥ याप्रकार युवतीके वश होय कोई कालमें समय पाय स्रतगाममें विधवाके संग संबंध करतभयो सो कोई या वातकों जानत नांही सो वहविधवास्त्रीकों गर्भ रहिगयो ताकरिकें वहस्त्री ओर अधिकारी मनमें महादुःखी भये जो अब केसी होयगी पाछें दोड मिलिकें अनेक ओपि करिकें गर्भ गिरावतभये सो यह वात सब ठोर प्रसिद्ध सबके जानिवेमें आई।।२६॥

मूलं-मर्णं चोभयोर्मध्ये कस्यचित्स्यान्न संश्यः। यत्नेन प्रेमजिन्नाम्ना मदापत्तिनिवारिता॥२७॥

शब्दार्थः —दोयके मध्यमें ते एकको मरण होतो यामें संशय नांही, यत्न करिकें प्रेमजीनामके बैष्णवने मेरी आपित्त निवृत्ति करी।।२७॥ टीका—औपध देकें गर्भ गिरायो सो मृतक होयकें गियों ताकरिकें राज्यमें हाकिमकों खबरि मई सो मृत्युसमान दुःख होतमयो यामें संशय नांही ओर कहांताँई लिखो. सो प्रेमजी बैष्णव मेरे संग हतो कोहू अनेक यत्न करिकें आपित्त (दुःख) निवृत्त किये राजद्वार-वानें समाधान कियो सो जानेंगे॥ २७॥

मूलं-विश्वासः कस्य कर्त्वय इति खिन्नं मनो मम। गृहकार्यं न चलति मनुष्याणामभावतः॥२८॥

शब्दार्थ-विश्वास कोनको करनों एसें भेरो चित्त खेदयुक्त होयहे ओर मनुष्यनके अभावसों गृहको कार्य न चले ॥ २८॥ टीका-एसी वार्ता देखिकें अव विश्वास कोनको करियें. लोंकिक दुःखसंबंधके लिये गृहस्थको छोडिकें विरक्त प्रमाणिक वैष्णवकों संग लियो ताकी तो यह गति होतमई अव कोनकों अपनें पास राखियें. कोनकों विश्वास करियें सो मनुष्य मिलत नांही यह वडोहि दुःखहे. परदेशमें जान्यों मनुष्य चाहियें सो मिले नांही ओर विश्वास काहूके उपर आवत नांही, विश्वास विना सुख नांही होत हे ॥ २८ ॥

मूलं-अंतः सिग्धोऽपि कार्ये तु महोषातुस्मृतेः सदा। प्रायशः प्रेमजिन्नामा वर्त्ततेऽसी विरक्तवत् ॥२९॥

शब्दार्थः—भीतर स्नेहयुक्तहे तो कार्यमें तो मेरे दोपकी पीछें स्मृतिमें यह प्रेमजीनामको वैष्णवहे सो वोहोतकरिकें विरक्तकीनाँई रहतहे ॥२९॥ टीका—परमस्नेही मेरे एक इहां प्रेमजीहे जाको लोकिक कार्यमें अथवा अलोकिक कार्यमें कोईप्रकार इनके हमारी लोकिकवें दिक अनेक किया देखिकें मनमें हमारे दोपकी रंचकहू विस्मृति नांही होतहे. सर्वओरतें हमारेविपे हृदसाव राखतहे एसो भगवदीय मेरे संगमें एक प्रेमजीहीहे सो केवल विरक्तकी नाँई रहतहे जितनी वनतहे तितनी हमारी टहल करि लोकिकतें न्यारो रहतहे. हे गृहस्थ परंतु शास्त्रमें जेसें विरक्तके धर्म कहेहें तद्वत विरक्त रहतहे इनके संगतें कछुक मन टिकानेमें रहत है ॥ २९ ॥

मूलं चिलतुं यतते तस्माल्लेख्या बहु समाहितिः। क्षांतोऽपराधः सर्वोपि मृपा क्रोधवश्रस्ततः॥३०॥ शब्दार्थः - सर्व अपराध सहनं कियो तासं मिथ्या क्रोधके वश भयो एसो प्रेमजी चिलवेको यत्न करतहें ताते वोहोत समाधान लिखनों

१ निरक्तको अपराध सहन कियो सो प्रेमजीके मनमें एसे आई जो एमी अपर राप क्यों सहन कियो तार्ते मिथ्या मोधके वस भयोहे.

11 ३० ॥ टीका-सो प्रेमजी' अब मेरे पासतें चिलवेको विचार करतहे अब में कोनप्रकार निर्वाह करूंगो तातें कच्छुक समाधान लिखोगे. में अपनो दुःख तुमकं लिखतहं सो बोहोतकरिकें जानियो अपराध सह्यो है तातें मृपा कोधके वस भयोहे सो ताहशीयको एसो कोध नांही चहियें काहेतें जो कोधहे सो भगवद्धभीमें वडो वाधक हे, कोधतें भगव-दावेश दूरि होय जाते हे. ॥ ३० ॥

स्लं-इदानीं तु कृपापूर्ववदस्तीति भयोङ्गितैः। भवद्भिः सर्वथा लेख्यं पत्रं सर्वे पृथक् पृथक्॥ [इदानीं तु कृता (कृपा)पूर्वमनोवृत्तिस्तु सर्वथा। तस्माद्धयोङ्गितैः सर्वैः पत्रं लेख्यं पृथक् पृथक्॥३१।

शब्दार्थः-अब तो पूर्वकीनाँई ऋषाहे तासों भयरहित (होयकें) तुम्हारे सर्वने सर्वथा जुदेजुदे पत्र लिखने अथवा अवतो पूर्वकी मनो-वृत्ति तथा ऋषापूर्वक मनोवृत्ति सर्वथा कीनीहे तासों भयरहित सर्व होयकें जुदेजुदे पत्र लिखनें ॥ ३१ ॥ टीका-अब तो पूर्व जेसी ऋषाँ

१ कोई एसं कहेह जो प्रेमजी आपकी पास अधिकारी हतो विननेही अयोग्य काम कियो ताहं आपने कछ ठपका दियों तात त्रोध करिकें वह चिटिनेको विचार करनलायों तन आपके मनम रोद होयवेलाग्यों जो प्रेमजी अधिकार करतहे ताकरिकें हम निर्धित होय निरोधमें मग्न रहतहे लीकिक आपत्ति (दुःस) इनके यत्नकरि निर्मत होतहे सो चल्यो जायगों तो में लीकिककार्यमें कोनप्रकार निर्वाह कहंगी निर्मत होतहे सो चल्यों जायगों तो में लीकिककार्यमें कोनप्रकार निर्वाह कहंगी ताते कोड समाधान लिसे और वह रहिजाय तो आछो तासों आप एसे लिसतहें. पांतु यह अभिप्राय छोटे शिक्षापन तथा वहे शिक्षापनमें जो वजवासी लेसकनें पांतु यह अभिप्राय छोटे शिक्षापन तथा वहे शिक्षापनमें जो वजवासी लेसकनें एखें वामें नाही दीसतहें. २ व्रज्यासिनके लिस्योहे सो मृलमों निरूद हे तामों किरयोहे तामें नाही लिख्योहें. ३ पूर्वकीनाई कृताहे एसे लिस्योहे सो मृलमों निरूद हे तामों इहां नाही लिख्योहें. ३ पूर्वकीनाई कृताहें एसे लिस्योहें सो स्टोक २० के दीपण इहां नाही लिख्योहें. १ पूर्वकीनाई क्याहें एसे लिस्योहें सो स्टोक होनी। ५ शिक्ष हती तेसी शिक्ष कीनीहें तासी पन आयिनेमों इत्ति स्थिर होयजायगी. ५ शिक्ष हती तेसी शिक्ष कीनीहें तासी पन आयिनेमों हिए होयजायगी. ५ शिक्ष हती तेसी शिक्ष कीनीहें तासी पन आयिनेमों हिए होयोहें मां मृलमों तम्हारे कृता रासनी एसे वजनामीके पुस्तकमें निम्तानमों लिस्योहें मां मृलमों तम्हारे कृता रासनी एसे वजनामीके पुस्तकमें निम्तानमों लिस्योहें मां मृलमों तम्हारे कृता रासनी एसे वजनामीके पुस्तकमें निम्तानमों लिस्योहें मां मृलमों तम्हारे कृता रासनी हिस्लोहें.

राखतहते तेसीहे तासों हमारे उपर खेह राखि भय छोडिकें पत्र लिखनें काहेतें जो हम परदेशमें हें तातें मनुष्य पास चहियें सो जान्यो मनुष्य चल्योजाय फिर दूसरो राखनो पडे तातें याके चित्तको समाधान होय ताहिमांति सब न्यारे न्यारे पत्र लिखियो, ॥ ३१ ॥

मूलं-अतिप्रशंसया चित्तं यथा तस्य स्थिरं भवेत्।

मुखरोऽपि समीचीनो सुख्यदोषविवर्षितः॥३२॥

शब्दार्थः – जेसें इनको चित्त स्थिर होय तेसें अति प्रशंसा करिकें पत्र लिखनें काहेतें जो यह मुखर (वोहोत वोलिवेवारो) हे तोहू. मुख्यदोप [अविश्वास तथा अन्याश्रय] तें 'विशेषकरिकें वर्जितहें तासों आछोहे ॥ ३२ ॥ टीका—अति प्रशंसा करिकें इनको 'समाधान होय तेसें पत्र लिखियों जेसें इनको चित्त स्थिर होय. यह मुखरता दोपवारोहे तोहू मुख्यदोप वामें नांहीहे तासों आछो हे ॥ ३२ ॥ मुलं—वैद्यकेन गृहेऽस्माकं विशेषपरितोषणात्।

भवत्संगात्कंदुकवत्पतितः प्रनहिथतः॥ ३३॥ विशेषः प्रमजित्पत्राद्वीध्यः॥

शब्दार्थः - तुम्हारे संगतें वैद्यक करिकें अपने घरमें विशेष संतोषहे तासों कंदुककीनाँई [गेंदकीनांई] गिरचो फिर उठचोहें ॥३३॥ विशेष पेमजीके पत्रतें जाननों॥३३॥ टीका-यह अपने घरमें वैद्यहें सगरे रोगके औषध जानतहें तातें अपने घरके कामकोहें यह वैद्यनें मंतोष कियों केंदुक जेसें गिरतहे फिर उंचो जातहें तेसें यह

१ निभेष करिकें विज्ञितको अभिप्राय यहहुँ जो अनिश्वास तथा अन्याथयकों अंग्रह नांहीहे. २ अजगसीनके लिखे पुम्तकमें निरक्त उहां आयोहे ताको समाधान करियो तम इनकों कड़ कहेंगे तो तमकों मुखरता दोष होयगो एमें बोहोत लिखोहें सो मुख्यों निम्द्रहें तानों इहां नांही लिखोहे. २ कलम २ प्रमाण लिखे पुस्तकमें याको दोष मनमें मित निचारियों याकों मंतोष करियो एसें बोहोत निस्तारसों लिखोहें मो मुल्यों निम्द्रहें तामों उहां नांही लिख्योहे.

विरक्त गिरयों फिर वैद्यककिर उठ्यो सो तुम्हारे सत्संगको फलहे विशेष समाचार प्रेमजीके पत्रतें जानिये ॥ ३३ ॥

इति श्रीहरिरायजीकृतं चत्वारिंशत्तमं शिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषा-टीकासमेतं समाप्तम् ॥ ४०॥

शिक्षापत्र ४१.

—**《**》:。: 注意——

अव एकचत्वारिंश शिक्षापत्रमें भगवदीयनकों प्रभुकी सेवामे उपयोगिपनेतें लौकिक कार्य करनो, भगवानमें शुद्ध भाव स्थापन करनो, लौकिकमें आवश्यक होय तितनोहि द्रव्यको विनियोग करनो, यामार्गमें सेवाही साधनहे ओर सेवाही फलहे, याजनममें जो तनुजा वित्तजा सेवाहे सो ऐहिक फलहे ओर अलौकिकदेहतें जो सेवादिक करनों, सो पारलौकिक फलहे, ताके लिये सत्संग करनों, प्रभुके दर्शनादिकके विपे आर्ति राखनी, तदीयनकी चिंता हरिही करतहें तोहु जो चिंता करे सो मूर्वहे, तासों श्रीआचार्यजिके दासनकों मेनें जो शिक्षा लिखिहे तापें रहिकें प्रभुकी सेवा करनीं ताहिकरि निश्चय सर्व सिद्ध होतहे यह निरूपणहे। यह पत्रमें श्रीहरिरायजी सगरो पृष्टिमार्गीय सिद्धांत वर्णन करतहें सो समस्त पृष्टिमार्गीय भगवदीयनकों धारण करिवेयोग्यहे यह निरूपणहे।

मूलं-लोकिकं सकलं कार्यं प्रभुसेवोपयोजनात्। परं सर्वत्र पूर्वं हि प्रभुश्चित्यो न लोकिकम् ॥१॥ न रोचते हरेःस्वानां लोकिकासक्तियुद्धानः। तदोपेक्षावशात्तस्य न सिद्धयत्यपि लोकिकम्॥२॥

शब्दार्थ:-सब लौकिक प्रभुकी सेवामें उपयोगिसों करनों परंतु सब ठिकाने सब कार्यमें प्रथम प्रभुही चिंतन करिवेयोग्यहें लौकिक चिंत-न करिवेयोग्य नांही ॥१॥ काहेतें जो हरिकों अपने जननको लौकिक आसिक्युक्त मन रुचत नांही तव इनकी उपेक्षाके वसतें छौकिकहू. सिद्ध नांही होतहें॥२॥टीका-अब श्रीहरिरायजी पुष्टिमार्गीय धर्म कह-तहें जो भगवदीयहें सो जितनो लौकिक कार्यहे सो सब प्रभुकी सेवार्मे विनियोग करें यह सर्वोपिर मुख्य धर्महे. घरहू भगवत्सेवार्थ, देहसंबंधी कुटुंच, इंद्रिय, सबको ब्योहार भगवत्सेवार्थ, काहूमें खेह सो केवल भग-वत्सेवार्थ, याभांति सव भगवत्सेवाके उपयोगसों कार्य करे, स्त्रीसंगर्ह कृष्णभक्त पुत्र होय याभावसों करे जेसें निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजी-महाप्रभुजी कहेहें " पुत्रे कृष्णपिये रतिः" भगवद्भक्त पुत्रमें प्रीति राखे भगवद्धभेमें प्रतिवंधक होय ताको त्याग करे, अनुकूल होय ताको संग्रह करे, जहां जहां मनकी वृत्ति दोरे, जो जो सुने, देखे, सो सब प्रभुकी लीलाहि जाने, क्रीडाभांड जाने, अपने प्रभुकोही चिंतन करे मनमें लौकिक न विचारे तव प्रभु प्रसन्न होय. तहां कोई संदेह करे जो लोकिकतो अत्यंत प्रवल ओर लोकिक कियेविना चलतहू नांहीहै तातें लौकिकसमय लौकिक करें ओर भगवत्सेवाके समय सेवा करें ती निर्वाह होय प्रभुतो कृपाछहें सो थोडोसो वनेसो वहुत मार्नेगे तार्ते सक्ल लौकिक छोडिवेको कहा प्रयोजनहे ? याप्रकार कोई संदेह करे तहाँ कहतहें ॥१॥ अपने स्वकीय भक्तहें सो लौकिक कार्य करे तो प्रभुकों न सुहाय तव प्रभु उपेक्षा करे उदासीन होयजाय, तव सेवामें मनको उद्देगे होय, अनेक कार्यमें मन दोरे तव प्रभु प्रतिबंध करे सो सेवाफलमें श्रीआ

१ सेवामें उद्देगादि प्रतिवंधकी वात मूलमें नांहीहे तोह बोहांत पुस्तकमें है तामी लिखिहे.

आचार्यजीमहाप्रभुजी कहेहें "उद्देगः प्रतिवंधो वा भोगो वा स्यानु वाधकः। वाधकानां परित्यागो भोगेऽप्येकं तथाऽपरम्"॥ यह सव-नके मूल देहसंवंधी भोगहे, तातें खान, पान, विषय, इंद्रियनको सुख, न चाहे तबिह भगवत्सेवा भलीभांतिसो वने जो करे सो सेवार्थ करे भोगमें मन न राखे देहसंवंधी सुखदुःखमें मनकों राखे तो सेवामें उद्देग होय पाछें प्रभु अप्रसन्न होय प्रतिवंध करे सो सेवाहू न वने ओर प्रभुकों छोडिकें लोकिकमें आसक्त होय कार्य करे सोहू कार्य सिद्ध न होय नानाप्रकारके दुःखकों पावे तातें मनकों छोकिकासक्त सर्वया न करे प्रभुकी सेवाहीमें निरंतर मन करे॥ २॥

मुलं-शुद्धभावःप्रभो स्थाप्यो न चातुर्यं प्रयोजकम् । अंतर्यामी समस्तानां भावं जानाति मानसम् ॥३॥

राव्दार्थ: -शुद्ध भाव प्रभुमें स्थापन करनों चिहयें चतुराई कारण-रूप नांही समस्तजीवनके अंतर्यामी (प्रभु) मनमें रह्ये एसे भावकों जानतहे ॥ ३ ॥ टीका -प्रभुसंबंधी कार्यमें शुद्ध भावकों स्थापन करें सदा एकरस प्रीतिपूर्वक करें काह्को दिसावेके लिये न करें जब कोई बेच्णव आवे तादिनां अनेक चतुराईसों सुंदर प्रृंगार करें, जप, पाठ आछीआछी वार्ता करें जादिन कोई न होय तादिन साधारण करें यह सब चतुराई जाननी. तेसें न करें. जेसे श्रीग्रसाँईजी आगरे प्यारे तब एक बेच्णव पटायों. अपनें घर सेवा चतुराईसों करी तहां श्रीग्रसाँईजी चित्रामनवत कहें. तातें चतुराईहें सो सब अपयोजक श्रीग्रसाँईजी चित्रामनवत कहें. तातें चतुराईहें सो सब अपयोजक शिवश्वा वित्रामनवत कहें. तातें चतुराईहें केवल प्रतिष्ठामात्रहें सो लेक्सितिष्ठा भगवद्भावकी नाहाक हें. प्रभु सर्वके हद्यकी जानतहें अंतर्यामी हे तहां मनको कपट कछ चलत नांहीहें सो विवेक वर्षाश्रयमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहेंहें "सर्वत्र तस्य सर्व हि सर्वसामर्थ्यमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी कहेंहें "सर्वत्र तस्य सर्व हि सर्वसामर्थ्यमें

च " यह वचनतें प्रभु सवठोर सर्वसामर्थ्ययुक्तहें याभावसों जानिकें करे तेसोही फल देय तातें लोभार्थ प्रतिष्ठार्थ कपटसंयुक्त कबहू न करें जितनी रीति वंधीहे तितनी पुष्टिमार्गकी मर्यादा रीतिसों करनी, लोकिक वैदिक कछ कामना मनमें न राखनी ॥ ३॥

. मूलं-शुद्धभावे तदीयं तु लैकिकं साधयेत्स्वयम्। तत्साधितमविव्येत सर्वं सिद्धचित नान्यथा॥४॥

शब्दार्थ:-शुद्ध भाव होय तो ताको लौकिकतो आप (प्रभु) सिद्ध. करतहें. प्रभूनें सिद्ध कियो सो विघ्नविना सर्व सिद्ध होतहे अन्यथा नांही होतहे ॥ ४ ॥ टीका-कोउ कहे शुद्धभाव प्रभुमें राखि सर्व प्रभुकों निवेदन करे पाछे लोकिकद्रव्यादिक विना सेवा कोनप्रकार करे ? यह संदेह होय तहां कहतहें जो वैष्णव शुद्ध भावतें प्रभुमें मन लगाय तत्पर होय ताको शुद्धभाव देखिके प्रभु लौकिक वैदिक सकल कार्य सिद्ध करतहे. सो संतदासकी वार्तामें प्रसिद्धहीहे जो वीश टकाकी पूंजीमें प्रभु सर्वकार्य सिद्ध करते, पद्मनाभदासके छोलामें सकल पदार्थ सिद्ध करते, तात शुद्धभावसों करे. तहां कोई कहे जो लौकिकवैदिकवार लोक विन्न करे तहां केसें करे ? एसो संदेह होय तहां कहतहें जो प्रभु अविव्रतें सर्व सिद्धकरतहें सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी भक्तिवर्द्धिनीमें कहेहें "सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिहेढा भवेत्। यावजीव तस्य नाशो न कापीनि मतिर्मम ॥ १ ॥ वाधसंभावनायां तु नैकांते वास ईप्यते । हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिप्यति न संश्यः " (सेवाम अथवा कथामें जाकों दढ आसक्ति होय ताको यावजीवं (जीवे तहांलों) कहहूं नाश नांही एसी मेरी मित हे ॥ १॥ एकांतम रिहवेमें वाध होयवेकी संभावना होय तो एकांतमें वाम नांही इच्छित होत है. ओर घरमें रहिवेमें वाध आयवेकी शंका होय

तहां कहतहें जो हरि (भक्तनके दुःखकों हरिवेबारे) सर्वओरतें रक्षा करेंगे संज्ञय नांही ॥२॥ प्रभुके कार्य सेवादिमें हढ भाव होय सबठोरतें अपनों मन खेंचि सेवामें अथवा कथामें लगावे एसे भक्तकी सर्वओरतें प्रभु निश्चय रक्षा करें जेसें अंवरीपकों दुर्वासाके ज्ञापतें रक्षाकिये, तातें प्रभुके धर्ममें मन लगाय तत्पर होय तो प्रभु निर्विद्यतासों सर्व सिद्ध करें अन्यथा न करें. ओर अन्यथा निर्विद्यतासों कार्य सिद्ध न होय तातें यह लोक तथा परलोकमें एक प्रभुही साथीहें यह ज्ञान राखे ॥४॥

मूलं-आवश्यको हि कर्त्तव्यस्तदीयैलौंकिकव्ययः। अनासकौ लोकिकं तु वर्द्धते न च बाधते॥५॥

शब्दार्थः—तदीयनकों जितनों आवश्यक होय तितनोही ठौकिकमें व्यय करनों आसिक न होय तो ठौकिकतो वहतहे वाध नांही करतहे ॥५॥ टीका—अवं श्रीहरिरायजी कहतहें जो मुख्य तो यहहीहे जो छोकिक न करे परंतु जो ठौकिक न छटे तो आवश्यक होय तितनोही छोकिक करे वामें आसक्त न होय. मनकी आसिकही वाधकहे, आसिकिविना कितनोह ठौकिक वहे सो सर्वश्रा वाधक न होय सो श्रीआचार्यजीमहाप्रमुजी निवंधमें कहेंहें "गृहं सर्वात्मना त्याप्यं तक्ष्यक्तुं न शक्यते। कृष्णार्थं तत्प्रयुंजीत कृष्णोऽनर्थस्य मोचकः" (सर्वात्मकरि गृह छोडिवे योग्य हे सो छोडिवेको समर्थ न होय तो वह गृह श्रीकृष्णके अर्थ लगावे, काहेतें जो श्रीकृष्ण अनर्थतें तो वह गृह श्रीकृष्णके अर्थ लगावे, काहेतें जो श्रीकृष्ण अनर्थतें छडायवेवारेहे) ओर मक्तिवर्द्धिनीमें कहेहें "अन्यावृत्तो मजेत्कृष्णं छडायवेवारेहे) ओर मक्तिवर्द्धिनीमें कहेहें "अन्यावृत्तो मजेत्कृष्णं

१ देह, इंद्रिय, मन, सब गृहतें न्यारे होयजाय सो सर्वात्मकरि त्याग जाननो. जामें घरमें रंचकह संबंध किंवा शिति न रहे.

२ जहां अहंता ममता लगे सी संमार जाननो. सो धर श्रीकृष्णकों निरेटन करे तथ अपनी अहंता ममता छटे सो संसार छूट्यो जाननो.

पूज्या श्रवणादिभिः । व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत्सदा " ('अव्यावृत्त होयकें पूजाकिर श्रवणादिकनतें श्रीकृष्णकों भजे. ओर व्यावृत्तहू हिरमें श्रवणादिकमें चित्तको सदा यत्न करे) यह वचनसों जो तीव्र वैराग्य होय तो सर्व त्यागपूर्वक प्रभुको भजन करे ओर त्याग होय न सके तो सगरो घर श्रीकृष्णकी सेवामें विनियोग करे. व्यावृत्ति रहित रहे सो तो उत्तम हे परंतु एसें न वने तो एसी व्यावृत्ति करे जामें निरंतर हिरमें चित्त रहे. याप्रकार रहे तो वाधक न होय नही तो वाध करे ॥ ५॥

मूलं-अन्यथा वृद्धमप्येतद्वाधते तदुपेक्षया। कृष्णसेवैकविषये मुख्यं चेतो निधीयताम्॥ अन्यत्तदुपयोगित्वात्क्रियतां न तु मुख्यतः॥६॥

शब्दार्थः—उपर कह्यो तेसं न करे तो गयो एसो लौकिकहू.
प्रभुकी उपेक्षातं वाध करे तासों श्रीकृष्णकी सेवारूप मुख्य विषयमें चित्तकों स्थापन करनों. ओर दूसरो सेवाके उपयोगिपनेतें करनों मुख्य तासों न करनों ॥ ६ ॥ टीका—लौकिक वैदिकमें चित्त वहुतही वहे सो प्रभु तो अंतःकरणमें विराजतहें सो जव लौकिकमें आसक्ति देखे तब उपेक्षा करि उदासीन होयजाय सो श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजी संन्यास- निर्णयमें कहेहें "विपयाक्रांतदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः" जब देहीको मन इंद्रियनको विपयमें आसक्त प्रभु देखे तब अपनों भगवद्भावरूप रसको आवेश वामेतें खेंचि लेय. ताकों केवल लोकिक विपयमें मन असक्त न करे प्रभुकी सेवासंवंधीं कार्य जानि प्रभुसंवंधी विपय धारण आसक्त न करे प्रभुकी सेवासंवंधीं कार्य जानि प्रभुसंवंधी विपय धारण

१ लॅकिक वीदेक छोटि श्रीकृष्णकों मज गो अव्याष्ट्रत होयके भजन जाननों गो न यने नो निरंतर हिग्में चित्त राखनों ताकरि हिर सर्व दुःखहर्नाहें सो वापक नोही होयवे दें यह जाननों. मुं जो फलाने उत्सवकों यह चहियें ताअर्थ यत्न करे फलानी सामग्री मुं आरोगें तो आछो, फलानो वागो, वस्न, आभूषण प्रभुमें विनियोग होय तो मली, जा प्रकार हरिविषयक राग होय सोई वार्ता मनमें धरे. ओर 'कथाहू एसी सुनें जो जाके सुनेतें लोकिकमें वैराग्य दृढ़ होय और प्रभुके धर्ममें अनुराग हृढ़ होय. तानें कृष्णसेवार्थ चित्तमें विषयको आवेश होय येही सर्वोषिर मुख्य फलहे सकल पदार्थ प्रभुकोही जानें अपनी सत्ता कछ न जानें सेवार्थ प्रभुको प्रसादी दासधर्म जानि लेय अपनें शरीरको भोगन जानें यह उत्तम भगवदीयके लक्षणहे।। ६।। मूलं-सेवेव साधनं सेवा फलमें हिकमत्र सा।

रें राजन राजन राजा मराजालकार राज सेवालोकिकदेहेन संभवेत् पारलोकिकम् ॥७॥

राज्दार्थ:—सेवाही साधनहे और इहां सेवा होय सो ऐहिंक फल्हे तथा येही अलौकिकदेहकरि होय सो पारलौकिक फल्हे ॥ ७ ॥ टीका—पमुकी सेवाहि साधन और सेवाहि फल्हे येही पुष्टिमार्गीयकों सर्वो-पिर कर्त्तव्यहे. मर्यादामार्गमें साधन न्यारो तथा फल न्यारोहे और पुष्टिमार्गमें साधन तथा फल एकहीहे तार्ते श्रीहरिरायजी कहतहें जो पपुकी सेवा फल्ह्य सर्वोपिर जानिक करे साधन न विचारे. काहेतें जो साधनह्य विचारे तो ज्ञानमार्गीय होयजाय. जेसे श्रीकिपलदेवजी जो साधनह्य विचारे तो ज्ञानमार्गीय होयजाय. जेसे श्रीकिपलदेवजी माताप्रति ज्ञानकी भावना करी, नख शिखतें प्रभुमें मन लगाय, पाछें माताप्रति ज्ञानकी भावना करी, नख शिखतें प्रभुमें मन लगाय, पाछें माताप्रति ज्ञानकी भावना करी सो न्यून फल्हे. तार्ते सेवा साधनमान निकारि निर्गुणकी भावना करें सो न्यून फल्ह्य जानि सेवा करें सो स्वाफलकी भावना अहर्निश चित्तमें राखे येहीफल पुष्टिमार्गमें हे सो सेवाफलकी भावना अहर्निश चित्तमें राखे येहीफल पुष्टिमार्गमें हे सो हों लोकिकदेहतें सेवा होय सो ऐहिक फल जाननों और अलोकिक हहां लोकिकदेहतें सेवा होय सो पारलौकिक फल जाननों ॥ ७॥ देहतें सेवा होय सो पारलौकिक फल जाननों ॥ ७॥

१ व्रजवासीनके लिखे पुस्तकमें अन्यदेवके विनियोगकी तथा नगराजाकी यात लिखिह सो मूलसों विरुद्ध जानि इहां नोही लिखिह.

मूलं-तदर्थमेव कर्त्तव्यः सत्संगो भाववर्दकः। अनिधनोवन्हिरिव भावः शाम्येत्तु लोकिकात्॥ ८॥

शब्दार्थ:-ताकेलियेही भावकों वढायवेवारो सत्संग करनों कहितें जो इंधनविना अमि जेसें शांत होयजाय तेसें लौकिकर्ते भाव शांत होय जाय ॥ ८ ॥ भगवदीयको सत्संग न भयो तव सेवाको भाव हृदयारूढ न होय तब सेवा क्रियावत् होयजाय तार्ते ब्रह्मसंबंध करि पुष्टिमार्गीय भगवदीय सेवामें तत्पर होय सत्संग करे. सो श्रीआचार्य-जीमहाप्रभुजी नवरत्नग्रंथमें कहेहें "निवेदनं तुस्मर्तव्यं सर्वथा ताहरीं-र्जनैः " याप्रकार ब्रह्मसंबंध करि पुष्टिमार्गीय भगवदीयके संग निवेदः नको स्मरण करे. ओर अन्यमार्गीय आछो होय तोहू वाको संग न करे, उपर ३५ मे शिक्षापत्रके प्रारंभमें कहेहें "तदीयानां महहुखं विजातीयेन संगमः । संभाषणं सजातीयेरसंगो भाषणं च न विजातीयनको संग तथा इनही साथ संभापण ओर सजातीयनकी संग तथा इनके साथ भाषणहू नहीं येही तदीयनकों वडी दुःसहैं। दोऊ एक मिले तो रस उपजे सो निरोधलक्षणमें श्रीआचार्यजीमहा-प्रभुजी कहेंहें ' महतां ऋषया यद्धत्कीर्त्तनं सुखदं सदा। न तथा लोकिकानां तु सिग्धभोजनरूक्षवत्" (भगवदीयनके संग किर्तः नमें वडो सुख आवत्हें जेसे घृत्युक्त भोजनके स्वाद जैसी स्वाद लगतहे और लौकिककी वार्तामें रूखे भोजनके स्वाद जैसी स्वाद लगतहे.) तदीयके मुखतें सुनें तो दिनदिन भावकी युद्धि होय और लोकिकके मुखतं सुने तो पेटतो भरे परंतु रूखो भोजन जेसो होय् यह भाव विचारि, पुष्टिमार्गीय भगवदीयसौँ मिलिकें, सेवा स्मरण करे तो भावकी चुद्धि होय जेसे अभिमें काष्टादिक न लगाव तो अभि शीतल होयजाय तेसे भगवद्भाव अभिरूपहे तामें सत्संगरूप इंधन न लगावे तो भावरूप अगि शांत होय जाय ओर जो

भगवदीयको संग होय तो सगरो भाव अभिकीनाँई वहे, और छौकि-क्को संग होय तो जल अभिकीनाँई भावको नाश करे तार्ते भगव-दीयको संग कर्त्तव्यहे ॥ ८॥

मूलं-आर्तिरेव सदा स्थाप्या हरिसंदर्शनादिषु। स्वास्थ्यं तुलोकिकेनेव ददाति करुणानिधः॥ ९॥

शब्दार्थः-हरिके सुंदर दर्शनादिकमें आर्त्तिही सदा स्थापन करनी. करणाके निधिरूप प्रभु लौकिकमें स्वस्थता नांही करेंगे ॥ ९ ॥ टीका-या पुष्टिमार्गमें आर्तिह सोहि सर्वापिर फलहे. ताते प्रभुके दर्शन-की आत्ति राखनी ताकरि प्रभु कृपाकरें सो निरोधलक्षणमें श्रीआचा-येजीमहाप्रभुजी कहेंहें ''क्रिश्यमानान् जनान्दृष्टा कृपायुक्तो यदा भवेत्। तदा सर्वं सदानंद हदिस्थं निर्गतं वहि ॥ सर्वानंदमयस्यापि कृपानंदः खुर्छभः" जेसे काष्ठके भीतर अभिहे सो मथनर्ते चाहिर निकसे तेसेंही भभुके दर्शनार्थ क्वेश करे तो प्रभु वाहिर पकटें. सर्वके आनंददाता मभु सबठोरहे सो अपनें जीवकी आर्ति देखि वाहिर प्रकट होय ओर सर्वे आनंदमय प्रभुहें तोहू कृपानंद परम दुर्छभहे भक्तनहीपर कृपा करतहें तातें हरिदर्गनकी आर्ति हदयमें स्थापन करनी. लोकिकमें आर्ति न राखे काहेतें जो प्रभु लोकिकमें स्वस्थता करें तो जीव वहि-र्मुख होय जाय तार्ते आप करणानिधिहे सो लौकिकमें सेह छुडाय अपनेमें लगावतहें. जब अपनेमें चित्त लग्यों देखें तब प्रभु स्वरूपा-नंदको अनुभव करावे तातें सर्व छोड़िके एक प्रभुमेंही स्नेह जोडे सो श्रीभागवतएकादशस्त्रधमें उद्धवजीपति श्रीभगवान कहेहें "त्वं तु सर्व परित्यज्य स्रेहं स्वजनवंधुय । मूख्यावेश्य मनः सम्यक् समहिग्व-चरस्व गाम " (हे उद्भव! तू तो सर्व स्वजनबंधमें सोहको त्यागकरिकें मोमें संपूर्ण रीतिखं मनकं आवेशयुक्त करके सवठोर समहिष्ट राखिकें भूमिपे विचरे तो तोकों कच्छ भय नांही॥ ९॥

मूलं-तदीयानां स्वतिश्चितां कुरुते पितृवद्धरिः। पुनिश्चितां प्रकुर्वाणां मूर्खा एव न संश्यः॥१०॥

शब्दार्थः —हिर (सवनके दुःखहर्ता प्रभु) तदीयनकी चिंता िषताकीनाँई आपतेंही करतहें फिर चिंता करिवेवारे मूर्खहीहें संशय नांही।।१०।। टीका—तदीयनकों अपनी चिंता, तथा देहसंबंधी चिंता, यहलोक परलोकसंबंधी कछ्डहू चिंता नांही कर्त्तव्यहे. काहेतें जो जेसे पिता पुत्रके पालनकी चिंता राखे तब पुत्रकों कछ भय नांही याप्रकार प्रभु अपनें भक्तनकी चिंता करतहे. तोहू कोउ भक्त जो अज्ञानकिर चिंता करतहें सो सर्वधा मूर्खहें यामें संशय नांही।। १०।।

मूलं-तस्मादाचार्यदासेस्त मच्छिक्षा यां सदा स्थितैः। सेव्यः प्रभुस्ततो भद्रमखिलं भावि सर्वथा ॥११॥

श्रुव्हार्थः—तासों श्रीआचार्यजीके शरण आय दास भये, ओर मेनें जो शिक्षा लिखिहे तामें सदा स्थितहे एसे वैष्णवनकों तो प्रमुही सेव्यहें तातें समग्र सर्वथा सिद्ध होयंगे ॥ ११ ॥ टीका—श्रीआचार्यजी वछभाचार्यजीके जो दासहे सो निरंतर यह मेरी शिक्षा अपने हृद्यमें धारण करे तिनहींके अर्थ इतनो यत्न कियो हे जो अनेक धर्म हे सो अधिकारि भेदकरि न्यारे न्यारे वताएहें ओर भक्तिमार्गमेंहू पाठ, गुण-गान, वार्ता, श्रवण, तिनसवनमें मुख्य प्रभूकी सेवा हे तामें प्रभूको सन्मुखत्व हे. सेवा विना मुख्य फलको अधिकार न होय, तातें यह मनमें जाननो जो कोई प्रभूकी सेवा करतहें, तिनके सकल कल्याण होय, कार्य तथा पुष्टिमार्गको फल होनहार हे तिनके लिये यह सर्वापर निश्चय सिद्धांत भयो. (अव श्रीगोपेश्वरजी कहतहे जी) 'धन्य हरिजीवनदास! तिहारे हृद्यमें श्रीहरिरायजी आय मेरो दुःख दूरि कियो ओर यह शिक्षापत्रकी टीका मेरी कृति मित जानियों मेरे हृदयमें प्रविष्ट होय श्रीहरिरायजी कियेहे. तार्ते श्रीहरिरायजीके हृदयमें श्रीआचार्यजी तथा श्रीगुसाईजी निरंतर विराजतहें तार्ते यह भावप्रकट भयोहे सो तुम परम चतुरही तार्ते यह रत्न अत्यंत गोप्य राखियों काहेतें जो जहां तहां दिखायवेयोग्य नांहीहे। १११।

इति श्रीहरिरायजीकृतमेकचत्वारिंश्तमंशिक्षापत्रं श्रीगोपेश्वरजीकृतव्रजभाषाटीकासमतं समाप्तं॥४१॥

भावस्वरूपनिरूपणम् ॥

अव मृलक्लोकके एक पुस्तकमें अडतीसमो शिक्षापत्र नवीनहीं हो का काहू पुस्तकमें नांही. तासों शिक्षापत्रके भीतरको नांहीहे तथापि श्रीहरिरायजीकृतहे ओर इनको अभिप्राय पुष्टिमार्गीय वैष्णवनकों जानिवयोग्य हे तातें वह मृलक्लोक तथा उनके अर्थ लिखतहें.

मूलं-रसात्मकतया सिद्धः परमात्मा श्रुताविति। संयोगविप्रयोगाभ्यां श्रुगारसरसो हरिः॥ १॥

अर्थ:-श्रुतिमं रसात्मकताकरि परमात्मा (श्रीकृष्ण)सिद्धहे तासी संयोग ओर विप्रयोग भेदतें शृंगार रसतें सरस हरिहे. काहेतें जो वेदमें कहेहें जो आपरसरूपहें ओर ग्रहण करिकें आनंदयुक्त होयहें तातें आप आनंद्धनहें सवरसमें शृंगाररस सुख्यहें सो शृंगार संयोगविप्रयोगभेदसों दोयप्रकारकों हे वह दोय प्रकारके शृंगार करि मभु सरसहें ॥ १॥

मूलं-धर्मधर्मिविभेदेन ताविपि हिविधो मतो।
धर्मरूपस्तु संयोगो बहिःप्राकट्यपालितः॥
परोक्ष आंतरो यस्तु स धर्मित्वेन संमतः॥२॥
वियोगोऽपि तथा थस्तु प्रभुप्राकट्यसाधकः।
स्वतंत्रफलरूपो यः स्वरूपावेशतो हरेः।
धर्मिरूपः स विशेषो नाविभीवप्रयोजनम्॥३॥

अर्थ:-संयोग ओर विप्रयोगहू धर्म ओर धर्मी या भेदकरि दोय प्रकारकेहें तामें वाहिर प्रभुके प्राकट्यतें सिद्ध जो संयोगहे सो धर्मरू-पहे ओर परोक्षमें [हृदयकी भीतर प्रभुपधारे तव] भीतरको संयोगहे सो धर्मिपनेतें मान्योहे ॥ २॥ तेसें विप्रयोगहू जो प्रभुके प्राकट्यकों साधिवेवारो हे सो धर्मरूपहे [जेसें रासपंचाध्यायीमें ब्रजभक्तनको विरह भयो तव प्रभु प्रकटे] ओर हृदयमें प्रभुको आवेश होयजाय तासों जो विप्रयोग स्वतंत्र फलरूपहे सो धर्मिरूप जाननों (जेसें) व्रजभक्तनको विरहदशामें हे सो श्रीभागवतएकादशस्कंधमें भगवान् उद्धवप्रति कहेर्हें ता नाविद्नमय्यनुपंगवद्धध्रियःस्वमात्मानमदस्तथेद्म्। यथा समाधा मुनयोऽव्धितोये नद्यः प्रविष्टां इव नामरूपे "[मेरेमें स्नेहकरि वांधिहे बुद्धि जिनने एसे गोपीजन, अपने देहकों, परलोककों, तथा यह जगतकों, नांही जानत हते. तहां दृष्टांत कहतहे जेसे मुनि समाधिमें कछ ओर अपनो नामरूप नांहीजानतह ओर समुद्रके जलमें नदी मिल गई किर वह अपनी (जुदो) नाम के रूप नांहि जानतहे तेसे गोपीजन ओर कछ नांही जानत हते] याप्रकार विषयोगमें भगवदावेश होयजाय सो विषयोग धर्मिरूपहें तामें आविभावको प्रयोजन नांही ॥ ३॥

मूलं-बहिःसंवेदनं वापि तदसंवेदनं तथा। तयोरवस्थाद्दितयं भावेनवन चान्यथा॥ ४॥

शब्दार्थः -अथवा जावित्रयोगमं वाहिरको ज्ञान रहे (अर्थात सर्व श्रांचको ज्ञान रहे) सो धर्मरूप वित्रयोगहे, ओर जामं यह ज्ञान न हि (अर्थात भगवन्मय चित्त होयजाय ओर कछ जाने नहीं) सो धर्मिक्प वित्रयोगहे. यह दोयप्रकारके विषयोगकी दोय अवस्था भाव-शिक्ति है अन्यथा [भावविना] नांहीहे ॥ ४॥

भूलं-वियोगात्मस्वरूपेण संयोगाभाववद्द्यम् । विहिःसंवेदनाभावे तत्र साक्षात्तथा क्रिया ॥ ५॥ तदा संवेदने विप्रयोगानुभव एव हि । एवं सततं द्वावेव स्वतंत्रा भक्तिरुच्यते ॥ ६ ॥

अर्थः-विप्रयोगात्मक स्वरूप करिकें धर्म ओर धर्मिरूप दोय अवस्यास्पोगके अभाववारी हे वामें संयोगः नांही हे (तामें) जो वाहिरके
प्रांचको ज्ञान न रहे एसो भगवदावेश होय जाय तो यह विप्रयोगास्कि स्वरूपमें साक्षात तेसी कियाहे. संयोगमें जितनो आनंदहे तथा
जेसी कियाहे ताप्रमाण यह विप्रयोगमें हे ॥ ५ ॥ विप्रयोग होय
तेन वाहिरके प्रांचको ज्ञान रहे तो केवल विप्रयोगकोही अनुभव
होय भगवद्विश्वको अनुभव न होय एसँ निरंतर दोय प्रकारको
विप्रयोगहे सोही स्वतंत्र भक्ति कहीहे ॥ ६ ॥

मूलं—भावरूपः स्वरूपातमा निरुद्धः पूर्ण एव सः। धर्मरूपवियोगेऽपि प्रविशति गुणा हरेः॥ ७॥ धर्मरूपे तत्र कृष्णः कोशवत्प्रविशेतपुनः। यथा (भगवंदाविष्टा सूर्त्तिः) भगवदावेशी मूर्त्तिकोशे हरेस्तथा ॥ ८॥

अर्थः—विप्रयोगातमक प्रमु भावरूपहे सो हृदयमें निरुद्ध भये सी पूर्णहीहे ओर धर्मरूप विप्रयोगमें हू हिरके गुण वामें प्रवेश करतहें॥॥॥ ओर धर्मिरूप वह विप्रयोगमें मृतिकीनाई श्रीकृष्ण प्रवेश करतहें।।॥ जेसे मृतिरूपमें भगवदावेश होत है अधवा भगवदावेशवारी मृति रूपमेंहे तेसे वामें हरिको आवेश होतहें।।। ।

मूल-तेषु भावहयं सिद्धं स्त्रीभावः सहजः पुरा । अविष्टभगवद्भावः पश्चाल्जातो विशेषतः ॥९॥ तेषु धर्मा अपि तथा हश्यंते द्विविधा अपि । एवमेवास्मदाचार्यस्वरूपमवद्धद्वयत्।म् ॥ १० ।

अर्थः - उपर धर्म धर्मिक भेद कहे ता भेदमें दोय भाव सिद्ध है। पहिलें तो सहज भयो एसो स्त्रीभावहे और पाछें आविष्ट भये एसे भगवानको भाव विशेपसों भयोहे॥ ९॥ तामें एसे दोय प्रकारकें धर्मह देखिवेमें आवतहें एसेंही अपनें श्रीआचार्यजीमहाप्रमुंजीकी स्वरूप जाननों॥ १०॥

मूलं-स्वामिनीभगवद्भावयुतं चापि विलक्षणम्। अत एवोभयं तत्तद्यंथेषु विनिरूप्यते। प्रभुभिः स्वामिनीभावभगवद्भाववत्त्वतः ॥

अर्थः-श्रीस्वामिनीभाव तथा भगवद्भाव उपर निरूपण किये हैं ता भावयुक्त श्रीआचार्यजीमहाप्रमुजीको स्वरूपहे [अर्थात् धर्म और

१ धमंहप विषयीगमें इत्यमें प्रश्के गुणको आवेश होतहे तागुणके अनुभवकीर विषयोगको अनुमन होतहे. मृतिमें जेसे प्रश्को आनेश होतहे तेसे धामेंहप विषयोगमें भीतृष्णको अवेश होतहे जेसे प्रश्का अपना प्राप्त स्थान स्थित मयोगमें भीतृष्णको अवेश होतहे जेसे प्रजमक्तनको विषयोगने सर्वात्ममाव सिद्ध मयो.

थर्मिरूप वित्रयोग भावयुक्तहे) तोह विलक्षणहे, तासाँही 'ताताग्रंथमें श्रीसाईजीनें श्रीस्वामिनीभाव तथा भगवद्भावयुक्तपनेतें दोयभावा-तमक निरूपण कियहें ॥ ११ ॥

मूलं- सर्वलक्षणसंपन्न' इति नाम विराजते। तथा तत्रेव रासस्वीभावपूरितविग्रहः ।। १२॥ वस्तुतः कृष्ण एवति चोक्तं श्रीवल्लभाष्टके। एवं विदित्वा तद्रुपं कर्त्तव्यः सर्वदाश्रयः।।१३॥

अर्थः सर्वोत्तमजीमें "सर्वेळक्षणसंप्नः" (सर्वेळक्षणकरियुक्त) यह नाम विराजतहे तेसे उहां ही "रासस्रीभावपूरित्तविग्रहः" [रासस्री जो व्रज्ञभक्त तिनके भावकरि पूरित श्रीअंगहे अर्थात यह भावात्मकही आपको श्रीअंगहे) यह नाम विराजतहें ॥१२॥ ओर श्रीवृद्धभाष्टकमें कहे हैं " अज्ञानाद्यं धकार प्रशंसनपद्धताच्यापनाय विलोक्तीमें श्रवा विणितं ते कविभिरिप सदा वस्तुतः कृष्ण एव " (त्रिलोकीमें श्रवा नादिक जो अंधकार ताकी शांतिमें चातुर्य प्रसिद्धं करिवेके श्रव आपकों अमित्व कविनने विणितहे परंतु सदा वस्तुतासों श्राप श्रीकृष्णहीहो) एसे श्रीआचार्यजीमहाप्रभुजीके स्वरूपकों जानिक सर्वदा इनको आश्रय करनो ॥ १३॥

इति श्रीहरिरायजीविरचितं रसात्मकः भावस्वरूपनिरूपणं समाप्तम्।

१. " सींद्र्य निजद्दतं प्रकटितं "यह श्लोकमं जो स्वर्य निर्दालकं वृद्धी अभिप्राय इहां जाननां.